देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
June 2023
Vol.-17, Issue-6(1)

Impact Factor
7.523

# Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

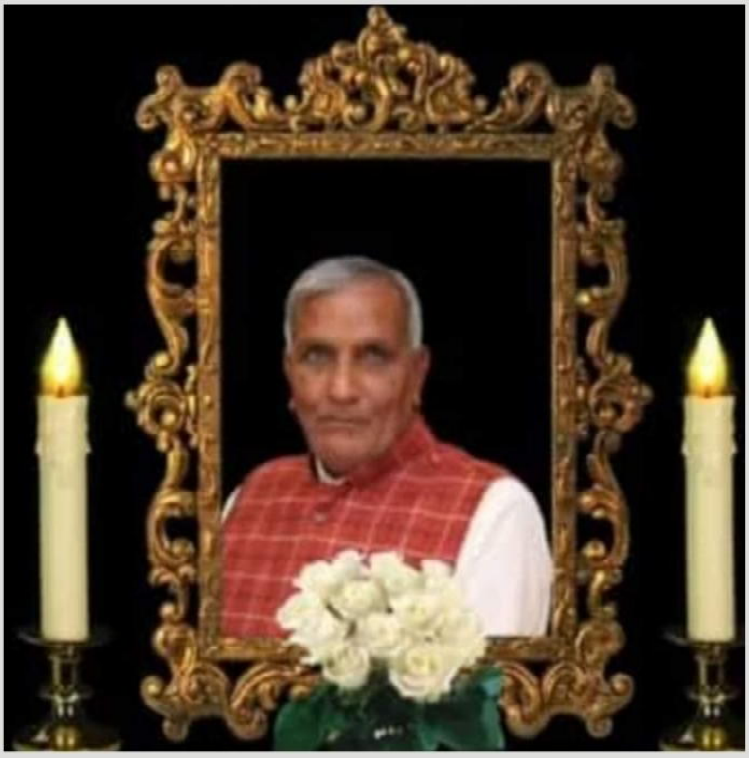

कार्यकारी सम्पादक :
शकुन्तला चौहान

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

*Publisher :*
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

# बोहल शोध मञ्जूषा

# Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

**Vol. 17** **ISSUE-6(1)** **(जून 2023)** **ISSN : 2395-7115**

*प्रेरणा :*

**चौ. एम. सिहाग**

*कार्यकारी सम्पादक :*

**प्रो. शकुन्तला**

गांव व डाकखाना खन्द्रावली
जिला शामली, उत्तर प्रदेश, पिन कोड 247775
मो नं- 8077819081

*सम्पादक :*

**डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट**

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

**प्रकाशक :**

**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)**

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

# Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

**सम्पादकीय सम्पर्क :**
**डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट**
**202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,**
**भिवानी-127021 (हरियाणा)**
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

*Published by :*
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

*Disclaimer :*

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

*Printed by :* Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

# बोहल शोध मंजूषा परिवार*

## मानद संरक्षक

**प्रो. राधेमोहन राय**
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

**डॉ. राजेन्द्र गोदारा**
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

**डॉ. विनोद तनेजा**
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

## सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
**डॉ. रेखा सोनी**
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
**डॉ. सुशीला आर्या**
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
**समुन्द्र सिंह**
भिवानी, हरियाणा।

## विधि विशेषज्ञ

**डॉ. रामफल दलाल**, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

**अजीत सिहाग**, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

**चरणवीर सिंह**, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

## विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

**माई मनीषा महंत**
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

**डॉ. विश्वबंधु शर्मा**
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

**डॉ. संजय एल. मादार**
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

**डॉ. गीता दहिया**, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

**डॉ. विनोद कुमार**
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

**डॉ. मो. रियाज़ खान**
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

**डॉ. वनिता कुमारी**
च. दादरी (हरियाणा)

**श्री सहदेव समर्पित**
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

**डॉ. अंजली उपाध्याय**
उत्तर प्रदेश

**डॉ. लता एस. पाटिल**
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

**प्रो. अमनप्रीत कौर**
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

**डॉ. वर्षा रानी**
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

**प्रो. कमलेश चौधरी**
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

**डॉ. किरण गिल**
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

**डॉ. सविता घुड़केवार**
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

**डॉ. परमजीत कौर**
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

**डॉ. राजकुमारी शर्मा**
नेपाल

**डॉ. श्रीविद्या एन.टी.**
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

**डॉ. बी. संतोषी कुमारी**
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

**श्री राकेश ग्रेवाल**
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

**डॉ. पंडित बन्ने**
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

**डॉ. पायल लिल्हारे**
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

**श्री राकेश शंकर भारती**
यूक्रेन।

**डॉ. उमा सैनी**
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

**डॉ. मनमीत कौर**
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

**डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी**
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

**डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां**
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

**डॉ. शबाना हबीब**
त्रिवन्तपुरम, केरल

**डॉ. शिवकरण निमल**
राजस्थान

**डॉ. राधाकृष्णन गणेशन**
वाराणसी

**डॉ. मानसिंह दहिया**
हरियाणा

**डॉ. नीलम आर्या**
उत्तर प्रदेश

**डॉ. रवि सुण्डयाल**
जम्मू कश्मीर

**प्रो. नरेन्द्र सोनी**
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

**प्रो. रोहतास**
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

**प्रो. सत्यबीर कालोहिया**
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

**डॉ. इस्पाक अली**
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

**प्रो. रेखा रानी**
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

**डॉ. के.के. मल्हौत्रा**
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

**डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा**
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

**डॉ. परमानन्द त्रिपाठी**
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

**डॉ. करमजीत कौर**
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

## जून 2023


| क्र. | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | सम्पादकीय | प्रो. शकुन्तला | 9–9 |
| 2. | ROLE OF FUNGI IN BOTH REJUVENATION AND CONTAMINATION OF RIVER GANGA | DIPIKA, Dr. Avadh Narayan Dwivedi | 10-15 |
| 3. | गोपालदास नीरज के काव्य में बुद्ध–जैन–सूफी दर्शनों का समन्वय | ब्रजेश उपाध्याय | 16–22 |
| 4. | भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री–व्यथा | प्रदीप कुमार सिंह | 23–28 |
| 5. | 'प्रकृति के पहरेदार' तथा 'कलम को तीर होने दो' : एक तुलनात्मक अध्ययन | मरीना एक्का | 29–34 |
| 6. | असंगघोष के काव्य में दलित विमर्श | आशा, डॉ. प्रीति आर्या | 35–37 |
| 7. | साम्प्रदायिकता का जीवंत दस्तावेज : तमस | नटराज गुप्ता | 38–42 |
| 8. | 'चरखा' महात्मा गाँधी के आर्थिक विचारों का मूल आधार | प्रीती रानी | 43–47 |
| 9. | रामविलास शर्मा का आलोचनात्मक चिंतन | सुरभि मिश्रा | 48–51 |
| 10. | The Exploration of the Great Mentor Dr. Sarvepalli Radhakrishnan | Dr. Sanjeev Tayal | 52-59 |
| 11. | रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य की विषय–वस्तु | पंचमणि कुमारी | 60–64 |
| 12. | दलित चेतना की बेबाक अभिव्यक्ति (सुदेश कुमार तनवर का कविता संग्रह 'माटी के वारिस' के विशेष संदर्भ में) | डॉ. भूपेंद्र निकाळजे | 65–69 |
| 13. | वाल्मीकि–रामायण में नारी की स्थिति | डॉ. रंजना गुप्ता | 70–74 |
| 14. | इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व के क्षेत्र में भारतीय भाषाएं | नीलम पाटीदार | 75–80 |
| 15. | ग्लोबल गाँव के देवता–असुर जनजाति के विस्थापन की महागाथा | Varna S | 81-87 |
| 16. | जुलूस नाटक में सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ | कपिल कौशिक, डॉ. विकास शर्मा | 88–92 |
| 17. | भारत में मानव अधिकार और संवैधानिक उपबंधों का विश्लेषण | डॉ. सविता यादव | 93–97 |
| 18. | वैश्विक परिदृश्य में डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी की कविताओं में जीवन एवं दर्शन : कविता संग्रह 'मृगतृष्णा दर्पण अंतर्मन का' के संदर्भ में | डॉ. कोयल विश्वास | 98–102 |
| 19. | 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास एवं कृषि संकट | पिंकी | 103–106 |
| 20. | भारतीय समाज में नारी का स्थान | स्मिता शंकर | 107–111 |
| 21. | हिंदी सिनेमा और सामाजिक चेतना | आपी लंकाम | 112–115 |
| 22. | आधुनिक युग में मीरा के पदों का प्रभाव | विनीत शर्मा | 116–118 |
| 23. | बालकृष्ण शर्मा नवीन के काव्यों में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना | डॉ. जे. सेन्दामरै | 119–122 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 24. | अनामिका एवं कात्यायनी के काव्य में नारी-विमर्श | अनामिका शिल्पी, डॉ. कुमारी विभा | 123-127 |
| 25. | महिला शक्ति आधुनिक समाज की निर्माता के रूप में | कल्पना उप्रेती | 128-134 |
| 26. | संवेदनशील गद्य लेखिका : महादेवी वर्मा | डॉ. अनिता जोशी | 135-138 |
| 27. | मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा साहित्य में संवेदनात्मक दृष्टिकोण | सुनीता रानी | 139-146 |
| 28. | सुकेश साहनी का लघुकथा सम्बंधी समीक्षात्मक अनुशीलन | डॉ. नितिन सेठी | 147-150 |
| 29. | धूमिल की रचनाओं में यथार्थबोध | Bharoti Apum | 151-155 |
| 30. | साहित्य के पारखी- निर्मल वर्मा | Dr. G. Sugida | 156-159 |
| 31. | प्राचीन कालीन ''प्राथमिक शिक्षा'' का सामाजिक संदर्भ | अजय कुमार रणजीत | 160-165 |
| 32. | बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में 'नारी शिक्षा' का सामाजिक, धार्मिक और राजनितिक स्वरूप | सज्जन कुमार | 166-173 |
| 33. | मन्नू भण्डारी के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन | Dr. Sreeja. G.R | 174-176 |
| 34. | महिला सशक्तिकरण और डॉ. अम्बेडकर का योगदान | डॉ. विजयश्री | 177-182 |
| 35. | शेष यात्रा : टूटे हुए सपनों के साथ अपने अस्तित्व की पुर्ननिर्माण करती स्त्री | गीतिका सैकिया | 183-186 |
| 36. | प्रदूषित होती नदियाँ एवं नष्ट होते द्वीप : चुने हुए हिन्दी और मलयालम कहानी के संदर्भ में | डॉ. अजिता कुमारी | 187-188 |
| 37. | भारतीय अर्थव्यवस्था में सतत् विकास और पर्यावरण चुनौतियाँ | डॉ० प्रमोद कुमार श्रीवास्तव | 189-193 |
| 38. | मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा | डॉ. के. संगीता | 194-197 |
| 39. | संत काव्य में व्यक्त सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना | डॉ. आशा हर्बोला | 198-202 |
| 40. | मनुष्य का तिरस्कार और मशीनों से प्यार चुने हुए हिन्दी और मलयालम कहानी के संदर्भ में | डॉ. अजिता कुमारी, जे. | 203-204 |
| 41. | आधुनिक युग में मीरा के पदों का प्रभाव | विनीत शर्मा | 205-207 |
| 42. | गांधी और राष्ट्रभाषा हिंदी | डॉ. निशा चौहान | 208-211 |
| 43. | रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि का विश्लेषणात्मक अनुशीलन | शीलेन्द्र कुमार, डॉ. रहिम कुमारी | 212-216 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 44. | ಬಸವಣ್ಣನವರ ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ಜೀವನಕ್ಕೆ ಅವಶ್ಯವಾದ ನೈತಿಕ ಮೌಲ್ಯಗಳ ವರ್ಣನೆ | ಡಾ. ಬಿ.ಎಸ್. ಹೇಮಲತ<br>ಶಾ. ಸುಧಾ ಕನಕಾನವರ | 217–223 |
| 45. | **संस्कृत में काव्य शरीर और आत्मा – एक विवेचन** | **डॉ. प्रियंका खण्डेलवाल** | 224–226 |
| 46. | **सुधा ओम ढींगरा की कहानियों के विविध आयाम** | **डॉ. अमित कुमार सिंह** | 227–233 |
| 47. | ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਬਾਣੀ ਵਿਚਲੇ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਤੱਤਾਂ ਦਾ ਵਿਵੇਚਨ | ਹਰਮੀਤ ਸਿੰਘ ਗਿੱਲ,<br>ਪ੍ਰੋ. (ਡਾ.) ਸਤਨਾਮ ਸਿੰਘ ਜੱਸਲ, | 234–237 |
| 48. | **डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' से साक्षात्कार** | **डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** | 238–242 |
| 49. | **ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦਾ ਨਾਟ–ਸ਼ਾਸਤਰ** | ਡਾ. ਸਤਨਾਮ ਸਿੰਘ ਜੱਸਲ, | 243–249 |
| 50. | **ਨਾਟਕ 'ਸੱਤ ਬਗਾਨੇ': ਚਿਹਨ ਵਿਗਿਆਨਕ ਅਧਿਐਨ** | ਡਾ. ਸਤਪ੍ਰੀਤ ਸਿੰਘ ਜੱਸਲ | 250–257 |
| 51. | **डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में मिथकीय अवधारणा** | **सुरेन्द्र दलाल** | 258–261 |
| 52. | **हे कविते : एक मूल्यांकन** | **डॉ. दिवाकर पांडेय** | 262–266 |
| 53. | **प्रो. इच्छाराम द्विवेदी जी की संस्कृत–कृतियों में राजनीतिक–विमर्श** | **प्रो. अलका बागला,<br>श्रीमती विनीता (गुप्ता) राय** | 267–273 |

# सम्पादक की कलम से.....

प्रिय पाठकों,

हम जून 2023 अंक में आपका हार्दिक स्वागत करते हैं। इस अंक में हमने आपके लिए विभिन्न विद्वज्जन के रोचक और महत्वपूर्ण विषयों पर अद्यतन विचार प्रस्तुत किए हैं। यहां कुछ मुख्य रचनाओं की एक झलक प्रस्तुत की गई है :–

भारतीय इतिहास शिक्षा, संस्कृति से सम्बन्धित विषय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हम इन सभी पर विशेष ध्यान केंद्रित करते हुए इस अंक में चर्चा कर रहे हैं।

वैश्विक पर्यावरण के विषय पर भी इस अंक में हमने पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन से जुड़े महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया है। विश्वभर में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, जल संपदा, और पर्यावरणीय संरक्षण के सम्बन्ध में हमारी रचनाएं व आलेख शामिल हैं।

आधुनिक युग में विज्ञान और तकनीकी प्रगति न केवल हमारे जीवन को सरल और आरामदायक बनाने में सहायक है, बल्कि इससे उन्नति और विकास की गति भी बढ़ती है। वर्तमान में शोध–पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका भी बदली है और वे आधुनिकता के अनुरूप नए संदर्भों में अपना आदान–प्रदान कर रही हैं।

शोध–पत्रिकाएं विज्ञान, प्रौद्योगिकी, वाणिज्यिक अनुसंधान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी, साहित्य, कला और विचारधारा के विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों द्वारा अनुसंधान, विश्लेषण और समीक्षा का माध्यम हैं। ये पत्रिकाएं नवीनतम अध्ययन, शोध और विचारों को साझा करती हैं ताकि विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों और विज्ञान समुदायों के सदस्य इनके माध्यम से अपनी जानकारी को सुदृढ़ कर सकें और नवीनतम विचारों के साथ आगे बढ़ सकें।

जीवन में शोध–पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि इन पत्रिकाओं के माध्यम से विश्वभर में जो भी नयी–नयी खोज हो रही है उसके बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

**–प्रो० शकुन्तला**

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 10-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ROLE OF FUNGI IN BOTH REJUVENATION AND CONTAMINATION OF RIVER GANGA

**DIPIKA,** Research Scholar,
**Dr. Avadh Narayan Dwivedi**
Department of Life Sciences, Chhatrapati Shahu ji Maharaj University, Kanpur

**Abstract :-**

Uniqueness of water has always proved its essentiality for the survival and sustenance of life. This availability of water is limited to a very extent as out of 97% available water throughout the world, only 3% is available as freshwater and out of this; potable water is also limited to a very minimum extent. Freshwater water bodies available in the form of rivers are, therefore, given prime importance for its rejuvenation and cleanliness. Freshwater of River Ganga possess a sole property in many ways for maintaining the ecological balance between the aquatic ecosystem and terrestrial ecosystem. Freshwater of River Ganga also serves the commercial importance but due to rapid degradation in water quality by the humans and their activities, rapid contamination and pollution is occurring in many ways, one of which is fungal contamination due to inherent introduction of pollutants in Freshwater of River Ganga.

**Keywords :-**

Rejuvenation, ecosystem, ecological balance, environment, fungal contamination, freshwater, pollution, pollutants, scavengers, metabolites, bioremediation, mycoremediation,

**Introduction :-**

The most exploited resource, water, has always been the term of discussion in all the global scenarios in the World Forum. This valuable resource has been debatable as access to safe, clean and potable water is becoming limited due to overuse and pollution by prevailing environmental factors and human activities. With the ongoing pace of industrialization and urbanization, the ecological balances have been hampered with respect to fresh water resources. The pollutants have caused a major havoc in worldwide distribution of the resources. Fungi are the eukaryotic, heteotrophic organisms which primarily serve as the function of recyclers of organic material in its natural

environment but secondarily produces such metabolites, which on the other hand, serves as the toxins, thereby, acting as human pathogen or allergens. The research conducted on varied species of fungi proved to be both beneficial and harmful for the environment simultaneously. Thereby, causing an unprecedented health risk which needs to be accessed. With this aim, the Indian Government has formed a panel to look onto the issue of the River Ganga and prevent the same with the utmost care and need.

**Need to rejuvenate River Ganga :-**

River Ganga serves as one of the most important river, ecological resource and balancing feature of the environment. The River has not only been known for its religious significance, for its aesthetic value but also provides the most fertile basin all over the India, thereby, serving as the important unit of commercialization for the upliftment of the economy in many ways. The fertile soil provided by the River Ganga provides a large base and source for the agricultural activities in India. Another important commercial opportunities provided by River Ganga are fishing, hydel-power generation, irrigation, transportation and large source of livelihood for the large number of people. Even the host-parasitic relationship for the prevention of diseases and research is made possible by the riverine water resources of River Ganga.

**Role of fungi in rejuvenating the waters of River Ganga :-**

Fungi fulfill a substantial role in the microbial world as, together with bacteria, they help in decomposition of organic matter but also help in biotransformation of xenobiotics and heavy metals, along with circulation of nutrients such as nitrogen and phosphorus. Thus, Fungi have been vividly regarded as the bioindicators of anthropogenic alterations to monitor the ecological state of aquatic ecosystem. Fungi also plays a significant role as a Mycoremediator by accomplishing the process of bioremediation, also termed as Mycoremediation since they possess metabolic capabilities to break down complex molecules in aquatic ecosystem and thus, degrades the recalcitrant organic matter in nature.

Aquatic fungi play a significant role as decomposers of animal and plant remains since these fungi possess the ability to paradise the aquatic plants and animals including fishes under varied environmental conditions. These aquatic fungi contribute a significant energy flow and initiate the productivity of ecosystem by utilizing and bio-deteriorating the organic materials present in the ecosystem. Freshwater fungi belonging to group like Ascomycetes, Basidiomycetes and Mitosporic present in freshwater ecosystem, helps in degradation of dead organic material, significantly. The fungi possess the exceptional ability to break-down pesticides, pharmaceuticals and personal care products, plastics, bioplastics, heavy metal, etc. through mycoremediation.

**Role of fungi in contamination :-**

Environmental factors influence immensely the function of fungi as they are ubiquitous, achlorophyllous and heterotrophic organisms. The introduction of excessive levels of nutrients and other chemicals, directly or indirectly, changes the physicochemical nature of the aquatic environment. With the pace of development, severe rate of increased level of water pollution have degraded the River Ganga water quality due to industrial discharge, draining of agricultural wastes like chemical fertilizers and pesticides, draining and dumping of domestic waste and municipal waste drainage and sewerage along with festive bathing and cremation and consignment of half burnt dead bodies. These effluents generated, pose a serious threat to aquatic ecosystem. Simple principal of sensitivity or tolerance towards the environmental changes are immensely helpful in biologically analyzing and assessing the health of ecosystem. Due to these dynamic changes, host-parasite relationship and species dynamics in River Ganga water system is getting disturbed, degrading the physico-chemical and biological quality in different eco-regions.

Changes in the characteristics of water like undesirable colour, odour, taste, turbidity, high Total Dissolved Solids (TDS), alkalinity, acidity, etc, causes scavenging of nutrients and this helps filamentous fungi to form fine hyphae, thereby producing toxins in the form of secondary metabolites which are in the form of human pathogens or allergens. Researches have shown that a large variety of fungi such as species of Penicillium, Cladosporium, Aspergillus, Acremonium, etc are found in drinking water, surface water and ground water. These species and many else have been linked to many forms of allergic diseases, hypersensitivity pneumonitis and skin irritations, etc. The species of fungi produces mycotoxins which infect the water ecosystem of River Ganga. Thereby, deteriorating the water quality. Research conducted on huge basis have found that airborne fungi are the most prevalent forms causing adverse health problems like asthma, rhinitis dermatitis, etc., while the soil borne fungi are found to be transmitted only through contaminated soil or through dust, storms, water etc. and the waterborne fungal infection are more severe due to contaminated water resulting in unprecedented health implications and degradations.

**Effects of fungi contamination :-**

Mycoses or fungal infection contaminates the human beings with severe infection prevalence either superficial or in the subcutaneous dermis or tissue as fungi possess the ability to reproduce both sexually or asexually. These pathogenic fungi induces varied range of problems with the constant exposure to varied species of fungi either symptomatically or asymptomatically as can be evident from the given species, based on research analysis :-

1. Fusarium species are well known plant pathogen causing Wilt disease with symptoms like

wilting, browning and drying of leaves and succulent shoots of plant with enhanced level of micronutrients like phosphorus, ammonium and decreased level of nitrate.

2. Alternaria tenuis causes Hay fever or hypersensitivity along with asthma.
3. Aspergillus flavus causes chronic granulomatous sinusitis, keratitis, cutaneous aspergillosis and osteomyelitis with severe immune-compromised symptoms.
4. Fusarium oxysporum causes the disease Fungal keratitis, Onychomycosis (fungal infection of the nail) and Hyalohyphomycosis (fungal infection of the skin).
5. Penicillium chrysogenum causes necrotizing pneumonia in elderly and also acts as an allergen and an asthma inducer.
6. Rhizopus nigricans leads to symptoms like asthma and hypersensitivity pneumonitis. It also acts as an occupational allergen.
7. Cladosporium sphaerospermum causes intrabrochial lesions, opportunistic mycosis and has been implicated as the cause of human corneal ulcer, skin lesions and infection of nails.
8. Trichoderma viride has been found to cause pulmonary infection, peritonitis in a dialysis patient and perihepatic infection in liver transplant patients.
9. Rhizpous mature leads to subcutaneous deep tissue fungal infection, suppressed immune system, and leukemia and rhinocerebral zygomycosis in varied cases. Skin and gastrointestinal forms of mycosis also results due to this fungus that includes the invasion of blood vessels causing thrombosis and tissue necrosis leading to death within 2-10 days.
10. Curvularia lunata is the causative agent of phaeohyphomycosis and may cause wound infection, mycetoma, onychomycosis, keratitis, allergic sinusitis, cerebral abscess, cerebritis, pneumonia, allergic bronchopulmonary diseases, endocarditis, dialysis associated peritonitis and disseminated infections.

Other known fungi like Aspergillus fumigates, Aspergillus niger, Aspergillus terrus, Trichoderma harzianum, Trichothecium roseum, etc., have known to cause various allergic reactions, fungal infections and respective health problems and diseases.

**Health Risk Assessment and Prevention of Fungal Contamination :-**

With the leading breakthrough of various kinds of fungal infection and diseases caused by their respective species, the advancement in the research and technology have provided a greater base for the prevention and cure of such fungal infection and diseases in the early diagnosis. The inherent nature of production and administration of medicines have secured the greater safety of patients by making these fungal infection and diseases' short shelf-life with the introduction of advanced therapy medicinal products.

Biological analyses have helped in assessing their sensitivity towards the environment and the various species surviving thereto. A risk assessment approach should be taken to prevent, monitor and control fungal contaminants. Proper disinfectants have to be used to control the underlying cause of mould contamination. Developing and adopting a long-term strategical program with in-situ evaluation, enhances the rate of control of fungal spores and prevention of outbreak of the same effectively with a proper cleaning and disinfection that simultaneously aides the process. Epidemiological report also aides in controlling and preventing the outbreak of fungal infections. Genome sequencing has also helped in understanding the emergence of such outbreaks. Recently, a new way of fungal infection treatment in case of water bodies has been highlighted to prevent its propagation at the primary level. Water purification with cascading aeration along with addition of coagulants like aluminum and iron salts helped in changing the pH of River Ganga water. Then use of polymers, filtration with cellulose, sand, charcoal or fabric filters can be used alongside. Ultrafiltration or microfiltration is the other way to prevent the risk of developing fungal infection.

The other most efficient treatment to prevent fungal growth is Ozonation. Diagnostic treatments have been carried out further for the prevention, control and treatment of fungal infection. Indian Government initiatives, including the Ganga Action Plan and the National Mission for Clean Ganga (Namami Gange) Programme, have been established in an attempt to monitor, control and/or mitigate pollution in the River Ganga (Ministry of Jal Shakti, 2021; Narain, 2014). These initiatives helped in spreading awareness, mobilizing community in all affiliated regional zones of River Ganga so as to enhance water quality and rejuvenate River Ganga and its natural resources. Further suggestions needs to be implemented for the clean-rejuvenating River Ganga and prevention and mitigation of fungal infection :-

- Proper treatment of sewage and domestic wastes should be apprehended prior to their discharge into River Ganga, followed by strict discharge standards as set by CPCB.
- Public awareness should be mad at all levels, be it local, regional or national level regarding the health hazards and necessary risk prevention modules and control of the same.
- Advanced technologies should be used for water diagnostics for the identification of the source of contamination.
- Wastewater management and the recycle/reuse techniques need to be improved to address future drought and safe water availability.

**Conclusion :-**

The overall growth of the nation and its economy lies in the fact that River Ganga water and its resources needs to be taken care of wisely with the better use of technology to maintain the

environmental factors and the microorganisms in its favor, not against it. Better technology, innovation, research and awareness have made it possible for the generation to use the natural resources in favor of development and growth. A robust contamination and control strategy has to be implemented with accurate and precise identification of the source to foresee the arrival of havoc.

**Reference :-**


1. A. Pietryczuk et al. (2018). Abundance and Species Diversity of Fungi in Rivers with Various Contaminations. 75(5):630-638.
2. Andrea K. Pini et al. (February 2020). Fungi Are Capable of Mycoremediation of River Water Contaminated by E. coli. Water Air and Soil pollution 231(2).
3. Annika Vaksmaa et al. (2023). Role of fungi in bioremediation of emerging pollutants.
4. Bilgrami KS (1986). Study of River Ganga (Munger- Farakka). Report from 1st May 1985 to Sep. 1986 Bhagalpur University.
5. Cooke WB (1977). Fungi in streams, lakes adjacent soil and sewage treatment systems in the Flathead River basin, Montana Northwest Science 51 172-182.
6. Heremith AS (1984). Studies on the role of fungi in the sewage stabilization pond ecosystem. Ph. D. thesis, Gulbarga University, Gulbarga.
7. Kyana Young et al. Risk Assessment as a Tool to Improve Water Quality and the Role of Institutions of Higher Education.
8. Monika Novak Babic et al. (2017). Fungal Contaminants in Drinking Water Regulation? A Tale of Ecology, Exposure, Purification and Clinical Relevance.
9. NCEZID: Waterborne and Fungal Infections
10. Sahil Parikh (February 2023). A Risk Assessment Approach to Address Fungal Spore Contamination in a Cell and Gene Therapy Cleanroom and modern Methods for Control.
11. Sinha AK (1988). A comprehensive study of Ganga and its dependents. Report submitted to Dept. Environ. Govt. of India, Firoz Gandhi College, Ria Bareli.



Address : 04, Parsan House, Dubauli Parsan, Patti, Pratapgarh, U.P. Pin Code - 230 135
tripathidipika772@gmail.com
bablupcb@gmail.com
09415 70 2566

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 16-22

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# गोपालदास नीरज के काव्य में बुद्ध–जैन–सूफी दर्शनों का समन्वय

**ब्रजेश उपाध्याय**
शोधार्थी–पी–एच.डी. –हिन्दी
गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो, बठिंडा (पंजाब)–151302

भारतीय संस्कृति विभिन्न धर्मों, सभ्यताओं से नवीनतम है। भारत में विभिन्न धर्मों को समन्वयता लाने की शक्ति है। धर्म साधना में, समन्वय को ही महात्मा ने भारत की तपस्या कहा है। 'भारत का आदिकाल से ही समन्वयात्मक दृष्टिकोण रहा है, जिसे महापुरुषों ने एक परंपरा का रूप दे दिया और अब वह परंपरा इतने दृढ़ और परिपक्व रूप में है कि अनवरत चलती रहेगी, जिससे भारत का शुभ्र किरीट अन्य देशों के मध्य सदैव स्फीत कान्ति से सुशोभित होता रहा और सृष्टि के अन्त तक होता रहेगा।'

'पर जब तक मैं पा सकुँ कहीं, इस अकथ व्यथा का समाधान
प्रश्नों के उत्तर लुप्त हुए, दर्शन में दर्शन डूब गये।'[1]

**बीज शब्द :–** धार्मिक समन्वय, जगत का यथार्थ, विश्व में व्याप्त अनीति, अजारकता, सुख–दुःख, अमृत–विष, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक समाधि, क्षेत्रीयता, सांप्रदायिकता, संकीर्णता।

**सारांश :–**

नीरज जी ने परमात्मा को कभी–कभीमाँ के रूप में चित्रित किया है। आत्मा परमात्मा की खोज हमेशा करते हैं इसी आत्मा के साथ ही तड़प में है हम सब। कवि के ईश्वर और जगत् संबंधी धारणा सूफी दर्शन के बिल्कुल अनुरूप है। सृष्टि तत्व में मानव को सर्वोपरि मानने के कारण ही नीरज जी मानवतावादी कवि बने। अपने काव्यों में निराशा, वेदना आदि का खूब वर्णन नीरज जी ने किया है फिर भी मानव को स्वर्ग तक लाने का प्रयत्न भी कवि करते हैं।

इसी प्रकार का धर्मों का समन्वय, हिन्दी साहित्यिक रचनाओं में भी लीन है। साहित्यिक क्षेत्र में रचनाकारों ने विभिन्न धर्मों का समन्वय करके उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। मानव का प्रत्येक कार्य लक्ष्य से होता है। भारतीय संस्कृति में जन्मे पले रचनाकारों ने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए रचनाएँ की। आध्यात्मिक धरातल पर देखेंगे तो 'मुक्ति प्राप्त करना' ही जीवन का लक्ष्य प्रतीत होता है।

हिन्दी के प्रमुख कवियों ने किसी न किसी दर्शन को साथ लेकर अवतरित हुए। नीरज जी ने गीतों के साथ कुछ धर्मों को भी आत्मसात् कर दिया और स्वान्तः सुखाय नहीं दुःखीजनों के पास पहुँचाने के लिए साँत्वना

के गीत गाये। नीरज जी ने सभी प्रकार के वादों, विचारधाराओं से संबन्धित गीत लिखे हैं और आप यह भी चाहते हैं कि यह पुस्तक में ही बन्द नहीं होना चाहिए जनता में समादृत होना चाहिए। यहाँ नीरज जी के विचार बुद्ध, जैन, सूफी दर्शनों से कैसे समन्वय स्थापित करते हैं यह हम देखेंगे।

**बुद्ध दर्शन :-**

भारतीय जनता को विश्व के अन्यत्र राज्यों से साम्यशील बनाने वाले आध्यात्मिक शक्तियों में सबसे प्रमुख बुद्ध दर्शन हैं। दुःख से पीड़ित मानव जाति को साँत्वना देकर उदित हुए एक धर्म है बौद्ध धर्म। सिद्धार्थ ने महल छोड़कर, वैराग्य लेने का कारण यह था कि उसने संपूर्ण मानव जाति को दुःख से ग्रस्त देख लियाथा।

बुद्ध दर्शन, अन्य दर्शनों की तरह स्वर्ग तक नहीं पहुँचती है। मानव को ज़िन्दगी से क्या पाया जाता है और मानसिक अनुभूति प्रदान कर देना ही बुद्ध दर्शन का लक्ष्य है। उपनिषद् के चिन्तन ने बौद्ध धर्म के विचित्र सिद्धान्तों के लिए रास्ता तैयार किया।

जगत् के संबन्ध में बौद्धों ने पौराणिक दृष्टिकोण से विचार नहीं किया। वास्तव में बौद्ध दर्शन की सत्ता जगत् संबन्धी विचारों को लेकर खड़ी हुई है। नीरज जी ने भी जगत को सत्य माना है। कवि नीरज का ध्यान विश्व में व्याप्त अनीति, अराजकता एवं अनौचित्य की स्थिति के चित्रण की ओर भी गया है और उन्होंने एक स्थल पर अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

जगत में अंधेरा दूर होने के लिए कवित मन्ना करते हैं :–

'धरती को समतल कर दो, आँसू गंगा जल कर दे
खाली हर आँचल भर दो, फिर न अंधेरा कहीं छाय।'[2]

जगत् की यथार्थ चित्रण करने के लिए कवि आये हैं :–

'मुझे मिली है प्यास विषमता का विष पीने के लिए
मैं जन्मा हूँ नहीं स्वयं हित, जगहित जीने के लिए
मुझे दी गई आग कि तम को मैं आग लगा सकूँ
गीत मिले इसलिए कि घायल जग की पीड़ा गा सकूँ?
मेरे दर्दीले गीतों को मत पहनाओ हथकड़ी,
मेरा दर्द नहीं मेरा है सबका हाहाकार है।
कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है।'[3]

**बुद्ध दर्शन की विशेषताएँ :-**

**यथार्थवाद :**

बुद्ध दर्शन की पहली विशेषता उसके यथार्थवादी विचार है। बुद्ध के ये विचार उनके द्वारा आँखों देखी सत्यता पर आधारित थे। अपने जीवन में उन्होंने जिन बातों का अनुभव किया वे ही दूसरों के लिए कहीं।

नीरज ने अपने जीवन में जिन–जिन संघर्षपूर्ण परिस्थितियों से गुजरे, उनका यथार्थ चित्रण किया उनका यह काव्य चित्रण दूसरों के दुःख से तादात्म्य हो गये।

सब सहकर जीने की इच्छा है–संचित जीवन कोष लुटाकर,
पाषाणों पर हृदय चढ़ाकर, सब अपने अधिकार मिटाकर

घूँट; हलाहल के भी, पीकर–अपने ही हाथों से कंपित,
और विनन्दित, भीहो, खुशी ना खुशी से,
पर मर मरकर जीना पड़ता है।[4]

बुद्ध ने लोकजीवन से अपने अनुभवों को संकलित किया। नीरज जी ने भी सुख–दुःख, अमृत–विष, प्रकाश–अंधेर, पूर्ण–अपूर्ण जीवन के सभी पक्षों का वर्णन किया है।

**निराशावाद :–**

बुद्ध निराशावादी विचारक थे; किन्तुउनका यह निराशाबाद, पलायनवाद या अकर्मण्यवाद नहीं था। उनमें निराशावाद का उदय मानव जीवन की पीड़ाओं को देखकर हुआ था। "यह सारा संसार दुःखी है, पीड़ित है, अज्ञान में पड़ा हुआ विवश है।"[5]

दिन कटता दुर्गम पहाड़ सा जनम कैद सी रात गुजरती।
जीवन यहाँ रुका है आते जहाँ खुशी हर शरमाती है।।"[6]

**दुःखवाद :**

'मैं गाता हूँ नहीं किसी की प्रीति चुराने के लिए
मेरा यह तप है दुनिया का दुःख पी जाने के लिए।'[7]

"जीवों का दुःख से पीछा छूटने के लिए बड़े चिन्तन मनन एवं प्रत्यक्ष व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद सबसे पहले सारनाथ में जो उपदेश दिया था उसमें चार आर्य सत्यों की व्याख्या की। ये चार आर्य सत्य हैं (1) दुःख (2) दुःख का कारण (3) दुःख का अन्त और (4) दुःख के अन्त का उपाय।"

जनसाधारण की सुख शांति के लिए बुद्ध ने जिस उपाय को खोज निकला उसकी प्रेरणा उन्हें दुःख से मिली। नीरज जी भी दुःखवादी है। लेकिन यह दुःखवाद बाद में उन्हें सुख शान्ति प्राप्त करते हैं :–

'कृति कवि की होती है पर कृति के पीछे, गाती है अपनी बनकर जग की पीड़ा।
किसी एक तूफान वाली नहर ने, दिया था मुझे फेंक कल इस किनारे,
लहरपरवहीअबबिनाकुछबताए, लिए जारहीहैमुझे उस किनारे,
समय सिन्धुमें एक तृणहूँ, पता क्या, कहाँ डूबजाऊँ कहाँ पारजाऊँ?
विरह रोरहाहैमिलनगारहाहै, किसे यादकरलूँ? किसेभूलजाऊँ?'8

**दुःख का कारण :–**

दुःख का प्रबल कारण तृष्णा है। तृष्णा या काम के लिए मनुष्य परस्पर लड़ते हैं। आशा को छोड़ने के लिए नीरज जी तैया रहै :–

न आशाही जीवन की आस, निराशाही न अन्त परिणाम
न मधु ही केवल इसका स्वाद, हलाहल ही न पेय अविराम।'9

**दुःख का अन्त :–**

जब कृष्णा का परित्याग तथा विनाश होता है, मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाले विषयों से विमोह हो जाता है, जन्म–मरण, सुख–दुःख पर काबू लिया जाता है इसी को दुःख का अन्त कहते हैं।

निराशावादी दुःखवादी नीरज, बाद में जीवन सत्य और मृत्यु रूपी सत्य को पहचानते हैं। मृत्यु जो है अवश्य होने वाली है इसलिए कवि को जन्म विरह और मरण मिलन लगता है। पराजय को जय मानता है। अन्त में कवि अपने को और मानव को भी भगवान् मानते हैं। इसमें नर में नारायण को दर्शाने की भावना है।

'अब मैं खुद को पूज–पूज तुमको लेता हूँ।"

**दुःख के अन्त का उपाय :–**

'दुःख के नष्ट करने के उपाय को ही निर्वाण मार्ग कहा गया है। इसके लिए आठ शार्ग है–सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीविका, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।'

नीरज जी ने सम्यक दृष्टि से मानव की महिमा का गान गाया नीरज जी ने दुःखवाद से बचने के लिए भगवान की झलक मठ मन्दिर या मस्जिद के स्थान पर न देकर दीन दलित श्रमस्त मानवों में देखने की चेतना दर्शाया :–

'दम भर के लिए वक्त उठ जाता, इतिहास का हर पृष्ठ सँवर जाता है।
जब प्यार जला देता है आँखों में विराग, इन्सान में भगवान नज़र आता है।'[10]

**जैन दर्शन और नीरज जी के काव्य :–**

'जैन शब्द 'जिन' धातु से व्युत्पन्न है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है 'इन्द्रियों पर संयम रखने वाला'। इस दृष्टिकोण से यदि हम मानव चिन्तन को देखें तो हमें यह विदित होता है कि जो भी व्यक्ति अपने इन्द्रियों पर संयम–नियन्त्रण–नियमन रखता हो वह जैन है।

'जैन धर्म के तीन प्रधान और महत्वपूर्ण सिद्धान्त अथवा तत्व है–अहिंसा, तपस्या और अनेकांतवाद। अनेकांतवाद संसार को शान्ति और प्रेम का पवित्र सन्देश देता है। अनेकांतकवाद दो दृष्टियों से तत्व व्यवस्था करता हैं। वे हैं–द्रव्य दृष्टि–इसके अनुसार किसी भी वस्तुनित्य है। पर्याप्त दृष्टि–इसके मतानुसार वस्तु अनित्य और परिवर्तनशील है।'

**अहिंसा :–**

'बढ़ चुका बहुत आगे रथ अब निर्माणों का,
बम्बों के दलदल से अवरूद्ध नहीं होगा।
है शान्ति शहीदों का पड़ाव हर मंजिल पर,
अब युद्ध नहीं होगा; अब युद्ध नहीं होगा।।'[11]

अहिंसा की भावना से ओत–प्रोत अन्य कविताएं मानवतावाद अध्याय के अन्तर्गत आये हैं।

**तपस्या :–**

नीरज के लिए कवि बन जाना ही श्रेष्ठ है। नीरज जी ने अपने कवि कर्तव्य को तपस्या के समान माना ही है :–

'पास मेरे जो कुछ है, मेरा नहीं वह संसार का है
मेरा हर गीत, हर अश्रु, मेरा तन, मेरा मन, मेरा धन
मेरा सारा का सारा अस्तित्व ही अधार का है
दो चार का नहीं हज़ार का है।[12]

**अनेकांतवाद :–**

नीरज जी ने अपने काव्य में जैन दर्शन के अनेकांतवाद का प्रयोग किया है। आज के युग और संसार में अनेकांतवाद की महत्ती उपयोगिता है। 'संसार में संकीर्णता, स्थानीयता, फिरका बाजी, क्षेत्रीयता, सांम्प्रदायिकता आदि की प्रवृत्तियां पन पर ही है। उन सबकी अचूक दवा अनेकांतवाद है। विश्व में धर्म के नाम पर होने वाले भयानक रक्तपातों की रामबाण औषधि अनेकान्तवाद संसार को शान्ति तथा प्रेम का पवित्र संदेश देता है। जैन दर्शन की अनेक मान्यताएं आज के विद्वान द्वारा समर्पित प्रतिपादित हो रही है। जिनसे स्पष्ट है कि जैन–धर्म, जैन दर्शन और श्रमण संस्कृति वैज्ञानिक, संतुलित और युगानुकूल है।'[13]

**पुनर्जन्म और मोक्ष :–**

जैन धर्म का यह विश्वास है कि अच्छे कर्मों के करने से अच्छे वंश में जन्म मिलता है। जैनी यह मानते हैं कि जीव, एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है। अपने द्वारा कमाये गये कर्मों के अनुसार ही उसको दूसरा जन्म मिलता है। अनगिनत जन्मों के बारे में नीरज जी कहते हैं :–

'अनगिन वसन्त आँगन में खिले, झरे, रोए
अनगिन बचपन चाँद खेल आये द्वारे,
'अनगिन जन्मों' की थकान चरण दबते थकी
पर सोये अब तक नयन न इसके निन्दियो।'[14]

**नीरज के काव्य में सूफी दर्शन की झलक :–**

'सूफी' शब्द के व्युत्पत्ति के संबंध में अनेक विचार दृष्टिगत होते हैं। कुछ विद्वानों ने 'सूफी' का अर्थ 'मस्जिद के सामने चबूतरा उस पर फकीर बैठते थे' वह मानता था। कुछ विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति 'सोफिया' से मानता है इसका अर्थ ज्ञान है। 'सूफी साधक जीवन के कृत्रिम रंगीन चमत्कृत वातावरण से दूर वास्तविकता को ही पाने का लक्ष्य लेकर जीवन–यापन करता है उसका एकमात्र उद्देश्य परम प्रियतम को प्राप्त करना होता है जिसके लिए वह संसार के महानतम कष्ट से संघर्ष सहन करता है।'

'सूफी में हर स्थान पर त्याग की ही पूजा होती है उसमें कुछ भी ग्रहण नहीं करना है और समस्त सृष्टि में परमात्मा के रूप में झलक देखनी चाहिए। संक्षेप में सांसारिक वस्तुओं के विकर्षण और प्रभु के चरणों में अनुरागी आकर्षण ही एकमात्र सूफी मत है।'

सूफी साधकों ने समन्वयात्मक दृष्टि को अपनाया। ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण रूप में समन्वय ला दिया। सगुण और साकार तो हमारी भावना का आधार है। भक्ति के कारण युग की आवश्यकतानुसार ब्रह्म, सगुण या निर्गुण बन जाता है।

सूफी दर्शन में प्रेम मार्ग पर अग्रसर होने के लिए ब्रह्म को प्रियतमा मान लिया संसार के कठिन कष्ट सहकर प्रियतमा को स्वीकारने में उन्मुख होते हैं। दूसरे जिस प्रेम का वर्णन किया है वह आध्यात्मिक प्रेम है।

**ईश्वर और जगत् :–**

सूफी दर्शन में ईश्वर और जगत् के संबंध को ऐसे मानते हैं कि ईश्वर इस जगत से परे हैं साथ ही जगत् में लीन है। ईश्वर वनस्पति, पशु, पक्षी, जीव आदि में अंग–प्रत्यंग की छाया में है।

**सृष्टि की उत्पत्ति :-**

ईश्वर ने गूढ रहस्यों को अभिव्यक्त करने के लिए सृष्टि रची। अधिकांश सूफियों का यह विश्वास है कि ईश्वर ने सर्वप्रथम मुहम्मदीय आलोक की सृष्टि की। वह आलोक बीज में बदला। उसी से पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि की उत्पत्ति हुई फिर आकाश और तारे बने। तत्पश्चात् सप्त भुवन, धातु, पदार्थ, जीव–जन्तु एवं मानव की रचना हुई।

**सृष्टि में मानव सर्वोपरि :-**

मानव सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है और इसमें ईश्वर के रूप की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। पूर्ण मानव की मान्यता को भी स्वीकारा है।

**आध्यात्मिक प्रेम :-**

रहस्यमयी सत्ता की अनुभूति का एकमात्र सम्बल है प्रेम। प्रेम या अनुराग के अभाव में उस अनुभूति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। 'रीति गागर का क्या होगा कविता' में नीरज जी ने यह चित्रित किया है :–

'दुनिया रस की हाट सभी को, खोज यहाँ रस की क्षण–क्षण है।
रस का ही तो भाग जन्म है, इसका ही तो त्याग मरण है।'[15]

आत्मा परमात्मा के लिए हमेशा अनुराग रहना चाहिए। धरती पर मानव जन्म लेने के बाद वह बिल्कुल बेदाग नहीं रह सकता। आत्मा परमात्मा से यही कहती है :–

'माँ! मत हो नाराज कि मैं ने खुद ही, मैला की न चुनरिया।'

प्रेम आत्मा की दैवी प्रवृत्ति है, जो उसे अपना स्वभाव और अदृष्ट समझने को प्रवृत्त करती है। आत्मा ईश्वर से उत्पन्न हुए लोगों में सर्वप्रथम है। विश्व की सृष्टि के पूर्व यह परमात्मा में ही स्थित और चलायमान थी और उसी में इसका अस्तित्व था। संसार में व्यक्त होने के काल में यह एक निष्कासित अजनबी है, जो सदैव अपने घर लौटने के लिए चिंतित रहता है।

**निष्कर्ष :-**

बुद्ध दर्शन, जगत् को ही सत्य मानते ही नीरज जी ने भी इस जगत् को सत्य मानकर अपने जीवन में घटित संघर्ष रूपी वेदना को जितना यथार्थ परक चित्रण काव्यों के द्वारा किये हैं वह दूसरों का भी पीड़ा का चित्रण है। काव्यानुभूति के धरातल पर उन्होंने इस जगत के हलाहल को पीने के लिए तैयार हो जाते हैं जगत की पीड़ा अपनी पीड़ा, समझते हैं। नीरज के जीवन में जो निराशावाद हुए वह आत्म संघर्ष के फलस्वरूप काव्य के रूप में फूट निकला।

जैन दर्शन के लिए अत्यन्त तुष्टिदायक है। जैन धर्म में अहिंसा, तपस्या और अनेकांतवाद को प्राधान्य दिया है। जैन दर्शन की प्रमुख तत्व अनेकांतवाद है संसार को सांप्रदायिकता उससे बनता हुआ भयानक रक्तपात, इसकी खोज करते हुए विश्व में शान्ति तथा प्रेम का पवित्र संदेश देता है। जैन दर्शन युगानुकूल है।

सूफी दर्शन अपने में कुछ गंभीरता से ओत–प्रोत है। भारतीय दर्शन के गंभीर गहन तत्वों को ही सूफियों ने अपनाकर अपने मार्ग को दृढ़ बनाया। सूफी साधकों ने त्याग को अपनाकर सर्वत्र प्रभु की झलक दर्शाने का प्रयास किया है। नीरज जी की रहस्यवादी कविताओं में सूफी दर्शन की आध्यात्मिक प्रेम को दर्शाकर को ज्योति स्फुरण की ओर ले जाते हैं।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-**


1. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–3, पृ. 324
2. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–3, पृ. 147
3. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–1, पृ. 257
4. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–1, पृ.6
5. वाचस्पति गैरोला : भारतीय दर्शन, पृ. 182
6. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–1, पृ. 92
7. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–1, पृ. 11
8. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–2, पृ. 40
9. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–2, पृ. 223
10. गोपालदास नीरज : गीत अगीत–नीरज रचनावली खंड–3, पृ. 151
11. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–1, पृ. 341
12. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–2, पृ. 212
13. लक्ष्मीनारायण दुबे : हिन्दी साहित्य में जैन दर्शन, पृ. 18
14. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–2, पृ. 49
15. गोपालदास नीरज : नीरज रचनावली खंड–3, पृ. 105


**पत्रिका :-**


1. अनुभूति के फूल : नीरज शर्मा शुभम्, मेरिस रोड, अलीगढ़।
2. वेद अमृत : राजीव वेद प्रकाश पाहुवा, पयनीयर बुक, रॉयल इन्डस्ट्रियल एस्टेट, मुम्बई।
3. गोपालदास नीरज विशेषांक, बोहल शोध मंजूषा, भिवानी, हरियाणा।



ईमेल– brajeshupadhyaya042@gmail.com

मोबाइल नं॰ – 7780851547

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 23-28

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री-व्यथा

**प्रदीप कुमार सिंह**

अस्सिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, कप्तानगंज, बस्ती (उ0प्र0)

लोकगीत किसी भी समाज की पूँजी होते हैं। लोकगीतों में लोक की संवेदना, लोक की भावना, लोक का सुख–दुःख, हर्ष–विषाद आदि गुम्फित रहता है। इसी कारण लोकगीतों को लोक–संस्कृति का आइना कहा जाता है। भोजपुरी लोकगीतों में भोजपुर अंचल की संस्कृति के श्रेष्ठ एवं विकृत दोनों प्रकार के स्वाभाविक चित्रण पाये जाते है, इन लोकगीतों में किसी प्रकार की अतिश्योक्ति नहीं पायी जाती है। इन लोकगीतों का जन्म यथार्थ की ठोस जमीन पर हुआ है। लोकगीतों की रचायिता वे महिलाएं हैं जो हासिए पर रही हैं। लोकगीत रचने वाली महिलाएँ अशिक्षित थी, ये सभी लोकगीत स्त्रियों के दुःखों को रोजनामचा हैं। लोकगीत स्त्रियों के शिकायतों का रजिस्टर हैं। जिसमें वह सब अपनी उन शिकायतों का दर्ज करती थी जिसे वह किसी से कह नही पाती थी।

लोकगीत पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों के जीवन के अधिक नजदीक होता है, स्त्रियाँ अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए गीतों का सहारा अधिक लेती है? धान कूटते समय, चक्की पर गेहूँ पीसते समय, धान लगाते समय, खेत काटते समय और भी कई सांस्कृतिक अवसरों पर वे गीत गाकर अपने सुख–दुःख को प्रकट करती हैं। श्रीकृष्ण दास जी के अनुसार– ''इन गीतों में लोक–जीवन की लम्बी–लम्बी कथाएं होती है, जिनमें गृहस्थ जीवन के सुख–दुःख की मार्मिक झाँकियाँ होती हैं, कुछ आपबीती, कुछ जगबीती, ये गीत कथात्मक अधिक वर्णनात्मक कम होते हैं। इनमें ऊहापोह का स्थान नहीं, इतिवृत्तात्मकता नहीं वरन् चित्रात्मकता होती है। इन गीतों में नारी जीवन के द्वारा नारी जीवन के लिए नारी जीवन की स्वकथित करूण कहानी होती है। जो तत्कालीन समाज का व्योरेवार कच्चा–चिट्ठा प्रस्तुत करके नारी की दशा एवं दिशा का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र उकेरती है।''[1]

भोजपुरी समाज में स्त्रियों का स्थान, बाल–विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह प्रथा, भयानक दहेज प्रथा, कन्या जन्म का अभिशाप होना, विधवा और बाँझ का यातनामय जीवन गरीबों का शोषण और उत्पीड़न के कारण किस तरह स्त्रियों का जीवन नारकीय हो जाता है इसका मार्मिक चित्रण इन लोकगीतों में दिखायी पड़ता है।

भोजपुरी समाज में कन्या का जन्म बहुत ही अपशकुन माना जाता है, यहाँ पुत्र के जन्म पर तो 'सोहर' गया जाता है किन्तु पुत्री के जन्म होने पर घर की सारी खुशियाँ ही काफूर हो जाती है, परिवार का हर एक सदस्य दुःखी हो जाता है। अनेक भोजपुरी गीतों में कन्या जन्म के समय परिवार में शोक की भावना मिलती है,

इसे प्रस्तुत लोकगीत में बखूबी देखा जा सकता है :–

''जाहि दिन बेटी तोहर जनम भइले, पेडु.री मोर घहराइ ए।
सासु ननद घरे दिअरो न बारेली, उहो परभु बोलेले कुबोल ए।।
भइले विआह परेला सिर सेनुर, नव लाख माँगे दहेज ए।।
घर में के भांडा ऑगन देइ पटकब, सुतरो के धिया जानि होइ ए।।
जौ हम जानतों कि धिया कोखि जनामि हैं, पिअंति हम मरिच झराई रे
मरिच के झारे झुरि धिया मरि जइती, टुटी जड़ते गरे हुआ संताप रे।''[2]

स्त्रियों की यह कारूणिक स्थिति एक वर्ग, देश, वर्ण, जाति या अंचल विशेष की नहीं है, वरन प्रत्येक समाज में नारी की स्थिति एक जैसी रही है, चाहे वह रामायण की 'सीता' हो या महाभारत की 'द्रौपदी' यहाँ तक की मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान् राम ने भी 'सीता' जैसी पतिव्रता पत्नी को बहुत ही घटिया बहाने की आड़ लेकर गर्भावस्था में घर से बाहर निकाल दिया, भोजपुरी लोकगीतों में इस घटना से सम्बन्धित कई कारूणिक गीत मिलते है।

''धोबिया बचनिया सुनि राम दुःख पवले।
तहि लागि बनवा मोहि भेजलनि हो राम।।
अजस मोटरिया देवरू, हमरी लिलरवा,
परभू सुजसवॉ सब होइहें हो राम।।
जे नहीं रहते देवरू हमरी गरभिया,
एही छन जिउआ तजि देती हो राम
जब से लखन सीता बन ताजि चललें
सीता देई भुइऑ लेटि परली हो राम।।''[3]

किसी भी समाज में नारी शोषण के मामले में पुरूषों से कम जिम्मेदार महिलायें नही होती है वरन् वो इस मामले में पुरूषों से आगे होती है। आज भी दहेज के लिए उत्पीड़न, बहू को जलाकर मारने, पुत्र न होने पर ताने मारने आदि घटनाओं में पुरूषों के साथ स्त्री जो, सास, ननद, जेठानी, देवरानी के रूप में होती है, का भी सहयोग किसी दृष्टि से कम नहीं रहता है, जहाँ इन्हें खुद आकर स्त्री शोषण का प्रतिरोध करना चाहिए वहाँ वह सहयोगी की भूमिका में होती है। स्त्री की यह प्रवृत्ति आधुनिक युग की देन नहीं है वरन सदियों से चली आती परम्परा का विकास ही है। सीता की ननद ने सीता से रावण का चित्र बनाने का अनुरोध किया सीता ने रावण का चित्र बना दिया परन्तु अवसर पाते ही उसने राम से इसकी चुगली कर दी। राम के ह्रदय में सीता के प्रति विद्वेष अन्नतः सीता वनवास में हुई इसको प्रस्तुत लोक गीत में देखा जा सकता है।

ननदी भउजिया दोनों एक मत एक साथ रहेली हो।
हे भउजी कवन सरीखे, रावन हउन त हमके बतावहु हो''

गंगारे जमुनवा के मटिया त रावन उरे हीले हो''

हे ननदी एहि रे सरीखे, रावन हउन त रावन के देखहुँ हो।

राम जे बइहे जेवनरवा बहिनिया लइया लाबेली हो।।[4]

भोजपुरी लोकगीतों मे स्त्रियों का जो चित्रण किया गया है वह अत्यन्त ही दर्दनाक है। स्त्री के लिए उसी दिन से दुःख शुरू हो जाता है जिस दिन उनकी शादी हो जाती है और उनके गृहस्थ जीवन की शुरूआत होती है। आए दिन, सास, ननद, जेठानी, देवरानी उस नववधू के साथ अमानवीय बर्ताव शुरू कर देती है। जब उस नवविवाहित का भाई पहली बार उसके घर आता है तो वह अपने भाई से सारे दुःख कहना चाहती है और अपने दुःख को भाई के साथ बाँटना चाहती है। उसे इस लोकगीत में बखूबी देखा जा सकता :–

सासू तौ ए भइया बुढ़िया डोकरिया, आजु मरै की काल्हि

ननदी तौ ए भइया बनकी कोइलिया, आजु उड़ै की कल्हि

जेठनियाँ तो ए भइया काली बदरिया, छिन रिसै छिन धाम,

देवरानियाँ तो भइया कोने की बिलरिया, छिन निकरे छिन भाग।।[5]

नवविवाहित से यदि ससुराल में कोई गलती हो जाती है। कोई काम समय से नहीं हो पाता, कहीं कुछ करने में देर हो गयी या कोई चीज खो गयी तो सारा घर उसके खिलाफ हो जाता है और उसे मारने पीटने पर आमदा हो जाता है। एक स्त्री की झुलनी कहीं खो गयी है। किस प्रकार पूरा परिवार उसे प्रताड़ित करता इसे प्रस्तुत लोकगती में देखा जा सकता है–

सासू मोरा मारे, ननद मोरा मारे,

सइयाँ मारे रे बबूर, डंडा तानि तानि, सइयाँ मारे रे

सासू मारे हुदुंका ननदि मारे पटुका,

सँइया मारे मुंगरी के मारि हो,

तिन पतिया मोर झुलनियां

ससुरा से मिलेला लात अवरू मूका

ससुरवा मै न जाऊँ हो।''[6]

भोजपुरी लोकगीतों में स्त्री को आर्थिक पराधीनता का चित्रण भी मिलता है। किस तरह धन के अभाव में वह अपनी छोटी–छोटी इच्छा पूर्ति के लिए अपने पति पर आश्रित रहती है। यदि पति दो पैसे कमाने वाला हो तो ठीक है वरन् उसे ही सब कुछ करना पड़ता है। यदि पति नहीं कमाता तो घर का प्रत्येक सदस्य उसे ताने देता है। कौन तुझे कमाकर खिलायेगा, तू किसकी कमायी खायेगी। ऐसी स्थिति में उसे अपने शरीर तक को बेचना पड़ता है। वह अपने शरीर को बेचकर घर का खर्च चलाती है। इस लोकगीत में इस दारूण स्थिति को देखा जा सकता है :–

''बाट में भेंटे रसिया कवन राम हो,

काहाँ रे जालु मोर रनिया।
आजु के खरचिया ओराइल बाटे हो,
जोबन बेंचे ओहि गलिया।।
आजु के खरचिया हम चलाइबि हो
जोबनवा में हम सझिया।''[7]

भोजपुरी समाज में विधवा स्त्रियों की दशा अत्यन्त ही दीन–हीन है, वह समाज के लिए अपशकुन होती है। समाज उन्हे अभागिनी, कलंकिनी, पापिन आदि कहकर धिक्कारता है। उन्हें किसी भी मांगलिक कार्य में भाग लेने का अधिकार नहीं होता न तो उसे अच्छा खाने–पीने का अधिकार है न अच्छा पहनने का अधिकार, न हँसने का अधिकार उसे केवल एक बात का अधिकार मिलता है 'वह रोने का अधिकार'। भोजपुरी लोकगीतों में विधवा का जो चित्रण मिलता है। वह अत्यन्त ही कारूणिक है। एक बाल विधवा का करूण विलाप प्रस्तुत लोकगीत में देखा जा सकता है :–

'बाबा! सिर मोरा रोवेलना सेंनुर बिनु
बयना काजरवा बिनु ए राम
बाबा! गोद मोरा रोवेला बालक बिनु
सेजिया कन्हैया बिनु ए राम।''[8]

भोजपुरी लोकगीतों में उन स्त्रियों का मार्मिक चित्र देखने को मिलता है, जो संतानहीन है लोक में ऐसी स्त्रियों को बांझ कहा जाता है। ऐसी स्त्रियों को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है, उन्हें अपशकुन माना जाता है। पुत्र प्राप्ति के लिए वह तरह–तरह के व्रत रखती है। तीर्थो के चक्कर काटती हैं, यदि फिर भी पुत्र की प्राप्ति नहीं होती तो उनको समाज बांझिन कहता है :–

आताना तीरिथि हम कइली
बांझिनी हम रहि गइली रे।[9]

बांझ स्त्रियों की स्थिति समाज में उपेक्षणीय है। कोई भी उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता है। कोई भी उसे अपनी कोई चीज देना नहीं चाहता। उसका पति भी उससे बात नहीं करता। किसी भी स्त्री के लिए माँ बनना उसकी सबसे बड़ी इच्छा होती है यदि वह उसमें असफल होती है तो उसे अपना जीवन निरर्थक लगता है प्रस्तुत लोकगीत में एक बांझिन की व्यथा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है।

''लाल, पियर न पहिरली, चऊक न बइठली हो।
ललना! गेदिया न खेवलनीं बलकवा य मोर जनम अकारथ हो।''[10]

बांझिन स्त्री को समाज में बहुत ही लांछन सुनना पड़ता है :–

ए रानी! आपन बालकवा नाही देबों।
तोर नइयाँ बझिनियाँ के हो।''[11]

एक तरफ जहाँ भोजपुरी लोकगीतों में स्त्रियों के शोषण का मार्मिक चित्रण है, तो वहीं दूसरी ओर इससे इतर कुछ लोकगीतों में अपने अधिकारों को लेकर सजग और जागरूक स्त्रियों के चित्र भी देखने को मिलते हैं। इन लोकगीतों में स्त्रियों के केवल उस पक्ष का चित्रण ही नहीं है, जहाँ केवल वह शिकायत करती है, आँसू बहाती है, चुप रह जाती है, वरन उस स्त्री का चित्रण है, जो अपने अधिकारों को जानती है, वह अपने ऊपर हो रहे शोषण और अन्याय का विरोध करती है। भोजपुरी लोकगीतों में इसी आशय का एक लोकगीत देखने को मिलता है। जहाँ एक स्त्री अपने पति द्वारा त्याग दिये जाने पर अपने हक और अधिकार की बात अपनी सखियों से कहती हैं :–

''सुन हो सखि हम तो अदालत करबों,
पहिली अदालत बक्सर में करबों, ससुर राउर माला उतार हम लेबो।
दूसरी अदालत आरा में करबों, भसुर राउर टोपी उतार हम लेबो।
तीसरी अदालत पटना में करबों, देवर राउर पगरी उतार हम लेबो।
चौथी अदालत कलकत्ता में करबों, सइयाँ राउर सेखी उतार हम लेबो
सुन हो सखि हम तो अदालत करबों।।[12]

उपरोक्त लोकगीत में स्त्री अपने अधिकार को पाने के लिए अदालत में जाने की बात करती है, वह अपने हक और अधिकार को यों ही छोड़ देने वाली नही है। इसके लिए वह ससुर, भसुर, देवर और पति किसी को छोड़ने वाली नहीं है, वह बिना डरे अपने भरण पोषण का अधिकार प्राप्त करने का प्रयास करती है। भोजपुरी लोकगीतों में अपने अधिकारों को लेकर इतना सजग रहने वाली स्त्री के गीत बहुत कम ही मिलते हैं। अधिकांश लोकगीतों में स्त्रियों की वही छवि हैं, जहाँ वह आँसू बहाती हुई, शोषण और उत्पीड़न का शिकार होती हुई और अपने शोषण पर चुप रहने वाली स्त्री का चित्रण ही अधिक दिखाई पड़ता है।

भोजपुरी लोकगीतों में स्त्रियों की दयनीय स्थिति की भयावह तस्वीर दिखायी पड़ती है। भोजपुरी लोकगीतों के व्यापक अध्ययन से स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति की त्रासदी पूर्ण चित्र उभरकर सामने आता है। भोजपुरी क्षेत्र की स्त्री आर्थिक रूप से पराधीन, अशिक्षित एवं लाचार दिखती है। भोजपुरी लोकगीतों में पायी जाने वाली स्त्री अशिक्षित एवं अनपढ़ हैं, जिस कारण से वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं है। उसे एक–एक पैसे के लिए पति तथा ससुराल पर निर्भर रहना पड़ता है आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होने के कारण उसे शोषण का सामना करना पड़ता है, यह शोषण शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार का होता है।

भोजपुरी लोक साहित्य में स्त्रियों का स्थान अधिक ऊँचाई पर नहीं पहुँच पाया है। यदि हम जमीनी हकीकत देखे तो भोजपुरी लोकगीतों में स्त्रियों की दशा अत्यन्त ही सामान्य और निकृष्ट रूप में दिखायी पड़ती है। जिस सम्मान व महत्व की हकदार थी, उन्हें नहीं मिला। अधिकांश लोकगीतों में जिस स्त्री का चित्रण है वह शोषित व पीड़ित है। इस पितृ सत्तात्मक समाज में उनकी दशा एक गुलाम की तरह है। कहने को तो वह घर

की मालकिन है लेकिन उसे कोई भी अधिकार नहीं है। भोजपुरी लोकगीत स्त्रियों के दुखों के गीत हैं।

**सन्दर्भ सूची :-**


1. लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या– श्री कृष्णदास, पृ0 71
2. भोजपुरी लोकगीत भाग–2 – डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 131
3. उद्घृत, साहित्य अमृत, मार्च–2009, पृ0 55
4. वही, पृ0 55
5. वही, पृ0 57
6. भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन– डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 240
7. वही, पृ0 241
8. भोजपुरी लोकगीत भाग–1 डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 211
9. भोजपुरी ग्राम गीत– डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 71
10. भोजपुरी लोक संस्कृति, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 33
11. भोजपुरी लोकगीत, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, पृ0 82
12. भोजपुरी लोकगीत भाग–1, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय– हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (2011), पृ0 383



मो0 नं. 9450622710,

ई–मेल ps232281@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 29-34

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# 'प्रकृति के पहरेदार' तथा 'कलम को तीर होने दो' : एक तुलनात्मक अध्ययन

**मरीना एक्का**

शोधार्थी, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

दो व्यक्तियों अथवा दो वस्तुओं के बीच साम्य या वैषम्य खोजने की प्रक्रिया तुलना कहलाती है। लेकिन जब हम तुलनात्मक अध्ययन की बात करते हैं तब यह पूर्णता से स्पष्ट हो जाता है कि किसी दो भाषा या एक ही भाषा के किन्हीं दो लेखकों, रचनाओं, काव्य प्रवृत्तियों पर किया गया तुलनात्मक शोध। प्रसिद्ध आलोचक बैजनाथ सिंहल तुलनात्मक शोध के संदर्भ में लिखते हैं– "इस प्रकार के शोध में विषमता बताने के लिए साम्य और साम्य बताने के लिए विषमता जरूरी है।"[1] एक भाषा के साहित्य से दूसरे भाषा के साहित्य में एकरूपता, साम्यता, एवं वैषम्यता का निरूपण करना तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है। इस तरह के शोध व्यक्ति के ज्ञान को बढ़ाने और विस्तृत करने के साथ ही उसे भाषा, देशकाल और साहित्य के सीमित दायरे से मुक्त करता है। भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन का अपना विशिष्ट महत्व है। भारत की संस्कृति एवं साहित्यिक विविधता की अनुभूति हमें तुलनात्मक शोध के द्वारा ही प्राप्त होती है।

**बीज शब्द :–** तुलनात्मक अध्ययन, पर्यावरण और अस्तित्व संकट, संरक्षण, प्रदूषण, विस्थापन, अनुभूति बनाम सहानुभूति।

सुपरिचित कवि भारत प्रसाद द्वारा संपादित 'प्रकृति के पहरेदार' एक ऐसा काव्य संग्रह है जिसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं जैसे बंगला, असमिया, मलयालम, कन्नड़, पंजाबी, मराठी, उड़िया और हिंदी की कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं के माध्यम से प्रकृति के अनदेखे, अनछुए पहलुओं की ओर हमारा ध्यान जाता है। नदियों का निरंतर प्रदूषित होना इन कविताओं का स्थायी स्वर है।

'कलम को तीर होने दो' काव्य संकलन रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित एक ऐसी किताब हैं, जिसमें सत्रह आदिवासी कवियों की कविताएँ संकलित हैं। इस संकलन में क्रमवार– मुंडा, उरांव, सांताल खड़िया, हो और चिक बड़ाईक आदिवासी कवियों की हिंदी कविताएँ सम्मिलित हैं जिनकी मातृभाषा क्रमशः मुंडारी, कुडुख, संताली, खड़िया, हो और नगपुरिया है। प्रस्तुत पुस्तक में दर्ज सत्रह कवि जहाँ प्रकृति के विनाश और आदिवासियों के विस्थापन से आहत होकर अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हैं वही, दूसरी ओर अपने जीवन को उजड़ने वाली

अन्यायी शक्ति के खिलाफ आवाज भी बुलंद करते हैं।

दोनों ही काव्य संग्रह में इक्कीसवीं सदी की सबसे ज्वलंत समस्या पर्यावरण संकट और अस्तित्व संकट को लेकर अनेक कविताएँ संग्रहित हैं। इक्कीसवीं सदी में पर्यावरण चिंतन केवल प्रदूषण तक ही सीमित नहीं रह गया है। अपितु आज की सबसे बड़ी चिंता अस्तित्व संकट का भी है। प्राकृतिक पादपो, जीव–जंतुओं को नष्ट करनेवाला मनुष्य आज स्वयं अपने ही अस्तित्व को संकट में डालता जा रहा है। समकालीन कवि पेड़ों, वनोंके महत्व को लोगों को समझाने और उसके संरक्षण की बात करते हैं। बंगला भाषा के कवि शक्ति चट्टोपाध्याय अपनी कविता 'निहारता हूँ मैं' में लिखते हैं, मनुष्यों के करीब पेड़ों के होने को, जंगलों के होने को अत्यंत जरूरत महसूस करते हैं ताकि उनका देह निरोग बना रहे। यहाँ पेड़ों को अपने जगह से उखड़ कर मनुष्य के सुविधानुसार उसके बगीचे में लाने की बात हो रही है। वही दूसरी ओर आदिवासी कवि दुःखी है क्योंकि जंगलों के अंधाधुंध कटाई और प्राकृतिक परिवेश के नष्ट होते जाने से उनकी जीवन त्रासदी और विस्थापन का दर्द मुखर रूप से चित्रित हुआ है। 'शहर के दोस्त के नाम पत्र' में अनुज लुगुन लिखते हैं :–

"कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा
उससे पहले नदी गयी
अब खबर फैल रही है कि
मेरा गाँव भी यहाँ से जाने वाला है।"[2]

'प्रकृति के पहरेदार' और 'कलम को तीर होने दो' दोनों काव्य संग्रह के कवियों ने चींटी, तितली, चिड़िया जैसे छोटे–छोटे जीवों के महत्व का भी प्रतिपादन किया हैं। पृथ्वी पर मनुष्य के अलावा अनेक प्रकार के प्राजातियाँ और प्राणी पाए जाते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र में छोटे से छोटे जीव से लेकर बड़े–बड़े जंतुओं का अपना महत्व है। जैव–विविधता का होना अत्यंत जरूरी है। भले ही मानव के लुप्त हो जाने से पर्यावरण में कोई असर न पड़े, लेकिन यदि वृक्ष, शाकाहारी या मांसाहारी जंतु तथा छोटा से छोटा अपघटक जीव का अस्तित्व समाप्त हो जाए तो पूरा पारिस्थितिकी तंत्र गड़बड़ा जायेगा।

'प्रकृति के पहरेदार' काव्य संकलन में संकलित बंगाली कवि बीथि चट्टोपाध्याय की कविता में बसंत का सौंदर्य उद्दीपन का काम करता है। वे 'भोर की बेला में खिड़की' नमक कविता में लिखते हैं–

"भोर होने को है, एक–दो पक्षियों की चहचहाहट
खिड़की से झाँककर ताकती रहती हूँ मैं
सब कुछ बिलकुल तुम्हारी मुस्कराहट की तरह
पेड़ों के पत्ते, पत्तों के बीच नींद में खोया हुआ फूल
घास के ऊपर प्राचीर से घिरा हुआ पीला मकान
सोया हुआ घर, बिलकुल तुम्हारी ही तरह ही दिखता है,
भोर की बेला हूबहू तुम्हारी ही तरह ही दिखता है।"[3]

अर्थात् एक प्रेमिका को प्रकृति पर अपने प्रेमी की परछाई नजर आती है। इसके विपरीत आदिवासी कवियों के लिए प्रकृति कोई उद्दीपन की वस्तु नहीं है। वे मात्र नायक–नायिका के प्रेम की ही बात नहीं करते अपितु एक वृक्ष का पंछी से प्रेम, झाड़ी से तीतर का प्रेम, एक नदी का पहाड़ से प्रेम की भी बात करते हैं। उनकी कविताओं में प्रेम का संबंध जंगल, पेड़, झाड़ी, झरना, तीतर के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। रामदयाल मुण्डा अपनी कविता 'अगर तुम पेड़ होते' में लिखते हैं :–

"अगर तुम पेड़ होते और मैं पंछी
तुम्हारे पेड़ पर ही मैं डेरा डालता
अगर तुम झड़ी होते और मैं तीतर
तुम्हारी झाड़ी में ही मैं वास करता
हर सुबह सूर्योदय के साथ
गीतों से ही बात करता मैं ...
धरती की गर्मी, आकाश का ताप
धरती की गर्मी से तुम्हें बचाता मैं।"[4]

वर्तमान में 'प्रकृति के पहरेदार' तथा 'कलम को तीर होने दो' कवियों के लिए प्राकृतिक सौंदर्य दूर की आकृति बनती चली जा रही है। इनके लिए निर्मल प्रकृति के दर्शन स्वप्न की तरह लगते है। हिंदी कविता के कवि स्वप्निल श्रीवास्तव 'परिंदे कम होते जा रहे हैं' काव्य में लिखते हैं :–

"परिंदे कम होते जा रहे हैं
शहरों में तो पहले नहीं थे
अब गाँवों की यह हालत है कि
जो परिंदे महीने भर पहले
पेड़ों पर दिखाई देते थे
वे अब स्वप्न में भी नहीं दिखाई देते।"[5]

विभिन्न भारतीय भाषा के कवियों की कविताओं में प्रकृति मुख्यतः कवि के स्मृति लोक का हिस्सा बन कर सामने आयी है। कवि बचपन में प्रकृति के बीच बिताये गए क्षणों को याद कर के ही अपने मन में संतुष्टि पा लेता है। परन्तु आदिवासी कवियों की कविताओं में प्रकृति परिवेश नष्ट होते चले जाने का दर्द तो है ही। इससे इतर वे इसलिए भी अत्यधिक उदास है कि उनकी आगे आने वाली पीढ़ी नहीं देख पायेगी झरनों से गिरती पानी के तेज धारो के बीच खोह में घुसते–निकलते कबूतर की कलाबाजियाँ, पहाड़ियों से गिरते स्वच्छ जल के धार को और सबसे अधिक पीड़ा उन्हें इस बात की हैं कि यदि उनकी अगली पीढ़ी उनसे यह सवाल करेंगी कि 'सारे कबूतर कहाँ चले गए' तो वे उन्हें क्या जवाब देंगे। इसलिए वे यही सवाल सबके सामने रखते हैं कि 'क्यों चले गए पेरवा?' महादेव टोप्पो अपनी 'पेरवा घाघ के कबूतर–I 'शीर्षक कविता में लिखते हैं :–

"आने वाली पीढ़ी यह देख नहीं सकेगी
केवल बुजुर्गों के मुँह से सुनेगी...
समझाना होगा, बताना होगा बुजुर्ग आजा को
कबूतर ऐसे आते थे, ऐसे उड़ते थे
ऐसे करते थे कलाबाजियाँ
तोतली आवाज में बतायेंगे आजा
'क्यों चले गए पेरवा?'
शायद कोई बच्चा पूछ बैठेगा–
तब आजा उन्हें क्या बतायेंगे?
बता सकते हैं क्या आप?"[6]

वर्तमान में अनियंत्रित विकास और प्राकृतिक उपादानों पर मानवीय हस्तक्षेप के कारण प्रकृति का मौलिक रंग धुंधला पड़ते–पड़ते अब बिलकुल मिटता जा रहा है। वर्तमान समय में पर्यावरण का विकृत रूप हमारे सामने मुहँ बाये खड़ा है और प्रकृति को पतनशील अवस्था में पहुँचाने का जिम्मेदार स्वयं मानव जाति ही हैं। 'प्रकृति के पहरेदार' काव्य संकलन के कवियों को इस बात का इल्म भी है कि प्रकृति विनाश के पीछे उनका अपना ही हाथ हैं। इसलिए मराठी कविता के कवि अनुपमना उजगरे अपने 'पेड़ और मैं' शीर्षक कविता में लिखते हैं–

"पेड़ ने मुझे अभियुक्त घोषित किया हुआ है।
उसके बचे हुए डाली पर लटकाकर
मुझे
मरते दम तक फांसी देना तय किया है।"[7]

जबकि आदिवासी समाज ने हमेशा से ही प्रकृति को संरक्षण प्रदान किया है। प्रकृति को अपने पूर्वजों की तरह ही सम्मान देना तथा उसे अपने संतान की तरह सुरक्षित रखना, उनके रोजमर्रा के जीवन दर्शन में शामिल है। इसलिए वर्तमान में अपने अवस्था पर दुखित नदियाँ ताकने लगी है। उन्हीं की ओर अपनी मुक्ति की आस लिए। महादेव टोप्पो अपनी कविता 'जंग लगे तीरों पर नयी धार लाने का गीत' कविता में लिखते हैं :–

"तुम्हारे जदुर गीत सुनकर
झूमती नहीं है स्वर्णरेखा
मयूराक्षी, कोयल कारो
और न कन्हर
और न ही तुम्हारे
नगाड़ों, ढोलों, मंदारों की ताल से ताल मिलकर गाता है दामोदर

क्योंकि इन सारी नदियों के
बँध गये या बँध रहे हैं हाथ पैर
छड़, सीमेन्ट की जंजीरों से
ताकती हैं आशा भारी निगाहों से
आज स्वर्ण रेखा, कोयल कारो, दामोदर, मयूराक्षी
तुम्हारे जंग लगे तीरों की ओर।"[8]

'कलम को तीर होने दो' काव्य संग्रह की कविताओं में स्त्रियाँ अपनी आभा से अपने श्रम सौंदर्य से जीवन को सुन्दर बनाने में मुब्तिला है। वे अपने जंगलों–पहाड़ों से प्रेम करने वालो का सम्मान करती हैं तो वाही उसे संसाधन के रूप में देखने और लुटने वालो के विरुद्ध वे तीर कमान उठाने से भी नहीं हिचकती। इसका सजीव प्रमाण अनुज लुगुन की 'उलगुलान की औरतें' शीर्षक कविता में देखने को मिलता हैं। इसके विपरीत 'प्रकृति के पहरेदार' काव्य संकलन के कवियों की कविताओं में स्त्रियाँ पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता के कारण सामाजिक समस्याओं से जूझती नजर आती हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इन दोनों काव्य संकलन के केंद्र में मनुष्य नहीं प्रकृति का महत्व है। दोनों काव्य संग्रह के कवियों की प्रकृति परक संवेदनाएँ एक हैं, चिंताएं एक हैं बावजूद इसके प्रकृति संपदा को नष्ट करने वाले दुषशक्तियों, भू–माफियाओं, के विरुद्ध जैसी चुनौतीपूर्ण संघर्ष 'कलम को तीर होने दो' काव्य संग्रह की कविताओं में दिखाई पड़ता है। वैसी मुखर अभिव्यक्ति 'प्रकृति के पहरेदार' काव्य संग्रह के कविताओं में नहीं मिलती। 'कलम को तीर होने दो' काव्य संग्रह में आदिवासियों के जीवन मूल में प्रकृति के अस्तित्व को बचाना ही प्रमुख है। जबकि 'प्रकृति के पहरेदार' काव्य संग्रह में विभिन्न भारतीय भाषाओं के कवियों ने प्रकृति को नष्ट होने से बचाने का आवाहन किया है ताकि मनुष्य का जीवन बचा रह सके। विभिन्न भारतीय भाषाओं की कविताएँ नदियों के सूखते जाने, पेड़ों के कटते जाने, प्रदूषण के बढ़ते जाने की ओर इशारा तो करती है लेकिन इसके कारणों पर खुलकर विद्रोह न के बराबर देखने को मिलती है और न ही ये कविताएँ लोगों में क्रांति लाने का चिराग ही जला पाती हैं। इन कवियों ने कभी कृतज्ञतावश, सहानुभूति वश या मिटते अस्तित्व की पीड़ा से दुखी होकर कविताएँ की हैं। जबकि आदिवासी भाषाओं में रचित कविताओं में नदी, पहाड़, जंगल, जमीन को उजड़ने वाली शक्तियों के विरुद्ध चुनौतीपूर्ण प्रतिरोध का स्वर देखने को मिलता हैं।

अतः प्रस्तुत कविताओं से पता चलता है कि भारतीय युवा की प्रकृति विषयक चिंताएँ एक सी हैं। ये कविताएँ पाठक को एक ही प्रकार से विचलित करती हैं, आंदोलित करती हैं और चिंतित भी करती हैं। ये कविताएँ काव्य विषयों का ही विस्तार नहीं करती, काव्य भाषा की सीमित क्षेत्र का भी विस्तार करतीं हैं। इस संकलन की कविताएँ इस बात की भी पुष्टि करती हैं कि हम एक हैं, हमारी प्राथमिकताएं एक हैं और हमारी चिंताएँ भी एक हैं।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :–**


1. सिंहल, बैजनाथ, शोध स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017. पृष्ठ सं. 30
2. गुप्ता, रमणिका (सं), कलम को तीर होने दो, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ सं. 78
3. प्रसाद, भारत (सं), प्रकृति के पहरेदार, दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, संस्करण 2022, पृष्ठ सं. 33
4. गुप्ता, रमणिका (सं), कलम को तीर होने दो. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ सं. 49
5. प्रसाद, भारत (सं), प्रकृति के पहरेदार, दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, संस्करण 2022, पृष्ठ सं. 124
6. गुप्ता, रमणिका (सं), कलम को तीर होने दो, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ सं. 144–145
7. प्रसाद, भारत (सं), प्रकृति के पहरेदार, दिल्ली : अनन्य प्रकाशन, संस्करण 2022, पृष्ठ सं. 70
8. गुप्ता, रमणिका (सं), कलम को तीर होने दो, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ सं. 116



मो. नं 8670142966

ईमेल: MARINAEKKA0@GMAIL.COM

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 35-37

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# असंगघोष के काव्य में दलित विमर्श

**आशा,** शोध छात्रा,
**डॉ. प्रीति आर्या,** एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, एस. एस. जे. परिसर अल्मोड़ा– 263601 उत्तराखंड।

साहित्य वह माध्यम है जो समाज को बाह्य एवं आंतरिक रूप में प्रभावित करता है। यह समाज में चेतना का कार्य करता है। यदि किसी समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक पहलुओं को समझना हो तो उसके साहित्य को समझना नितांत आवश्यक है। लेखक स्वयं की अनुभूतियों एवं विचारों को लेखनीबद्ध कर समाज को प्रदर्शित करता है।

वर्तमान दलित लेखकों पर प्रकाश डाला जाए तो असंगघोष एक शीर्षस्थ हस्ताक्षर हैं। यह उस वर्ग विशेष से संबंध रखते हैं, जिन्होंने सदियों से अपमान भेद–भाव, कुंठा, उपेक्षा, तिरस्कार एवं घृणित दृष्टि का दंश झेला है। इनके अभी तक नौ काव्य–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। दलित साहित्य के इसी दंश के विरुद्ध किया गया आंदोलन है। आंदोलनरत बुद्धिजीजी दलित को जब लेखनी और जग का साथ मिला तो वह स्वानुभूति के विभिन्न स्तरों को प्रदर्शित करने लगा। स्वयं के प्रति वह सम्पन्न होने लगा। सुधीर सक्सेना ने 'तुम देखना काल!' नामक संग्रह में उनकी रचनाओं का संपादन किया है। जिसकी भूमिका में वह लिखते हैं – ''असंग की कविताओं में 'लिहाज' के लिए कोई जगह नहीं है, क्योंकि हर बखूबी जानते हैं कि क्रूर और मगरूर शोषक वर्ग लिहाज की जुबान नहीं समझता और उसके कई लिहाज शालीनता का मानवीय गुण न होकर दुर्बलता है।''[1]

लेखक अपनी प्रत्येक कविता में व्यक्त को समान अधिकार दिलाने की बात कहते हैं। वह स्पष्ट रूप से अपनी रचना में लिखते हैं कि जो वर्ग विशेष के कारण वृहत्तर समाज शिक्षा, समानता, आदर–सत्कार से वंचित है। वह एक दिन सभी रूढ़ियों को तोड़कर अपना अधिकार लेकर रहेगा। ''हत्यारे फिर आएंगे'' काव्य–संग्रह की आगाज नामक कविता में लेखक का तीव्र आक्रोश चित्रित है –

''तुमने हमारे सीने पर
लिखी हमारी जात
जिस किसी दिन हमने लिख दी
तुम्हारे माथे पर
तुम्हारी जात धूर्त
उस दिन तुम मुँह छिपाते
यहाँ–वहाँ भागते फिरोगे।''

लेखक ने बचपन से ही जाति वाद की पीड़ा को सहा है। जिस कारण उनकी रचनाओं में शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश है। समाज ने जिस भाषा में उनको अपशब्द कहे उन्होंने ज्यों का त्यों अपनी रचना में चित्रित किया है। कवि आगे मेरा उद्देश्य असंगघोष के काव्य में व्याप्त भाव को उभारना मात्र है।

समय को इतिहास लिखने दो नामक काव्य संग्रह की कविता 'तेरा कुलीन कुल' में कहता है –

''तुम्हारा बाप
मूतासूत्र पहनता है
किंतु तुम्हारी माँ!
नहीं पहनती कोई मूतासूत्र
उसने तुम्हें अपने मुख से
कभी पैदा नहीं किया
वरन जना है।''[3]

''इनकी कविता 'बेजोड़ छल' बने हुए मिथकों पर सीधा प्रहार करती हैं। सदियों से सत्ता अपने हित साधने के लिए कैसे अपने प्रतिमान बनाती है और सत्ता की भागीदारी को सुनिश्चित करती है। कैसे वह अपनी पीढ़ियों और अपने बीजों में कुतर्क को स्थापित करती हुई शक्ति का संधान करती है। हम ही हटाएंगे कोहरा' दलित कवि ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'ठाकुर का कुआँ' की बरबस याद दिला जाती है।''[4]

जैसे–जैसे समय बीतता है लेखक की रचना में आक्रोश का वेग तीव्र प्रतीत होता है। जब बाल्यावस्था से किसी के हृदय को अहित किया जाता है तो वह घाव नासूर बन जाता है। समय के साथ वह घाव और ज्यादा गहरा जाता है। कवि की कविताओं में उसका स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहा है।

लेखक ने अपने 'बंजर धरती के बीज' नामक काव्य–संग्रह की 'आम भी बौरा गये है'। कविता में हृदय भेदी भाव को इस प्रकार व्यक्त किए हैं :–

''वह हमें ले जाना चाहता है
फिर से बर्बर युग में
उसकी अभिलाषा
हमारे गले में हांडी
और पीठ पर झाठू बांधने की
दिखाई देती है!''[5]

हमारा देश चाहें कितनी ही विकास कर ले। किंतु जातिवाद कहीं न कहीं किसी रूप में प्रतीत हो जाता है। मनुष्य की दूसरों से श्रेष्ठ होने की कामना उससे यह घृणित कार्य करा देती है।

लेखक मलय कवि के विषय में लिखते हैं – ''कवि असंगघोष की कविता शुरूआती दौर (खामोश नहीं हूँ मैं) में अपनी दलित चेतना के स्वभाव में जिस आक्रोश से जन्म लेकर अपनी जगह बनाती है वह यहां तक आते–आते आक्रोश के आवेश से अब आवेग की तीव्रता को (उसके आंतरिक अन्वेषण में) प्राप्त कर लेती है और इसी आंतरिक परिवेश से अपनी भाषा में सही पहचान निर्मित करती है। इस दृष्टि से ये कविताएं अपनी अभिव्यक्ति में पहले की कविता से अलग और आगे हैं।''[6]

कवि ने जाति भेद को अपनी कमजोरी नहीं वरन् ताकत बनाई है। उन्होंने स्वयं चाहे कितनी ही परेशानियाँ झेली परंतु अपनी आने वाली पीढ़ी को उपहार दिया है। स्वयं वह आज ऐसे पद पर आसीन है जहां उसने मिलने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है जो वर्ग विशेष को घृणित दृष्टि से देखता है। आज उनसे निगाहें तक नहीं मिला सकता। उन्होंने अपने 'मैं दूँगा माकूल जवाब' काव्य संकलन की 'मैं दूंगा माकूल जवाब' नामक कविता में डंके की चोट पर ये कहा है –

''समय
मांगता है
मुझसे हिसाब
पढ़े क्यों नहीं!
नहीं है इसका जवाब
मेरे पास।''[7]

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए वह कहते हैं –

''समय के साथ
ठसका
मैं दूँगा माकूल जवाब
मेरी जगह
पढ़ेगे मेरे बच्चे
जरूर।''[8]

**निष्कर्ष :–** उपर्युक्त सभी तथ्यों से हम असंगघोष जी के विचारों से अवगत होते हैं। उनके साहित्य में दलित वर्ग के लिए सहानुभूति समपर्ण एवं त्याग की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। जन्म से उन्होंने जो भी पीड़ा, यातना एवं विद्रुपताएं सहन की उनका स्पष्ट चित्रण कविताओं के माध्यम से किया है। दलित साहित्य समाज के व्यक्तियों की आत्म कथा है। दलित साहित्य व्यक्ति के अधिकारों की बात करता है। जितने सुधार आज देखने को मिल रहे हैं वह सब दलित साहित्य की देन है। वर्ग–विशेष के सम्मान, समानता, न्याय एवं शिक्षा का अधिकार दिलाने में दलित साहित्य की महती भूमिका है। यह एक तरह से मुक्ति की कविताएं हैं। जिन्होंने व्यक्ति को जीने की राह दिखाई। आगे बढ़ने की चाह जगाई। इनकी रचनाएं अमानवीय व्यवहार तथा ब्राह्मणवादी सोच पर जमकर प्रहार करती हैं। समाज में सभी को समान रूप से जीने का अधिकार है। ये हमारा मौलिक अधिकार भी है। समाज में जो धर्म एवं जात विरोधी व्यक्ति हैं उन्हें ये बात क्यों समझ नहीं आती।

**संदर्भ :–**


1. असंगघोष, तुम देखना काल!' पृ0 9
2. असंगघोष, हत्यारे फिर आएंगे, पृ0 44
3. असंगघोष, समय को इतिहास लिखने दो, पृ0 104
4. अस्मिता की आवाज : असंगघोष, ब्लॉग स्पॉट, कॉम, शनिवार 8 अप्रैल 2017
5. असंगघोष, मैं दूंगा माकूल जवाब, पृ0 17
6. असंगघोष, मैं दूंगा माकूल जवाब, पृ0 37
7. असंगघोष, मैं दूंगा माकूल जवाब, कवर से।


मो0 न0– 9627890035

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 38-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# साम्प्रदायिकता का जीवंत दस्तावेज : तमस

**नटराज गुप्ता**

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, नक्सलबाडी कॉलेज, जिला– दार्जीलिंग।

बीसवीं शताब्दी के हिंदी उपन्यासकार भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त 1915 को पाकिस्तान के रावलपिंडी के छाछी मोहल्ला में हुआ था। साहनी जी उपन्यास के प्रगतिशील परंपरा के एक सशक्त, निर्भीक एवं साहसी लेखक, उपन्यासकार एवं नाटककार ही नहीं है बल्कि एक सशक्त अभिनेता के रूप में भी जाने जाते हैं। उनका व्यक्तित्व ठोस यथार्थवादी भाव भूमि पर निर्मित हुआ है! किसी तरह की कल्पना या चमत्कारिक घटनाक्रम को आधार बनाकर उन्होंने अपने कथा साहित्य का निर्माण नहीं किया है। हिंदी जगत में साहनी जी का नाम धर्म निरपेक्षता, वैचारिक प्रतिबद्धता एवं यथार्थवाद के पकड़ के लिए विशेष विख्यात है। वें हिंदी कथा साहित्य में समाजोन्मुख साहित्य लिखने वाले साहित्यकारों में मार्क्सवादी विचारधारा के परंपरा के कथाकार है। उनका साहित्य साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोधी जमीन पर खड़ा है।

भीष्म साहनी के कथानक (''चाहे आधुनिक और अतीत के हों'') कहीं न कहीं सामाजिक संदर्भ से जुड़े होते हैं। अर्थात उनकी रचनाओं में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक वधार्मिक समस्याओं को उजागर किया गया है।

भीष्म साहनी का तीसरा उपन्यास तमस (1973) सांप्रदायिकता की भयावहता को मार्मिक ढंग से चित्रित करने वाला एकचर्चित उपन्यास है! यह उपन्यास यर्थाथ की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। यह मात्र एक उपन्यास नहीं है बल्कि सच्ची घटनाओं पर आधारित जीते–जागते यर्थाथ की तस्वीर है, जो तत्कालीन समाज के उस घृणित दृश्य को उभारती है जिससे हम आज भी पीड़ित हैं। इस उपन्यास के जरिये भीष्म साहनी स्पष्ट करना चाहते हैं कि "समाज के लिए सबसे बड़े खतरे में से एक है "साम्प्रदायिकता"। सांप्रदायिकता एक ऐसी आग है, जो युगों से चलती आई आत्मीयता को, भाईचारे की भावना को एकाएक भस्म कर व्यक्ति को जातीयता, धार्मिकता के संकट के संकीर्ण शिकंजे में जकड़ देती है, और पीछे छोड़ जाती है एक न मिटने वाली त्रासद पीड़ा।"[1]

"तमस" देश विभाजन के पूर्व सामाजिक मानसिकता और उसके अनिवार्य परिणति के रूप में होने वाले भीषण सांप्रदायिक दंगों की निर्मम करुण गाथा है। यह किस प्रकार समाज को आच्छादित कर अंधेरे में धकेलता है और व्यक्ति अपनी उखड़ी जिंदगी को मूकदर्शक की भाँति देखता है, पर चाहते हुए भी कुछ नहीं कर पाता!

साम्प्रदायिकता की आग में झुलसते हुए रावलपिंडी तथा आसपास के गांवों का चित्रण है – तमस! "तमस का परिवेश मार्च 1947 में हुए हिंदूओं, सिखों और मुसलमानों के आपसी वैमनस्य की, उस वैमनस्य के कारणों, परिणामों और उससे जुड़े संदर्भों को यथार्थवाद के स्पेक्ट्रम पर प्रतिबिंबित करता है"![2] पंजाब तथा उसके

आसपास के गांवों में हिंदू मुस्लिम दंगे लगभग पांच–छः दिन तक हो रहे हैं। लेकिन इससे जो निष्कर्ष उभरे उनके कारण यह पांच–छः दिन की कथा बीसवीं सदी के भारत के अब तक के सबसे भयावह कथा बन गई है। सांप्रदायिक दंगे किस प्रकार बढ़ते हुए भयंकर विभीषिका का रूप धारण करती है और अंततः अपने साथ केवल जान माल ही नहीं बल्कि उन आत्मीय संबंधों मानवीय मूल्यों को तिलांजलि देते हुए वर्षों से संजोए हुए मानवीय बंधुत्व को धराशायी कर देती है।

"तमस" की कथा लेखक की विशुद्ध कल्पना नहीं है, बल्कि इसकी घटनाओं के साथ उनका निजी संबंध भी रहा है। भीष्म साहनी ने तमस संस्करण में लिखा भी है कि "उस जमाने को निकट से देखने का मुझे अवसर मिला है! उपन्यास में दिए गए अनेक प्रसंग ऐसे भी हैं जिनका मैं स्वयं साक्षी रहा हूँ! शहर में जब तनाव बढ़ रहा था और नागरिकों का एक वर्ग अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर से मिलने गया तो मैं भी उनके साथ हो लिया था! कुएं में अपने बच्चों को लेकर खुद जान देने वाली औरत की घटना सच्ची है। लाशों से अटे हुआ दृश्य मैंने दंगों के बाद अपनी आँखों से देखा है![3]

इस उपन्यास के जरिए भीष्म साहनी ने तत्कालीन समय में व्याप्त अंग्रेजों के कूटनीति का पर्दाफाश और कांग्रेस तथा विभिन्न राजनीतिक दलों की भूमिका भी स्पष्ट करते हैं कि कैसे अंग्रेजी सरकार ने सांप्रदायिकता को हथियार बनाकर अपने विरुद्ध लड़ने वाले हिंदू, मुस्लिम, सिखों को आपस में लड़वा दिया! और फिर यह लड़ाई सिर्फ लड़ा नहीं बल्कि जन्म जन्मांतर तक न भूलने वाली दंगे भी करवा दिए! अंग्रेज सरकार यह अच्छी तरह समझ गए थे कि अब वो अधिक दिनों तक भारत में राज नहीं कर पाएंगे। इसलिए वो साम्प्रदायिकता को हथियार बनाकर डिवाइड एन्डरूल यानी की फूट डालो और राज़ करो के नीति अपनाकर आजादी के लिये लड़ते हिंदू –मुसलमानों के बीच वैमनस्य पैदा किया! एक स्थान पर रिचर्ड लीजा से कहता है कि "धर्म के नाम पर यह आपस में लड़ते हैं.....! देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं ! हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते प्रजा में कौन सी समानता पाई जाती है! उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन–किन बातों में एक दूसरे से अलग है"![4] ब्रिटिश सरकार यह चाहती ही नहीं कि दोनों धर्म के तनाव किसी भी हालत में कम हो! क्योंकि अगर तनाव कम हो गया तो उनका स्वार्थ कैसे सिद्ध होगा? इसलिए काफी कुछ हो जाने के बाद बहुत कुछ करने का नाटक अलबत्ता वे जरूर करते हैं। शहर के तनावपूर्ण वातावरण से भली भांति परिचित होते हुए भी रिचर्ड विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं को नगर सुरक्षा का थोथा आश्वासन देता है!

ब्रिटिश सरकार की इस घृणित योजना को सफल बनाने में मुरादअली जैसे स्वार्थ पद लोग अपने तुच्छ स्वार्थ पूर्ति के लिए हिंदू और मुसलमान दोनों संप्रदायों के बीच नफरत की दीवार खड़ी करने में तनिक भी संकोच नहीं करते है। मुरादअली नत्थू जैसे भोले–भाले गरीब लोगों को अपना मोहरा बनाता है! नत्थू जैसा व्यक्ति अनजाने मैं वह अपराधकर जाता है जो वीभत्स और अमानवीय जनसंहार के रूप ले लेता है। मुराद अली पांच रुपये का नोट नत्थू की जेब में डालते हुए उसे एक काम सौंपता है "हमारे सलोतरी साहब को एक मरा हुआ सुअर चाहिए डॉक्टरी का काम के लिए इधर बस्ती में सुअर बहुत घूमते है! एक सुअर को इधर कोठरी के अंदर कर लो और काट डालो"![5] बाद में वहीं सुअर एक मस्जिद के सामने फिंकवा दिया जाता है। इस कर्मकांड का सूत्रधार मुराद अली सुअर के बदले गाय की हत्या करने के लिए मुसलमान लोगों को उकसाता है ! और इस तरह की गलत फहमी दंगा का रूप धारण कर लेती है! दरअसल दंगा हो नहीं रहा है, कराया जा रहा है। तनाव

बढ़ नहीं रहा है बढ़ाया जा रहा है! यह बात तमस में साफ दिखाई गई है कि दंगे कराने वाले लोग पर्दे के पीछे है! दंगे कराने वाले आमने–सामने! माहौल में एक तनावपूर्ण संवेदहीनता व्याप्त हो जाती है! तनाव की यही स्थिति केवल शहर में ही नहीं गांवों और कस्बों में भी महामारी की तरह फैलने लगती है और इस तरह यह पाश्विक शक्ति का रूप धारण कर दोनों समुदायों के बीच पाई जाने वाली असमानता को और भी ज्यादा उभारती है!

इस उपन्यास के द्वारा भीष्म साहनी समाज को उस सत्य से रूबरू करवातें है जो सदियों से चली आ रही है ! देश के भीतर बार–बार होने वाले सांप्रदायिक दंगों केकारण हजारों लाखों की संख्या में लोग मरते हैं, उनमें चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान! सिख हो या कोई और पर मरने वाले तो आखिर गरीब ही होते हैं ! क्योंकि मध्य वर्ग या उच्च वर्ग के लोग तो दूर बैठे तमाशा देखते हैं! करवातें हैं! रिचर्ड, लीजा, सहनवाज, लाला लक्ष्मीनारायण, रघुनाथ, रॉबर्ट जैसे संपन्न लोग ऐसी ही श्रेणी के प्रतीक हैं! पर जसवीर, नत्थू जैसे लोग जो निर्दोष है, निरीह है, सामाजिक आर्थिक अधिकारों से वंचित है वो दंगों में मारे जाते हैं ! दंगा ठंडा पड़ जाने पर रिलीफ कमेटी का कार्यकर्ता एक रजिस्टर खोलें सिर्फ आंकड़ों की पूछताछ करते हुए कहता है" हमें आंकड़े चाहिए केवल आंकड़े आप समझते क्यों नहीं! सब लंबी हाँकने लगते हैं! सारी राम कहानी सुनाने लगते हैं! मुझे राम कहानी नहीं चाहिए! मुझे केवल आंकड़े चाहिए! कितने, कितने घायल हुए हैं कितने जानमाल का नुकसान हुआ"?[6] इसी समय कॉमरेड देवदत्त आंकड़े दर्ज करने वाले कार्यकर्ता से कहता है" पन्नों पर एक खाना और जोड़ दो गरीब कितने मरे हैं और खाते पीते कितने"![7] बहुत ही सीधे साधे अंदाज में लेखक हमारा ध्यान उस व्यापक सामाजिक संदर्भों की ओर ले जाते हैं जहाँ यह हिसाब लगा कर देखना चाहिए कि देश के भीतर बार–बार होने वाले इन सांप्रदायिक दंगों में कितने गरीब मरते है! फिर चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान! सिख हो या कोई और! शाहनवाज जैसे रईस मुसलमान रघुनाथ और तेज सिंह जैसे खाते पीते हिंदू इन सारे दंगों में साफ और बेदाग बच निकलते हैं, पर क्या सचमुच वे निर्दोष बेदाग होते हैं?

"सांप्रदायिक वैमनस्य की महामारी से पीड़ित हिंदू–मुस्लिम समाज के विडंबनापूर्ण यथार्थ की इस पहेली की ओर हुआ हमारा ध्यान ले जाती है कि हिन्दुओं के मुसलमान विरोधी घृणा रईस मुसलमानों और गरीब मुसलमानों के बीच फर्क करती है। ठीक उसी प्रकार जैसे कट्टर मुसलमानों के हिंदू विरोधी घृणा गरीब हिंदुओं के खिलाफ़ ही प्रायः क्रियान्वित होती है"![8]

'तमस 'उपन्यास में दिखाया गया है कि जब दंगा भीषण स्वरूप धारण कर लेता है, तब भी शहनवाज जैसे मुसलमान अपने हिंदू मित्र रघुनाथ की मदद करता है, और उसे तथा उसके जेवरों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देता है! पर शहनवाज के मन में दबे हुए हिंदू विरोधी घृणा रघुनाथ के नौकर की मिल जाने पर बरस पड़ती है! इधर रघुनाथ को भी अपने जेवरों की चिंता है पर उसके घर की देखभाल करने वाला नौकर की जिंदगी से कोई सरोकार नहीं! इसलिए जब शहनवाज उन्हें बताता है कि मिल्खी की हड्डी टूट गई है कहो तो उसे यहाँ ले आऊं वहां अकेला कहाँ पड़ा रहेगा"?[9] तो रघुनाथ दंपति इस सुझाव से परेशान हो जाते हैं! सांप्रदायिकता ग्रस्त समाज के खोखले और नग्न तस्वीर को तमस के माध्यम से उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। विभाजन की त्रासदी के इस हिंसा भरे माहौल में भी लेखक ने मानवीय संवेदना को लुप्त होने से बचा लिया है। हरनाम सिंह और उसकी पत्नी बन्तो उसी घर में शरण लेते हैं जिस घर का जवान बेटा हिंदूओं के खिलाफ़ हिंसा एवं बर्बर

कृत्य कर रहा है! राजो का हृदय घर मैं आए शरणार्थी को बचाने का भरपूर प्रयास करता है! प्रकाशो के साथ अल्लाह रखा जबरदस्ती करता है पर कोई घिनौना कृत्य नहीं करता! बाद में उसके हृदय के प्रेम को देखकर प्रकाशो उसे स्वीकार कर लेती है! शहनवाज़ मुसलमान होते हुए भी अपने हिंदू मित्र रघुनाथ को उसके परिवार समेत सुरक्षित स्थान पर पहुंचाते हैं! भीष्म साहनी ने इस अंधकार भरे माहौल में भी मानवीय सौहार्द और प्रेम को जीवित रखा है, जो जीवन के प्रति आस्था जगाए रखती है!

साम्प्रदायिकता की समस्या को भीष्म साहनी ने केवल लेखक या पाठ्य के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि सामान्य जनता के दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा की है! सांप्रदायिक हादसों के इन जीवंत घटनाओं को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे हम उस वातावरण में जी रहे हो और वह हमारे जीवन में घट रहा हो। "चारों ओर हाहाकार मची थी। लपलपाती आग की लपटें अब दो जगह से उठने लगी थी। ढलान पर, मकानों की दीवारों पर गली की ईंटों के फर्श पर लपटों के साए नाच रहे थे। नदी के जल में लाल लपटों का साया झिलमिला रहा था, पानी अपने आप ही लाल होने लगाथा"![10] ऐसी ही भयावह इस स्तब्ध स्थिति का एक उदाहरण देखिए "जब रौशनी फैलने लगी तो चीलें और कौवे ढेरों–के–ढेर आसमान में उड़ने लगे! अनेक गिद्ध भी मँडराते हुए आ गए! स्कूल के बाहर खड़े एक रुंड–मुंड पेड़ पर दस–पंद्रह गिद्ध आकर बैठ गए थे! छोटे–छोटे सिर, बड़े बड़े पीले चोंच! कुछ गिद्ध कुंए की जगह पर भी आ बैठे थे जहाँ लाशें फूलने लगे थी, और फूल–फूल कर कुएं के मुँह तक पहुंचने लगीं थी। घरों के मुंडेरों पर भी जगह जगह गिद्ध आकर बैठ गए थे। गलियां सुनसान पड़ीं थी, बिखरी लाशें गांव के निस्तब्धता को और भी गहरा बना रहे थी।"[11]

इस उपन्यास में भीष्म साहनी ने केवल दंगों का जीवंत चित्र ही नहीं खींचा है बल्कि उसके कारणों की जांच पड़ताल में की है! रिचर्ड और लीजा कि बातचीत से स्पष्ट हो जाता है कि इस भयानक हादसों के सबसे बड़ी जिम्मेदारी सरकार पर है! उसी के प्रपंचों के कारण इतना बड़ा दंगा हुआ! रिचर्ड से हुई बातचीत से लीजा को ये पता चलता है की "मानवीय मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं होता महत्त्व सिर्फ शासकीय मूल्यों का होता है"![12] तमस उपन्यास के जरिये भीष्म साहनी ने तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारियों के नैतिकता का पर्दाफाश अंग्रेज पात्रो के द्वारा ही करवाया है! अंग्रेज अधिकारी चाहते तो यह सांप्रदायिक दंगों को होने ही न देते, पर उनको अपना स्वार्थ पूरा करना था। अर्थात अपनी सत्ता बचानी थी। इसलिए उन्होंने फूट डालो और राज़ करो की नीति अपनाई। पर जब दंगा समाप्त होने को आया तब यह ब्रिटिश राज जनता के मध्य अपना प्रभाव जमाने के लिए कर्फ्यू कैंप आदि लगाकर उनका भरोसा जीतना चाहते थे! उनके इस तरह की हरकतों को देखकर मोहन लाल कहता है "इन फसादों के लिए जिम्मेदार कौन है? सरकार उस वक्त कहाँ थे जब शहर में तनाव बढ़ रहा था अब कर्फ्यू लगाया गया है? उस वक्त क्यों नहीं लगाया गया? उस वक्त साहब बहादुर कहाँ थे"?[13] वह आगे कहता है "फिसाद कराने वाले भी अंग्रेज, रोटी देने वाले भी अंग्रेज, भूखों मारने वाले भी अंग्रेज, घरों में बसाने वाले भी अंग्रेज"![14]

तमस की वर्तमान प्रासंगिकता यह है कि भारतीय जनता के मनोजगत पर अभी भी तमस छाया हुआ है। सांप्रदायिकता आज भी अपनी समस्त विभीषिका के साथ भारतीय जनमानस के क्षितिज को आहत किए हुए हैं। अलीगढ़, जमशेदपुर, गुजरात गोधरा की घटना, व उसके बाद के दंगे, बंगाल के माल्दा के दंगे, 2023 के ही मणिपुर के दंगे इस बात की ओर ध्यान ले जाती है कि इस समस्या को पुरानी या घिसी–पिटी कहकर साहित्य

के लिए अप्रासंगिक घोषित नहीं किया जा सकता है! स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेज हाकिमों के द्वारा लोगों के बीच फूट पैदा किए जाते थे और दंगा करवाया जाता था! और आज साम्राज्यवादी ताकतें और उनके अभिकर्ता ये काम कर रहे हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं!

भीष्म साहनी ने एक स्थान पर कहा है कि स्वतंत्रता के इतने साल बाद भी अपने समाज से सांप्रदायिक तत्वों को खत्म नहीं कर पाए हैं आज भी धार्मिक और जाति दुर्भावना फैलाने वाले तत्व हमारे बीच सक्रिय है! तमस का मकसद है इन सांप्रदायिक तत्वों को समझाना इनकी साजिश को समझना और इन्हें बेनकाब करना"![15] तमस उस अन्धकार का द्योतक है जो आदमी की इंसानियत और संवेदना को ढँक लेता है और उसे हैवान बना देता है!

**संदर्भ सूची ग्रंथ :-**


1. सम्मेलन पत्रिका, शोध त्रैमासिकी पृष्ठ संख्या–100
2. भीष्म साहनी, व्यक्तित्व और रचना, पृष्ठ संख्या –126
3. आधुनिक हिंदी उपन्यास, संपादक भीष्म साहनी, पृष्ठ संख्या– 428
4. तमस, राजकमल प्रकाशन, तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या– 51
5. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या–9
6. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या–281
7. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या–281
8. भीष्म साहनी, व्यक्तित्व और रचना, ले० राजेश्वर सक्सेना प्रताप ठाकुर पृष्ठ संख्या– 131
9. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या– 261
10. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या 261
11. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या 122
12. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या 33
13. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या 200
14. तमस, राजकमल प्रकाशन तीसरी आवृत्ति ,पृष्ठ संख्या 273
15. दूरदर्शन धारावाहिक तमस में दिये गए व्यक्तव्य।



Natraj Gupta, Assistant Professor, Dept. of Hindi, Nakshalbari College,
Dist- Darjeeling-7340429, West Bengal.
Mobile – 8759393165
Email :- natrajgupta.hindi@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 43-47

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# 'चरखा' महात्मा गाँधी के आर्थिक विचारों का मूल आधार

**प्रीती रानी**

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान एवं लोक प्रशासन,

बाबा मस्तनाथ विश्वविधालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा।

**सारांश :-**

आजादी के इस अमृत महोत्सव वर्ष में महात्मा गाँधी के आर्थिक दर्शन का विचार मंथन अत्यंत ही सामाजिक और प्रासंगिक हैं। स्वाधीन भारत के विगत 75 वर्षो में भारत की अर्थव्यवस्था कितने सोपानो को पार करते हुए वर्तमान में जिस स्थिति में आज दिखाई दे रही है तो इसकी पृष्ठभूमि में गाँधी के आर्थिक चिंतन और भारत की अर्थव्यवस्था के संचालन के लिए अपनाई जाने वाली रीति–नीति पर किया गया मार्ग दर्शन महत्वपूर्ण रहा है। सन् 1915 में जन महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तब भारत में स्वाधीनता आंदोलन एक नई करवट ले रहा था। 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजो से होने वाली आमने–सामने की लड़ाई मेज–कुर्सी पर आ गई थी। 1889 में ए.ओ. ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना कर दी थी जो आगे चलकर स्वाधीनता की लड़ाई में भारतीयों की प्रतिनिधि संस्था बन गई थी। तोब और तलवारो की जगह बैठकों और वार्ताओं ने ली थी और यदि कहा जाए कि भारत की आजादी का आंदोलन एक आक्रमण काल से गुजर रहा था तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। कांग्रेस में विचारधारा का संघर्ष शुरू हो चुका था। गरम दल और नरम दल की वैचारिक मत भिन्नता और भारतीय नेत्रित्व की आपसी खींच तमका फायदा उठाना अंग्रेजों ने शुरू कर दिया था। महात्मा गाँधी ने भारत लौटने के बाद पूरे देश की स्थिति का विशेष अध्य्यन किया और अपने सत्य और अहिंसा के साथ आंदोलन संभाला।

**मुख्य शब्द :-** महात्मा गाँधी, आंदोलन, भारतीय, अर्थव्यवस्था।

**भूमिका :-**

महात्मा गाँधी ने भारत लौटने के बाद पूरे देश की स्थिति का विशद अध्यन किया और अपने सत्य और अहिंसा के व्रत के साथ अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के संकल्प के साथ आंदोलन का नेतृत्व संभाला। यह वह दौर था जब भारत का प्रत्येक नागरिक अपने –अपने तरीके से देश को स्वतंत्रता दिलाने के प्रयासों में जुटा हुआ था। क्रांतिकारियों के अपने तरीके थे और बुद्धिजीवियों के अपने। लेकिन सभी का लक्ष्य एक ही था अंग्रेजो से भारत की आजादी। तत्कालीन समय में चल रहे अन्य प्रयासों के साथ में एक वर्ग ऐसा भी था जो भारत की स्वतंत्रता के बाद देश के संचालन और नियोजन से संबंधित चिंतन में लगा था। इसी कड़ी में अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में रूचि रखने वाले लोगों के द्वारा स्वाधीन भारत में किस प्रकार अर्थ नीति का प्रयोग किया जाए।

इस पर चर्चा भी प्रारंभ कर दी गई थी। एक वर्ग देश को औधोगिकरण की राह पर ले जाने का पक्षधर था तो दूसरा वर्ग इसके विरोध में था। महात्मा गाँधी अच्छी तरह जानते थे कि भारत की 70 प्रतिशत आबादी गांवों में बसती है। भारत के इन लाखो गांवो में निवास करने वाली जनता का जीवन कृषि पर आधारित है। इसलिए भारत की अर्थव्यवस्था के बारे में विचार करते समय कृषि को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। एक महत्वपूर्ण यह भी था कि भारत में ग्रामीण संस्कृति और प्राचीन काल से चली आ रही थी। भारतीय गांव अपने आप में स्वतंत्र–स्वायत और आत्मनिर्भर की स्थिति में रहते थे। लेकिन लगभग 800 वर्ष की पराधीनता ने उसकी स्वायत्ता और आत्म–निर्भर की स्थिति में रहते थे। महात्मा गाँधी ने चरखे को अपना हथियार बनाया और विदेशी कपड़े का बहिष्कार करते हुए। खादी के प्रयोग को स्वंय अपनाया और अन्य सहयोगियों को भी प्रेरित किया।

कालांतर में हमने देखा कि चरखा न केवल स्वदेशी अर्थव्यवस्था का मार्गदर्शी केंद्र बना बल्कि भारत के स्वाधीनता आंदोलन का एक प्रतीक चिन्ह ही बन गया। पह ले चरखा उसके बाद कपास की फूनी, उस कपास की फूनी से सूत कातना और सूत से कपड़ा बनने लगा। हर हाथ को रोजगार, हर व्यक्ति का श्रम, उत्पादन में धीरे– धीरे होने वाली वृद्धि और विदेशी कपड़ों पर निर्भरता का कम होना यह सारे संकेत थे जो यह बता रहे थे कि स्वदेशी का मंत्र हर भारतीय के मन में स्वावलम्बी बने, स्वस्थ बने।

स्वामी विवेकानंद का जैसा विचार था कि पिछड़े, निर्धन और अशिक्षित लोगों को रोजगार के अधिक अवसर मिले तो इस क्रम में महात्मा गाँधी ने भारत की अर्थव्यवस्था के लिए लघु और कुटीर उधोगों को अधिक महत्व देने का विचार रखा। महात्मा गाँधी बड़े उधोगों के मशीनीकरण के खिलाफ थे और बड़े पैमाने पर किया जाने वाले औधोगिकरण का उन्होंने पुरजोर विरोध भी किया। उनका मत था कि जितनी मशीने बनेगी उतनी बेरोजगारी बढ़ेगी जो भारत की अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में किसी भी दृष्टिकोण से सही नहीं होगी। महात्मा गाँधी ने कहा था कि भारतीय समाज का विकास नैतिक मूल्यों पर आधारित होकर समता मूलक होना चाहिए। जिसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो। हर भारतीय के हाथ में काम हो और उसका श्रम राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान का माध्यम बने तो श्रेष्ठ होगा उसके श्रम का लाभ उसे मिले और वह चहुंमुखी प्रगति करे। स्वतंत्रता के बाद अंग्रेजो द्वारा प्रदान की गई शासन व्यवस्था ही भारत में चली रहे जिसके दुष्परिणाम देश ने महसूस किए। जिसकी प्रसिद्ध एवं प्रचलित अर्थव्यवस्था की धारणाओं में पूंजीवाद को नहीं अपनाया।

**शोध अध्ययन के उद्देश्य :–**

1. भारत में कपास की खेती को मजबूत बनाना।
2. भारत में बागवानी फसलों का क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता की स्थिति का अध्ययन करना।
3. कृषि विकास के क्षेत्र में गाँधी विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता का अध्ययन करना।
4. कृषि विकास की संभावनाओं की स्थिति तथा बाधक तत्वों का अध्ययन नीति–निर्माण हेतु सुधार प्रस्तुत करना।

**शोध प्रविधि :–**

यह शोध वर्णात्मक शोध संरचना पर आधारित हैं। जिसमें हमारे द्वारा भारत में कृषि तथा बागवानी उत्पादन की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। जिसमें द्वितीयक समकोण पर आधारित है। इन समंको का संकलन हमारे द्वारा कृषित था बागवानी सांख्यिकी एक नंबर प्रतिवेदन से लिया गया है। उसके बाद प्राप्त

समंको का विश्लेषण हेतु सांख्यिकी वृद्धि दूर औसत पुर्वानुमान के साथ सारणीयन तथा वर्गीकरण और आलेख का उपयोग किया गया है।

**अध्ययन की सीमाएं :-**

प्रस्तुत शोध अध्ययन द्वितीयक स्रोत पर आधारित है। गाँधी जी के स्वयं उपस्थित न होने के कारण यह शोध कार्य विद्वानों के लेखों, पुस्तकों, पत्रिकाओं पर आधारित है।

**वर्तमान समय में गाँधी जी के आर्थिक विचारों का मूलाधार :-**

भारत में गाँधी जी के आर्थिक विचारों का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल में आपसी झगड़ों का फैसला पंचायत ही करती थी। परंतु अंग्रेजी राज के जमाने में पंचायती राज समाप्त हो गई। सभी कार्य सरकार करने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्यों की सरकार ने पंचायत की स्थापना की और विशेष ध्यान भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार ग्रामीण अर्थव्यवस्था है। यदि देश की ग्रामीण व्यवस्था गड़बड़ा जाती है या विकास नहीं कर पाती है। इसका सारे देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ब्रिटिश शासन के बाद ग्रामीण नियोजको का ध्यान ग्रामीण विकास की और आर्थिक एवं सामाजिक पुनर्निर्माण को समझा और उन के एक व्यापक और जनसामान्य आंदोलन के रूप में योजना बनाई। हमारा देश विशाल गांव का पुंज है। यदि देश का संतुलित विकास करना है तो प्रभावी ग्रामीण विकास अहम् एवं आधारभूत की आवश्यकता है। ग्रामीण विकास से हमारा तात्पर्य मूल रूप से तीन प्रमुख पक्षों से होता है। लेकिन गरीबी को दूर करके रोजगार के अवसरों को बढ़ाया जाए। दूसरे गांव में शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, बिजली, आवास जैसी मूलभूत सुविधाओं को विकसित करना। तीसरा  देश की शासन व्यवस्था में ग्रामीण की भागीदारी सुनिश्चित करना एवं जागरूकता का संचार करना। इस प्रकार से गांव में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृति कवि का ससंभव हो सकता है।

गाँधी जी ग्रामीण व्यवस्था के प्रति उदार नीति की स्थापना की ओर विशेष आग्रह करते थे। उनकी रामराज्य की कल्पना गाँवो में ही निहित थी। आधुनिक भारत की मूल कल्पना में जो उदार नीति, मानवीय कल्पना के पक्षधर थे। गाँधी उदारता के प्रतीक थे। उनके मानवीय मूल्यों को अधिक प्रमुखता से प्रकट करने का मार्ग प्रशस्त करती है। नगरीय व्यवस्था में आधुनिकता पश्चिमीकरण की पक्षधर दिखाई देती है। आजाद भारत में जब वैचारिक क्रांति का अलख जगाने की आवश्यकता है। ग्राम पंचायतों को अनिवार्य तथा स्वविवेक को दोनों प्रकार के कार्य सरकार द्वारा किये जाते है। वर्तमान समय में सरकार ने ग्रामीण विकास के न्यूनतम आवश्यकता के कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण संपर्क मार्ग, ग्रामीण जलपूर्ति, ग्रामीण आवास, ग्रामीण स्वच्छता, ग्रामीण गरीबी एवं बेरोजगारी, खादय सुरक्षा, ग्रामीण विधुतीकरण, प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य आदि जो पंचायती राज के कार्य काल में जो ग्रामीण आर्थिक विकास होता है।

हमारा विशाल देश गाँव का पुनः महात्मा गाँधी की ग्राम स्वराज्य की यह सोच आदर्श ग्राम पंचायत की अवधारणा प्रस्तुत करती है। वे ग्राम पंचायतो को स्थानीय स्वशासन की आत्मनिर्भर ईकाइयां बनाना चाहते थे। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विक्रेन्द्रीकरण पर आधारित एक व्यवस्था का चित्रण उन्हीं के शब्दों में, भारत में सात लाख गाँव है। प्रत्येक गाँव को निवासियों का। इच्छा के अनुसार संगठित किया जाएगा। इस संबंध में उन्होंने कहा है– पंचायती राज का अर्थ है छोटे से छोटे हिंदुस्तानी बड़े से बड़े हिंदुस्तानी के बराबर ही हिंदुस्तान का स्वामी है। तत्काल इस आदर्श विकेन्द्री कृत व्यवस्था का चित्रण है। तत्काल इस आदर्श विकेन्द्रीकृत व्यवस्था

के लक्ष्य को तो प्राप्त नहीं किया जा सकता। तथापि संविधान निर्मात्री सभा ने इस पर विचार अवश्य किया। गाँधी जी का आर्थिक विकास दर्शन ग्राम केंद्रित था। सादगी गाँधी जी के जीवन का मूल है। महात्मा गाँधी ने जैसे – जैसे सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। जैसे–जैसे अपरिग्रह को अपने जीवन में अपनाना शुरू किया। उनके साधारण मानव से महात्मा बनने के पीछे उनका अपरिग्रही व्यक्तित्व ही कारण रहा है। उनके साधारण मानव से महात्मा बनने के पीछे विविध धर्मों का अध्ययन किया। थियोसिफिकल सोसायटी से जुड़कर उन्होंने श्रीमदभगवत गीता का अध्ययन किया। इन प्रश्नों पर विचार करते समय सोसाइटी से जुड़कर यह अध्ययन किया। उन्हें गीता के अध्ययन के फलस्वरूप ट्रस्टी शब्द का अर्थ विशेष रूप से समझ में आया। उन्होंने गीता के अध्ययन में यह अनुभव किया है कि अपरिग्रह में समभाव का होना आवश्यक है। विचारधारा के परिवर्तन की आवश्यकता है। अपरिग्राही या सत्याग्रह निष्ठावान और अस्तित्व ही हो सकता है। यह अपरिग्रह सत्य नहीं हो सकता।

**साहित्य समीक्षा :-**

**विनोबा भावे**- (1989) ने लिखा है कि गाँधी जी के विचारों से बहुत प्रभावित थे। भारत संरचनात्मक दृष्टि से गांवों का देश है। सभी ग्रामीण समुदायों में अधिक मात्रा में जनसंख्या निर्भर है गाँधी जी के विचार बिल्कुल स्टीक है। हमारे देश की जनता और राजनीति को उनके विचारों को ताकत है। उसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्राम को सशक्त करना था। उनका मानना था कि भारत गाँव में रहता है। गाँव में कपास की खेती होती है और इसी को कातकर चरखा काम में लाया जाता है।

**माखनलाल चतुर्वेदी** (1999) –

गाँधी जी और उनका ग्राम समाज का सपना–गाँधी जी स्वावलम्बी थे। वह इस गुण को सम्पूर्ण देशवासियों में लाना चाहते थे। ग्रामीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं अपने आपको मजबूत बनाए। ग्राम ईकाई में आत्मनिर्भर रहे ताकि ग्रामवासियों को अपने किसी भी आवश्यकता के लिए अन्यत्र भटकना न पड़े। अमेरिका के राष्ट्रपति ने अपने पहले अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि न केवल अमेरिका बल्कि पूरी दुनिया को गाँधी के पद चिन्हों पर चलने की जरूरत है।

**सुनीता कौर** – वर्तमान परिस्थितियों में गाँधी जी की विचारधारा ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में खरी नजर उतरती है। पहले के समय में स्वयं ने शाही मजदूरी और अछूतो की समस्याओं के साथ अपनी रीति–नीति तय की। सन 1917 और 1918 में गाँधी जी ने खाद्य वस्तुओं की अपेक्षा नील और गैर खाद्य वस्तुओं की खेती के विरोध में चम्पारण और खेड़ा सत्याग्रह किया। इसके बाद गाँधी जी ने अपने अनुयायियों समेत देशभर के लोगों को एकत्र कर अहिंसा पर बल देते हुए असहयोग आंदोलन की शुरुआत की।

**निष्कर्ष :-**

महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व भारतीय असफल कर्म योगी का जीवांत उदाहरण है। उनकी आसक्ति देश सेवा को समर्पित थी। इसी कारण वे राजनीति में आ गए। राजनीति में उन्होंने एक आदर्श स्थापित किया। भारतीय राजनीति को स्वार्थ से विमुख सेवा के कार्यों की ओर प्रेरित किया। आज भी बहुथा राजनीति गावों के ही इर्द –गिर्द घूमती है। महात्मा का उनका उच्च आदर्श राजनेताओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। उनकी अनासक्ति और उनका अपरिग्रह भले आज हमें सहज दिखाई नहीं देता है। परन्तु गाँधी है तो भारत है। यह आज

भी कहा जाता है और भविष्यँधी की निर्मल छवि का ऋणी रहेगा। आज के भारत के नव–निर्माण में दिखाई देता है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि :–**


1. गाँधी गंगा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर।
2. सक्षिप्त आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर।
3. मध्य प्रदेश सन्देश अक्टूबर 20
4. दैनिक स्वदेश 30 जनवरी 2023
5. गाँधी महात्मा, अपरिग्रह, अखंड ज्योति पत्रिका, जून 1940
6. गाँधी मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, काशीनाथ त्रिवेदी, यूनिकोड संस्करण, संजय छजो, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन मंदिर।
7. किरयालुई अनुतीदर पुरवर्षाय, गाँधी की कहानी सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, संस्करण 2016 मुद्रित।
8. सर सर्वपल्ली राधाकृष्ण, गाँधी अधिनस्थ ग्रन्थ सस्ता साहित्य, मंडल प्रकाशन संस्करण, 2019।
9. गाँधी महात्मा, हिन्द स्वराज, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन मंदिर, संस्करण 2018 मुद्रित।
10. सुलेखा मुंगेलाल 1996 ग्रामीण भारत में समस्या एवं समाधान।



प्रीती, शोधकर्ता

पता–नई बस्ती, गुडगाँव, हरियाणा।

मोबाईल नंबर–8287296434

ईमेल– preetidevi7809@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 48-51

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# रामविलास शर्मा का आलोचनात्मक चिंतन

**सुरभि मिश्रा**
शोधार्थी (एमफिल, जे.न.यू. नई, दिल्ली)

मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार 'द्वंदात्मक भौतिकवाद' मानव सभ्यता के विभिन्न पहलुओं को, सामाजिक–आर्थिक स्वरूपों के साथ–ही–साथ, सांस्कृतिक परिदृश्यों को भी अपने दृष्टिकोण में विश्लेषित करते हैं। मार्क्स के पहले तक साहित्य और कला समीक्षकों ने सौंदर्य बोध, रचना कर्म, कला की उत्पत्ति, पल्लवन इत्यादि प्रश्नों को अपनी 'भौतिक' व 'सामाजिक पहलुओं' से च्युत करके देखा था। मार्क्स ने यह निष्कर्ष निकाला कि साहित्य या कला सामाजिक चेतना का ही एक रूप है। उनके कला एवं सौंदर्य चेतना की उत्पत्ति समाज में हो रहे परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तित होती है।

मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार जैसे 'उत्पादन संबंध' एवं' उत्पादन शक्तियां' निरंतर गतिशील होते हुए एक–दूसरे से टकराती हैं, जिनसे सामाजिक–आर्थिक संबंधो में परिवर्तन आया करते हैं– इन अंतर्विरोधों का प्रभाव कला पर भी पड़ता है।

इस धारणा ने साहित्य–कर्म को एक नई दिशा दी, मार्क्सवादी आलोचना दृष्टि भी इसी से प्रतिफलित हुई, इस दृष्टि ने साहित्य को एक गतिमान क्रिया के अंश के रूप में देखना आरम्भ किया, उसे अपने परिवेश से संपृक्त किया एवं उसके अंदर निहित अंतर्विरोधों को समझना शुरू किया।

हिन्दी में मार्क्सवादी आलोचना का उद्‌गम तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों, उपनिवेशवाद की दमनकारी सत्ता के विरुद्ध वर्ण–वर्ग में उलझे समाज की मुक्ति के लिए रचे गए साहित्य से संबंधित था। रामविलास शर्मा के संपूर्ण साहित्य में मार्क्सवादी व 'जनवादी दृष्टि' का प्राधान्य है। उनके साहित्य की यह विशेषता है कि उनकी दृष्टि समय के साथ निरन्तर परिष्कृत होती गई है। वे कथित तौर पर मार्क्सवादी चिन्तक हैं, किन्तु जड़ता से उन्हें परहेज है। विचारधारा की इस जड़ता से उनका परहेज उनके पूरे साहित्य में दिखता है। अपनी इसी मान्यता को वे प्रामाणिक करते हुए लिखते हैं–

'मनुष्य के विचार बदल जाते हैं; भाव बदल जाते हैं, लेकिन उसका इन्द्रिय बोध स्थायी होता है।"

अतः भाव व विचार से भी बढ़कर 'इन्द्रिय बोध' है। इसी इन्द्रिय बोध से मनुष्य का 'सौंदर्यबोध' निर्मित होता है। उनकी दृष्टि में :– 'प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनंदायक गुण का नाम सौंदर्य है। इस स्थापना पर यह आपत्ति की जा सकती है कि कला में कुरूप और असुंदर को भी स्थान मिलता है– साहित्य में वीभत्स का चित्रण भी होता है–उसे सुंदर कैसे कहा जाए?"

सौन्दर्य को 'वस्तुगत' मान लेने पर उसमें अनुभूति की भिन्नता आ जाती है। इस भिन्नता का कारण वर्ग,

देश, परिस्थितियाँ आदि हो सकती हैं। उन्होंने सौंदर्य को केवल व्यक्ति या विषय में नियत करने के स्थान पर दोनों की अंतर्क्रिया के रूप में देखा है। उनका दृष्टिकोण वस्तुवादी होते हुए भी एकांगी नहीं है। वे 'वस्तु' और 'रूप' की समन्वित स्थिति से ही सौन्दर्य की उत्त्पत्ति मानते हैं।

डॉ. शर्मा ने साहित्य को एक 'सामाजिक क्रिया' के रूप में देखा है। उनकी मान्यता साहित्य को मात्र सामाजिक अवयवों से ही समझने तक सीमित नहीं है। साहित्य के 'इतिहास' के माध्यम से हम एक 'जाति के अस्तित्व' के बारे में समझ सकते हैं। वे लिखते हैं :– 'अपने स्मृतियों के सहारे मनुष्य अपने व्यक्तित्व को पहचानता है और इसी तरह साहित्य के इतिहास द्वारा जाति अपने अस्तित्व को पहचानती है।'

इसी बिन्दु से डॉ0 शर्मा का चिंतन 'मार्क्स' से भी टकराता है। रामविलास शर्मा की मान्यता है, कि संस्कृति का मूलाधार 'आर्थिक व्यवस्था' के अंदर समाहित है। मार्क्स ने पूंजी या उत्पादन प्रणाली को 'आधार' तथा शेष सामाजिक पक्षों को 'अधिरचना' माना था, तथा आधार में परिवर्तन से अधिरचना की स्थिति को प्रभावित माना था। डॉ. शर्मा इस बात से पूरी तरह सहमत नहीं हैं, उनके अनुसार पुरानी अधिरचना के माध्यम से ही नई अधिरचना अस्तित्व में आती है। युगों की संचित चेतना को ग्रहण करके ही नई चेतना का विकास होता है। उनके अनुसार– ''नयी संस्कृति और नयी सामाजिक चेतना के भीतर नये साहित्यकार और लेखक का कर्त्तव्य होता है, कि वे पुरानी संस्कृति के तत्त्व और रूपों को अपने भीतर समेटकर उन्हें अधिक पुष्ट और विकसित करे।"

मूलतः 'परम्परा' के इसी प्रश्न पर मार्क्सवादी आलोचना में मतभेद रहा है। 'प्रगति', 'परम्परा' को आलोचनात्मक विवेक के माध्यम से देखना सिखाती है। यह आलोचनात्मक विवेक परम्परा की अवधारणा, परम्परा के प्रभाव को समझने में सहायक होता है। हिन्दी के प्रगतिवादी लेखक/समीक्षक के लिए सन् 36 के बाद से आंदोलन इतना हावी हुआ, कि परम्परा को सिरे से नकारना शुरू किया जाने लगा। इस प्रवृत्ति ने हिन्दी–लेखक को समस्या में डाल दिया, उसके पास उसका ऐतिहासिक सांस्कृतिक बोध उसी परम्परा से निर्मित था जिसकी बड़ी जिन्दा की जा रही थी। इस समस्या का निवारण डॉ. शर्मा ने किया है।

उन्होंने ध्यान दिलाया कि – "कोई बड़ी साहित्यिक कृति अपने समय की प्रभुत्वशाली विचारधारा को प्रतिबिम्बित मात्र नहीं करती, उससे संपर्क भी करती है।'' अतः मार्क्सवादी आलोचना का यह काम है कि वह रचना में निहित 'ऐतिहासिक संघर्ष' को रेखांकित करे।

रामविलास जी ने इतिहास और रचना के इस 'द्वंद्वात्मक संपर्क' का इस्तेमाल अपनी व्यावहारिक समीक्षा में किया है। इतिहास और रचना के इस द्वंद्वात्मक संबंध से यह पता चलता है कि, कई जगह 'तुलसीदास' नारी निंदक, वर्णा श्रम धर्म समर्थक दिखने के बावजूद महान हैं, क्योंकि उन्होंने अपने युग के सामंती यथार्थ और मानव जीवन की त्रासदी को व्यंजित किया है। उन्होंने अपने समय की प्रभुत्वशाली विचारधारा से ग्रस्त होकर नहीं उससे 'संघर्ष' करते हुए पारिवारिक, सामाजिक जीवन में आदर्श की स्थापना की है। अपनी इसी मान्यता के सापेक्ष डॉ0 शर्मा ने 'कवितावली', उत्तर काण्ड में तुलसी के सामंत विरोधी मूल्यों की खोज करते हुए उन्हें गरीबों के हित में खड़ा पाया है।

परम्परा के मूल्यांकन की ही अगली कड़ी उनकी 'नवजागरण' संबंधी मान्यता है। उनकी हिन्दी नवजागरण सम्बन्धी मान्यता अपने तरीके की एक मौलिक अवधारणा है। इसका आरम्भ उन्होंने 1857 की क्रांति में माना है। यह क्रांति भारतीय किसानों, की क्रांति थी–एवं सामाजिक बंधनों के उपनिवेशवाद विरुद्ध। – इसी

चेतना का प्रतिफलन भारतेंदु युग में आकर हुआ, वे लिखते हैं :–

'जोन व जागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरम्भ हुआ, वह भारतेंदु युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य –विरोधी, सामंत विरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में और पुष्ट हुई।'

अपनी इसी मान्यता के फलस्वरूप उन्होंने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' की समीक्षा की एवं उन्हें मातृभाषा परिष्कारक की भूमिका में न बाँधकर, उनकी प्रगतिशील चेतना की समीक्षा की। डॉ० शर्मा ने इसे नव जागरण की अगली कड़ी कहा है। नव जागरण का अगला चरण 'निराला का साहित्य' है।

उनके अनुसार निराला 'जनवादी परम्परा' के कलाकार है। निराला के साहित्य में उन्होंने सामाजिक बन्धनों, रुढियों, काव्यगत परम्पराओं, अंग्रेजी राज्य के कारण सांस्कृतिक पतन से मुक्ति दिलाने वाली चेतना के दर्शन किए। 'डॉ० शर्मा का मत है, कि नव जागरण की परम्परा को समझने हेतु भारतेंदु, द्विवेदी व निराला के साहित्य को 'एक सूत्र' में समझने की आवश्यकता है। इन तीनों कड़ियों में साम्राज्यवाद व सामन्तवाद का विरोध सूत्र रूप में कार्य कर रहा है। महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'सम्पत्ति शास्त्र' का उल्लेख डॉ० शर्मा ने किया है।

'सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरोध के अगले पुरोधा 'प्रेमचंद' है। शर्मा जी ने ग्रामीण व कृषक जीवन की दशा में जमींदारों और अंग्रेजों की मिलीभगत से, ग्रामीण अर्थ जीवन की दुर्दशा को अपने उपन्यासों में स्थान देने के लिए प्रेमचंद की प्रशंसा की है।

डॉ० शर्मा ने हिन्दी नवजागरण को बंगला नवजागरण से पृथक माना है। हिन्दी नवजागरण का सम्बन्ध अंग्रेजी राज के विरोध से तो है परंतु वह एक 'जन जागरण' के रूप से भी जुड़ा हुआ है। उनका मानना है कि हिन्दी नवजागरण सामंतवाद और साम्राज्यवाद का विरोध करके आगे बढ़ा, इसलिए इसकी एक पुरानी परम्परा है। यह भारतीय विशेषतः उत्तर भारत में जनजागरण की परम्परा है, जो 1857 की क्रांति और फिर भारतेंदु युग में प्रस्फुटित हुई। इसकी जनजागरण शुरुआत वे बोलचाल की भाषा में साहित्य के रचे जाने एवं आधुनिक जातियों के गठन से मानते हैं। वे लिखते हैं :–

'प्लासी की लड़ाई से 1857 के संग्राम तक जो युद्ध हुए उन्हें 'जनजागरण' कहना उचित होगा।'

बल्कि 'भक्तिकाल' में फैले जागरण को वे 'लोक जागरण' नाम देते हैं। इसी अवधारणा से उनकी 'हिन्दी जाति की अवधारणा' का सम्बन्ध है। वे 'जाति' का प्रयोग नेशन' के रूप में करते हैं। उनके अनुसार जैसे बंगाली, मराठी जातियाँ हैं वैसे ही हिन्दी जाति भी है, हालाँकि ऐतिहासिक, सामाजिक कारणों के प्रभाव से हिन्दी जाति की स्पष्ट अवधारणा विकसित नहीं हुई। हिन्दी जाति के भीतर के उर्दू को भी समाविष्ट कर लेते हैं।

अंग्रेजी शासन ने सम्प्रदाय व भाषा विभेदों के आधार पर, हिन्दी जाति की जातीय चेतना को खण्डित करने का प्रयास किया है, देश का विभाजन उनकी इस नीति की सफलता का परिणाम है। रामविलास जी की उपरोक्त सभी मान्यताओं में एक ओर तो उनके मार्क्सवादी जड़त्व से भिन्नता के दर्शन मिलते हैं, तो वहीं परम्परा और प्रगतिशीलता में एक निश्चित 'संतुलन स्थापित' करते दिखते है :– 'परम्परा से कटकर हम आधुनिक नहीं कहला सकते। परम्परा में इतनी ताकत होती है कि इससे नए समाज का निर्माण हो सके।"

इतिहास व रचना के 'द्वंदात्मक संघर्ष' को रेखांकित करते हुए ही, उन्होंने परम्परा से प्रगतिशीलता को चुन–चुनकर निकाला है। इस मत की कई खामियाँ भी हैं, 'मैनेजर पाण्डेय' ने आधुनिक साहित्य की उनकी मान्यता का खण्डन करते हुए कहा है :–

'रामविलास जी 12वीं सदी से जो आधुनिक काल कहते हैं, इस पद्धति से तो हिन्दी में आधुनिक काल के अलावा कोई काल ही नहीं बचता।'

ऐसे अनेक खंडन–मंडन हैं, जो रामविलास जी के आलोचना कर्म के साथ मिलते हैं। मार्क्सवादी आलोचना, हिन्दी के जातीय गौरव की स्थापना व उपनिवेशवादी प्रवृत्ति का विरोध इन तीन सूत्रों से डॉ. शर्मा का आलोचक व्यक्तित्व निखारा है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ :-**


1. परम्परा का मूल्याङ्कन –रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या – 4, 16
2. हिंदी जाति का इतिहास, रामविलास शर्मा, राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – २७, 34
3. hindisamay.com/content/177, रामविलास शर्मा का प्रति औपनिवेशिक चिंतन, रुपेश कुमार।
4. पत्रिका –प्रगति से परम्परा की और, संपादक –डॉ. विकास दवे, प्रकाशक –साहित्य अकादमी भोपाल, 2021



मो. 9818863734,

mishrasurbhi35@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha
June 2023

ISSN : 2395-7115
Page No. : 52-59

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# The Exploration of the Great Mentor Dr. Sarvepalli Radhakrishnan

**Dr. Sanjeev Tayal**

Assistant Professor, Dept. of English, Baba Mast Nath University, Rohtak

**Introduction :-**

The birth of individuals such as Sarvepalli Radhakrishnan is a noteworthy occurrence in the historical records. The individual in question was born in Tirutani, a remote village near Madras, India in 1988, into a traditional Indian family. Despite his humble beginnings, he achieved remarkable success in contemporary society. Dr. Radhakrishnan's life trajectory began as an average Indian child, working diligently to achieve personal aspirations and leaving a lasting impact in various roles throughout his life. He made notable contributions as a student, teacher, vice-chancellor, politician, ambassador, and president, while also embodying generosity and kindness in both Indian and global contexts. In addition to his prowess as a writer, he served as a prominent representative of Indian Philosophy during contemporary times.

He disseminated Indian thought and heritage to individuals residing in Europe, America, the former USSR, and other materially dominant nations of the contemporary world through a language that was readily comprehensible to them. He was a prominent educator of the human race who conveyed a message to both the oppressed masses and the privileged classes across the globe through a series of lectures, written works, and practical initiatives. These efforts continue to serve as a guiding light for individuals from all walks of life, including laypeople, educators, politicians, and philosophers, to this day. This article pays homage to a prominent individual, highlighting some of their notable contributions. The tribute is being presented on Teachers Day, which coincides with the commemoration of the 150th birth anniversary of Mahamana Madan Mohan Malaviya and Gurudev Rabindra Nath Tagore, both of whom held a special place in the heart of the individual being honoured. This paper presents an analysis of the life, vision, and actions of the individual in question, demonstrating his status as a renowned educator.

**Life of Dr. Sarvepalli Radhakrishnan :-**

The individual in question was born in Tirutani and received his primary education from 1896 to 1904 in Tirutani, Tirupati, and Vellore. The individual in question attained both his undergraduate and graduate degrees between the years 1904 and 1908 at Madras Christian College. Simultaneously, in 1906, he entered into matrimony with Shivakamomma, a spouse who exhibited unwavering dedication towards her husband. In 1909, he joined the staff of the Department of Philosophy at Madras Presidency College. Additionally, he successfully completed the Teachers Training Course in 1910 at Teachers Training College in Saidapet, Madras. By happenstance, he pursued the study of philosophy during his college years, having obtained the necessary textbooks from one of his relatives.

During the latter stages of his life, the author expressed the belief that if the world is indeed alive, then all occurrences within it are not a result of happenstance or coincidence. This statement reflects the ideology that had a significant impact on his life. Subsequently, he authored a publication entitled "The Philosophy of Rabindranath Tagore" in 1918.Subsequently, he authored a multitude of globally recognised literary works, totaling approximately 150.One of his best creations was , 'Indian Philosophy' written in two volumes. This book gave a new recognition to Indian thought and philosophy in the western world. Dr. Radhakrishanan's journey of life was such that it touched new heights year by year. The individual in question held various esteemed academic positions throughout their career. They served as a Professor of Philosophy at the University of Mysore, occupied the King George V chair of Mental and Moral Science at the Calcutta University, and held the position of Professor of Eastern Religion and Ethics at Oxford University.

Additionally, they were a Fellow of the British Academy and held the Sayaji Rao Gaekwad Chair of Indian Culture and Civilization at the Banaras Hindu University (BHU). During the period of 1931-1936, he held the position of Vice-Chancellor at Andhra University, and subsequently, from 1939-1948, he served as Vice-Chancellor at BHU. Additionally, he served as the Chairman of the University Education Commission in India.In 1953, he held the position of Chancellor at Delhi University. He delivered series of lectures at the Oxford, Harvard, Yale, Los Angeles, Michigan and Cornell Universities. Thus, his existence as a philosopher, educator, intellectual, author, speaker, and university leader was truly unparalleled.

Furthermore, he held the position of India's Ambassador to the USSR during the period of 1949-1952.From 1952 to 1962, he held the position of Vice-President of India.In 1954, he was bestowed with the prestigious Bharat Ratna award. In 1962, he assumed the presidency of India and held the position until 1967. Through out the course of several years, the individual's affection for philosophy was made apparent through the composition of traditional literary works such as essays

and books. Despite being assigned numerous political tasks, he remained consistently active. He was a Philosopher Statesman in the true sense.

Therefore, during those days Pandit Jawahar Lal Nehru wrote the following about him :

"It was India's peculiar privilege to have a great philosopher, a great educationist and a great humanist as the President. That in itself shows the kind of men we honour and respect."

Between 1967 and 1975, Dr. Radhakrishnan lived a retired life in Madras.The great soul left for heaven on April 17, 1975. He led a life as a layperson, beginning from humble beginnings. According to Banerjee (p.11), the author expressed that they have not experienced any exceptional luck that has elevated them beyond the realm in which the general population contends with the challenges of being human.and touching the highest heights in the fields of Philosophy, Writing, Oratory, Politics and Humanism. Journey of his life was continuous and uniform setting new examples and standards every time. Clad consistently in white attire, he presented himself as an authentic ambassador of India to the global society. He is a teacher for us in true sense. The individual's vision and subsequent actions can be succinctly summarised as follows.

**Vision of Dr. Sarvepalli Radhakrishnan :-**

Individuals are guided by their personal thoughts and perspectives in all aspects of life. In contrast to animals, humans possess the distinctive innate ability to exercise choice in all aspects of their existence. Certain individuals possess a greater aptitude for making judicious decisions and executing them effectively. They are known in the society and the world for longer periods of time. Dr. Radhakrishnan is a distinguished figure renowned for his intellectual acumen and visionary ideas in the global community. He is widely recognised as a trailblazer in various domains of life and his legacy is expected to endure for the foreseeable future. His thoughts in some areas of life are given below :

The individual has contemplated their perspective on life and their perception of the world.

Following an unforeseen selection of Philosophy as a field of study during his undergraduate studies, coupled with various life events, the individual's perspective on existence and the global community was articulated as follows :

"..To all appearance this is a mere accident. But when I look at the series of accidents that have shaped my life, I am persuaded that there is more in this life than meets the eye. Life is not a mere chain of physical causes and effects. Chance seems to form the surface of reality, but deep down other forces are at work. If the universe is a living one, if it is spiritually alive, nothing in it is merely accidental. The moving finger writes and having writ moves on." ( Banerjee A.K.1991, BHU, P.12)

The paragraph additionally discloses that he subscribed to the notion of the existence of a

concealed realm. The individual in question held a belief in the concept of luck and also held a strong conviction in the abilities of an exceptional pilot. He attributed his success to chance, while he did not believe that his failures were solely due to unfortunate circumstances. The individual in question held a positivist and optimistic worldview. The individual held a belief in the positive potential of the future. Hence, he wrote, 'Every child is an experiment, an adventure into nobler life and an opportunity to change the old pattern and make it new' (written in the book-The Pursuit of Truth).The individual held the belief that genuine understanding is attained through recognition of one's own lack of knowledge. However, the knowledge we are capable of receiving depends on the stage of our development.

**Religion :-**

Dr. Radhakrishnan's devotion lay in humanity. As per his statement, he expressed his inclination towards being a human. According to Banerjee (1991, p.3), he posited that religion encompasses the principles of dispensing justice, exhibiting compassion, and promoting the happiness of others. The individual further expressed that they experience distress when their genuine interpersonal connections as a human being are compromised and violated. Regarding the concept of religious truth, he espoused the belief that the origin of all knowledge pertaining to God can be traced back to God Himself. The cessation of religion constituted a fundamental understanding of the divine for him. Nonetheless, he held the belief that religion should establish itself as a rational mode of existence. The expression of religion should manifest in rational ideas, productive behaviour, and appropriate societal structures. The establishment and dignified preservation of secular foundations are imperative for fostering a sense of belongingness within the spirit. ( p. 89- 90, in The Pursuit of Truth by Dr. S. Radhakrishnan).

**Science and Philosophy :-**

The individual held the viewpoint that while science facilitates the development of our external existence, an additional field of study is required to fortify and enhance the human spirit. Despite significant advancements in knowledge and scientific innovation, contemporary society has yet to surpass previous generations in terms of ethical and spiritual development. (The Pursuit of Truth by Dr. S. Radhakrishnan, p.101).

**Society and the World :-**

The individual in question posited that the concept of economic man does not encompass the entirety of human nature. To achieve the status of a fully developed human being, it is necessary to cultivate qualities such as grace, joy, love, devotion, and a willingness to serve humanity in a selfless manner. These traits are essential for the betterment of society and the regeneration of the human race. Contemporary society has been likened to a prison, with the current crisis of civilization being

attributed to a weakening grasp on ethical and spiritual principles. The prevalence of shared myths has had a detrimental impact on the psyche of individuals. The accumulation of hazardous armaments poses a significant threat to both humanity and global stability. The current global imperative is the attainment of peace. The only outcome that can be deemed certain is the attainment of peace.

**Actions of Dr. Sarvepalli Radhakrishnan :-**

According to Banerjee (1991), Pandit Jawahar Lal Nehru expressed that the individual in question had a profound impact on the populace, as his words provided solace and his sagacity fostered greater unity among them.The following actions performed by the individual in various capacities are delineated below :

**Actions as a Teacher :-**

The individual's pedagogical endeavours commenced in 1909 and persisted beyond the attainment of formalised Teacher Training in 1910.One of his students inquired whether he had pursued education overseas. The individual responded by stating that they do not possess prior experience in the aforementioned subject matter, but they do intend to travel to the specified location in order to provide instruction.The level of his resolve was noteworthy. He exhibited a high degree of amiability towards his pupils.During his time in Mysore, he provided tutorials to students at his residence and personally greeted and bid farewell to them at the door, while also offering them tea.He would engage in the customary practise of physically grasping the hand of each individual present. Upon his departure for Calcutta University, the students bestowed upon him a distinctive farewell. The mode of transportation utilised during his departure was unconventional, as a group of students pulled his carriage instead of horses. The platform was filled with enthusiastic cries of "Radhakrishnan ki jai".

He actively participated in university organisations while attending Calcutta University. He enjoyed a high level of popularity among both the faculty and student body. The individual in question possessed a remarkable ability to articulate their thoughts and ideas with great proficiency and persuasiveness. According to a student's account, a foreign scholar delivered a lecture on Greek Philosophy in Calcutta for a duration of fifty minutes, however, the audience was unable to comprehend the content of the lecture. Dr. Radhakrishnan succinctly conveyed the essence of the topic in a mere ten minutes, resulting in a contented audience. In his capacity as Vice-Chancellor of B.H.U., he successfully resolved numerous issues and effectively safeguarded the university from the oppressive actions of the British forces. He also ensured the educational development of it. In addition to instructing his students, he also provided guidance and mentorship to his colleagues and members of the diplomatic community. As per his perspective, it is imperative for a teacher to possess a receptive and unprejudiced mindset. According to the speaker, the authentic educator facilitates the enhancement

of our understanding rather than modifying our perspective. He provides us with an improved means of accessing our own scriptures. Further according to him :

"The true teachers help us to think for ourselves in the new situations which arise. We would be unworthy disciples if we do not question and criticize them. They try to widen our knowledge and help us to see clearly. The true teacher is like Krsna in the Bhagavadgita, who advises Arjuna to think for himself and do as he chooses yatha icchasi tatha kuru." (Banerjee 1991, P.15)

The teacher's exceptional abilities lay in his capacity to reinterpret historical events and synthesise novel perspectives across various domains, including education, philosophy, politics, and religion. As he himself quoted Confucius saying that, "He who by re-animating the Old can gain knowledge of the New is fit to be a teacher".

The philosophical endeavours of the individual in question are the subject of scrutiny.

As previously stated, his decision to pursue Philosophy was a fortuitous opportunity. The individual discovered that the instructors at Christian missionary establishments undermined their religious beliefs through the act of criticising Indian philosophy. These educators did not pursue the truth in a genuine manner. Through the act of undermining the Indian tradition, they reinstated the circumstances from which all philosophy originates. Consequently, he was compelled to undertake a meticulous analysis of the Hindu faith. Consequently, he exerted significant effort in his capacity as a Philosophy instructor from 1909 to 1916.The individual in question engaged in an academic pursuit of the Indian classics pertaining to Hinduism, including The Upanisads, Bhagavadgita, and Commentaries on Brahmsutra by notable scholars such as Samkara, Ramanuja, and Madhava. In addition, he perused the canonical texts of Buddhism and Jainism. Simultaneously, he engaged with the works of Plato, Kant, and various other Western philosophers and schools of thought. Following an extensive and avid reading, coupled with a profound comprehension and assimilation of experiences that transcend rationality, he achieved great success as a globally recognised author, speaker, and evaluator.

The author in question has authored several renowned literary works, including but not limited to Indian Philosophy, Editions of Upanisads, The Bhagavadgita, The Brahma sutra, The Dhammapad, The idealist view of life, The Philosophy of Tagore, Future of Civilization, Eastern Religion and Western Thought, among others. As an orator, he captivated his listeners through his adept word selection, fluent delivery, and skillful use of eloquence. The individual exhibited a higher degree of linguistic purity in his discourse than the degree of purity observed in his immaculate white attire. His speeches delivered worldwide were unparalleled in their ability to inspire and draw listeners towards the rationality of Indian scriptures, ethical principles, religious beliefs, and spirituality. His philosophical acumen was highly regarded by the global community, positioning him as an ambassador

of Indian ideology in international territories. Consequently, the philosophical endeavours of the individual in question have proven advantageous to both the Indian populace and the global community.

Dr. Radhakrishnan's diplomatic and political endeavours included serving as an ambassador to the USSR.During that period, he established significant connections with Stalin. He was personally received and seen off by Stalin. He expressed his admiration towards Radhakrishnan in an emotional manner, stating that Radhakrishnan was the sole individual who had perceived him as a human being. He deviated from established norms during his dinner with Stalin in the USSR, as well as during his arrival as an esteemed guest at the White House in the USA. In his capacity as President, he opted to reduce his monthly remuneration from Rs. 10,000 to Rs. 2,000 on a voluntary basis.He had a significant level of involvement in the activities of UNESCO as well. During his participation in UNO, he delivered impromptu speeches. During his official visit to the United Kingdom, he visited Allen and Unwin, his publishers, in a friendly capacity due to his amiable and approachable demeanour.

**Activities and Achievements :-**

Dr. Radhakrishnan made noteworthy contributions across various disciplines.Consequently, he received widespread felicitation. He became the inaugural non-Christian recipient of the Templeton Award in recognition of his contributions to the advancement of religion. Additionally, he received the Knight of Golden Army of Angels, which is the highest honour bestowed by the Vatican upon a Head of State. During that period, Pope embarked on his inaugural voyage to India. In addition, the individual received numerous accolades both domestically and internationally, such as the Bharat Ratna and the Peace Prize of the German Book Trade. The individual in question was elected to the position of Vice-President on two separate occasions and subsequently elected to the position of President once in India.The individual in question voluntarily vacated the position of the President and articulated in his farewell speech that the guiding principle ought to be not the attainment of power by any means, but rather the provision of service at any expense.

**Conclusion :-**

The aforementioned concise overview of the life, philosophy, and deeds of Dr. Sarvepalli Radhakrishnan unequivocally demonstrates his status as an exceptional educator. He is an educator who instructs other educators. The individual in question was raised in an environment imbued with religious beliefs, wherein the existence of the intangible was considered a palpable reality. Throughout his academic pursuits, he encountered various challenges that tested his intellect and spirit. These experiences ultimately contributed to his development as a globally recognised philosopher, thinker, and expert in Eastern Philosophy, Religion, and Wisdom. This not only elevated his individual standing but also enhanced the standing of India within the international community. This fortuitous opportunity

was preordained. In the contemporary era, an Indian individual made a notable impact on European, American, Soviet, German, and United Nations intellectual spheres through the dissemination of Indian philosophy and knowledge.

The individual embodies the archetype of an ordinary citizen within Indian society, who initiated their trajectory from humble beginnings and achieved the highest echelons of social status. To this day, he continues to serve as a source of inspiration for the Indian populace as a whole, and for educators across all tiers of the education system in India, specifically. On the occasion of Teachers Day, I express my reverence towards my Teacher Educator and former professor at Banaras Hindu University. I recall his words addressed to the students of B.H.U. :

"Wherever men love reason, shun darkness, turn over towards light, praise virtue; despise meanness, hate vulgarity, kindle sheer beauty, wherever minds are sensitive, hearts generous, spirits free, there is your country. Let us adopt that loyalty to humanity instead of a sectional devotion to one part of the human race." (S. Radhakrishnan)

**References :-**


1. Banerji A.K.(1991). Dr. S. Radhakrishnan,B.H.U.,Varanasi, P. 36.
2. Radhakrishnan, S. (2009 Edition).The Pursuit of Truth, New Delhi: Hind Pocket Books, P. 148.
3. Radhakrishnan, S. (1968, 2004).Religion, Science & Culture, New Delhi: Orient Paperbacks, P. 117.



M. : 9992034887

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 60-64

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य की विषय-वस्तु

**पंचमणि कुमारी**
नेट / जे०आर०एफ

**सारांश :-**

कविता आदिकाल से ही जीवन की सहभागी रही है। हरेक समाज अपनी भाषा में अनुभव जगत द्वारा काव्य सृजन करता रहा है। कविता की अभिव्यक्ति चाहे जिस भी भाषा–शैली में हो, वह समाज को परस्पर एक सूत्र में बांधने का कार्य करता है। कविता कवि के अनुभव जगत से उत्पन्न कलात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें कवि अपनी भावनाओं को पाठक या श्रोता तक पहुँचाना चाहता है। मेरे विचार से कोई भी कवि तब तक काव्य रचना नहीं कर सकता है जब तक कि वह उस भाव जगत से प्रभावित ना हो। अर्थात प्रभावित हुए कवि द्वारा प्रभावित करने की क्रिया ही काव्य है। काव्य में बौद्धिकता के साथ–साथ हृदय पक्ष भी अत्यावश्यक है। सभी रचनाकार अपने परिवेशगत परिदृश्य में अनुभव की फसल लगाता है, ज्ञान की चक्षु से उसे पकाता है और हृदय की वसुधा से स्वंय और पूरे समाज की क्षुधा को तृप्त करता है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' का आगमन हिन्दी काव्य क्षेत्र में उस समय हुआ जब छायावाद अपनी सम्पूर्ण वैभव के साथ हिन्दी काव्य क्षेत्र में विराजमान हो चूकी थी। वह अपनी कल्पना की दुनिया में सूक्ष्म–अति सूक्ष्म नक्काशी पर कसीदे गढ़ रही थी। दिनकर का आगमन हिन्दी काव्य क्षेत्र के लिए वैभवमयी सिद्ध हुआ। राष्ट्रीय चिन्तन धारा की पतंग 'दिनकर' के सहारे मुक्त गगन में चतुर्दिक प्रज्जवलित होने लगा। दिनकर जी सामाजिक कवि हैं और उनके काव्य के केन्द्र में राष्ट्रीयता, विश्वबन्धुत्व के साथ–साथ गरीबी, भुखमरी, शोषण, गुलामी, सामन्तवाद, पूँजीवाद, उपनिवेशवाद, युद्ध और शांति का द्वन्द बराबर देखने को मिलता है।

**प्रस्तावना :-**

दिनकर जी का जन्म पराधीन भारत में हुआ था। देश में सामन्तवाद, पूँजीवाद और उपनिवेशवाद का बोलबाला था। एक ओर देश में राष्ट्रीय आन्दोलन की ज्वाला धधक रही थी तो दूसरी ओर प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति और द्वितीय विश्वयुद्ध की आशंका से सम्पूर्ण विश्व क्रन्दन कर रहा था। ऐसे में एक सजग कवि की लेखनी अपने समाज और देश की कालिमा को हर लेना चाहता था। वह कल्पना लोक में तैरने के बजाय यथार्थ की धरा पर ठोकर खाकर गिरना और संभलना चाहता था। इसीलिए छायावाद पर दिनकर जी कहते हैं :–

"तुम्हें सभ्य जीवन विश्व विजय और आकाश भ्रमण की कामना ने अपनी गोद में उठा लिया है।

विश्व वाटिका के अपरिचित फूलों का रस चूसने वाले मधुकर तुम्हें अपनी बाड़ी के फूलों का स्वाद नहीं मिला।"

दिनकर जी की पहली कविता सन् 1924 ई० में जबलपुर से प्रकाशित होने वाली पाक्षिक पत्र 'छात्र सहोदर' में छपी थी। उन्होंने 'बारदोली–विजय' के नाम से सन् 1928 ई० में 10–12 गीतों का संग्रह लिखा था जो बारदोली सत्याग्रह से प्रभावित रचना है। फिर इनके द्वारा सन् 1929 ई० में 'जयद्रथ वध' के अनुकरण पर एक छोटा सा खण्ड काव्य 'प्रण–भंग' नाम से लिखा। 'प्रण–भंग' का उल्लेख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में किया है। 'प्रण–भंग' का विषय वस्तु महाभारत के उस प्रसंग से है जहाँ कृष्ण को युद्ध में सम्मिलित करने के लिए दोनों पक्ष जाते हैं तथा वहाँ कृष्ण कौरव एवं पाण्डवों के बीच अपनी नारायणी सेना और निःशस्त्र स्वंय कोबाँटते हैं। उनके द्वारा शस्त्र न उठाने के प्रण का भंग होने की स्थिति पर ही यह पुस्तक आधारित है। ज्यादातर लोग दिनकर जी का पहला काव्य संग्रह 'रेणुका' को मानते हैं। इसमें मिट्टी की गंध तथा भारत के गांवों की सशक्त अभिव्यक्ति है। सन् 1946 ई० में प्रकाशित रचना 'कुरूक्षेत्र' एक प्रबंध कृति है। यह महाभारत के शांति–पर्व के मूल कथानक पर आधारित है। कुल सात सर्गों में विभक्त यह रचना भीष्म तथा युधिष्ठिर के वार्त्तालाप के माध्यम से युद्ध पर चिन्तन व्यक्त करता है। इस ग्रंथ के पात्र को भले ही दिनकर जी ने महाभारत से लिया हो परन्तु यह पुस्तक अपने समय की सशक्त अभिव्यक्ति है। जब द्वितीय विश्व युद्ध को झेलती हुई धरा रक्ताभ हो चली थी, प्रकृत्ति विज्ञान के विस्फोटक यंत्रों के तले दमित हो चली थी, सामान्य जन युद्ध की विभीषिका से त्रस्त था। तभी दिनकर जी लेखनी से कुरूक्षेत्र जैसा मोती उपजा।

इसमें युधिष्ठिर भीष्म से कहते हैं कि युद्ध तो शांति के लिए किया गया था परंतु मेरा मन बेचैन है। मुझे धर्मराज जैसी उपाधि काटने को दौड़ती है। मेरा मन किसी कंदरा में जाकर छुप जाने का करता है जहाँ कोई मुझे न देख सके और न सुन सके। मैं असंख्य निरीह प्राणी का हत्यारा हूँ। वस्तुतः कुरूक्षेत्र द्वितीय विश्व युद्ध की ही उपज है। इसमें हरेक पात्र युद्ध को धर्म से जोड़ कर देखते हैं तथा लाखों लोग धर्म के नाम पर जान की आहुति देते हैं। लेकिन क्या वास्तव में युद्ध का संबंध धर्म से है? युद्ध तो व्यक्ति की व्यक्तिगत इच्छाओं और वासनाओं की खोखली चादर तले स्वार्थगत भूमि की उपज है, जिसका फल तो वह स्वंय के लिए काटना चाहता है लेकिन इसमें असंख्य निरीह प्राणी कीट–पतिंगों की भांति कटते चले जाते हैं। सुख, समृद्धि और शांति के नाम पर होने वाले युद्ध कई पीढ़ी तक दुःख–विपदा और अशांति की कालिमा फैलाते जाते हैं। कुरूक्षेत्र विज्ञान की उस कसौटी पर भी ध्यानाकर्षन करती है जहाँ नित्त नवीण मानवता के विनाशक को पाला जाता है, ज्ञान के असीम भण्डार को रौंदा जाता है तथा मृत्यु की प्रचंड अग्नि प्रवाहित की जाती है।

'रश्मिरथी' दिनकर जी की महत्वपूर्ण रचना है। यह रचना कर्ण के सम्पूर्ण व्यथा को उजागर करता है। जाति के नाम पर होने वाले अमानवीय व्यवहारों पर दिनकर जी ने कटाक्ष व्यक्त किया है। वे कर्ण के माध्यम से कहते हैं कि :–

"जाति! हाय री जाति! कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोला :
जाति–जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषण्ड,
मैं क्या जानू जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।"

दिनकर जी 'रश्मिरथी' की भूमिका में कहते हैं कि "यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है। अतएव, यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्र–भारती के जागरूक कवियों का ध्यान उस चरित की ओर जाए जो

हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खड़ा रहा है। 'रश्मिरथी' में स्वयं कर्ण के मुख से निकला है :–

"मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग, किन्तु, पिता का नाम न बोल सकेंगे
जिनका निखिल विश्व में कोई कहीं न अपना होगा,
मन में लिये उमंग जिन्हें चिर–काल कलपना होगा।"

'रश्मिरथी' में समाज के उस अंधकारमय पक्ष को उजागर किया गया है जिसके सामने मानवता सिर झुकाए खड़ी है। इसमें कुंति का चरित्र समाज की उन असंख्य महिलाओं का प्रतीक है जो समाज में प्रतिष्ठा खोने के भय से अपनी आत्मा का हनन् करती हैं। वस्तुतः कुंति का पक्ष नैतिकता के दो मायने उपस्थित करता है। व्यक्तिगत तौर पर जिस बालक के जन्म को कुंति अनैतिक नहीं भी मानती हो लेकिन कर्ण के जन्म का भेद समाज से छुपाकर उसे नैतिकता के चादर से ढ़क देना चाहती है। इस ग्रंथ में कर्म की महानता पर बल दिया गया है। कोई व्यक्ति किस जाति, समाज या कुल में पैदा हुआ है यह मायने नहीं रखता है। उसका कर्म ही उसे श्रेष्ठ बनाता है। सात सर्गों में विभक्त यह पुस्तक जीवन की अनेक समस्याओं पर विचार करती है।

'उर्वशी' दिनकर जी की पौराणिक आख्यान पर लिखा हुआ आधुनिक महाकाव्यात्मक कृति है। इसके प्रकाशन से ही हिन्दी आलोचना जगत में भूचाल आ गया। प्रसिद्ध समीक्षक भगवत शरण उपाध्याय ने सर्वप्रथम इस पर आलोचना लिखी। 'उर्वशी' के केन्द्र में दिनकर जी ने काम भाव को रखा है, क्योंकि उनका मानना है कि चार पुरूषार्थों में काम एक महत्त्वपूर्ण पुरूषार्थ है। इसकी अनदेखी कर नव भारत का निर्माण सम्भव नहीं है। अर्थात इस ग्रंथ की मूल बिन्दु यह है कि मानवीय सहजात गुणों के समान ही काम भी सहज है, जो हर मनुष्य में उपस्थित रहता है। इसका दमन करने से ही मोक्ष को प्राप्त किया जाय यह ज़रूरी नहीं है क्योंकि हम बिना निवृति को धारण करके भी मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। इस पुस्तक में काम के सकारात्मक पक्ष पर बात की गई है। काम सृजन का आधार है। यदि सृजन गलत नहीं है तो काम भावना को क्यों गलत माना जाता है। उसे समाजिक स्वीकृति सहज रूप से मिलना चाहिए।

भारत का चीन द्वारा पराजित होने पर दिनकर जी बहुत व्यथित हुए तथा उस समय के समाज को जगाने हेतु 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसी कृति की रचना की। यह पाँच खण्डों में विभक्त खंडकाव्य है। इसमें लगभग अठारह कविताएं भी संग्रहित है। इस पुस्तक में भगवान परशुराम का आवाहन किया गया है तथा वह भारत के जन–जन में परशुराम जैसी शौर्यता भर देना चाहते हैं। एक तरफ वह पराजित देशवासियों में वीरता की आग प्रवाहित करते हैं तो दूसरी ओर उस आग से प्रज्जवलित लपटों में समस्त दोषियों को भस्माभूत कर देना चाहते हैं। इस युद्ध में पराजय के लिए उत्तरदायी शासकों पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं :–

"घातक है, जो देवता–सदृश्य दिखता है,
लेकिन, कमरे में गलत हुक्म लिखता है,
जिस पापी को गुण नहीं, गोत्र प्यारा है,
समझो उसी ने हमें यहाँ मारा है।"

दिनकर जी के काव्य दृष्टि के केन्द्र में एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण है जो 'रेणुका' से 'परशुराम की

प्रतीक्षा' तक सभी रचनाओं में व्याप्त है। दिनकर जी की हुंकार कविता संग्रह राष्ट्रीय भावनाओं का दस्तावेज है। इसकी भूमिका बेनीपुरी जी ने लिखी थी। इस संग्रह में 'स्वर्ग–दहन', 'हाहाकार', 'वन फूलों की ओर', दिल्ली', 'हिमालय', सिपाही' आदि अमूल्य कविताऐं संग्रहित है। 'स्वर्ग–दहन' कविता में दिनकर जी स्वर्ग को सामन्ती जीवन का प्रतीक मानकर उसका बहिष्कार करते हैं। उन्होंने 'दिल्ली' जैसी कविता में दिल्ली के तख्तोताज और आडम्बरमयी सौन्दर्यता पर व्यंग किया है। वे कहते हैं :–

"हाय! छिनी भूखों की रोटी, छिना नग्न का अर्द्ध वसन है,
मज़दूरों के कौर छीने हैं, जिन पर उनका लगा दसन है।"

उनकी 'हाहाकार' कविता पश्चिमी सभ्यता पर व्यंग करती है जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपने पैरों तले रौंदती जा रही है। स्वंय को सभ्य दिखाती है तथा भारत को जर्जर, असभ्य समझ कर उसका शोषण करती है। इसलिए दिनकर जी कहते हैं कि :–

"घूम रही सभ्यता दानवी, शांति–शांति करती भू–तल में
पूछे कोई भिगो रही वह, क्यों अपने विषदन्त गरल।"

यहाँ दिनकर औपनिवेशिक सत्ता के सभ्यतागत विमर्श पर चोट कर रहे हैं। दिनकर साहित्य जगत में अपने समय का सूर्य थे। जिस प्रकार सूर्य की आभा से कोई ओझल नहीं होता है उसी प्रकार दिनकर की दृष्टि से कोई भी उपेक्षित कैसे रह सकता था। इसलिए उन्होंने 'मास्को और दिल्ली' कविता लिखी जो मार्क्सवाद पर विचार प्रकट करती है। वह कहते हैं "राष्ट्रीयता हमारा सबसे महान धर्म है, और पराधीनता हमारी सबसे बड़ी समस्या है। जब भारत में आंदोलन चल रहा हो, करो या मरो का नारा लग रहा हो तो हमारे बुद्धिजिवियों को मार्क्सवाद की रक्षा के लिए मास्को की ओर देखने की ज़रूरत नहीं है। बल्कि जब दिल्ली स्वतंत्र हो जाएगी तभी हम मास्को के भी किसी काम आएंगे। इतना ही नहीं 'वन फूलों की ओर' कविता में कवि कहते हैं :–

"अर्धनग्न दंपति के घर में मैं झोक बन आउँगी,
लज्जित होना अतिथी सम्मुख, वे दीपक तुरंत बंझाउँगी।"

यहाँ गरीबी की पराकाष्ठा को कवि ने मर्ममांतक तरीके से व्यक्त किया है। 'हाहाकार' कविता में वह कहते हैं :–

"हटो व्योम के मेघ, पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं
दूध–दूध ओ वत्स! तुम्हारा, दूध खोजने हम जाते हैं।"

**सारांश :–**

मैथिलीशरण गुप्त के बाद रामधारी सिंह 'दिनकर' का साहित्य राष्ट्रीयता का ध्वज धारण कर उस परम्परा का निर्वहन करती है जो गुलाम भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिए देशवासियों में देशप्रेम का जज्बा प्रवाहित करती है। दिनकर जी के विषय में महादेवी वर्मा कहती हैं "वह विश्वकवि हैं, क्योंकि उनकी कविताओं में मात्र राष्ट्रीयता की वाणी और उसके स्वायत्तता का गौरवगान और संघर्ष नहीं है। वरन् प्रेम का एक व्यापक क्षितिज है जो उन्हें विश्व कवि की श्रेणी में ले आता है। वस्तुतः दिनकर जी एक ही साथ विश्वकवि, महाकवि, राष्ट्रकवि और जनकवि–सभी हैं। उनकी विभिन्न कविताओं में भिन्न–भिन्न तौर पर उनके काव्य व्यक्तित्व का वैशिष्ट प्रकट होता है।" इसलिए विश्व स्तर पर होने वाले युद्ध की विभीषिका से व्यथित होकर उन्होंने 'कुरूक्षेत्र' जैसा महाकाव्य

रच दिया तथा देश में आंतरिक अव्यवस्था के लिए जिम्मेवार लोगों पर कटाक्ष हेतु 'परशुराम की प्रतीक्षा'। दिनकर के काव्य में राग भी है, आग भी है और अध्यात्म भी। तभी एक तरफ वह कहते हैं :–

"जला अस्थियाँ बारी–बारी, चटकाई जिनमें चिंगारी
जो चढ़ गये पुण्य वेदी पर, लिये बिना गर्दन का मोल,
कलम आज उनकी जय बोल।"

और दूसरी तरफ वह कहते हैं :–

"सदियों की ठंढ़ी–बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर–नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।"

यहाँ कवि जनता को उस सिंहासन पर आरूढ़ करना चाहते हैं जो सिंहासन उनके हितों का संरक्षण न कर उन्हें हाशिये की तरफ ढ़केल कर स्वंय ऐश्वर्य का जीवन जीते हैं। कवि उन लाखों लोगों की वंदना करते हैं जो बिना किसी उम्मीद के अपनी जान देशहित में उत्सर्ग कर दिये। अंत में कवि की एक पंक्ति जो कलम की शक्ति का आवाहन करती है द्रष्टव्य है :–

"कलम देश की बड़ी शक्ति है भाव जगाने वाली, दिल की नहीं, दिमाग में भी आग लगाने वाली,
पैदा करती कलम विचारो के जलते अंगारे और प्रज्जवलित प्राण देश क्या कभी मरेगा मारे।"

इसी तरह दिनकर जी ने हिन्दी जगत को कई अमूल्य कृतियाँ प्रदान की है जो समाज, राष्ट्र तथा मानवता की धरोहर है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :–**


1. रामधारी सिंह 'दिनकर' 'रश्मिरथी' (लोक भारती पेपरबैक्स) उन्नीसवाँ संस्करण 2022।
2. रामधारी सिंह 'दिनकर' 'संस्कृति के चार अध्याय' (लोक भारती पेपरबैक्स) सातवाँ संस्करण 2022।
3. रामधारी सिंह 'दिनकर' 'हुंकार' (लोक भारती प्रकाशन) 2019।
4. रामधारी सिंह 'दिनकर' 'प्रण–भंग तथा अन्य कविताएँ' (लोक भारती पेपरबैक्स) पहला संस्करण 2019।
5. रामधारी सिंह 'दिनकर' 'कुरूक्षेत्र' www.hindisamay.com.
6. रामधारी सिंह 'दिनकर' 'परशुराम की प्रतीक्षा'।
7. रामधारी सिंह 'दिनकर' के पत्र www.hindisamay.com.
8. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान 2018।



पता :– वार्ड नं० 13, मोलदियार टोला, आनंद मार्ग स्कूल के पास, मोकामा, जिला– पटना, बिहार, पिन 803302
मोबाइल :– 7004725802, 7765825646
ई–मेल :– panch15feb@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 65-69

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# दलित चेतना की बेबाक अभिव्यक्ति

## (सुदेश कुमार तनवर का कविता संग्रह 'माटी के वारिस' के विशेष संदर्भ में)

**डॉ. भूपेंद्र निकाळजे**

हिंदी विभाग, राधाबाई काळे महिला महाविद्यालय, अहमदनगर।

सुदेश कुमार 'तनवर' साहित्य समाज का प्रतिबिंब है। समाज का संपूर्ण चित्र साहित्य में अभिव्यक्त होता है। समाज की परिस्थिति को कवि अपने शब्दों के द्वारा अभिव्यक्ति देता है। कवि अतीत को देखकर वर्तमान को सचेत करते है, समाज में एक वर्ग जो सदियों से उपेक्षित रहा है वह दलित है। दलित साहित्य एक नई चेतना के रूप में हमारे बीच है, क्योंकि वह अन्याय के खिलाप बोलता है। वह मानव अधिकारों की बात करता है, अपने हक्क को चाहता है, जीवन में जो सहा उसी को अभिव्यक्त करता हैं सदियो से चली आ रही पंरपराओं का विरोध वह करता है, नई समाज व्यवस्था की माँग दलित साहित्य का मूल उद्देश रहा है। भारतीय समाज व्यवस्था यह जाति तथा धर्म प्रधान थी, जातीयता की विषम व्यवस्था के कारण समाज में ऊँच–नीच, श्रेष्ठ–कनिष्ठ तथा स्त्री–पुरुष आदि भेद रहे है। अस्पृश्य व्यवस्था के कारण दलित वर्ग का जीवन कंलकित बन गया है। इसे दूर करने का प्रयास तथागत गौतम बुद्ध, संत कबीर, संत रविदास, महात्मा ज्योतिबा फुले, राजर्षि शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहेब आबेडकर आदि महामानवों ने सामाजिक परिवर्तन किया है।

इतिहास हमारे वर्तमान को प्रभावित करता है, और यदि हमको अपना वर्तमान बेहतर करना है तो सबसे पहले इतिहास की त्रुटियों की छान बीन करनी होगी। इसी विचार से दलित कवि अपने और पूर्वजों पर छाए गए जुल्मों की शुरुआत इतिहास और मिथकों में ढूँढ़ते है, दलित साहित्य में उभरी दलित चेतना मूलतः दलित समाज के अस्मिता बोध, संघर्ष, अन्याय, अपमान और उपेक्षा के प्रति नकार और समाज की अत्याचारी व्यवस्थाओं मे परिवर्तन का सूचक है। दलित कविता उसी वेदना से उठी टीस, अत्याचार और अपमान के विरोध में उठी बुलंद आवाज के रूप में हमारे सामने लगातार, अपनी मौजूदगी का एहसास कराती रही है। यह आवाज 'आह से उपजा गान' तो है लेकिन वह ज्यादा देर तक इसी रूप में नहीं रहता। वह आत्मविश्वास से भरपूर सशक्त दहाड़ में भी तब्दील होती सुनाई देती है। आज की दलित कविता, चाहे वह हिंदी पट्टी में रची जानेवाली हो, या फिर मराठी, पंजाबी, तमिल, मलयालम या बांग्ला में सबने अपना ओज तेजस्विता और वैचारिकता को अभिव्यक्ति दी है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से प्रेरित दलित कविता समाज में 'समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व से उपजे लोकतंत्र की बात करती है।

सुदेश कुमार 'तनवर–पहली पुस्तक' रात के इस शहर में 1991 प्रकाशित; दूसरी 'नियति नहीं यह मेरी' 1999 प्रकाशित तीसरी घर वापसी 2012 दलित कविता का विद्रोही स्वर (बारह भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हिंदी

दलित कविता) 'माटी के वारिस'–2020 में रश्मि प्रकाशन लखनऊ से प्रकाशित है। इस कविता संग्रह में 31 कविताएँ है। समाज के विविध प्रसंगों को आधार बनाकर कवि ने लिखी है। वर्तमान समाज पर भाष्य करती यह कविताएँ समाज का प्रतिबिंब दिखाती है। इस कविता संग्रह का मूल्यांकन चौथीराम यादव, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम जी ने किया है। प्रस्तूत कविता संग्रह में भारतीय धर्म और संस्कृति पर व्यंग करते है। दलित समाज एक तरफ सामाजिक धार्मिक अधिकारों के लिए लड़ रहे है, तो दूसरी और उनसे अलग अस्मिता के लिए भी संघर्षरत है। समाज के भीतर की व्यवस्था पर वह कवि कलम चलाते है, शब्दों में वह भाव अभिव्यक्त करते हैं।

''वे कौन है,
हर बार झोंक देते मुझे
अराजकता साम्प्रदायिकता
जातिवाद की आग में
बटोर ले जाते है
वाह–वाही
मेरे ही बंधु–बाधवों से
तालियाँ पिटवाकर![1]

कवि समाज को अस्थिर बनाने वाले पर व्यंग्य करते है। समय समय पर समाज को अस्थिर होता देखकर कवि कहता है, वह कौन है जरा बताओ तो? जो पड़दे के पिछे रहकर यह सब कुछ कर रहा है। समाज के भीतर अराजकता निर्माण कर रहा है। कभी जातिवाद के नाम पर साम्प्रदायिकता के नाम पर समाज के भीतर अलगाव डालने का प्रयास कर रहा है। जातिवाद कोबढ़ावा देकर समाज में फूट डालने का प्रयास हो रहा है। अलगाव करने का प्रयास हो रहा है, यह हमारे देश के लिए उचित नहीं है। समाज की परिस्थिति पर कवि आवाज उठा रहा है।

कवि समाज के भीतर जो धीरे धीरे शाब्दिक परिवर्तन से वैचारिक परिवर्तन हो रहा है, उस पर निशाना लगाते है, समाज के भीतर एक वर्ग यह समाज के भीतर शाब्दिक परिवर्तन कर रहा है। दलित शब्द जिसका दलन हुआ, कुचला हुआ ऐसा था, देश की आजादी के बाद दलित शब्द ने नयी पहचान बनायी है। अस्मिता बोधक बन गया लेकिन कुछ लोग इसे जाति से जोड़ने लगे है, इसलिए कवि समाज में इस तरह से नयी शब्दावलियों पर गठन पर प्रहार करते है।

"तुम
क्यों प्रचारित करना चाहते हो
नये नये शब्द?
गढ़ना क्यों चाहते हो
नयी–नयी शब्दावलियाँ ?
आखिर
आग्रह क्यों है तुम्हारा

आदिवासी की जगह वनवासी पर।"[2]

दलित कविता एक साहित्यिक विधा ही नहीं बल्कि एक जन आंदोलन के रूप में हमारे बीच उपस्थित है। दलित कविता में मात्र जाति–भेद या फिर हिंदू समाज की वर्ण–व्यवस्था के विरोध का ही स्वर नही बल्कि दलित समाज की दयनीय स्थिति के लिए उसकी आर्थिक स्थिति पर भी इशारा करती है। वह पूँजीवाद का भी विरोध करती है। निजीकरण वस्तुतः एल. पी. जी. यानी लिबर लाइजेशन, प्राइवेटाइजेशन और ग्लोबलाइजेशन के कारण समाज की व्यवस्था पर परिवर्तन हो रहा है। इन सबमें दलित समाज फिर से हाशियों के बाहर रखने का प्रयास रहा है।

"निजीकरण में
तुम ही, छोटी बड़ी
सारी कंपनियों के मालिक रहोगे
चौकीदारी भी जहाँ लाइन में खडे कर
दी जाएगी
जात पुछकर।"[3]

कवि समाज में हो रहे बदलाव को देखकर आवाज उठाते है। समाज के भीतर निजीकरण के बाद दलितों के जीवन पर कवि ने चिंता जतायी है। प्रसिद्ध लेखिका डॉ. विमल थोरात ने लिखा है "दलित कविता, दलित जीवन के यथार्थ की कविता है। उसने दलित जीवन के हर क्षण, हर पीडा, हर एक वेदना और क्रांति गर्भ संवेदना को साकार किया है। दलित कवि के सामने भावावेश में बहने के अनेक अवसर थे, क्योंकि उन्होने जीवन की बड़ी घिनौनी तस्वीर देखी है। परन्तु उसकी कविता जीवन वस्तुगत यथार्थ को मूलाधार मानती है।'[4] दलित कविता अपने यथार्थ को व्यक्त करती है, अपने दर्द से जुड़े दस्तावेंजो को स्वयं समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहती है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने दलितों को अपने अधिकारों से दूरकर के गरीबी में ही जीने को बाध्य किया है। कवि ने प्रस्तूत कविता संग्रह में समाज व्यवस्था पर व्यंग्य किया है।

"उनकी
ढलती उम्र में भी दमकती लाली
मेरा
जवानी की दहलीज पर भी
बुढीया या शरीर।''[5]

कवि समाज व्यवस्था में दलित जीवन को व्यक्त कर रहे है। दलित वर्ग के अंतर्गत भूख महत्वपूर्ण है, पेट भरने के लिए चाहे जो भी काम हो वह करते है घर में खाने वाले चार और कमाने वाला एक ऐसी स्थिति यह बन गयी है सबको खिलाते–खिलाते घर में बड़ा सदस्य भूखा सो जाता है। पेट की आग कुछ खाकर पानी पी कर बुझायी जाती है। परिणाम कुपोषण के कारण जवानी की दहलीज पर बुढ़ापन यह आ गया है। इसलिए जो समाज का एक धनी वर्ग समय पर भोजन और सब सुख सुविधा के कारण चेहरे पर दमकती लाली दिखाई दे रही है। तो दुसरी और दलित समाज की अवस्था का चित्रण है, कम उम्र में जिम्मेदारी और काम करते करते सारा जीवन कष्ट के कारण जीर्ण हो गया है।

दलित समाज सदियों से अन्याय को चुपचाप सहता आ रहा है परिस्थिती के कारण वह मजबूर था, रूढी परंपराओं तथा समाज की कुछ मान्यताओं ने दलित समाज को जीवन में कष्ट, पिड़ा अपमान को सहकर वे जीवन जी रहे है। यह मनुष्य होकर भी पशु समान अपना जीवन जी रहे है। इन सब यातनाओं को सहकर अब वह इससे मुक्ति की चाह उसके मन के भीतर है। आज दलितों में चेतना आ चुकी है। अब वे अपने हक को समझते है, और अपने ऊपर होनेवाले शोषण का प्रतिरोध करते है।

"मेरी लड़ाई
किसी और से नहीं
उस, पहले आक्रांता से है
जिसने छल से तोड़ी ही नहीं, मेरी गर्दन।"[6]

दलित समाज डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर के विचारों से प्रभावित है। परिणाम उनमें शिक्षा के प्रति रूझान आ गया है और धीरे–धीरे समाज के भीतर संघटन आ गया है। संघर्ष से अपने हक को प्राप्त करना आज दलित वर्ग कर रहा है। मानवतावाद दलित साहित्य के मूल में है, मनुष्य को मनुष्य के जैसा व्यवहार यह होना आवश्यक हैं, वह पशु नहीं है उसे पशु जैसे रखा गया था, अब वह उससे मुक्ति चाहता है।

समाज व्यवस्था में नारी भी चुपचाप सहकर अपना जीवन जीती है। समाज व्यवस्था में पितृसत्ताक कुटुंब व्यवस्था होने के कारण नारी; को समाज में दुय्यम स्थान है, वह सिर्फ सहती आ रही है, व्यवस्था ने उसे पढ़ने पर भी रोक लगाई थी, लेकिन सावित्री बाई फुले के कारण नारी शिक्षित बन गयी है, लेकिन सदियों से भारतीय समाज व्यवस्था में नारी सब कुछ सहते आ रही है। उसे शिक्षा से वंचित किया, सती प्रथा ने उसे समाप्त किया। ऐसे अनेक रुढ़ि परंपरा के कारण नारी को उपेक्षित रखा गया है। लेकिन नारी ने आवाज नहीं उठाई।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने स्त्री शिक्षा पर ही बल दिया है बल्कि उनके स्वास्थ्य के प्रति गंभीर थे, 28 जुलाई 1928 में मुंबई विधान परिषद में फैक्ट्री तथा अन्य संस्थाओं में कार्यरत महिलाओं की प्रसूति अवकाश की सुविधा देने संबंधी बिल पर अपने विचार रखते हुए उन्होने कहा था, 'महिलाओं को प्रसूति अवकाश सुविधा प्रदान करना राष्ट्रीय हित में एक महत्वपूर्ण कदम है।' उनका मानना था, कि–सामाजिक क्रांति में नारी वर्ग को पुरुष वर्ग की सहयोगी बनना होगा।[7]"

"शर्म से पानी–पानी हो जाता हूँ
उनकी चुप्पी देखकर।
इसे, उनकी सहनशीलता कहूँ
अंधश्रद्धा
या फिर
मानसिक गुलामी की
पराकाष्ठा?"[8]

'दलित साहित्य में जहाँ सामाजिक दर्द है जातिवाद की पीड़ा है। शोषण तथा उत्पीड़न की कसक है वही जाति उत्पीड़न तथा शोषण के कारणों की तलाश भी है। इसमें भाग्यवाद को अस्वीकार करने की भावना भी है। दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो सभी तरह की वर्ण व्यवस्था जाति–पाँति, ऊँच–नीच भेदभाव के

दायरे से ऊपर है। जिसे धर्म, भाषा, और प्रदेश की सीमाओं में नही बांधा जा सकता है।[9]'

प्रस्तुत कविताओं के द्वारा समाज व्यवस्था का चित्र हमारे सामने उभारा है। समाज का एक वर्ग परंपरागत व्यवसाय करते हुए वह उसी में ही समाप्त होता है, वह दूसरा व्यवसाय नहीं कर सकता था। प्राचीन परंपराए यह समाज में विषमता को दर्शाती है।

"अगर होते
खुशी–खुशी
जानवरों की खाल उतारते
चमड़ा रंगते, जुता बनाते
नालियाँ साफ करते
सड़क पर झाडू लगाते
मिट्टी या फिर, धातु के बर्तन बनाते
कपड़ा बुनते या फिर उन्हें सिलाते।"[10]

''जाति का विनाश" नामक अपने निंबंध में डॉ. अंबेडकर जी ने लिखा है– 'यदि आप जाति (आधारित समाज) नहीं चाहते तो अपका आदर्श समाज क्या है – यह सवाल अनिवार्य रूप से पूछा जाएगा।

यदि आप मुझसे पूछें तो मैं कहूँगा कि मेरा आदर्श ऐसा समाज जो, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता पर आधारीत है।[11]'

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि, दलित शोषण समाप्त नहीं हुआ है। आज भी लोग एक–दूसरे को जाति के नाम से ही पहचानते है। जाति से ही लोग ऊंच–नीचता का सम्मान देते है। प्रस्तुत कविता संग्रह की अधिकांश कविताओं में दलितो की पीड़ा व्यथा, व्याकुलता, अन्याय, समस्याएँ, जातिगत भेदभाव आदि का चित्रण है। कवि वर्गभेद–वर्णभेद रहित मानवातावादी समाज की कल्पना करते हैं। प्रस्तुत संग्रह की कविता की भाषा सरल व सटीक है। कविता का भावार्थ पाठक सरलता से समझ सकते है। प्रस्तुत कविताओं में कवि ने सामाजिक यातनाओं और पीड़ा का मार्मिक वर्णन किया है।

**संदर्भ :–**


1. माटी के वारिस– सुदेश कुमार तनवर – पृष्ठ सं. 38
2. वही – पृष्ठ सं 41
3. वही – पृष्ठ सं. 45
4. रमणिका गुप्ता दलित चेतना साहित्य – पृष्ठ सं. 75
5. माटी के वारिस– सुदेश कुमार तनवर – पृष्ठ स. 50
6. वहीं – पृष्ठ सं. 82
7. डॉ. अम्बेडकर के विचार – पृष्ठ सं. 12
8. माटी के वारिस – सुदेश कुमार तनवर – पृष्ठ सं. 89
9. डॉ. माता प्रसाद हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा – पृष्ठ सं. 154
10. माटी के वारिस– सुदेश कुमार तनवर –पृष्ठ सं. 96
11. कलेक्टेड वर्क्स– वाल्यूम–1 डॉ. बी. आर. अम्बेडकर संपादक वसंत मून – पृष्ठ सं. 57

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 70-74

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# वाल्मीकि–रामायण में नारी की स्थिति

**डॉ. रंजना गुप्ता**

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हरियाणा संस्कृत विद्यापीठ, बघोला, पलवल।

मानव–संसार का आधा भाग, दुनिया से अपना आधा भाग प्राप्त करने के लिए दीर्घकाल से संघर्षशील रहा है, चाहे वह प्राचीन काल हो, चाहे मध्यकाल, चाहे आधुनिक काल। हां, सभ्यता और संस्कृति के प्राचीनतम काल– वैदिक युग में नारी की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर रही होगी, क्योंकि तब तक अधिकार और ऊंच–नीच की लड़ाई शुरू नहीं हुई थी। उस युग के साहित्य में मानव की सरल जीवन शैली के प्रमाण मिलते हैं। 'उस समय अब के समान राजनीतिक अत्याचार कुछ न था। सिधाई, भोलापन और उदार भाव उनके साहित्य के एक–एक अक्षर से टपक रहा है।'[1] जैसे–जैसे भौतिक सभ्यता का विकास होता गया, वैसे–वैसे समाज और संपत्ति पर पुरुषों का आधिपत्य बढ़ता गया और धीरे–धीरे नारी भी पुरुष की संपत्ति मानी जाने लगी। परंतु, आधुनिक युग में नारी ने पुरुष की संपत्ति बनने से इंकार कर दिया है। आज नारी अपनी अस्मिता की प्रतिष्ठा के लिए संघर्षरत है। 'बहुत काल से स्त्री की स्थिति, समाज का विकास नापने के लिए मापदंड रही है।'[2]

साहित्य समाज का दर्पण है। भले ही साहित्य में बिंब–प्रतिबिंब वाली उक्ति चरितार्थ न होती हो, तथापि जैसा समाज, वैसा साहित्य हमेशा से ही होता आया है। इसीलिए साहित्य में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का भी इतिहास मिल जाता है।

राम–काव्य परंपरा का प्राचीनतम् ग्रंथ 'रामायण' महाकाव्य, जिसकी रचना संस्कृत भाषा में, महाकवि वाल्मीकि ने की थी। कालांतर में उसी के आधार पर भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' महाकाव्य की रचना हिंदी में की, जो कि आधुनिक युग में सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ और जनसामान्य उसे ही 'रामायण' कहने लगे; जबकि 'रामायण' (जिसके रचयिता महाकवि वाल्मीकि है) और 'रामचरितमानस' के रचना–काल में बहुत लंबा अंतराल है। संभवतः इसीलिए दोनों महाकाव्यों में एक ही राम–कथा होने के बावजूद, सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ के चित्रण में अंतर दिखाई देता है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पहला सुदीर्घ आख्यान वाल्मीकि–रामायण में ही मिलता है। रामायण–युग आदर्श सभ्यता और संस्कृति का युग माना जाता है। वाल्मीकि–रामायण से ही हम उस युग का इतिहास जान सकते हैं, क्योंकि उस युग का इतिहास अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। रामायण में समाज की यथार्थ झांकी मिलती है। कहीं–कहीं सामाजिक विसंगतियों–अंतर्विरोधों का भी दर्शन होता है, जोकि किसी भी युग की स्वाभाविक सच्चाई है। मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है कि वह हमेशा, सभी के लिए के लिए प्रीति कर व्यवहार नहीं कर सकता है। कभी–कभी एक का हित दूसरे का अहित बन जाता है अथवा एक व्यक्ति का सुख दूसरे के लिए दुःख का कारण

बन जाता है।

वाल्मीकि–रामायण में उस युग की नारी की स्थिति स्पष्टतः सामने उभरकर आती है। पुरुषों द्वारा बहुविवाह की प्रथा थी अवश्य, किंतु एक पत्नी का आदर्श भी विद्यमान था। यह आदर्श समाज में पुरुष वर्ग के द्वारा स्त्री के सम्मान और अधिकार की रक्षा का प्रतीक है। राम–लक्ष्मण आदि चारों भाईयों के द्वारा यह आदर्श स्थापित किया गया था।

जब राजा दशरथ ने पुत्र प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ प्रारंभ किया, तब कौसल्या ने तीन तलवारों से अश्व का स्पर्श किया। यज्ञ जैसे महान कार्य का प्रारंभ घर की बड़ी स्त्री के हाथ से होता था। रानी कैकेयी युद्ध–कला व रथ संचालन में भी प्रवीण थी। वह देवासुर संग्राम में अपने पति राजा दशरथ की सारथी बन कर गई थी और उनके प्राणों की रक्षा की थी। रामायण–युग में पति की अनुपस्थिति में पत्नी को शासन करने का भी अधिकार था। परमज्ञानी–धर्मज्ञ गुरु वशिष्ठ राम–वन–गमन प्रसंग में राम के साथ सीता को जाते देखकर, उसे रोकते हुए कैकेयी से कहते हैं :–

'नगंतव्यंवनं देव्या सीतया शील वर्जिते।
अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्।।
आत्माहिदाराः सर्वेषांदार संग्रह वर्तिनाम्।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम्।।'[3]

(अर्थात् 'हे शील का परित्याग करने वाली कैकेयी! देवी सीता वन नहीं जाएंगी। राम के लिए प्रस्तुत सिंहासन पर वही बैठेंगी। संपूर्ण गृहस्थों की पत्नियां उनका आधा अंग होती हैं। इस तरह सीता देवी भी राम की आत्मा है। वे उनके स्थान पर राज्य का पालन करेंगी।') यह बात अलग है कि सीता नहीं मानीं। उनके लिए अपने पति का साथ, राज–सिंहासन से बढ़कर था।

उस युग में पर्दा प्रथा नहीं थी। रावण के द्वारा प्रथम दर्शन में सीता के शारीरिक सौंदर्य का प्रशंसात्मक वर्णन यह सिद्ध करता है कि उस युग में ओढ़नी का प्रयोग नहीं होता था। तभी तो रावण, सीता के वक्ष, नितंब, कटि, जंघाओं आदि की सुडौलता और सुंदरता की भूरि–भूरि प्रशंसा करता है :–

''विशालंजघनंपीनमूरूकरिकरोपमौ।
एतावपुचितौवृत्तौसंहतौसंप्रगल्भितौ।।
पीनोन्नतमुखौकांतौस्निग्धतालफलोपमौ।
मणिप्रवेकाभरणौरुचिरौतेपयोधरौ।।
चारुस्मितेचारुदतिचारुनेत्रेविलासिनी।
मनोहरसिमेरामेनदीकूलमिवाम्भसा।।
करांतमितमध्यासिसुकेशेसंहतस्तनि।
नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचकिन्नरी।।'[4]

आश्चर्य की बात तो यह है, कि साधु वेश में आए, रावण के द्वारा इस प्रकार अपनी प्रशंसा सुनकर भी, सीता को रोष नहीं होता। ऐसा लगता है कि यह सब सामान्य बातें हैं, जो कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से कह सकता है। क्योंकि, इसके बाद भी सीता, सम्मान के साथ (ब्राह्मण वेश में आए) रावण को बैठाती हैं, अपना

परिचय देती हैं, और फल–मूल का भोजन देती हैं। जब रावण उन्हें अपना वास्तविक परिचय देकर, उन्हें अपनी पटरानी बनाने का प्रस्ताव रखता है, तब सीता को क्रोध आता है। कहने का तात्पर्य यह है, कि पाश्चात्य देशों की तरह उस युग में भारत में भी पर्दा बिल्कुल नहीं था।

अपहरण–बलात्कार जैसी भयानक दुर्घटनाएं नारी के साथ प्रत्येक युग में होती रही हैं। यह बात अलग है कि राम ने ऐसे अत्याचारियों को ढूंढ–ढूंढकर मारा था और अपने राज्य में सदाचार की स्थापना की थी। किंतु, उन्हीं राम के व्यक्तिगत जीवन में कुछ अंतर्विरोध दिखाई देता है। जिस सीता से वे इतना प्रेम करते थे कि उन्होंने कभी दूसरा विवाह नहीं किया, किसी अन्य स्त्री की ओर देखना भी अनुचित समझा, जिसके वियोग में आठ–आठ आंसू रोए थे। और जो सीता उनके प्रति अपने अनन्य प्रेम के कारण महलों का सुख छोड़कर कष्टों से भरे वन में वास करने चली आई थी, और सदा उनका ही मुख देखकर कमलिनी की तरह खिली रहती थी, वही सीता जब रावण के घर से वापिस आती है, तो वह उसे स्वीकार करने से इंकार कर देते हैं। वह कहते हैं :–

'हे सीता, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैंने जो युद्ध का परिश्रम उठाया है तथा इन मित्रों के पराक्रम से जो विजय पाई है, यह सब तुम्हें पाने के लिए नहीं किया गया। सदाचार की रक्षा एवं सब ओर फैले अपवाद तथा अपने सुविख्यात वंश पर लगे कलंक का परिमार्जन करने के लिए ही यह सब मैंने किया है। तुम्हारे चरित्र में संदेह का अवसर उपस्थित है, फिर भी तुम मेरे सामने खड़ी हो। जैसे आंख के रोगी को तेज प्रकाश कष्ट देता है, उसी प्रकार आज तुम मुझे अप्रिय जान पड़ती हो। इसलिए तुम्हारी जहां इच्छा हो चली जाओ।'[5]

राम के ऐसे कठोर वचन सुनकर सीता अतिशय ग्लानि से भरकर रोती हुई अपने चरित्र के विषय में सफाई देती हैं, किंतु तब भी राम के द्रवित न होने पर वह लक्ष्मण से अपनी चिता तैयार करवाती है और उस जलती हुई चिता में प्रवेश करते हुए प्रार्थना करती है :–

''यथा मे हृदयं नित्यंनापसर्पतिराघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मांसर्वतः पातुपावकः।।
यथा मांशुद्ध चारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
तथा लोकस्य साक्षी मांसर्वतः पातुपावकः।।''[6]

('यदि मेरा हृदय कभी एक क्षण के लिए भी राघव से दूर न हुआ हो तो संपूर्ण जगत के लिए साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें। मेरा चरित्र शुद्ध है, फिर भी रघुनाथ मुझे दूषित समझ रहे हैं। यदि मैं सर्वथा निष्कलंक होऊं तो जगत के साक्षी अग्नि देव मेरी सब ओर से रक्षा करें।')

यहां एक परित्यक्त नारी की व्यथा, जीवन नाश की ओर प्रवृत्ति, साथ ही उसकी जिजीविषा मुखर हुई है। जब अग्निदेव प्रकट होकर सीता की रक्षा करते हैं, और राम को उनकी शुद्धता का प्रमाण देते हैं, तब राम यह कहते हुए कि मैं तो परीक्षा ले रहा था, उन्हें स्वीकार कर लेते हैं। किंतु जगविदित है कि अयोध्या जाकर उन्होंने लोकापवाद के भय से पुनः सीता का परित्याग कर दिया था।

वाल्मीकि–रामायण में रावण की मृत्यु के पश्चात्; विभीषण की पत्नी, सीता को भली–भांति तैयार कर, नए वस्त्र और आभूषण पहनाकर, पालकी में बैठाकर राम के पास भेजती है। इस तरह सीता को आते देखकर, राम को एक ही समय में रोष, हर्ष और दुःख प्राप्त हुआ। संभवतः उन्होंने जिस सीता की कल्पना की थी (लंबे समय से वियोग के दुःख से मलिन और दीन–हीन सी नारी), वह नहीं दिखाई दी। उसका साज–शृंगार देखकर, उनके

मन का भाव बदल गया।

'तामागतामुपश्रुत्यरक्षोगृहचिरोषिताम्।
रोषंहर्षंचदैन्यंच राघवः प्रापशत्रुहा।।
ततोयानगतां सीतां सविमर्शं विचारयन्।
विभीषण मिदंवाक्यमहृष्टोराघवोब्रवीत्।
कलत्रनिरपेक्षश्चइंगितैरस्यदारुणैः।।'[7]

('सीता सवारी पर आई है, इस बात पर तर्क–वितर्क पूर्ण विचार करते हुए राम को प्रसन्नता नहीं हुई। वह विभीषण से बोले– जानकी पालकी को छोड़कर पैदल ही मेरे पास आए। लक्ष्मण, हनुमान आदि ने अनुमान किया राम सीता पर अप्रसन्न जान पड़ते हैं।') यह मनोवैज्ञानिक सत्य है, कि कई बार मनुष्य के मन में अंतर्द्वंद जन्म लेता है। परिस्थितियां बदल जाने पर मन के भावा वेग की दिशा भी बदल जाती है। प्रिय–वियोग में जो प्रेमा वेग होता है, वह प्रिय–मिलन पर, विशेष रुप से अधिक समय के बाद मिलने पर, प्रिय में कुछ अनपेक्षित परिवर्तन लक्ष्य कर वह थम जाता है और उसके स्थान पर संशय जन्म ले लेता है। वास्तव में, वाल्मीकि ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण किया है।

राम–वन–गमन प्रसंग में कौसल्या का दैन्य और कैकेयी की कुटिलता सामाजिक जीवन में नारियों को प्राप्त होने वाले सापत्न्य दुःख की झलक दिखाते हैं। अहल्या प्रसंग में, बड़े–बड़े ऋषियों को दान की गई, कन्याओं के स्खलित आचरण और फलस्वरूप उनके लिए कठोर दंड व्यवस्था की झलक भी हमें रामायण युगीन समाज में दिखाई देती है। इस प्रसंग में, वाल्मीकि ने बेमेल विवाह की परिणति दिखाई है। साथ ही, दोषी नारी का परिमार्जन भी उन्होंने प्रस्तुत किया है। किंतु बड़ी बात यह है, कि पश्चाताप करके वह पुनः पवित्र हो जाती है। वाल्मीकि–रामायण में तपस्या करके पुनः पवित्र हुई, देवी सदृश अहिल्या के राम–लक्ष्मण चरण स्पर्श करते हैं। (उसका इससे बड़ा सम्मान और क्या हो सकता है!)

'राघवौतुतदातस्याः पादौजगृहतुर्मुदा।
स्मरन्तीगौतमवचः प्रतिजग्राहसाहितौ।।
साधुसाध्विति देवतास्ता महल्यां समपूजयन्।
तपोबल विशुद्धांगीं गौतमस्य वशानुगाम्।।'[8]

वाल्मीकि ने नारी की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। उस युग में एक रानी को बिना किसी अपराध के वनवास मिल जाता है, तो सामान्य नारी की क्या दशा होगी। यदि राजा के लिए प्रजा की भावनाओं का सम्मान करना और अपनी कीर्ति की रक्षा करना इतना महत्वपूर्ण था, तो पत्नी की रक्षा करना और उसकी भावना का सम्मान करना भी तो महत्वपूर्ण होना चाहिए था। एक विकल्प यह भी हो सकता था कि राम अपने भाइयों को राज्य सौंपकर स्वयं सीता के साथ वन चले जाते, किंतु ऐसा नहीं हुआ। वाल्मीकि ने लिखा है 'वन पहुंचकर, नौका से नदी पार कर, जब लक्ष्मण से सीता को अपने इस तरह से राज्य से निकाले जाने की बात पता चलती है, तब भी विलाप करते हुए वह अपने पति के लिए शुभकामनाएं ही देती है। वह प्रजा–हित और राज्य–हित के लिए अपने दुःखों की गिनती नहीं करती हैं।'[9] यह उस युग की नारी का यह आदर्श हो या न हो, कवि की दृष्टि में एक नारी का यही आदर्श होना चाहिए था।

वाल्मीकि–रामायण में नारी–निंदा विषयक एक भी वाक्य नहीं है, जबकि रामचरित मानस में तुलसीदास अवसर पाते ही नारी–निंदा करते हैं। इसका कारण भी है। तुलसी की युगीन परिस्थितियां वाल्मीकि से भिन्न थीं। उनका युग भक्ति और वैराग्य पूर्ण जीवन को श्रेष्ठ समझने वाला युग था। फिर भी उन्होंने सती नारियों की प्रशंसा की है, और उन्हें पूजनीय माना है। वाल्मीकि का युग धन–धान्य से परिपूर्ण वर्णाश्रम व्यवस्था का युग था, जहां गृहस्थ, वान प्रस्थ और संन्यास सबका महत्व और संतुलन था।

वाल्मीकि रामायण में हम देखते हैं कि धार्मिक और सामाजिक कार्यों में स्त्रियों को भाग लेने का अधिकार था। पति के साथ भी और उसकी अनुपस्थिति में भी सिंहासन पर बैठने का अधिकार था। पर्दा प्रथा बिल्कुल नहीं थी। नारी को नारी रूप में ही सम्मान प्राप्त था, उसके लिए उसे देवी की उपाधि धारण करने की आवश्यकता नहीं थी, (वाल्मीकि–रामायण में राम को तो विष्णु का अवतार बताया गया है, किंतु सीता को अवतार नहीं बताया है।) फिर भी, समाज पुरुष–प्रधान होने के कारण, नारी दोयम दर्जे पर ही दिखाई देती है।

**संदर्भ :-**


1. बालकृष्ण भट्ट : साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है; गद्यगंगा (संकलन), पृ. 74
2. महादेवी वर्मा : समाज और व्यक्ति; गद्य गंगा (संकलन), पृ. 122
3. वाल्मीकि : रामायण, अयोध्या कांड, सर्ग 37, श्लोक 23–24
4. वाल्मीकि : रामायण, अरण्य कांड, सर्ग 46, श्लोक 19–22
5. वाल्मीकि : रामायण, युद्धकांड, सर्ग 115, श्लोक 15–18
6. वही, सर्ग 116, श्लोक 25–26
7. वही, सर्ग 114, श्लोक 17–18
8. वाल्मीकि : रामायण, बालकांड, सर्ग 49, श्लोक 17,20
9. वाल्मीकि : रामायण, उत्तरकांड, सर्ग 48, श्लोक 16



मो. – 9355099506

Email - ranjnagupta10@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 75-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व के क्षेत्र में भारतीय भाषाएं

**नीलम पाटीदार**

सहायक प्राध्यापक (इतिहास), शासकीय महाविद्यालय, सोंडवा, जिला अलीराजपुर (म. प्र.), 457888

**प्रस्तावना :–**

मानव मस्तिष्क विभिन्न कलाओं का जन्मदाता हैं। आदिकाल से मानव के भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा रहा हैं। भाषा की पृष्ठभूमि में विभिन्न बोलियां रही हैं जिन्हें भाषा वैज्ञानिक नियमों के अंतर्गत व्याकरण ने बांधा। बोलियां इतनी महत्वपूर्ण हैं कि दुनिया भर में बोल–व्यवहार के आधार पर इलाकों की सीमाएँ तय होती हैं तथा प्रांतों व प्रदेशों के नाम तय होते हैं। हमारे यहां कहावत है, "कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस पर वाणी।" नदियां और भाषाएं भौगोलिक सीमांकन का आधार होती हैं। भाषा किसी भी क्षेत्र की संस्कृति से बहुत गहरे जुड़ी होती हैं। भारत में लेखन का एक लंबा इतिहास रहा है। भारत हजारों सालोंसे एक साक्षर संस्कृति रहा है तथा यहां मौखिक ज्ञान को भी बहुत महत्व दिया है। प्राचीन भारतीय धर्म ग्रंथों में वेद सबसे पुराने हैं जो लिपिबद्ध किए जाने से पहले कम से कम एक हजार वर्षों तक शब्दशः कंठस्थ किए गए थे और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचते रहे। भारत प्राचीनकाल से विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल रहा हैं जिससे कई नई संस्कृतियों का जन्म हुआ। यहां हर क्षेत्र में विभिन्न भाषाओं, परंपराओं, जीवनशैलियों का अस्तित्व रहा हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएं सम्मिलित की गई हैं। इसके अतिरिक्त भारत में सैकड़ों भाषाएं और बोलियां बोली जाती हैं, कई लिपिहीन मातृभाषाएं हैं। भाषा किसी भी क्षेत्र के इतिहास व संस्कृति की विशिष्ट पहचान होती हैं। 5,000 साल से अधिक पहले से, भारत के भाषाई इतिहास के अभिलेखों की शुरुआत चित्रों से हुई जो सचित्र लिपियों और उत्कीर्णन में बदल गए और कई लिपियों जैसे ब्राह्मी, खरोष्ठी, तिगलिरी, देवनागरी, शारदा आदि कई लिपियों अस्तित्व में आई और आधुनिक शब्दावली का जन्म हुआ।

19वीं शताब्दी के मध्य से यह माना गया है कि भारत की भाषाओं में से अधिकांश दो मुख्य परिवारों से संबंधित हैं, द्रविड़ परिवार और इंडो–यूरोपीय परिवार। भारत में एक अरब से अधिक लोग रहते हैं। इनमें से लगभग 20 प्रतिशत तेलुगु, मलयालम, तमिल और कन्नड़ जैसी द्रविड़ भाषा बोलते हैं। तथा 75 प्रतिशत हिंदी, पंजाबी और उर्दू जैसी इंडो–यूरोपियन भाषा बोलते हैं। इन दोनों भाषा परिवारों में कुछ भाषाओं की साहित्यिक परंपराएं 2,000 साल से भी अधिक पुरानी हैं। कई अन्य अलिखित हैं। द्रविड़ मुख्य रूप से उपमहाद्वीप के दक्षिणी छोर में बोली जाती है। इंडो–यूरोपीय भाषाएँ अधिकांश उत्तर को कवर करती हैं, और यूरेशिया में फैली हुई हैं।

इस क्षेत्र की विविधता हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिक्ख धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम और पारसी धर्म का प्रतिनिधित्व करते हुए धार्मिक बहुलवाद में भी प्रकट होती है। यह भाषाएं उपमहाद्वीप की क्षेत्रीय, जातीय और भाषाई आबादी को जोड़ती हैं। पूरे इतिहास में भारतीय भाषाओं का विकास में एक निरंतर उतार–चढ़ाव रहा हैं और प्रारंभिक आद्य–भाषाओं से आधुनिक भारतीय भाषाओं तक प्रभाव और पुनर्निर्माण का प्रवाह दृष्टिगोचर होता हैं। यदि हम आधुनिक भाषा के विकास को देखे, विशेष रूप से हिंदी के विकास को, तो मानक हिंदी और उर्दू, मुगल शासन के दौरान उत्पन्न हुई, जब फ़ारसी दरबार की भाषा ने मध्य भारत की भारतीय बोलियों पर एक मजबूत प्रभाव डाला और रेखता या "मिश्रित" भाषा का निर्माण किया। यही भाषा हिंदुस्तानी के रूप में जानी जाने लगी। हालाँकि आधुनिक मानक हिंदी और उर्दू, ये आधिकारिक भाषाएँ अपने औपचारिक पहलुओं में अलग–अलग हैं। भारत की आधिकारिक भाषा के रूप में चुनी गई बोली देवनागरी लिपि में खड़ी बोली है। पश्चिम बंगाल में और बांग्लादेश की लगभग पूरी आबादी द्वारा बंगाली भाषा बोली जाती है।

हिंदी की तरह, यह संस्कृत से निकली है, और किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में इसमें सबसे व्यापक साहित्य उपलब्ध है। उड़िया, बंगाली और असमिया सभी एक ही पूर्वी मगधी अपभ्रंश से आते हैं और इन्हें बहन भाषा माना जाता है। पंजाब में बोली जाने वाली पंजाबी, जो उत्तरपूर्वी भारत और पश्चिमी पाकिस्तान के कुछ हिस्सों को कवर करती है, सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरुओं की भाषा थी। सिक्ख धर्म की पवित्र शिक्षाओं को पंजाबी में गुरुमुखी लिपि में दर्ज किया गया है, जिसे सिख गुरु ने तैयार किया था। सिंधी वास्तव में वैदिक संस्कृत की कुछ बोलियों की एक शाखा है। अविभाजित भारत के उत्तर–पश्चिम में सिंध, कभी न खत्म होने वाले आक्रमणकारियों के हमले को झेलने वाला पहला प्रांत था, और इसने हिंदी, फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी और यहां तक कि पुर्तगाली को भी अवशोषित कर लिया। सिंध वह जगह है जहां फारसी और भारतीय संस्कृतियां मिश्रित थीं। भारतीय भाषाओं के लिए अधिकांश लिपियों की उत्पत्ति ब्राह्मी से हुई हैं। देवनागरी लिपि का प्रयोग हिंदी, नेपाली, मराठी, संस्कृत और प्राकृत के लिए किया जाता है। गुजराती, बंगाली, असमिया और उड़िया सभी में देवनागरी से व्युत्पन्न लेखन प्रणालियाँ हैं। उर्दू, सिंधी (देवनागरी में भी लिखी गई) और पंजाबी के लिए एक फ़ारसी–अरबी लिपि का उपयोग किया जाता है। दक्षिण एशिया के अधिकांश देशों में – पाकिस्तान, नेपाल, भारत, बांग्लादेश, श्रीलंका, मालदीव – अधिकांश निवासी इंडो–आर्यन भाषा बोलते हैं।

भारत में आज़ादी के बाद सन् 1956 में जब राज्यों का पुनर्गठन हुआ तो भाषायी आधार पर राज्य बने। तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, मराठी, गुजराती से लेकर हिन्दी भाषी राज्य। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान जैसे राज्यों में भी अनेक भाषाएँ बोली जाती रही हैं। तमाम हिन्दी भाषी नए राज्यों में भी अलग–अलग अंचलों की भाषाओं वाले इलाके थे, जैसे कि अवध, भोजपुर, मिथिला, मालवा, छत्तीसगढ़, कोशल, महाकोशल, बुंदेलखण्ड, रुहेलखण्ड, जौनसार–बावर, कुमाऊँ, गढ़वाल आदि। इन सब इलाकों के नामकरण का कुछ न कुछ सांस्कृतिक–पौराणिक आधार ज़रूर रहा है, जैसे अवध से अवध्य की बात आती है। मालवा से मल्लों का रिश्ता रहा है। कुर्मांचल से कुमाऊँ बना, भोजपुर के साथ भोज संज्ञा जुड़ती है। मगर आज ये नामकरण सीधे–सीधे

भाषा से जुड़ते हैं यानी अवधी बोलने वालों से अवध है या मालवी बोलने वालों से मालवा है। दक्षिण व उत्तर भारत में संस्कृति का आदान–प्रदान हमेशा से होता रहा हैं। काशी में द्रविड़ ब्राह्मणों का ठिकाना था। दक्षिण के विद्वानों का उत्तर भारत में बड़ा मान रहा। इसकी वजह भी भाषा ही बनी। संस्कृत और वेद–पुराणों पर उनका ऐसा अधिकार था कि अध्ययन–अध्यापन की दाक्षिणात्य धारा ही उनके नाम हो गई। उत्तराखण्ड के कुमाऊं अंचल में भट्ट, पाठक, दीक्षित, पन्त, पाण्डे उपनाम धारी ब्राह्मण दाक्षिणात्य हैं।

समझा जाता है कि नवीं–दसवी सदी में ये महाराष्ट्र से उत्तराखण्ड आकर बसे। इसी तरह डिमरी, डोभाल, चमौली, कुकरेती आदि अनेक ब्राह्मणों के उपनाम चाहे पहाड़ी गाँवों से सम्बद्ध हैं, मगर इनके पुरखे भी तमिल, तेलुगू, कन्नड़ भाषी थे। सुदूर दक्षिण से उत्तर के प्रवास के दौरान जिस सूत्र ने इन्हें जोड़े रखा, वह सम्पर्क भाषा हिन्दी थी। इसी तरह पंचद्रविड़ ब्राह्मणों में एक हव्यक श्रेणी भी है। बताया जाता है कि कुमाऊं के हव्यक ब्राह्मण जो हवन–होम करने में निष्णात थे, नवीं–दसवीं सदी के आसपास कदम्ब वंश के मयूर वर्मन नाम के राजा ने न्यौता दिया। आज कर्नाटक में हैवा, हैगा, हविगा, हेगड़े नामधारी ब्राह्मण समुदाय इन्हीं कुमाऊंनी ब्राह्मणों के वारिस हैं। ये लोग संस्कृत तथा अन्य भाषाज्ञान में निष्णात माने जाते रहे. कर्नाटक के शिमोगा जिले में इनकी खासी संख्या है। बड़ी संख्या में तेलुगू भाषी वेदपाठी, अग्निहोत्र ब्राह्मण उत्तर भारत के अनेक क्षेत्रों में पहुँच कर ऐसे रचे–बसे कि ठेठ राजस्थानी, मराठी, बुंदेलखण्डी और भोजपुरी भाषाका प्रयोग करने लगे। ये तमाम लोग बीकानेर, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, झाँसी, सागर, छतरपुर, टीकमगढ़, झाँसी, ग्वालियर, कानपुर से लेकर बनारस, गया और कोलकाता तक मिल जाएँगे।

बीसवीं सदी की शुरूआत तक हिन्दी के लिए हिन्दुस्तानी शब्द आम था। उर्दू या हिन्दी का फ़र्क़ आज़ादी के बाद ज्यादा बढ़ा। जहाँ तक संस्कृत का सवाल है, द्रविड़ भाषाओं में संस्कृत के रूपभेद पहचानना कठिन होता है। मगर उनमें संस्कृत की मौजूदगी साबित करती है कि भाषायी आधार पर जो आर्य–द्रविड़ टकराव दर्शाया जाता हैं वह सही नहीं हैं। संस्कृत और द्रविड़ भाषाओं में अटूट अन्तर्सम्बन्ध रहा है। भारतीय भाषाओं में एकता का जो सूत्र संस्कृत के ज़रिये नज़र आता है, वही सूत्र आज हिन्दी के रूप में समूचे भारत को जोड़े हुए हैं। भाषा के बिना किसी संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृति की सबसे बड़ी, सबसे प्रभावी और शक्तिशाली वाहिका भाषा ही होती है। भाषा में ही संस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण तत्व,आध्यात्मिक चिन्तन, ज्ञान, साहित्य, लोक संपदा निर्मित, संचारित और प्रवाहित होती है। संस्कृति के अन्य रूप–साहित्य, ललित कलाएं, गीत संगीत, स्थापत्य, वेशभूषा, खानपान, पर्व त्यौहार, सामाजिक रीतियां आदि मुख्यतः भाषा के कारण और माध्यम से ही प्रकट होते हैं। सारी मानवीय सभ्यताएं भाषा के माध्यम से ही विकसित हुई हैं। संचार के वाचिक और लिखित माध्यम रूप में यह एक समाज के भावनात्मक जीवन और संस्कृति का सर्वोत्तम उद्घोष है।

समाज के सभी क्षेत्रों में– प्रबंधन, प्रशासन, वैज्ञानिक सूचनाओं, शिक्षा और शोध का माध्यम हो या ज्ञान निर्माण का, भाषा विकास का सबसे शक्तिशाली उपकरण है। भाषा के विकास को हम उन भूमिकाओं से परिभाषित कर सकते हैं जिन्हें वह अपने समुदाय में निभाती है और जिन क्षेत्रों में वह प्रमुखता से इस्तेमाल की जाती है।

किसी समुदाय में कोई भाषा कितनी प्रतिष्ठा पाती है यह सीधा इस बात पर निर्भर करता है कि वह भाषा अपने समुदाय की कितनी तरह की अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करती है– जैसे व्यापार, अर्थतंत्र, तकनीकी, नवाचार, शोध, मौलिक वैज्ञानिक चिंतन, उद्यमिता, प्रबंधकीय निर्णय आदि। एक बहुभाषी और बहुजातीय समाज में उसकी आधिकारिक भाषासभी वर्गों को तभी स्वीकार्य होती हैं जब वे शिक्षा, आजीविका, व्यवसाय, शोध, तकनीक, नवाचार, विकास और प्रशासनात्मक, प्रबंधकीय निर्णय प्रक्रियाओं की प्रमुख भाषा होती है। भाषा की संरचना में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं का अहम योगदान होता है। भाषा की निर्मिति में सामाजिक संरचना के साथ–साथ वर्ग, जेंडर और जाति की भी अहम भूमिका होती है। गौरतलब है कि भाषा विशेष का वर्चस्व और किसी खास भाषा से वर्ग विशेष का लगाव कोई नई बात नहीं है। यह भी सही है कि हमेशा से ज्यादातर भाषाएं अपनी निर्मिति में कुछ पूर्वाग्रहों (लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्र आदि) से ग्रस्त रही हैं। तमाम भाषाओं में ऐसे संकेत देखे जा सकते हैं। भाषा का अपना एक वर्ग होता है। भाषा का वर्गीय आधार समाज में कई स्तरों पर देखा जा सकता है। स्त्री–पुरुष के संबंध में वर्गीय चेतना का पूरा ढांचा स्पष्ट हो जाता है। पितृसत्तात्मक समाज में वर्चस्व पुरुष का रहा, उसने अपने अनुसार भाषा गढ़ी और नियम बनाए। स्त्रियों ने भाषा का अनुसरण किया। औपनिवेशिक शक्ति जब किसी देश को गुलाम बनाती है, तो वह उसकी भाषा पर भी अपना वर्चस्व स्थापित करती है।

'मैकाले' ने भारतीय भाषाओं के बारे में कहा कि 'यहां (भारत) के देशी लोग जो बोलियां आमतौर पर बोलते हैं, वे बहुत गई–बीती और कर्कश हैं।' भाषा के संबंध में औपनिवेशिक शक्तियों का यही रवैया हर गुलाम देश के प्रति रहा है। आज भी पश्चिमी देशों की धारणा एशिया और अफ्रीका के देशों में बोली जाने वाली भाषा के प्रति ऐसी ही है। सत्ता और शक्ति अपनी बातें कमजोर और गरीब देशों तथा लोगों पर थोपती है। भाषा के माध्यम से वे अपनी शक्ति को इन देशों पर कायम करना चाहते हैं। अंग्रेजों ने हमारे देश के साथ–साथ भाषा को भी गुलाम बनाया। भाषा का वर्गीय चरित्र भी काफी कुछ सत्ता के भाषिक व्यवहार से स्पष्ट होता है। एक मजदूर की वही भाषा नहीं होती, जो उसके मालिक की होती है। आज भाषा का श्रम से वैसा कोई रिश्ता नहीं है। भाषा का आज एक वर्ग है। यह वर्ग आधुनिक युग में संचार क्रांति और वैश्वीकरण के बाद और अधिक विस्तृत रूप में उभरा है।

शिलालेख भारतीय भाषाओं के प्रारंभिक लिखित रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शिलालेखों की शब्दावली, वाक्य–विन्यास और रूपों का अध्ययन करके भाषाविद् अपनी समझ को आगे बढ़ाने में सक्षम हुए हैं कि भाषाएँ कैसे विकसित हुईं और उनका उपयोग कहाँ किया गया। भारत में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा पाए गए 55 प्रतिशत से अधिक अभिलेखीय शिलालेख तमिल भाषा में हैं। तमिल ब्राह्मी लिपि का एक प्रारंभिक संस्करण है। ब्राह्मी लिपि में शिलालेख भारतीय उपमहाद्वीप पर लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से दिखाई दिए। बाद में ये अभिलेख स्तंभों, ताम्र पत्रों, मुद्राओं, पात्रों, मूर्तियों, ताड़ के पत्तों, सिक्कों, आदि पर खुदे हुए मिलते हैं। कन्नड़ भाषा में सबसे पुराना ज्ञात शिलालेख हल्मिडी गांवके पास मिला जो हल्मिडी शिलालेख के रूप में जाना जाता

है। अपने यथार्थ रूप में अभिलेख सर्वप्रथम अशोक के शासनकाल के ही मिलते हैं। सम्राट अशोक ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में अपने धर्म, अपनी प्रशासनिक नीतियों, प्रशासनिक कर्मचारियों आदि को निर्देशित करने की व्याख्या करते हुए बड़े वैज्ञानिक ढ़ग से अभिलेखों का स्थापित करवाया।

अशोक के अभिलेखों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है– शिलालेख, स्तंभलेख और गुहालेख। ये शिलालेख आधुनिक पाकिस्तान और उत्तरी भारत के सभी क्षेत्रों, कस्बों, व्यापार मार्गों और धार्मिक केंद्रों के पास 35 से अधिक स्थानों पर पाए गए हैं। उन्हें 1837 में ओरिएंटलिस्ट जेम्स प्रिंसेप द्वारा पढ़ागया था। अशोक के अधिकांश अभिलेख मुख्यतः ब्राह्मी लिपि में हैं। पाकिस्तान और अफगानिस्तान में पाये गये अशोक के कुछ अभिलेख खरोष्ठी तथा आरमेइक लिपि में हैं। खरोष्ठी लिपि फारसी की भाँति दाईं से बाईं ओर लिखी जाती थी। मौर्य शासकों के बाद के कई अन्य शासकों के शिलालेख जैसे हथीगुम्फा अभिलेख, जूनागढ़ अभिलेख, ऐहोल अभिलेख, गिरनार अभिलेख, मंदसौर का अभिलेख, प्रयागराज स्तंभलेख, नासिक अभिलेख आदि अनगिनत शिलालेख भारतीय भाषाओं और लिपियों में प्राप्त होते हैं। अभिलेखों का विशेष साहित्यिक महत्त्व भी है। इनसे संस्कृत और प्राकृत भाषाओं की गद्य, पद्य आदि काव्य–विधाओं के विकास पर प्रकाश पड़ता है। रुद्रदामन् का गिरनार अभिलेख (150 ई.) संस्कृत गद्य के अत्युत्तम उदाहरणों में से एक है। इसमें अलंकार, रीति आदि गद्य के सभी सौन्दर्य–विधायक गुणों का वर्णन है। समुद्र गुप्त की हरिषेण विरचित प्रयाग–प्रशस्ति गद्य–पद्य मिश्रित चम्पू काव्य शैली का एक अनुपम उदाहरण है। मन्दसौर का पट्टवाय श्रेणी–अभिलेख, यशोधर्मनकालीन कूप शिलालेख, पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल शिलाभिलेख आदि अनेक अभिलेख पद्य–काव्य के उत्तम उदाहरण हैं।

इन अभिलेखों से हरिषेण, वत्सभट्टि, रविकीर्ति आदि ऐसे अनेक कवियों का नाम प्रकाश में आया जिनका नाम संस्कृत साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नही है। चहमानवंशीय विग्रहराज के काल का सोमदेवरचित 'ललित विग्रह' और विग्रहराजकृत 'हरकेलि' नाटक प्रस्तरशिला पर अंकित नाट्य–साहित्य के सुंदर उदाहरण हैं।यवन राजदूत हेलियोडोरस का गरूड़ स्तम्भ लेख प्राकृत भाषा एवं ब्राह्मी लिपि में लिखा गया है। यह भागवत धर्म से संबन्धित पहला अभिलेखीय प्रमाण है। इन अभिलेखों से मूर्तिकला और वास्तुकला के विकास पर प्रकाश पड़ता है और तत्कालीन धार्मिक जीवन का ज्ञान होता है। ताम्रलेखों में सबसे महत्वपूर्ण एवं प्राचीनतम ताम्रलेख गोरखपुर जिले सोहगौरा से 1893 ई. में प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त हूण शासक तोरमाण का एक ताम्रलेख लेख संजेली (गुजरात) से मिला है। सम्राट हर्षवर्धन का ताम्रलेख मधुबन और बांसखेड़ा से प्राप्त हुआ है। प्राचीन भारत पर प्रकाश डालने वाले अभिलेख मुख्यतः पालि, प्राकृत और संस्कृत में मिलते हैं। गुप्तकाल के पहले के अधिकतर अभिलेख प्राकृत भाषा में हैं और उनमें ब्राह्मणेत्तर धार्मिक–संप्रदायों– जैन और बौद्ध धर्म का उल्लेख है। गुप्त एवं गुप्तोत्तरकाल में अधिकतर अभिलेख संस्कृत भाषा में हैं और उनमें विशेष रूप से ब्राह्मण धर्म का वर्णन है। प्राचीन भारतीय इतिहास, भूगोल आदि की प्रमाणिक जानकारी के लिए अभिलेख अमूल्य निधि हैं।

भारतीय सभ्यता ने 5000–6000 वर्ष की अपनी अविच्छिन्न यात्रा में यह समूची साहित्यिक, सांस्कृतिक, लौकिकवा आध्यात्मिक ज्ञान की संपदा अर्जित की हैं। भारतीय भाषाओं का इतिहास अत्यंत समृद्ध रहा हैं। अब

हमारी जिम्मेदारी है की हम अपनी इस संपदा को सहेज कर रखें। भाषा का किसी भी देश के इतिहास, संस्कृति, राष्ट्र, राष्ट्रबोध और राष्ट्रीयता से बहुत गहरा संबंध होता है। ये सब भाषा से जुड़े हुए हैं। यदि भाषा बचेगी तभी ये सब भी बचेंगे। आज भारतीय भाषाओं और बोलियों के अस्तित्व पर संकट छा रहा है। भाषा शास्त्रियों की भविष्यवाणी है कि 21वीं सदी के अंत तक विश्व में बोली जाने वाली लगभग 6000 भाषाओं में से केवल 200 भाषाएं जीवित बचेंगी। लुप्त होने वाली भाषाओं में भारत की सैकड़ों भाषाएं होंगी। भारत की आदिवासी भाषाओं में से 196 भाषाएं तो अभी यूनेस्को के अनुसार ही गंभीर संकटग्रस्त भाषाएं हैं। संकटग्रस्त भाषाओं की इस वैश्विक सूची में भारत सबसे ऊपर है। यूनेस्को के पूर्व महानिदेशक कोचिरो मत्सूरा ने कहा था "एक भाषा की मृत्यु उसे बोलने वाले समुदाय की अमूर्त विरासत, परंपराओं और वाचिक अभिव्यक्तियों का नष्ट हो जाना है।" भाषा मनुष्य की श्रेष्ठतम संपदा है। संचार के वाचिक और लिखित माध्यम रूप में यह एक समाज के भावनात्मक जीवन और संस्कृति का सर्वोत्तम उद्घोष है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी भाषाओं और बोलियों के महत्व को समझें तथा उनका संरक्षण करें।

**संदर्भ :-**


1. NilakantaSastri, K. A. A History of South India from Prehistoric Times to the Fall of Vijayanagar. Madras: Indian Branch, Oxford University Press, 1966.
2. https://www.google.com/amp/s/amp.scroll.in/article/874047/how&researchers&combined&linguistics&and&archaeology&to&determine&the&age&of&dravidian&languages
3. https://www.newworldencyclopedia.org/entry/Indian&inscriptions
4. https://kavishala.in//kavishalaopinion@indian&languages&condition&direction&and&future&rahul&dev
5. http://worldwidehistory.com/index.php/2020/04/22/archaeological&sources&of&knowing&ancient&indian&history/



मो. 9644143281

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 81-87

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ग्लोबल गाँव के देवता–असुर जनजाति के विस्थापन की महागाथा

**Varna S**

Research Scholor, Maharajas College, Ernakulam

आदिवासी–वनवासी, जंगली या आदिम जनजाति का पर्यायवाची शब्द है। आदिवासी की अपनी खास भाषा, धर्म, संस्कृति एवं परंपराएँ होती हैं। प्रकृति के उपासक आदिवासी ज़मीन, जंगल और जल को अपना मानकर उपासना करने वाले हैं। आदिवासी देश के मूल निवासी है। रेमण्ड फर्थ आदिवासियों की परिभाषा इस प्रकार देते हैं आदिवासी समुदाय विशेष एक ही सांस्कृतिक श्रृंखला का मानव समूह है, जो साधारणतः एक ही भूखण्ड पर रहता है एक ही भाषा भाषी है तथा एक प्रकार की परंपराओं व संस्थाओं का पालन करता है और एक ही सरकार के प्रति उत्तरदायी होता है। आदिवासी को भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजाति घोषित कर हाशिये पर धकेल दिया है।

अपनी ज़मीन से आदिवासियों को बेदखल करने के अभियान की शुरूआत आर्यो के आगमन से हुआ था। आर्यो एवं अनार्यो के संघर्ष से पराजित जनजाति लोग गिरि कुहरो, पहाडों, चट्टानों, घोर जंगलों में भाग कर बसने लगे। वे ही आदिवासी है। प्रकृति की गोद में पल्लवित आदिवासी लोग सहज एवं आडबर रहित जीवन बिताने वाले हैं। साहित्य में आदिवासी को, उसकी मुसीबतों को शब्दांकित करने का ज़ोरदार प्रयत्न दिखाई पड़ता है, हिन्दी साहित्य विशेषकर उपन्यास साहित्य इस प्रयत्न में बहुत आगे है। वैश्वीकरण, बाज़ारीकरण एवं भूमंडलीकरण की आँधी के परिणाम स्वरूप विस्थापित आदिवासी प्रतिशोध कर उठे हैं। इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यास साहित्य इस विद्रोह को वाणी देने में प्रयत्नरत है। समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर है रणेन्द्र। उनका प्रथम उपन्यास है ग्लोबल गाँव के देवता। इक्कीस्वीं सदी के भारत में आदिवासी ने जो कुछ झेला है उन सबका प्रत्यक्षांकन उपन्यास में है।

ग्लोबल गाँव के देवता में बरवे जिला के आसपास के आदिवासी इलाकों में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को विषय बनाया है। असुर शब्द सुनने पर जो नकारात्मक प्रभाव आम आदमी के मन में पड़ता है, उसका खंडन करते हुए लेखक यह स्थापित करते है कि ृजब जाकर ध्यान आया कि एतवारी ने इस सुदर्शन व्यक्ति का नाम लालचन असुर बताया था। सुना तो था कि यह इलाका असुरों का है, किन्तु असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लम्बे चौड़े, काले कलूटे, भयानक दाँत वाँत निकले हुए माथे पर सींग वींग लगे हए लोग होंगे। लेकिन लालचन को देखकर सब उल्ट पुलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियाँ उलटी घूम रही थी।[1]

आदिवासी इलाकों में अकूत प्राकृतिक संसाधनों का भंडार छिपा है। प्रकृति की पूजा करने वाले आदिवासी पृथ्वी की गोद में छिपी सोने को चुराने के षडयत्र के बारे में नहीं सोचते। लेकिन विकास के नाम पर बाहरी शक्तियाँ उनके ज़मीन पर कब्जा करके उसका चीर फाड़ करके अपना फायदा उड़ाते हैं। भारत में आदिवासी जनसमूहों का विस्थापन व पलायन तो ऐसे सदियों पहले से ही जारी है परन्तु इधर विकास के नाम पर बरती गई नीतियों के कारण वे केवल अपनी ज़मीनों जंगलों, संसाधनों व गाँवों से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि उनके मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से भी उनके विस्थापन की प्रक्रिया तेज़ हो गई। इस विस्थापन में सरकारी हस्तक्षेप व नीतियों के साथ–साथ तथाकथित मुख्यधारा के समाज द्वारा उनके संसाधनों पर कब्जा करके उन्हें बेदखल कर देना भी उनके विस्थापन व पलायन का मुख्य कारण रहा हैं।[2]

विकास के नाम पर आदिवासी इलाकों पर घुसपैठे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ संसाधनों का दोहन करके आदिवासी को बेघर बना दिया है। प्राकृतिक संसाधनों की पूजा अर्चना करके जीवनयापन करने वालों को हमेशा विस्थापन की त्रासदी मिलते है। आदिवासी इलाकों को तोड़ फोड़कर पूँजिपति ऐश आराम की ज़िन्दगी जीते है। हमारा बॉक्साइट यहाँ से डेढ़ दो सौ किलोमीटर दूर जहाँ प्रोसेस होकर एल्युमिनियम में ढलता है वह जगह सिल्वर सिटी ऑव इंडिया कहलानी है। एक बार घूमने का मौका मिला था। फूलों पार्कों से लदी हरी–भरी खूबसूरत कॉलोनी। एक से एक स्कूल, चमचमाते बाजार, क्लब घर, योगा केन्द्र, लाइब्रेरी खेल के मैदान और न जाने क्या क्या। सुन्दर–सुन्दर कुत्तों को घुमाती सुन्दर सुन्दर महिलाएँ, बर्फ के गोलों से गुलथुला उजले उजले बच्चे, रंग बिरंगी गाड़ियाँ। लगा, इन्द्रलोक धरती पर उतर आया हो मास्टर साहब ! धीरे सब जान जाइएगा। पानी और जलावन जुटाने में ही हमारी औरतों की आधी ज़िन्दगी गुज़र जाती हैं। बरसात के गिजन की तो मत पूछिये। बन्द खदान के सैकड़ों गड्ढे विशाल पोखरों में बदल जाते हैं। कीचड में लोटते सूअरों और हमारे बच्चों में फर्क करना मुशिकल हो जाता है। वहाँ के गेस्ट हाउस केमेस में छत्तीस तरह के व्यंजन। मुहावरे वाले नहीं सचमुच के। क्या खाएँक्या नहीं खाएँ। एक ही दिन में पेट खराब हो गया। यहाँ मकई का घट्टा खा खाकर जीभ पर घट्टा पड़ जाता है। हमारे ज्यादातर घरों में भातदाल सब्ज़ी भी पर्व त्योहार का भोजन हैं।[3]

समाज में प्रचलित अनेक गलत धारणाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी आदमी को प्रभावित कररहे है। असुर शब्द से जुड़ी हुई जो गलत अवधारणा समाज में प्रचलित है न सबके पीछे सवर्ण शक्तियों का षडयत्र है। यहाँ रणेन्द्र सफल ढंग से असुर जनजाति को निर्धारित करके समाज में प्रचलित असुर शब्द संबन्धी ऊँहा पोहों पर चुनौती देता है। ठीक कहते हैं। असुर सुनते दोही बात ध्यान में आती हैं। एक तो बचपनमें सुनी कहानियों वाले असुर दैत्य, दानव और न जाने क्या–क्या। वर्णन भी खूब भयंकर। दस बारह फीट लम्बे। दाँत वाँत बाहर। हाथों में तरह तरह के हथियारों। नर भक्षी, शिवभक्त, शाक्तिशाली। किन्तु अन्त में मारे जाने वाले। सारे देवासुर संग्रामों का लास्ट सीन पहले से फीक्सड। दूसरी एंथ्रोपॉलोजी की 1926, 1947 या 1966 की किताबों में छपी केवल कॉपीन पहने मर्द और छाती तक नंगी औरतों वाली तस्वीरों वाले असुर। अब आप खुद ही तय कर लीजिए मास्टर साहब कि हम क्या है?[4]

असुर संबन्धी जिन जिन गलत धारणाएँ समाज में प्रचलित है उन सबको सफाया करके अपनी असलियत को जाहिर करना हरएक असुर का दायित्व है। रुमझुम अपने दायित्व को सँभालते हुए असुर जनजाति के वास्तविक इतिहास का उद्घाटन करता हैं, 'हम असुर लोग मोटा–मोटी तीन भाग में बाँटा है।' रुमझुम ने फिर

बात शुरू की। बीर असुर, अगरिया असुर और बिरिजिया असुर। हालाँकि बीर यहाँ बहादुर के सेंस में नही आया, बल्कि जंगल के अर्थ में आया है, लेकिन प्राचीन असरिया बेबीलोन सभ्यता में असुर का अर्थ बलवान पुरूष ही होता है। अपने यहाँ भी सायणाचार्य असुरों को बलवान, प्रज्ञावान, शत्रुओं का नाश करने वाला ओर प्राणदाता पुकारते हैं। ऋग्वेद के प्रारम्भ के लगभग डेढ़ सौ श्लोकों में असुर देवताओं के रूप में हैं। मित्र, वरुण, अग्नि, रुद्र सभी असुर ही पुकारे जा रहे हैं। बाद में यह अर्थ बदलने लगता है और असुर दानव के रूप में पुकारे जाने लगते हैं।[5]

वीर से दानव की छवी मिली असुरों को अपनी ज़मीन से भगाने का परिश्रम वैदिक काल से लेकर इक्कीसवी सदी तक यूँ ही निरंतर चल रही है। ज़मीन के लिए अपना प्राण न्यौच्छावार करने वाले लोगों की संख्या में दिन व दिन बढ़ौत्तरी हुई है। हत्यारों के हथियारों से जान बचाकर भागने का मौका भी उन्हें नहीं मिला है। रुमझुम की स्थिति मैं समझ रहा था। हम नज़रें मिलाने से बच रहे थे। यह केवल एक लालचन दा के चाया की हत्या का सवाल नहीं था और न किसी असुर पर पहली बार या आखिरी बार आक्रमण हुआ था। न यह पहली बार ज़मीन के टुकड़े के लिए हत्या हुई थी। यह हजारों हज़ार साल से चल रहे घोषित अघोषित युद्ध की नवीनतम कड़ी मात्र थी। कटे सिर ने हमारी काल और दिशा की समझ को गड़बड़ा दिया था। समझ में ही नहीं आ रहा था कि हम वैदिक काल में है कि इक्कीस्वीं सदी में। वर्तमान अतीत में ढलता ज रहा था और अतीत की कत्ल ओ गारत वर्तमान में नज़रों के सामने नाच रही थी। वह क्या था जिसके कारण एक समुदाय बहुसंख्यक समुदाय के लिए अन्य में तब्दील हो गया। हमसे अलग, अन्य एक शत्रु चुँकि उसके जीवनयापन का तरीका हमसे भिन्न था, इसीलिए वह हत्या के योग्य, गालियाँ देने योग्य कैसे हो गया? आग की खोज, धातुओं की खोज, धातु पिंघलाने की कला किन्हीं को इतनी बुरी क्यों लगी कि इस कारीगर जाति को बार–बार आक्रमणों में नष्ट होने और पीछे हटने के लिए मज़बूर होना पड़ा।[6]

खदान क्षेत्र में काम करने वाली असुर युवतियों को वहाँ के मेठ, मुंशी, क्लर्क, अफसरों शारीरिक शोषण करते है। असुर जनजाति को अपने पूर्वजों के ज़मीन से भगाकर, पांरपरिक खेती प्रथा को विनष्ट करके, किसान से मज़दूर बनाकर विश्व गाँव के चालाक लोग ने उनकी बेटियों का स्वाद खाते हैं। लेकिन रुमझुम ने बताया कि यह शिकायत नहीं थी, बल्कि विलाप था। अन्दर से बुरी तरह टूट चुके समाज का विलाप। भूख और गरीबी ने अन्दर से इतना खोखला कर दिया है कि सामाजिक व्यवस्था, भरभरा गयी है। अखड़ा में बाँग, पाहन पुजार और गाँव के बड़े बूढ़ों की बात का वज़न दिन पर दिन घटता जा रहा है। ठीक ही बात है कि घर में तीन चार माह से ज्यादा अनाज नहीं हो तो कौन बेटों को गाँव छोड़ने और बेटियों को डेरामें काम के बहाने रखनी बनने से रोक सकता है?[7]

आदिवासी इलाकों में खदान क्षेत्रों का निर्माण करके करोड़ों धन इकट्ठा करने वाले लोग कभी भी उन इलाकों की दयनीय स्थिति के बारे में सोचते नहीं हैं। बाक्साइट का खनीज क्षेत्रों में उपेक्षित गड्ढे में भरी पानी वहाँ के आदिवासी इलाकों को रोगग्रस्त बना देता है। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन शोषण में लिप्तशासक वर्गों की नज़रिए में आदिवासियों की नारकीय जीवन नहीं है। खनन क्षेत्रों में फैली सांक्रमिक रोगों से ग्रस्त निरीह असुर जनजाति की स्थिति हीन से हीनतर बन गई है। किन्तु लालझन रुमझुम की बात एकदम साफ थी कि यह साल दो साल का मसला तो है नहीं। उन लोगों ने जब से होश सँभाला है, खुले खदानों के गड्ढे को भरते हुए नहीं

देखा है। चाहे वह शिंडाल्को जैसी बड़ी कम्पनियों की खदानों हों या पोद्दार, रुँगटा जैसी छोटी कम्पनियों की। सबको केवल बॉक्साइट से मतलब है। चाहे मुनाफा करोड़ों से अरबों की ओर उछलता जा रहा हो ये लोग पाट क्षेत्र में एक पैसा खर्च करने की आदमी में गिनते ही नहीं है। अब तक उन खुले खदानों की बरसाती जमे पानी में पल बढ़कर मच्छरों ने हमारा जीना हराम कर रखा है। हमारे होश में चार दर्जन से ज्यादा नयी उमर के लड़के माथा बुखार सेरेब्रल मलेरिया से मरे हैं। बूढें बुजुर्गों की तो गिनती ही नहीं। हमारे दुःख से इन्हें क्या इनको तो बस अपने मुनाफे से मतलब है।[8]

खदान कंपनियों के अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध एकजुट होकर असुर जनजाति के लोग विद्रोह करना शुरू की है। संघर्ष को समाप्त करके प्रतिशोध की ज्वाला को बुझाकर आकाशचारी देवताओं के आधुनिक प्रतिनिधि वर्ग समझौते का माँग पत्र भेजा था। समझौते से कोई विशेष फायदा आदिवासी लोगों को नहीं मिला है। शिडाल्को जैसी बड़ी कम्पनियों ने सड़क किनारे के बन्द पड़े पुराने दोचार खदानों को भरकर रुमझुम, सोमा, भीखा जैसे प्रमुख असुर युवाओं को आँफिस में जगह देकर, भोलापाट के पांडे जी के बँगले में पानी लाकर टैंकर को सखु आपाट बाज़ार तक लाकर देवता लोग फिर भी आदिवासी इलाकों को धोखा दिया। बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं उद्योगपतियों का धोखा खाकर विवश असुरों को एक ओर भारी झटका देकर कंठी अभियान से प्रसिद्ध शिवदास बाबा का पर्दापण हुआ था।

कंठी आदोलन के माया में फँसे लोगों से फायदा उड़ाकर अबोध बालिकाओं के लिए साफ सुथरा विद्यालयों एवं होस्टलों का निर्माण करके बाबा आम आदमी को उल्लू बनाकर अपना फायदा उड़ा रहा था। कोयलेश्वर आश्रम के पासरत बहती नदी के किनारों में बारह तेरह साल की बच्ची की नग्न लाश मिली थी, गिरफ्तारी की सज़ा दिया गया बाबा जी को। जिस कर्मठ पुलिस ऑफिसर बाबा को, उसकी असलियत को पकड़ लिया उसको भ्रब्ट शासन प्रणाली के कारण सज़ा मिला, अवमानना मिली। भुमंडलीकरण के बाद उपजी बिकाऊ संस्कृति में पड़कर आदमी मुनाफा की लालच में अपने आपको बेचने के लिए तैयार हो गये हैं। ऐसी हालत में शिवदास बाबा जैसे लोग, शिंडाल्को वेदांत जैसे कंपनियों के साथ मिलाकर राजनीति में पैर रखना शुरू किया था।

खदान कंपनियों को रास्ता साफ कराने में हमेशा सरकारी कानूनों की सहायता मिल गई है वन विभाग द्वारा प्रस्तावित वन संरक्षण कानून पूरे आदिवासी इलाके को झकझोर कर दिया है। सरकार द्वारा संचालित भूमि अधिग्रहण संशोधन एवं फॉरेस्ट बिलवन पति आदिवासी को बेघर बना दिया है। डॉक्टर साहब की खबर थी कि वन विभाग ने बहुत पहले रिपोर्ट भेजी थी कि लगभग चौसठ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पहले भेडियों की संख्या सात सौ अट्ठासी हुआ करती थी, वह घटती घटती एक सौ छिहत्तर रह गयी है। तैंतीस पेज तो खाली इन भेडियों की इन खास नस्ल पर ही लिखा गया है तब यह बताया गया है कि इनका बचाया जाना कितना ज़रूरी है। वन विभाग असुरों और आदिवासियों को अपने क्षेत्र में घुसपैठिया मानता है। वह यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि वन गाँवों मैं लोग सैकड़ों वर्षों से रहते आये है। वन विभाग ही बाद में आया है। वनस्पतियों और जीवों की तरह आदिवासी आदिम जाति भी जंगल के स्वाभाविक बाशिन्दे है। यह स्वीकार करने से उनकी पढाई रोकता है। गाँव खाली कराकर ही दम लेंगे। दूसरी खास बात डॉक्टर साहब को यहलगी कि अभयारण्य के लिए कंटीले, तारों का घेरा डालने का काम वेदांग जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी ने लिया है। इतनी बड़ी कंपनी ने इतने छोटे काम

में हाथ डाला इसमें जरूर कोई राज हैं। बहुत वर्षों से इस इलाके से बॉक्सइट बाहर नहीं भेजकर यहीं कारखाना खोलने की बात उठती रही है। लगता है वेदांग उसी टोह में आ रहा है। ग्लोबल गाँव का बड़ा देवता है वेदांग प्यह उँगली पकड़कर बाँह पकड़ने वाली बात लगती है। यह कम्पनी है विदेशी और नाम रखा है वेदांग जैसे प्योरी देशी हो। कितना चालू पुर्जा है इसी से पता चलता है।[9]

वन विभाग संरक्षण कानून के नाम पर अपनी जमीन से बेदखल आदिवासी लोग प्रतिशोध का रास्ता अपना लेते है। पुरानी माँगों के साथ–साथ एक नया नारा जुड़ गया जान देंगे ज़मीन नहीं देंगे। आदिवासियों के संघर्ष की आग में ज्वलित ग्लोबल गाँव के देवता फिर से हलचल करना शुरू किया। संघर्ष समिति की सफलता से हताश होकर रात में पुलिस फोर्स एनकाउंटर का साजिश कट रहे है। रात के पर्दो के पीछे चली नृशंस हत्याकांड के प्रति कोई भी अखबार संवेदनशीलता प्रकट नहीं करते। दूसरे दिन अखबारों में इस नृशंस हत्याकांड की खबरें खोजने पर निराशा ही हाथ लगी। एक हैडसम क्रिकेटर के एक ओवर में लगाये गये छह छक्के की खबर सब खबरों पर भारी थी, बाकी रूटीन खबरें थीं। नेताओं के वक्तव्य, आश्वासन, नौकरशाही, स्वंयसेवी संस्थाओं की प्रेस विज्ञप्तियाँ विभिन्न पार्टियों के कार्यक्रमों की खबरें स्थानीय नाली पानी की दिक्कते आदि आदि। हाँ, तीसरे पेज़ पर दो कॉलम का समाचार छपा था कि पाथरा पाट में हुए पुलिस मुठभेड़ में छह नक्सली मारे गये। मारे गये नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमांडर बालचन भी शामिल। फिर बालचन के नृशंस कारनामों का विवरण। किस एसपी दरोगा की हत्याओं और किन किन बैंक डकैतियों में वह हत्याओं और किन–किन बैक डकैतियों में वह शामिल रहा था। एकदम आँखों देखा विवरण। अन्त में इस बात का भी उल्लेख था कि भागते समय नक्सली लाशें उठाले गये। पुलिस फोर्स लाशों की तलाश कर रही हैं।[10]

जब आदिवासी अपनी अस्तित्व, संस्कृति, भाषा, धर्म, ज़मीन की रक्षा के लिए संघर्ष करते हैं तब बाहरी शक्तियाँ एकजुट होकर माथे पर नक्सल का नाम ढोकर नृशंस ह्याकांड की रणनीति अपनाती है। पाथरा पाट में वेदांग जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आदिवासी की सरजमी को हडपने का जो षडयंत्र रचा है उसमें धार्मिक बाबाओं, विधायकों, पुलिस फोर्सी, अखबारों सबका मदद मिलते हैं। भारी रकम के आगे इंसानियत की कोई मूल्य नहीं है। पूँजीपति वर्गी ने अपनी बढ़ती माँगों की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का निर्मम शोषण करके खदानों का निर्माण किया है। उनकी लालच भरी निगाहों हमेशा प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न आदिवासी इलाकों की समृद्धि पर टिक्की है। भारत में आदिवासी के विस्थापन की संरचना आकाशचारी देवताओं आसानी से रचती है, सामान्य तौर पर इन आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाश मार्ग से या सेटेलाइट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खनिज सम्पदा, जंगल और अन्य संसाधन दिखते हैं तो उन्हें लगती है कि अरे, इन पर तो हमारा हक है। उन्हें मालूम है कि राष्ट्र राज्य तो वे ही हैं तो हक तो उनका ही हुआ। सो इन खनिजों पर, जंगलों में, घूमते हुए लॉगोंट पहने असुर, बिरिजिया, उराँव, मुंडा आदिवासी, दलित खदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोफ्त होती है। वे इन कीड़ों मकोड़ों से जलदनि जात पाना चाहते हैं। तब इन इलाकों में झाड़ू लगाने का काम शुरू होता है।[11]

अनादिकाल से हुई निर्मम शोषण में कोई बदलाव नहीं आया है। उन शोषण के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना जाग उठी है। पाथरपाट में जो प्रतिशोध की आग सुलग रही है उसी तरह अपने अस्तित्व, संस्कृति, ज़मीन, परंपरा की रक्षा के लिए अब पूरे देरा में आदिवासी लड़ना आरंभ कर दिया हैं। इन लड़ाइयों में आदिवासी स्त्रियों महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। आदिवासी समाज में नारी निर्बल, निरीह, कमसीन चीज़ नहीं है। वह अपने अधिकार के लिए जीवन भर लड़ने को उद्यत है। ज़मीन की रक्षा के लिए लड़ना ज़रूरी है वह निर्भीक एवं निडर होकर अपने दायित्व को सँभालती है। 'धरती भी स्त्री, प्रकृति भी, सरना माई भी स्त्री और उसके लिए लड़ाई लड़ती सत्यभामा, इरोमर्श मिला, सी के जानू, सुरेखा दलवी और यहाँ पाट में बुधनी दी और सहिया ललिता भी स्त्री। शायद स्त्री ही स्त्री की व्यथा समझती है। सीता की तरह धरती की बेटियाँ धरती मे समाने को तैयार। शिकारी जो समझता रहे।[12]

समाज में प्रचलित असुर शब्द संबंन्धी गलत अवधारणाओं को तोड़कर सच्चे इतिहास की प्रस्तुति के साथ लेखक ने वहाँ के रीति–रिवाजों, पूजा पाठन, देवताओं, लोकगीतों, त्योहारों का परिचय भी करा दिया है। अपने देवता सिंगबोगा की तरह असुर आदिम जाति भी कभी थकती नहीं। आग से उत्पन्न, कभी लोहा पिंघलाने और पिंघला लोहा खाने वाले लोग खुद भी लोहा थे। केवल मक्का या कन्दा खाकर लोग इतना खट सकते हैं यह विश्वास नहीं होता। पाट की खेतिहर भूमि भी पानी के अभाव में बंजर पत्थर सी दिखती। बरसात के पहले उसी पथरीली भूमि को कोड़ जोतकर तैयार करने में वे रात दिन लगे रहते। खदान की मंजूरी भी कम देह तोड़ने वाली नहीं थी। इसी श्रम रस में डूबते उमगते, सरहुल हरिअरि, सोहराय, सडसी, कूटासी पर्व त्योहारों में, अखड़ा में, जदुरा, झूमर, करम नाचते अपने बैगा पूजार, पाहन के साथ सामुदायिक जीवन जीते वे ज़िन्दगी का घोड़ा दौड़ाते रहते।[13]

प्रकृति की उपासना करके, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करके, जल ज़मीन जंगल की श्रद्धा करके, प्राकृतिक शक्तियों को ईश्वर मानकर, प्रकृति का लय ताल से गीतों एवं नृत्यों की रचना करके आदिवासी जो रहन सहन पद्धति का पालन करता है वह पूरी तरह निर्मल, सहज एवं आडम्बर रहित है। वे ही अब प्राकृतिक संसाधनों का अकूत भंडार से युक्त ज़मीन से विस्थापित होकर भिक्षुक एवं मज़दूर बन गए है। वैदिक काल में उपजी अन्य की भावना, असभ्य माने जाने वाले आदिवासी को हमेशा उल्लू बनाने के लिए स्वर्ण लोग प्रयुक्त करते रहे। विकास के नाम पर विस्थापन की दुर्दशा मिली असुर जनजाति की लड़ाई, अपनी सरजमी के लिए लड़े तो नक्सल की दर्जा मिलने की त्रासदी, पीढ़ी दर पीढ़ी लडी लड़ाई के अंत में हमेशा हारने की दुर्दशा, गरीबी एवं बेरोज़गारी के कारण रखैल बनी आदिवासी लड़कियों की विवशता, धर्म के नाम पर शिवदास बाबा जैसे साधुजनों की धोखेबाजी, वेदांग जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों की अतृप्त लालच के नीचे दबी आदिवासी इलाकों की दुर्दशा सबका मार्मिक चित्रण उपन्यास में मिलता है।

असुर जनजाति हो या हो जनजाति या मुंडा जनजाति, भीम जनजाति, उरावु जनजाति सबकी त्रासदी एक ही है। रुमझुम, डॉ. रामकुमार, बालचन, लालचन, बुधनी दी, ललिता जैसे नवयुवक अपनी ज़मीन के लिए,

अस्तित्व के लिए, संस्कृति के लिए लड़ रही है। इस लड़ाई की परिणति में प्रशासन, उद्योगपति, पुलिस फोर्स, आकाशचारी बहुराष्ट्र कंपनियों की देवताऐं सब मिलकर भूमि पुत्र को हराकर, उन्हें बेघर बनाकर, उनकी संस्कृति को विनष्ट करके विजय हासिल करते है। ऐसे माहौल में वे नहीं जानते हैं कि, सवाल तो वही पुराना था। हज़ारों सालों से पीछा करता सवाल। एक शाश्वत आदि प्रश्न। जिसका उत्तर न उनके पूर्वज तलाश पाये थे और न वे ढूँढ पा रहे हैं कि कब तक पीछे हटा जाए और कहाँ तक पीछे हटा जाए? इस पाट के बाद अब कहाँ?[14] इस सवाल का उत्तर कहीं से आदिवासी समाज को अभी तक नहीं मिली है। यह नितांत आदि प्रश्न के सार्थक उत्तर की खोज में एक मील के पत्थर के रूप में रणोन्द्र जी का ग्लोबल गाँव के देवता खड़ा है।

**पाद टिप्पणियाँ :–**

1. ग्लोबल गाँव के देवता–रणोन्द्र; पृ. सं. 11
2. आदिवासी विकास से विस्थापन; रमणिका गुप्ता; पृ. सं. 7
3. ग्लोबल गाँव के देवता–रणोन्द्र; पृ. सं. 17
4. वही; पृ. सं. 17
5. वही; पृ. सं. 18
6. वही; पृ. सं. 32–33
7. वही; पृ. सं. 39
8. वही; पृ. सं. 62
9. वही; पृ. सं. 79–80
10. वही; पृ. सं. 88
11. वही; पृ. सं. 93
12. वही; पृ. सं. 92
13. वही; पृ. सं. 28
14. वही; पृ. सं. 42

Phn No : 9961794710
Email Id : varnaskrishna@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 88-92

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# जुलूस नाटक में सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ

**कपिल कौशिक,** शोधार्थी
**डॉ. विकास शर्मा,** एसोशिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

नाटक 'नट' शब्द से निर्मित है, जिसका अर्थ है– 'सात्विक भावों का अभिनय'। नाटक साहित्यिक अभिव्यक्ति की एक ऐसी विधा है, जो सिर्फ साहित्य न होकर उससे कुछ ज्यादा ही है, क्योंकि यह सिर्फ लेखक के लिखे जाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका असली रूप रंग मंच पर जाकर ही निखरता है। इसलिए नाटक और रंग मंच का एक–दूसरे के बिना मूल्यांकन अपूर्ण और भ्रामक सा लगता है।

आधुनिक भारतीय रंग मंच को जिन शख्सियतों ने अपने काम से सबसे ज्यादा प्रभावित किया है, उनमें बादल सरकार एक अहम् नाम है। बादल सरकार सिर्फ एक प्रतिबद्ध रंग कर्मी ही नहीं थे, बल्कि एक अच्छे लेखक और निर्देशक भी थे। उनका मानना था कि "थियेटर के लिए दो ही चीज़ें जरूरी हैं– दर्शक और अभिनेता।" उन्होनें छोटे–बड़े लगभग 25 नाटक लिखे। जिनमें 'पागल घोड़ा', 'बाकी इतिहास', 'शेष नहीं', 'जुलूस', ' एवम् इन्द्रजीत' इत्यादि प्रमुख है। उन्होंने 'अंगन मंच' को ध्यान में रखकर ही अपने नाटकों की निर्मिति की थी। बांग्ला में 'जुलूस' (मिछिल) का मंचन सन् 1974 में बादल सरकार के निर्देशन में किया गया था। बादल सरकार एक कुशल रंग कर्मी थे और उन्होंने अपने नाटकों की रचना रंगमंचीय दृष्टि से की थी इसलिए वे लिखते हैं कि :–

"मैंने इस नाटक को साधारण चौखटा मंच के लिए नहीं लिखा था और मुझे लगता है कि उस पर खेलने से इसका बहुत सा सौंदर्य नष्ट हो जाएगा"[(1)] – बादल सरकार।

बाद में इस नाटक का मंचन सार्वजनिक पार्क, लॉन और गांवों के खुले स्थानों पर भी हुआ।

'जुलूस' आज के समाज के युग की स्थिति पर करारा प्रहार है। इसमें दिखाया गया है कि समाज में हर तरफ जुलूस है, जिनमें व्यक्ति का अस्तित्व खोया हुआ है। इस नाटक में कुल 10 पात्रों के माध्यम से बादल सरकार जी ने पूरे नाटक का निर्माण एवं मंचन किया है। नाटक के शुरुआत में ही बादल सरकार जी ने स्पष्ट दिखा दिया है कि इस नाटक के लिए अनेक तामझाम की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रेक्षा ग्रह और रंग मंच एक ही माने गए हैं। दर्शकों की सीटें इधर–उधर लगा दी गयी हैं। दर्शक जहाँ इच्छा हो वहाँ बैठ सकता है। उनका मुख्य उद्देश्य केवल समाज की बुराईयों को और भ्रष्ट यथास्थिति को दिखाने का प्रयत्न किया गया है। इस नाटक के माध्यम से उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को सबके सामने लाकर रख दिया है। इस नाटक का आरंभ ही अंधेरे से शुरू होता है अर्थात् चारों और केवल अंधकार ही अंधकार है, जिसमें गुंडई, छिना–झपटी, खून

की घटनाएँ घटती दिखाई गई हैं। आमजन इस अंधेरे से भय रखते हैं, उन्हें कुछ गलत होने का अंदेशा मिट जाता है। इस अंधेरे को हम आज काला बाजारी भी कह सकते हैं जो हमें समाज में नियमित रूप से देखने को मिल जाती है।

एक जगह बादल सरकार पात्र 'चार' के माध्यम से कहलवाते हैं– "चारों और गड्ढ़े ही गड्ढ़े हैं और सारा रास्ता खोद–खोदकर... " इसे वह स्पष्ट कर देते हैं कि किस प्रकार समाज के लोगों के लिए, राजनेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए लालसा रूपी गड्ढे बना रखे हैं, जिसमें व्यक्ति अपनी ज रूरतों की पूर्ति के लिए गिर जाता है। इससे भ्रष्ट शासन का निर्माण होता है। यह नाटक आज के समाज में आम आदमी की व्यथा को दिखाता है जिसमें वह अपनी जरूरतमंद आवाज़ में गिड़गिड़ाता है, पर कुछ दमनकारी शक्तियों ने उसे हर तरफ से घेर रखा है, जिसके दबाव में वह खुद ही रोता–चिल्लाता खुद ही थककर बैठ जाता है।

नाटक के शुरुआत में ही 'मुन्ना' सबको चिल्ला–चिल्लाकर बता रहा है कि, "मेरा खून हुआ है। कल मेरा खून हुआ था। परसों मेरा खून हुआ था। परसों तरसों मेरा खून हुआ था। पिछले महीने, पिछले साल। रोज मेरा खून होता है। हर रोज खून, हर रोज मृत्यु, हर रोज। कल मेरा खून होगा। परसों, तरसों, अगले महीने, अगले सप्ताह, अगले महीने, अगले साल।"[2]

मनुष्य अपनी सामाजिक समस्याओं और राजनीतिक भ्रष्टाचार के कारण हर रोज मरता है। वह दमन के कारण, अपने संघर्षों को करते–करते मर रहा है। अपनी सभी समस्याओं से छुटकारा पाने का आम आदमी ने एक तरीका अपनाया है– 'जुलूस'। हम हर रोज जुलूस देखते हैं। हर रोज हमारे चारों तरफ, कितने ही जुलूस शोर मचाते, नारे लगाते, गाजे–बाजे के साथ गाते चिल्लाते देखते हैं। आज समाज में जुलूस एक भाषा के रूप में प्रयोग होता है, ताकि आमजन सत्ताधारियों तक अपनी आवाज़ पहुंचा सके और उन्हें बता सके कि वो खुद तो एक विलासिता पूर्ण जिंदगी जी रहे हैं, लेकिन उनके द्वारा बनाई गई नीतियाँ, आम आदमी का दम घोंट रही हैं। यही दमनकारी नीतियाँ मनुष्य की मौत का कारण बन जाती हैं। नाटककार बादल सरकार और अनेक प्रकार के जुलूसों का जिक्र करते हैं, जैसे शवयात्रा, शोभायात्रा, पदयात्रा, शुभयात्रा, कुयात्रा इत्यादि। इन जुलूसों की आवाज़ में जरूरतमंद आमजन की आवाज़ पात्र 'मुन्ना' की तरह दबकर रह जाती हैं। भुखमरी, दरिद्रता, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, संक्रमण आदि समस्याओं से जूझ रहा आमजन घुट–घुटकर मर जाता है और उनमें से कोई थोड़ा भी विरोध करने की कोशिश करता है, तो इस नाटक के 'कोतवाल' पात्र की तरह सत्ताधारियों, नौकरशाहों और उच्च वर्गीय लोगों द्वारा दबा दिया जाता है। नाटक में हम एक जगह देखते हैं कि :–

"एक : तीन साल हो गए, अभी तक नौकरी नहीं मिली, बाबू जी रिटायर कर गए।
दो : कारखाने में लॉकआउट हुए छत्तीस दिन हो गए। घर में चूल्हा तक नहीं जला।
तीन : बेसमय की बरसात से सारा धान सड़ गया, ऊपर से महाजन के कर्ज का पहाड़ सिर पर।
चार : तेल में मिलावट के कारण सारा घर बिस्तर पड़ा है, डॉक्टर बुलाने को पैसा नहीं है।
पांच : भाई को पुलिस पकड़कर ले गयी। मार–मारकर जान निकाल दी।"[3]

इस पूरे संवाद में सामाजिक–राजनीतिक समस्याओं के अतिरिक्त, मनुष्य की घरेलू समस्या, बेरोजगारी, किसानों की व्यथा, काला बाजारी आदि देखने को मिलती है।

'कोरस' एक ऐसा पात्र है, जो लोगों को समय–समय पर गाकर जगाता है, समस्याओं से अवगत कराता

है, कहीं राष्ट्र भक्ति, कहीं भाव भक्ति जगाने की कोशिश करता है। एक दूसरा पात्र 'वृद्ध' है, जिसको समाज के अनुभव वाले लोगों के रूप में प्रदर्शित करना चाहा है। ऐसे लोग अपने अनुभव से युवा वर्ग और समस्या से परेशान व्यक्तियों को सही राह दिखाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे–

"बूढ़ा : जरा ध्यान देकर मेरी बात सुनो। प्रश्न लो समझो। पूरब दिशा मतलब सूरज जिस दिशा में उगता है, उस दिशा को उंगली से दिखा सकते हो?"(4)

कहने का तात्पर्य है कि समाज में युवा अपने लक्ष्य से भटक रहा है। उसे अपनी मंजिल तो पता है, पर वह मंजिल तक जाते–जाते सामाजिक भूल–भूलैया में उलझकर अपना रास्ता भूल गया है। उसे एक दिशा दिखाने के लिए समाज में 'वृद्ध' पात्र होना जरूरी है। अपने जीवन के संघर्षों से अनुभव लेकर ही आज वो युवाओं को सही रास्ता दिखाने के लिए प्रयासरत हैं। लेकिन कमी यह है कि लोग उनकी बातों को पुरानी और दकियानूसी समझकर अनदेखा कर देते हैं।

**नाटक का एक दृश्य है :–**

"बूढ़ा : सूरा। सोमरस। लिकर। दारू। अपने आपको भूला देने की बढ़िया दवाई।" जहां नाटककार ने यह इंगित किया है कि शराब पीना या अन्य कोई नशे की वस्तु, समस्याओं से निजात पाने का सबसे अच्छा समाधान है। यही आज के समाज की सच्चाई भी है कि इंसान अपनी समस्याओं के लिए कोई हल न ढूंढकर, गलत आदतों में फँस जाता है। यह सिर्फ शराब पीना ही नहीं, तस्करी करना या आधुनिक युग में इंटरनेट का गलत प्रयोग कर लूटपाट या डकैती करना भी हो सकता है।

युवा वर्ग की बेरोजगारी ने उन्हें अपराधी बनने पर मजबूर कर दिया है। कश्मीर में आतंकवादियों द्वारा युवा वर्ग को गुमराह करके हमले करवाना, लोगों में धर्म के नाम पर नफरत और खुद के धर्म को श्रेष्ठ समझने की भावना, लूटपाट करना आदि, वो बीमारी रूपी समस्याएँ हैं, जो सामने भले ही ना दिख रही हों पर वो समाज की जड़ को कमजोर कर रही हैं।

इन सबसे अलग एक और समस्या जो हमारे समाज में सदियों से चली आ रही है और अब भी व्याप्त है, वह है –नारी को पुरुष से कम समझना। नाटक में भी इसका उदाहरण है :–

"दो : आफिस टाइम में औरतें चढ़ती ही क्यों हैं, बस में।

छह : हम लोगों को भी ऑफिस जाना होता है, समझे।"(5)

पुरुष यहाँ पर दिखा रहे हैं कि औरत उनके रास्ते में रुकावट हैं। वो जो काम करते हैं वो सही है और अगर औरत उसी काम को करे तो वह अगर पूरी तरह गलत नहीं मानी जाती है तो सही भी नहीं मानी जाती। लेकिन औरत पात्र 'छह' के माध्यम से अधिकारों के लिए अभी भी प्रयासरत है और गलत होने पर आवाज़ उठाना जानती है।

पूरा 'जुलूस' नाटक आज की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर तीखा व्यंग्य है। जुलूस सरकार की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध निकाले जाते थे, एक सकारात्मक परिणाम के लिए जुलूस निकाला जाता था परंतु आज जुलूस लोगों की भाषा बन गयी है, लेकिन जरूरी नहीं यह आवाज़ हर बार सत्य और ईमानदारी की हो। लोग अपनी बात मनवाने के लिए जुलूस निकालते हैं, हड़ताल करते हैं और बात ना मानी जाने पर हिंसा का सहारा लेते हैं। स्वयं सत्ताधारी भी लोगों को धर्म, जाति के नाम पर भड़काकर जुलूस, नारे और प्रचार करवाते

हैं। साधारण लोग जो देश की बागड़ोर संभालने वाले हैं, उसके भविष्य के निर्माण धारक हैं, वो इन सब में फंसकर मर रहे हैं।

आम आदमी की पूरी जिंदगी संघर्षों से जूझते–जूझते निकल जाती है, जिसे नाटक में वृद्ध और मुन्ना के संवाद के माध्यम से दर्शाया गया है :–

"मुन्ना : तुम्हारा नाम क्या है?

बूढ़ा : मेरा नाम मुन्ना था। तुम्हारा नाम?

मुन्ना : मेरा नाम मुन्ना है।"(6)

इस संवाद में इंसान के जीवन की व्यथा है कि समाज की स्थिति इतनी दयनीय है कि जो कभी बच्चा था, आज वह वृद्ध हो गया है लेकिन उसको मंजिल का भेद नहीं मिला है। वह पहले भी समस्याओं में उलझ हुआ था और आज भी वह उलझा हुआ है। वह आज भी समाज में 'मुन्ना' के माध्यम से अपने जीवन की पूरी यात्रा को देख पा रहा है कि एक समय था जब वह भी मुन्ना था। इस तरह तमाम सवाल हमारे सामने जुलूस के रूप में घूम रहे हैं और इनका परिणाम एक ऐसा दिशाहीन शोर होगा, जिसमें इंसान की घुटन, यात्रा और अंततः मौत भी गुम जाएगी।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 'जुलूस (बादल सरकार)' नाटक का मुख्य उद्देश्य दर्शकों को समाजिक उत्थान और न्याय के महत्व के प्रति जागरूक करना है। इस नाटक के माध्यम से, लेखक और निर्देशक सामाजिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं और दर्शकों को इन मुद्दों पर सोचने और कार्रवाई करने के लिए प्रेरित करते है। इस नाटक का उद्देश्य दर्शकों को आत्मविश्वास, सामरिक बदलाव और समाज में सकारात्मक परिवर्तन की प्रेरणा देना है। यह नाटक एक व्यक्तिगत और सामाजिक संकट के साथ लड़ने और अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए आम आदमी की शक्ति को प्रमोट कर रहा है। इसके अलावा, नाटक ने भ्रष्टाचार न्यायप्रियता और सामाजिक और राजनीतिक न्याय के मुद्दों पर दर्शकों का ध्यान केंद्रित किया है। यह दर्शकों को सोचने पर मजबूर करता है कि कैसे भ्रष्टाचार समाज के विकास और सरकारी नीतियों की सफलता को रोकता है।

नाटक में विभिन्न चरित्रों की मूल्यवान रचनात्मकता है, जो नकारात्मक संघर्षों, रिश्तों की जटिलताओं और सियासी भ्रष्टाचार के माध्यम से परिपूर्ण होती है। नाटक का विवरणशील सेट डिजाइन, उच्च गुणवत्ता की प्रस्तुति, और कटिबद्ध अभिनय इसे एक प्रभावशाली नाट्य अनुभव बनाते हैं। जुलूस नाटक की विशेषता है उसकी आधुनिक व्याख्या और संवेदनशीलता, जो नाटक को एक अभिनय और सामाजिक संदेश की गहराई में ले जाती है। यह दर्शकों को एक बार सोचने पर मजबूर करने वाली प्रेरणादायक कथा प्रस्तुत करता है, जो समाज में बदलाव लाने की मांग को उजागर करती है।

जुलूस नाटक एक आंदोलन की भावना को जीवंत करता है और लोगों को समाजिक परिवर्तन के लिए सक्रिय होने की प्रेरणा देता है। यह नाटक न सिर्फ नाट्य कला के माध्यम से मनोरंजन प्रदान करता है, बल्कि साथ ही साथ एक सामाजिक और राजनीतिक संदेश को भी साझा करता है। जुलूस में रंगमंच की स्वतंत्रता और व्यापारिक दबाव को भी उजागर किया गया है। नाटक में विभिन्न चरित्रों के माध्यम से नाटककार ने संघर्ष के विभिन्न रूपों को दर्शाया है, जिसमें समाज, संगठन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच तनाव होता है। नाटक की

उच्चतम गुणवत्ता और व्याख्यानात्मक क्षमता संयोजित होकर इसे एक नाट्य–कला का अद्वितीय अनुभव बनाती है। श्रोताओं को नाटक के माध्यम से स्पष्ट और प्रभावशाली संदेश मिलता है कि वे स्वयं परिवर्तन के लिए उठें और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करें।

समग्र रूप से, 'जुलूस" (बादल सरकार) हिंदी नाटक के रूप में एक महत्वपूर्ण कदम है जो सामाजिक मुद्दों को उजागर करता है और दर्शकों को सक्रिय रूप से सोचने पर मजबूर करता है। नाटक के माध्यम से, लोगों को संघर्षों के साथ समझाया जाता है कि वे स्वयं बदलाव के लिए जिम्मेदार हैं और न्याय को प्राप्त करने के लिए अपनी आवाज बुलंद कर सकते हैं। नाटक का संदेश गहराई से प्रभावी है और यह सामाजिक चेतना को जागृत करता है। यह प्रेरणा देता है कि समाज के न्याय के लिए लड़ाई लड़ने और दुर्भाग्यपूर्ण प्रथाओं के खिलाफ उठने का समय आ गया है।

**संदर्भ :–**


1. 'जुलूस', बादल सरकार (अनुवाद–यामा सराफ), प्रकाशक – लिपि प्रकाशन, पृ. स.– 08
2. 'जुलूस', पृ. स. – 22
3. जुलूस', पृ. स–. 46–47
4. जुलूस', पृ. स.– 54
5. जुलूस', पृ. स.– 34
6. जुलूस', पृ. स.– 70



मोबाइल – 9210980227, ईमेल–vikaskaushik081@gmail.com

मोबाइल – 8860845498, ईमेल–kapil143kaushik@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 93-97

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# भारत में मानव अधिकार और संवैधानिक उपबंधों का विश्लेषण

**डॉ. सविता यादव**

सहायक प्रध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय स्नातक महाविद्यालय सोयतकलॉ ज़िला आगर मालवा म.प्र.।

**मानव अधिकार का अर्थ :-**

मानव अधिकार वे न्यूनतम अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक रूप से प्राप्त होना चाहिये, क्योंकि मानव अधिकारों की धारणा मानव गरिमा की धारणा से जुड़ी है। अतएव मानव को मानव होने के नाते सारे अधिकार मानव गरिमा को बनाये रखने के लिये तथा सर्वांगिण विकास के लिये आवश्यक हैं उन्हें मानव अधिकार कहा जाता है। इस प्रकार अधिकारों की धारणा आवश्यक रूप से न्यूनतम मानव आवश्यकताओं पर आधारित है। इनमें से कुछ मानव अधिकारों की संकल्पना उतनी ही पुरानी है जितनी कि प्राकृतिक विधि पर आधारित प्राकृतिक अधिकारों का प्राचीन सिद्धांत तथापि मानव अधिकारों की उत्पत्ति द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अंतर्राष्ट्रीय चार्टरों और अन्तर्राष्ट्रीय विधि में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। राज्यों के अतिरिक्त, व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय विधि से व्युत्पन्न अधिकारों और कर्तव्यों से युक्त होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विषय हो गया है. जबकि कतिपय नियम प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त स्थिति और कार्य–कलाप के विनियमन से सम्बन्धित हैं, कतिपय अन्य अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करते हैं।

**मानव अधिकार की परिभाषा :-**

मानवीय अधिकार या मानवाधिकार वास्तव में वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मनुष्य को केवल इस आधार पर मिलते हैं कि उसे मनुष्य के रूप में जीवित रहने के लिये उन अधिकारों की आवश्यकता होती है।

मेरी रोविन्सन के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को उसकी मौलिक स्वतंत्रताओं को संरक्षा एवं उसे प्राप्त करने के व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त अधिकार मानवाधिकार कहलाते हैं। मानव अधिकार 6 प्रकार के होते हैं।

बुनियादी मानवाधिकारों की प्राप्ति देश के हर व्यक्ति को होनी चाहिए, ऐसे ही कुछ मूलभूत मानव अधिकार इस प्रकार से है :–

1. **जीवन का अधिकार :-**

प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना स्वतन्त्र जीवन जीने का जन्मसिद्ध अधिकार है। हर व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं मारे जाने का भी अधिकार है।

**2. उचित परीक्षण का अधिकार :–**

प्रत्येक व्यक्ति को निष्पक्ष न्यायालय द्वारा निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार है। इसमें उचित समय के भीतर सुनवाई, जन सुनवाई और वकील के प्रबंध आदि के अधिकार शामिल हैं।

**3. सोच, विवेक और धर्म की स्वतंत्रता :–**

प्रत्येक व्यक्ति को विचार और विवेक की स्वतंत्रता है उसे अपने धर्म को चुनने की भी स्वतंत्रता है और अगर वह इसे किसी भी समय बदलना चाहे तो उसके लिए भी स्वतंत्र है।

**4. दासता से स्वतंत्रता :–**

गुलामी और दास प्रथा पर क़ानूनी रोक है। हालांकि यह अभी भी दुनिया के कुछ हिस्सों में इसका अवैध रूप से पालन किया जा रहा है।

**5. अत्याचार से स्वतंत्रता :–**

अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत यातना देने पर प्रतिबंध है। हर व्यक्ति यातना न सहने से स्वतंत्र है।

**6. अन्य :–** सार्वभौमिक मानव अधिकारों में स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सुरक्षा, भाषण की स्वतंत्रता, सक्षम न्यायाधिकरण, भेदभाव से स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता का अधिकार और इसे बदलने के लिए स्वतंत्रता, विवाह और परिवार के अधिकार, आंदोलन की स्वतंत्रता, संपत्ति का अधिकार, शिक्षा के अधिकार, शांतिपूर्ण विधानसभा और संघ के अधिकार, गोपनीयता, परिवार, घर और पत्राचार से हस्तक्षेप की स्वतंत्रता, सरकार में और स्वतंत्र रूप से चुनाव में भाग लेने का अधिकार, राय और सूचना के अधिकार, पर्याप्त जीवन स्तर के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार और सामाजिक आदेश का अधिकार जो इस दस्तावेज़ को अभिव्यक्त करता हो आदि शामिल हैं।

**भारत में मानवाधिकारों से संबंधित प्रावधान :–**

भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अनुसार, संविधान द्वारा गारंटीकृत व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और सम्मान से संबंधित अधिकारों के रूप में मानवाधिकार या अंतर्राष्ट्रीय अनुबंधों में सन्निहित तथा भारत में अदालतों द्वारा लागू किये जाने योग्य हैं।

**राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग :–**

भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) की स्थापना वर्ष 1993 में की गई थी। इसे मानवाधिकार अधिनियम (PHRA), 1993 का संरक्षण द्वारा स्थापित किया गया है। ये राज्य मानवाधिकार आयोगों की स्थापना का प्रावधान करता है। भारतीय कानूनों में शामिल मानवाधिकार : भारतीय संविधान में मानवाधिकारों के कई प्रावधानों को शामिल किया गया है। मौलिक अधिकारों का भाग III अनुच्छेद 14 से 32 तक। संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 तक भारत के प्रत्येक नागरिक को समानता के अधिकार की गारंटी देते हैं। अनुच्छेद 19 भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित है और अनुच्छेद 21 जीवन एवं स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है।

**मौलिक मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले में :–**

नागरिक अनुच्छेद 32 के तहत उच्चतम न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय जा सकते हैं। राज्य के नीति निदेशक तत्त्व अनुच्छेद 36 से 51 तक। भारत मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा का हस्ताक्षरकर्त्ता है और उसने ICESCR एवं ICCPR की पुष्टि की है।

**भारत ने निम्न की पुष्टि की है :–**

नस्लीय भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन पर अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय ,महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर अभिसमय, बाल अधिकारों पर अभिसमय, विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर अभिसमय।

**भारत में कुछ अन्य संबंधित कानून और नीतियाँ :–**

– अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम (वर्ष 2006)

– भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापना अधिनियम (वर्ष 2013) में उचित मुआवज़ा तथा पारदर्शिता का अधिकार, स्ट्रीट वेंडर्स (आजीविका का संरक्षण और स्ट्रीट वेंडिंग का विनियमन) अधिनियम (वर्ष 2014)

– जन धन खाता, उज्ज्वला गैस कनेक्शन, प्रधानमंत्री आवास योजना, तीन तलाक, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के लिये राष्ट्रीय पोर्टल, गरिमा गृह, संबंधित सूचकांकों और रिपोर्ट्स पर भारत का प्रदर्शन कैसा है?

**सूचकांक :–**

विश्व प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक, 2022 : रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स (RSF) द्वारा प्रकाशित।

180 देशों में भारत की रैंक 150 है। मानव स्वतंत्रता सूचकांक : कैटो इंस्टीट्यूट और फ्रेजर इंस्टीट्यूट द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित। वर्ष 2021 की रिपोर्ट में भारत 165 देशों में 119वें स्थान पर है।

आर्थिक स्वतंत्रता का सूचकांक : हेरिटेज फाउंडेशन द्वारा आर्थिक स्वतंत्रता सूचकांक, 2021 प्रकाशित किया गया है। भारत का आर्थिक स्वतंत्रता स्कोर 53.9 है। इस सूचकांक के अनुसार, भारत की अर्थव्यवस्था मुक्त अर्थव्यवस्था के मामले में 131वें स्थान पर है। एशिया–प्रशांत क्षेत्र के 39 देशों में भारत 27वें स्थान पर है।

**रिपोर्ट :–**

**भारत– 2021 पर मानवाधिकार रिपोर्ट :** अमेरिकी विदेश विभाग द्वारा प्रकाशित।

रिपोर्ट में सरकारी अधिकारियों द्वारा निजता के उल्लंघन को चिह्नित किया गया है, इसके अलावा पूर्व–परीक्षण निरोध मनमाना और लंबा है। इसके अनुसार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मीडिया प्रतिबंधित हैं।

**फ्रीडम इन द वर्ल्ड– 2021 रिपोर्ट :** अमेरिका स्थित मानवाधिकार प्रहरी फ्रीडम हाउस द्वारा प्रकाशित। भारत का स्कोर 67 था, जो पिछले स्कोर, वर्ष 2020, से (71/100) कम था।

**लोकतंत्र रिपोर्ट– 2022 :** स्वीडन के गोथेनबर्ग विश्वविद्यालय में वी–डेम संस्थान द्वारा प्रकाशित।

वर्ष 2021 में वैश्विक नागरिकों के द्वारा एंजॉय किया गया लोकतंत्र का स्तर वर्ष 1989 के स्तर से नीचे है।

**मानवाधिकारों के संबंध में उभरती चुनौतियाँ :–**

राज्य द्वारा जान–बूझकर या राज्य की लापरवाही के परिणामस्वरूप मानवाधिकारों का उल्लंघन किया जा सकता है। इतिहास में दर्ज मानव अधिकारों के सबसे गंभीर और प्रसिद्ध उल्लंघनों में से एक है– यहूदियों, समलैंगिकों, कम्युनिस्टों, स्लावों तथा अन्य समूहों को एडॉल्फ हिटलर के 'दुनिया को साफ करने' के एजेंडे के हिस्से के रूप में मानवता से वंचित कर दिया गया था।

**सम्मान से जीने का अधिकार :** हाथ से मैला ढोना एक गंभीर चिंता का विषय है। भारत सरकार ने इसके समाधान के लिये कई नीतियाँ बनाई हैं, लेकिन अब तक कुछ क्षेत्रों में मैला ढोने के मामले देखे जा रहे हैं।

आदिवासियों के मानवाधिकारों से समझौता तब किया जाता है जब उन्हें पशुओं के संरक्षण हेतु संरक्षित क्षेत्र से विस्थापित किया जाता है।

स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार के तहत आता है। शहरीकरण और औद्योगीकरण की वजह से प्रदूषण में वृद्धि के कारण मानव अधिकारों का लगातार उल्लंघन हुआ है।

**महिलाओं के मानवाधिकार :-**

हमारे समाज में महिलाओं को कमज़ोर माना जाता है और अक्सर उन्हें बुनियादी मानवाधिकारों से वंचित रखा जाता है। उन्हें समाज में हिंसा का शिकार होना पड़ता है चाहे वह घर की चार दीवारी के भीतर हों या कार्यस्थल पर।

अफगानिस्तान में जब भी मृत्यु के आरोप में किसी लड़की को गिरफ्तार किया जाता है, तो जबरन उसके कौमार्य की जांच की जाती है।

**कैदियों के अधिकार :-**

जबरन श्रम, शारीरिक शोषण/यातना, पुलिस द्वारा शक्ति का दुरुपयोग, अमानवीय व्यवहार, हिरासत में बलात्कार, भोजन की खराब गुणवत्ता, पानी की व्यवस्था की कमी और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नोट किये गए अन्य मुद्दों सहित कैदियों के सबसे मौलिक मानवाधिकारों का उल्लंघन।

हाल के दिनों में भारत का सर्वोच्च न्यायालय कैदियों के मानवाधिकारों के अतिक्रमण के खिलाफ बहुत सतर्क रहा है।

**शासन में भ्रष्टाचार :-**

भ्रष्टाचार कानून के शासन, लोकतंत्र और मानवाधिकारों के लिये खतरा है, सुशासन, निष्पक्षता तथा सामाजिक न्याय को कमज़ोर करता है, प्रतिस्पर्धा को विकृत करता है, आर्थिक विकास में बाधा डालता है एवं लोकतांत्रिक संस्थानों की स्थिरता और समाज की नैतिक नींव को खतरे में डालता है। अल्पसंख्यकों को निशाना बनाने और राजनीतिक विरोधियों के खिलाफ इसका इस्तेमाल करने सहित आतंकवाद विरोधी कानून के प्रावधानों के दुरुपयोग की संभावनाएँ पैदा हुई हैं।

**मानवाधिकार क्यों महत्त्वपूर्ण हैं?**

मानवाधिकार किसी व्यक्ति को दुर्व्यवहार या भेदभाव से बचाता हैं क्योंकि सभी को शारीरिक और बौद्धिक रूप से विकसित होने का समान अवसर मिलना चाहिये। सामाजिक अन्याय और समाज में प्रचलित बुरी प्रथाओं के खिलाफ व्यक्ति बोल सकते हैं। मानवाधिकार गारंटी देता है कि लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को संबोधित किया जाए। भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मानवाधिकारों के माध्यम से प्रचारित की जाती है। धार्मिक स्वतंत्रता मानव अधिकारों द्वारा संभव है। मानव अधिकारों द्वारा सरकार की जवाबदेही के लिये एक समान मानदंड प्रदान किया जाता है।

प्रभावी सेवा वितरण सुनिश्चित करनारू शासन में भ्रष्टाचार मानवाधिकारों के उल्लंघन के पीछे प्रमुख कारक है क्योंकि यह सरकार की नीति तथा कार्यक्रम के समय पर प्रभावी कार्यान्वयन में ढील देता है। उचित प्रशासन एवं निगरानी द्वारा सेवाओं की समय पर और कुशल डिलीवरी की गारंटी दी जानी चाहिये।

**अविकसित और विकासशील देशों पर ध्यान देना :** अविकसित एवं विकासशील देशों में अधिकांश मानव अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। इसलिये विकासशील और अविकसित राष्ट्रों को मानव अधिकारों के उल्लंघन से जुड़े उपायों को विकसित करने और बनाए रखने का उचित अवसर दिया जाना चाहिये।

भारत के मामले में पूरे देश में मानवाधिकारों के हनन का अधिक प्रभावी प्रहरी बनने के लिये NHRC को काफी हद तक नया रूप दिया जाना चाहिये। यदि आयोग की सिफारिशों को कानूनी रूप से बाध्यकारी बना दिया जाता है तो NHRC की प्रभावकारिता बढ़ जाएगी। यदि भारत में मानवाधिकारों की स्थिति में सुधार और मजबूती लाना है तो राज्य व गैर–राज्य संस्थाओं को सहयोग एवं नेतृत्व करना चाहिये।

पुराने कानूनों और प्रावधानों को परिस्थितियों की नवीनतम मांग के अनुसार संरेखित किया जाना चाहिए।

**सन्दर्भ सूची :–**


1. www.drishtiias.com
2. गोपालन एस.1998 भारत और मानव अधिकार प्रकाशन जैनको आर्ट इण्डिया 1310 डब्ल्यू.ई.ए. क़रोल बाग नई दिल्ली–110005
3. न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र बाबू 2007 मानवाधिकार नई दिशाएं, प्रकाशन राष्ट्रपति मानव अधिकार आयोग फ़रीदकोट हाऊस कॉपरनिकस मार्ग, नई दिल्ली।



स्थायी पता

04 चितावद रोड़ साजन नगर कैलाश दाल मिल के पास इन्दौर मप्र 452001

savitaindore123@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha
June 2023

ISSN : 2395-7115
Page No. : 98-102

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# वैश्विक परिदृश्य में डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी की कविताओं में जीवन एवं दर्शन : कविता संग्रह 'मृगतृष्णा दर्पण अंतर्मन का' के संदर्भ में

**डॉ. कोयल विश्वास**

विभागाध्यक्ष, हिंदी, माउंट कार्मल कॉलेज, स्वायत्त, बेंगलुरू

कविता वह कला है जो जिसका उद्‌गम स्थल आत्मा है। कविता वह प्राणवायु भी है जिसके माध्यम से भाव जीवित रहते हैं और शब्दबद्ध होते हुए भी मुक्त है। विरोधाभास इस प्रसंग में भी है कि एक तरफ जहां वैश्वीकरण ने जीवन को दर्शन से अलग कर दिया है वहीं काव्य कला ने जीवन और दर्शन को समरूपता की वेदी पर बिठाया है। मशीनी सभ्यता और बाज़ारवाद ने जब मानवीय अस्तित्व को केवल तकनीकि ज्ञान और बुद्धि तक सीमाबद्ध करने का प्रयास किया तब कविता ने इस भौतिक अस्तित्ववाद के समक्ष विवेक को लाकर खड़ा कर दिया। मानव केवल हाड़ मांस का ढांचा नहीं बल्कि आत्मा का वह निलय है जिसमें कुछ समय के लिए वह विश्राम लेता है। अपनी अनंत यात्रा में एक जीवन केवल मात्र वह क्षणिक विराम का स्थान है जहां कर्म प्रधान है, कर्ता माध्यम मात्र है।

कवि मन उन सूक्ष्म भावों को महसूस कर पाता है जिसमें जीव और जगत से परे, शरीर और आत्मा के बीच स्थापित अदृश्य तंतियों से मोक्ष का मधुर राग सुनाई देता है। जीवात्मा उस परम तत्व से मिलकर एकाकार हो जाना चाहता है जिससे बिछड़कर वह इस अनंत यात्रा में कर्म का लेखा जोखा अनादिकाल से करता चला आ रहा है।

समकालीन साहित्यकार रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी एक ऐसे साहित्यकार है जिनकी कविताओं में मुक्ति का तीव्र स्वर मुखरित होते हुए दिखाई देता है। उनकी कविता संग्रह "मृगतृष्णा दर्पण अंतर्मन का' समकालीन काव्य जगत की वह रचना है जिसमें मानव मन को मुक्ति का स्वर मिला है, हृदय को विशालता की ओर बढ़ने का पायदान मिला है और विवेक को ज्ञान रूपी ब्रह्मांड में विचरण करने का पंख मिला है। इस संग्रह में कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से कई बिंदुओं को उजागर किया है। कई महत्वपूर्ण तत्वों के माध्यम से मानसिक शक्ति को पुनर्स्थापित करने का प्रयास भी किया है। रहस्यवाद के पथ पर चलते हुए तथा सकारात्मकता का आत्मसात करके किस प्रकार मानव एक स्वस्थ मन का निर्माण कर सकें उसका भी मार्ग दिखलाया है।

कविता संग्रह 'मृगतृष्णा दर्पण अंतर्मन का' में कुल 174 कविताएं संग्रहीत हैं जिन्हें उनके उद्देश्य अनुसार कुछ प्रमुख बिंदुओं में विभाजित किया जा सकता है।

1. कर्म और लक्ष्य प्राप्ति
2. आशावादी दृष्टिकोण की स्थापना
3. समय का मूल्य
4. मन की शुचिता
5. सफलता का बीजमंत्र
6. जीवन और दर्शन
7. प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता
8. आत्मिक चेतनाबोध
9. मृत्युभय से परे
10. व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति
11. मातृभूमि के प्रति निस्स्वार्थ सेवा भाव।

जैसेकि कवि स्वयं कहते है– "धरती हमारी कर्मभूमि है। कर्म की निरन्तरता ही हमें लक्ष्य की प्राप्ति करवाती है और लक्ष्य प्राप्ति के लिए यह भी आवश्यक है कि मनुष्य अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक हो और उसका लक्ष्य भी स्पष्ट हो, लेकिन दूसरी ओर हमारा मन हमारे विचार, वातावरण, परिस्थितियाँ एवं नकारात्मक वृत्तियाँ तथा दुर्गुण भी कई बार हमारे लक्ष्य में बाधाएं उत्पन्न करती है।"[1]

उनकी कविताएं समस्या पर अधिक केंद्रित न होकर समस्या की जड़ को ढूँढने में अधिक तत्पर हैं। कवि ने मानव को अपने आप के अंदर झाँककर अशान्ति के बीज को ढूंढ निकालने का मार्ग दिखाया है। ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का भाव रखते हुए वे लिखते हैं :–

अशान्ति
बैर– भाव
यह तेरा है वह मेरा है,
क्यों हो रहा? भगवान!..
दिखता कभी
घनघोर अंधेरा है।
शांति और सद्भाव
जीवन और मरण
सब कुछ ही हम सबका है,
सब कुछ तेरा है।[2]

कविता 'तेरे चरणों में अर्पित' इसी समर्पण की पराकाष्ठा को व्यक्त करता है। जीवन दर्शन निस्पृहता के मार्ग पर चलता है। इसी निस्पृह भाव से ही समर्पण संभव है और आगे चलकर यहीं समर्पण लक्ष्य प्राप्ति का पथ प्रशस्त करता है। कवि लिखते हैं –

हे ईश्वर!
जन्म और मृत्यु तो

तेरे हाथ है,
मेरा अगला पल भी
तब है
जब तू साथ है।
तूने जो कुछ भी दिया मुझे
वह तुझे ही समर्पित है,
कर सका जो सत
इस जीवन में
वे भी तेरे
चरणों में अर्पित है।[3]

एक तरह जहां कवि ने परम तत्व को व्यक्त किया है दूसरी तरफ उन्होंने इस भौतिक जगत में रहकर भी कर्तव्य पालन का संदेश दिया है। कवि ने मानव का जीवों के प्रति सहज प्रेम को उजागर किया है और साथ ही उन मानवों को भी धिक्कारा है जिनमें न धैर्य है, न संकल्प शक्ति, न अनुरक्ति है और न ही मोह माया से विरक्ति।

इस कविता संग्रह की केंद्र बिन्दु कविता 'मृगतृष्णा' है जिसमें कवि ने मनुष्य का स्वाभाविक रूप से असन्तुष्ट रहने की प्रवृत्ति को दिखाया है। पदार्थ सुख को ही प्रधान मानकर वह जीने की कोशिश करता है परंतु क्षणिक सुख के बाद जब वह वास्तविक सुख को ढूँढता है तो उसे निराशा ही प्राप्त होता है। कवि उन्हें कूपमंडूक कहते है जो चार दीवारों के अंदर अपनी अंधी दुनिया बसाये हुए हैं।

कवि का कोमल मन उन सभी सूक्ष्म तंतियों को स्पर्श करने में सफल है जो मानव मन की अति गहराइयों में छिपा हुआ है। उनका संवेदनशील हृदय संगति के महत्व को उजागर करते हुए यह मानने पर विवश है कि एक संवेदनशील व्यक्ति समाज में वह ऊर्जा स्रोत है। जिसकी संगति में हर कलुषात्मक प्रवृत्ति सकारात्मक आलोक बन जाता है। कविता 'संगति' में कवि लिखते है :–

जिसके हृदय में
दया भरी होती है
उसके पास आकर
हिंसक जीव भी
अहिंसक हो जाते हैं।
उसी प्रकार
दयावान, दानशील, उदार व्यक्ति
तो जीवन में
अपना सबकुछ बांटकर भी
सदा अमृत पाते हैं।
इनकी संगत में तो

कुटिल व्यक्ति भी
बदल जाते हैं।[4]

जिस प्रकार संवेदना और संवेदनशील व्यक्ति को उन्होंने समाज का वरदान माना है इसके विपरीत संवेदनहीन व्यक्ति को भू पर भार माना है और यह वहीं ईर्ष्यालू लोग है जो अपने ही कर्म के कारण जिंदगी भर रोते रहते हैं।

निशंक जी की कविताएं जीवन के जटिल गूढ रहस्यों को अत्यंत सरलता से व्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं। इस संग्रह के लगभग हर कविता में उन्होंने अपनी भावना को एक दर्पण का रूप माना है। उत्कृष्टता की पराकाष्ठा तक पहुँचने के लिए अंतर्मन ही सहायक बन सकता है। इसलिए कवि ने बार बार सुख के पीछे भागने की प्रक्रिया को मृग मरीचिका कहा है। आत्मज्ञान एवं आत्मचिंतन ही मानव धर्म के रक्षक बन सकते हैं।

कवि यह कहने पर विवश हो गए है कि मनुष्य की उद्दाम कामना ने ही उसके जीवन को कठिन से कठिनतम बनाया है। मनुष्य ने भी आचार विचार भुलाकर धैर्य और समर्पण की भावना को छोड़ दिया है और संस्कारों का हर एक दर्पण अपने हाथों से तोड़ दिया है।

समाज में स्खलित होते हुए मूल्यबोध पर कवि की गंभीर चिंता ने एक अलग प्रकार के चिंतन को जन्म दिया है। अन्ततः कवि ने मनुष्य को स्वयंभू का प्रकांड रूप माना है जिसके हाथों में सभी शक्तियां समाहित है। अगर वह चाहे तो संसार को स्वर्ग भी बना सकता है और चाहे तो उसे भयानक नरक में भी परिवर्तित कर सकता है। इसलिए कवि ने मनुष्य को जागृति के पथ पर आगे बढ़ने के लिए कहा है और स्वयं पर विश्वास रखना का संदेश दिया है :– उनके शब्दों में,

"तुम स्वयं के मित्र भी
तो शत्रु भी हो
तुम स्वयं ही राह भी
राहगीर भी हो,
तुम स्वयं ही स्वयं की
तस्वीर भी हो
तुम स्वयं ही स्वयं की
तकदीर भी हो।
तुम बनो निज मित्र
अपनी राह तुम खुद ही बनाओ
बन स्वयं के मित्र अपनी
आत्मा को तुम जगाओ।"[5]

कवि की भाषा बिम्ब प्रधान है और प्रगतिवादी तथा रहस्यवाद का भाव भी प्रखर रूप में दिखाई देता है। सरल भाषा में कवि ने कविता के सारे तत्वों को प्रस्तुत किया है तथा जीवन दर्शन का भी मूर्त रूप प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार कबीर दास ने जीवन को भवसागर माना है कवि निशंक ने भी जीवन यात्रा को सागर माना है और प्राणी को उस असीम सागर की लहरों के समान माना है। प्रखर आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी चिंतनशक्ति ही

जीव को उठते गिरते कहरों के समान क्षणभंगुर मान सकता है। आखिर मनुष्य जीवन क्या है? इस गंभीर प्रश्न के सम्मुख कवि स्वयं ही उत्तर प्रस्तुत करते हुए कहते है कि :–

सागर में /अनगिनत लहरें पैदा होती है
और वे उसी में /समय जाती हैं,
जल और लहर /कभी अलग नहीं होते हैं
वह कभी /अपना अस्तित्व नहीं खोते हैं।
ये संसार भी तो /एक सागर समान है
इस संसार में ये प्राणी /लहरों की तरह गोता खाता
आता जाता है।
ये प्राणी ब्रह्म रूप सत्ता
से प्रकट होकर
अंत में उसी में समाता है।[6]

कहीं न कहीं कवि का उदासीन मन बार बार उस परम सत्ता की ओर लौट जाने का रास्ता खोजती है जिसमें अनंत सुख एवं शांति है। आत्मा और परमात्मा के एकरूपता पर कवि का विश्वास है इसलिए तो लहर और जल को कभी अलग करके नहीं देखते। कबीर दास जी का दोहा 'जल में कुंभ, कुम्भ में जल।" उसी तथ्य को एक भिन्न दृष्टिकोण से उजागर करते हुए दिखाई देते हैं। अंत में सब कुछ मिलकर एकाकार हो जाते है और यहीं परम सत्य है। इस संग्रह के माध्यम से कवि ने यहीं समझाने का प्रयास किया है।

चेतना की जागृति से ही अंतर्मन का द्वार खुलता है। जिसने अपने अंतर्मन में झाँककर देख लिया हो उन्होंने समस्त संसार देख लिया है।

समग्र रूप से यह कविता संग्रह अंतर्मन के दर्पण के रूप में प्रामाणिक है तथा जिस भौतिक सत्य के पीछे लोग भागते है उसे असत्य प्रमाणित करते हुए उसे केवल एक मृगतृष्णा का पर्याय माना है।

समकालीन हिंदी साहित्य को इस प्रकार की रचनाओं की बहुत आवश्यकता है। यह केवल भारत ही नहीं पूरे विश्व को सही पथ दिखाने में सफल सिद्ध होगा।

**संदर्भ सूची :–**


1. डॉ रमेश पोखरियाल 'निशंक', मृगतृष्णा दर्पण अंतर्मन का, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 14
2. वहीं, पृ. सं. 32
3. वहीं, पृ. सं. 33
4. वहीं, पृ. सं. 37
5. वहीं, पृ. सं. 42
6. वहीं, पृ. सं. 160


koyalbiswas@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 103-106

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास एवं कृषि संकट

**पिंकी**

छात्रा, नेट हिन्दी साहित्य

"मुफ्त की कोई चीजें बाजार में नहीं मिलती,
क्यों किसान के मरने की सुर्खियां अखबार में नहीं मिलती।"

**आमुख :-**

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कृषि ही देश की आबादी का प्रमुख व्यवसाय है। पिछले कुछ दशकों में उद्योगों के विकास से कृषि क्षेत्र का योगदान कम हुआ है। इसी वजह से देश में कृषि संकट/किसान देशवासियों को प्रभावित कर रहा है। कृषि संकट के पीछे मुख्य कारण खराब नीति व योजना, कृषि क्षेत्र की कमी, वर्षा, कर्ज का दबाव, बिजोलिया द्वारा अधोखोरी है। वहीं इसका मुख्य प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था एवं किसानों की बढ़ती आत्महत्या दर पर देखा जा सकता है।

**परिचय :-**

किसान को देश की अर्थव्यवस्था की हड्डी माना जाता है। 21वीं सदी तक बहुत सारी योजनाएं किसानों एवं कृषि में बढ़ोतरी हेतु बनाई गई लेकिन इसका कोई असर इन दोनों की दशा में आज भी दिखाई नहीं देता। किसान के परिवार का भविष्य आज भी अंधकारमय दिखाई देता है जबकि वह संपूर्ण देश का अन्नदाता माना जाता है। विज्ञान एवं उद्योग के विकास ने मनुष्य के अंदर श्रम के प्रति घृणा का भाव भर दिया है। किसान एवं मजदूर वर्ग को हेय दृष्टि से देखा जाता है इसके अलावा कर्ज किसान को आत्महत्या करने पर आज भी मजबूर करता है। इसकी झलक हम हिंदी उपन्यासों में देख सकते हैं।

**अध्ययन के उद्देश्य :-**

इस लेख का प्रमुख उद्देश्य भविष्य में होने वाले निम्न संकटों से अवगत कराना है जो कि इस प्रकार है :-

1) कृषि भूमि की कमी एवं किसान आत्महत्या से उत्पन्न कृषि संकट।
2) बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बीज पेटेंट (तैयार) कराने से पैदा खतरा।
3) किसानों की जमीन हड़प उद्योग लगाने पर कृषि क्षेत्र में कमी।
4) सड़क निर्माण हेतु किसान की जमीन की मिट्टी लेने से भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी।
5) शोषण की वजह से किसान का कृषि से पलायन।

6) बढ़ती जनसंख्या में घटते कृषि क्षेत्र से पोषण का खतरा।

**साहित्यावलोकन :–**

कृषक जीवन के यथार्थ चित्रण में समय–समय पर साहित्य रचना होती रही है। प्रेमचंद जी के बाद भी अनेक उपन्यासकारों ने कृषक वेदना का सजीव अंकन किया है। जिसमें 21वीं सदी के उपन्यासों में कुर्मेंदु शिशिर का बहुत लंबी राह (2003), काशीनाथ का रेहन पर रग्घू (2004), राजू शर्मा का हलफनामा (2006), सूर्यदीन यादव का जमीन (2006), शिव मूर्ति का आखिरी छलांग (2008), भगवानदास मोरवाल का नरक मसीहा (2014), संजीव का फांस (2015), सुनील का कालीचाट (2015), पंकज सुबीर का अकाल में उत्सव (2017), मिथिलेश्वर का तेरा संगी कोई नहीं (2018) आदि प्रमुख है।

आज का किसान कर्ज के साथ–साथ खाद बीज, पानी की कमी एवं प्राकृतिक आपदाओं की वजह से भी कष्ट भोग रहा हैं। वहीं सरकार की नीतियां भी उसे फसलों का उचित मूल्य प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं। जिसकी वजह से या तो किसान आत्महत्या करने पर मजबूर है या वह कृषि को छोड़ना ही उत्तम मानता है। ऐसे में सोचिए अगर किसान ही कृषि से पीछे हटेगा तो कृषि का भविष्य क्या है?

**बहुत लंबी राह : कुर्मेंदु शिशिर (2003) :–**

यह उपन्यास एक भूमिहीन खेतिहर मजदूर महतो की व्यथा पर आधारित है। स्वतंत्रता के बाद जमींदार प्रथा तो खत्म हुई लेकिन व्यावहारिक स्तर पर जमीदारों के शोषण समाप्त नहीं हुए। पुराने जमींदार और धनी लोग बड़े किसानों के रूप में और अधिक शोषण करने लगे। जिससे भूमिहीनों की समस्या ज्यों की त्यों बनी रही।

**रेहन पर रग्घू : काशीनाथ (2004) :–**

इसमें यह दर्शाया गया है कि भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद ने शहरों के तो प्रभावित किया ही है बल्कि गांव भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। इसमें रघुनाथ जो केंद्र पात्र है वह किसान के साथ–साथ अध्यापक भी हैं। गांव में दो तरह के किसान हैं एक जो स्वयं काम नहीं करते, मजदूरों से काम कराते हैं दूसरे जो आध–बटाई या अधिया पर खेती करते हैं। खेती श्रम आधारित आधारित कार्य है, इसीलिए आज प्रत्येक व्यक्ति खेती करने में समर्थ नहीं है।

'कुछ हलवाए तो शहर चले गए रिक्शा खींचने के इरादे से या दिहाड़ी पर काम करने के इरादे से' पृष्ठ संख्या (79)

खेती को आजविका का अंतिम व्यवसाय माना जाता है। इस उपन्यास में भी कर्ज के कारण किसान की मृत्यु प्रमुख समस्या है। रघुनाथ के पास अपनी जमीन होने के साथ साथ नौकरी भी हैं। लेकिन जिन लोगों का कृषि के अलावा आय का कोई स्रोत नहीं, उनकी स्थिति आज भी शोचनीय हैं।

**हलफनामा : राजू शर्मा (2006) :–**

इस उपन्यास में किसान आत्महत्या के साथ–साथ जल संकट की समस्या को भी उजागर किया है। किसान आत्महत्या प्रसंग पर 'हलफनामा' हिंदी का प्रथम उपन्यास है। यह उपन्यास किसान आत्महत्या के साथ–साथ सामाजिक विषमताओं एवं अवसरवादी राजनीतिक चालों पर भी व्यंग्य है। इसके अलावा मीडिया और प्रशासन पर तंज कसता है कि किसान आत्महत्या मीडिया के लिए सिर्फ एक मसालेदार खबर होती हैं और

प्रशासन के लिए धन कमाने का माध्यम। आज भी किसान आत्महत्या ऐसा ही मुद्दा है।

**आखिरी छलांग : शिवमूर्ति (2008) :-**

"यह पता चल गया होता तो मिडिल, हाई स्कूल, इंटर मीडिएट तीनों... प्रथम श्रेणी में पास करने के बावजूद भी इस खानदानी दलदल में क्यों फंसते? (पृष्ठ संख्या 94)

इस उपन्यास में किसान जीवन की समस्याओं का गंभीर चित्रण है। इसके अलावा लेखक किसान की बदहाली का सरकार की किसान विरोधी नीतियों को जिम्मेवार मानता है। अतः जो कि भारतीय कृषि व्यवस्था के संकट की एक बेहतर समझ प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास के चरित नायक पहलवान को केंद्र में रखकर किसान की समस्याओं के माध्यम से कृषि की दुर्दशा तथा पांडे बाबा के आत्महत्या के प्रसंग के माध्यम से किसान की आत्महत्या के कारणों को उजागर करता है।

**कालीचाट : सुनील चतुर्वेदी (2015) :-**

युनुस सूखे कुएं की तली को देखते हुए .....बिचौलियों की घुसपैठ सरकार के अंदर तक हो गई है। (पृष्ठ संख्या 57)

उपन्यास कालीचाट (यानी काली चट्टान) से गिरे किसान जीवन की त्रासदी को उजागर करता है। एक और तो इसमें संघर्षपूर्ण जीवन से जूझते किसान दुर्दशा को उद्घाटित किया है वहीं दूसरी ओर भूमंडलीकरण और उदारीकरण के परिणाम स्वरूप उत्पन्न वैश्विक बाजार.. शोषण के नए एवं घातक साधन है। कालीचाट एक उम्मीद है जिसके नीचे जल है जो कि आशा एवं आकांक्षाओं का प्रतीक है जिससे किसान जीवन फिर से खुशहाल होगा। लेकिन यह उम्मीद करना भी पाप है। शोषण और अपमान के इस चक्कर में पिसते पिसते किसान आत्महत्या के लिए मजबूर हो जाते हैं। यह व्यवस्था निरंतर ऐसे ही चलती रहती है।

**फांस : संजीव (2015) :-**

अगले महीने बैंक का 24000 कर्ज अदा करना है ... मगर मुगलियों को तो बख्श दो। (पृष्ठ संख्या 62)

फांस उपन्यास किसानों के बढ़ती आत्महत्याओं को लेकर कर्नाटक के किसानों सहित भारत के उन सभी किसानों की दुर्दशा शामिल करता है जिन्हें पहले जीएम बीजों के इस्तेमाल पर फुसलाया गया और कर्ज दिया गया। लेकिन किसान दुर्भाग्य की वजह से कर्ज एवं सूखे के बोझ तले दबकर आत्महत्या की ओर अग्रसर होने पर मजबूर होते हैं।

**अकाल में उत्सव : पंकज सुबीर (2017) :-**

"कमला की तोड़ी बिक गई..... किसानी करने वाली अंतिम पीढ़ी होगी।"

इस उपन्यास में कर्ज की समस्या को पीढ़ी दर पीढ़ी ट्रांसफर होते दिखाया गया है। इसके अलावा यह सरकारी योजनाओं व भ्रष्ट शासन तंत्र की पोल खोल कर किसान की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करता है। पंकज सुबीर ने इस उपन्यास में प्रश्न भी किया है 'कि आपको किसने कहा है खेती करो? मत करो, अगर नुकसान का इतना ही डर है तो। जब कहा ही जाता है कि खेती तो मौसम के भरोसे खेले जाने वाला जुआ है तो क्यों खेलते हो इस जुए को?

अब यदि किसान खेती नहीं करेगा तो खाएगा क्या और दूसरा देश में कृषि संकट भी उत्पन्न होगा जो

कि किसी भी देश के पेट के लिए खतरा खतरा है।

**तेरा संगी कोई नहीं : मिथिलेश्वर (2018) :–**

इस उपन्यास में किसान की त्रासदी के साथ–साथ उनका खेतों में भावनात्मक जुड़ाव भी प्रस्तुत हुआ है। इसमें यही दिखाया है कि समाज में कितना भी परिवर्तन क्यों न हो लेकिन किसान का अपनी मिट्टी एवं खेती से मोह आज भी बरकरार हैं। लेकिन फिर भी सरकार उनके हित में नीतियां नहीं बना रही जिससे वे सम्मान पूर्वक जीवन जी सकें। यही कारण है कि नई पीढ़ी कृषि नहीं करना चाहती। इसके अलावा यह व्यक्त करता है कि किसान की अनिच्छा के बावजूद भी जमीन बेचने की व्यवस्था के दुख के कारण किसान की आत्महत्या तक का सफर कैसे उत्पन्न होता है।

**आधुनिक युग में प्रस्तुत शोध पत्र की प्रासंगिकता :–**

किसान की दुर्दशा प्रत्येक काल में प्रासंगिक रही है जो कि आज तक भी किसान के लिए अभिशाप ही बनी हुई है। लेकिन इसके साथ साथ आधुनिक युग में बढ़ती मशीनीकरण एवं औद्योगीकरण ने कृषि क्षेत्र एवं किसान वर्ग को और अधिक प्रभावित किया है। आज भी किसान कर्ज के दबाव में आकर आत्महत्या करने पर मजबूर हैं। और यदि भविष्य तक किसान हित में कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए तो यह ऐसे ही जारी रहेगा। किसान आत्महत्या कृषि संकट का महत्वपूर्ण भाग है। इसके अलावा बढ़ती जनसंख्या एवं औद्योगिकरण के कारण भूमि क्षेत्र की कमी भी कृषि संकट को उत्पन्न करता है।

**निष्कर्ष :** 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान आत्महत्या का जो रूप दिखाई पड़ता है वास्तव में वह उसका प्रतिरूप मात्र है। किसान त्रासदी साहित्य का विषय हमेशा ही रहा है लेकिन इस पर इतना प्रचूर एवं यथार्थ साहित्य होने पर भी देश का यह दुर्भाग्य है कि इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। यह सिर्फ साहित्य एवं चर्चाओं तक सिमटकर रह जाता है। किसानों की बदहाली को ठीक करने हेतु सरकार को फिजूल खर्ची एवं भ्रष्टाचार रोकना होगा। इनमें से बचत धनराशि को किसानों के हित के लिए खर्च किया जा सकता है। देश की बदहाली बुलेट ट्रेन या एक्सप्रेस–वैसे दूर नहीं होगी, बल्कि इसे कृषि क्षेत्र का विकास ही दूर करेगा। किसानों की हालत सुधारने में सरकारों को विशेष प्रयास करना होगा। अगर किसान बर्बाद हुए तो देश के चमकते महानगर एवं उद्योग भी खत्म हो जाएंगे। भविष्य में उत्पन्न होने वाले कृषि संकट से बचने के लिए किसानों की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। अतः अंत मे यही कहा जा सकता है कि :–

"जब किसान मेहनत करता है,
तभी इस संसार को भोजन मिलता है,
मत करो यूं उसको अनदेखा कर अपमान,
वही तो है वास्तविक देश की शान"।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :–**


1. काशीनाथ सिंह : रेहन पर रग्घू, पृष्ठ संख्या 79
2. शिवमूर्ति : आखिरी छलांग, रामकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 94
3. सुनील चतुर्वेदी : कालीचाट, अतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2015, पृष्ठ संख्या 57
4. संजीव : फांस, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या 65
5. पंकज सुबीर : अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, सीहोर, 2016, पृष्ठ संख्या 94

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 107-111

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# भारतीय समाज में नारी का स्थान

**स्मिता शंकर**

वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, एच०के०बी० के डिग्री कॉलेज नागवारा, बंगलोर –560045

**सारांश :–**

भारतीय समाज में नारी का स्थान एक महत्वपूर्ण और दिलचस्प विषय है। नारी का स्थान और महत्व बदलते समय के साथ–साथ विकसित हुआ है और इसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का गहरा प्रभाव हुआ है।

पुराने समयों में, भारतीय समाज में नारी को घरेलू कार्यों और परिवार की देखभाल करने का प्रमुख जिम्मेदार माना जाता था। उन्हें पुरुषों के साम्राज्य, अधिकारों और सामाजिक पदों से वंचित रखा जाता था। हालांकि, समय के साथ, महिलाओं की शिक्षा, स्वतंत्रता संग्राम, समाज सेवा आंदोलन और उनके सामरिक योगदान के कारण, नारियों का स्थान बदल गया है।

आजकल, नारियों को विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय रूप से देखा जाता है, जैसे विज्ञान, शिक्षा, न्यायिक पद, प्रशासनिक कार्य, सेना, साहित्य, कला, खेल, पायलट, लोको पायलट, ऑटो, रिक्शा ट्रक ड्राइवर, फूड डिलीवरी, बिजनेस, आईटी आदि। महिलाओं की उपस्थिति नेतृत्व, न्यायिक प्रणाली में उच्च पद, व्यापारिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका आदि में भी बढ़ रही है। नारियों का स्थान मात्र घरेलू कार्यों से बाहर निकलकर सार्वजनिक और व्यापारिक दुनिया में भी विस्तार प्राप्त कर रहा है। आधुनिक युग में, भारतीय महिलाएं अपने उद्यमिता, नौकरी, व्यापार, और शिक्षा के माध्यम से सफलता की ऊंचाइयों को छूने में सक्षम हो रही हैं।

इस शोध पत्र में हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि नारी का पहले से लेकर आज तक में क्या–क्या बदलाव और कैसे बदलाव आए हैं।

**मूल शब्द :–** स्त्री, भारतीय समाज, राजनीतिक, विज्ञान, स्थान, महिला सशक्तिकरण और पहचान।

**प्रस्तावना :–**

नारी शब्द का शाब्दिक अर्थ है औरत। विशेषतः वह स्त्री जिसमें लज्जा, सेवा, श्रद्धा आदि गुणों की प्रधानता हो।

सुबह की चाय से लेकर रात के खाने तक की तमाम जिम्मेदारियों का निर्वहन करती है नारी और उसको इसी रूप में देखा गया है। परंतु नारी अब इन सबसे ऊपर उठ चुकी है। भारतीय समाज में नारी को शक्ति का रूप माना जाता है प्राचीन भारत मातृ सत्तात्मक था। ईश्वर द्वारा बनाई गई सबसे खूबसूरत अमूल्य है।

स्त्रियों की तारीफ में मैथिलीशरण की बहुत ही सुंदर कविता है :–

'नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास–रजत–नग पग तल में
पीयूष–स्रोत–सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।'[1]

एक स्त्री जो बहन, मां, बेटी, दोस्त, हम सफर ऐसे अनेक रिश्ते–नाते निभाती हैं।

गांधी जी ने कहा था कि –'अगर अहिंसा हमारे जीवन का प्रधानमंत्री होता तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है।'[2]

पढ़ी–लिखी और सुसंस्कृत महिलाएं चाहे हिंदुस्तान के किसी भाग में रहती हो राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान दे रही हैं।

1. **प्राचीन काल :–** इस काल में महिलाएं भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में प्रसिद्ध थी। द्रौपदी, सावित्री, लीलावती इसके प्रमाण हैं। उन्हें पुरुषों से बात करने की क्षमता, कार्यकुशलता, समझ और हिम्मत थी। पुरातत्व में कई देवी–देवताओं की मूर्तियां के अवशेष मिली हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय महिलाएं देवी–देवताओं की पूजा करती थी और उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता मिलती थी।

**स्त्रियों ने प्राचीन काल में विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। कुछ मुख्य योगदान निम्नलिखित हैं–**

**आर्यभट्ट :–** भारतीय गणितज्ञ, ज्योतिषी और खगोलज्ञ आर्य भट्टाने सूर्य मंडल के आकार और चक्रवात या सौर मंडलिक कोण की गणना में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

**गार्गीव चकनी :–** वैदिक काल की प्रसिद्ध ऋषिका गार्गी वचकनी ने अपने अंतर्ज्ञान और तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

**रानी पद्मिनी :–** चित्तौड़गढ़ की रानी पद्मिनी ने अपनी अद्वितीय साहसिकता और राष्ट्रीय उद्धार के लिए प्रसिद्ध योगदान दिया।

**सुबद्रामा चौहान :–** भारतीय स्वतंत्रता सेनानी सुबद्रामा चौहान ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई और महिलाओं के सशक्त बनाया।

**संघमित्रा :–** जो अशोक की पुत्री थी तथा अपने भाई महेन्द्र के साथ बौद्ध धर्म के प्रचार में योगदान दिया।

**लीलावती :–** 12वीं शताब्दी के भारत की एक विदूषि स्त्री थी। इनके पिता प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य थे। और उन्ही के समान यह भी गणितज्ञ थीं।

यह केवल कुछ उदाहरण हैं जो स्त्रियों के द्वारा प्राचीन काल में किए गए।

2. **मध्यकाल :–**

यह वह समय था, जब राजा निरंकुश हो गए थे। पर्दे की प्रथा शुरू कर स्त्रियों को चारदीवारी में कैद कर दिया गया। जिससे उनकी बुद्धि संकुचित हो गई। वर्षों तक ऐसा ही चलता रहा। इस तरह अज्ञानता की शिकार होती गई और पुरुषों ने इसका फायदा उठाकर अहित कर कानून और नियम बना दिए।

गबन में विधवा रतन कहती है –'न जाने किस पापी ने यह कानून बना दिया था कि पति के मरते ही हिंदू नारी इस प्रकार स्वत्व वंचित हो जाती है।'[3]

राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा था कि– 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आंचल मे है दूध और आंखों में है पानी।'[4]

इसके बावजूद कुछ साहसी स्त्रियां अपने दायरे से बाहर आई और जिसमें प्रमुख नाम था– लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल, रानी दुर्गावती, रानी कर्णावती, महारानी तपस्विनी, महारानी पद्मावती जैसी वीरांगनाओं का काफी योगदान रहा है।

स्त्रियों का स्वतंत्रता प्राप्ति में उनका योगदान समग्र और महत्वपूर्ण पहलू है। स्त्रियां स्वतंत्र सेनानी के रूप में सत्याग्रह आंदोलन और राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय रही। समाज में जागरूकता फैलाने के लिए महिलाओं के अधिकार और समानता को सुनिश्चित करने में मदद की। उनके साहस समर्पण और अद्भुत क्षमता ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूती प्रदान की है। स्त्रियों का साक्षरता में योगदान भी उनके स्वतंत्रता प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और व्यापक प्रभाव समाज और आर्थिक विकास में होता है।

महिलाओं पर भरोसा जताते हुए जी.डी. एडरसन ने कहा था कि–' नारीवाद महिलाओं को मजबूत बनाने के बारे में नहीं है महिलाएं पहले से ही मजबूत है वह दुनिया को उस ताकत के तरीके को बदलने के बारे में है।[5]

### 3. वर्तमान काल :–

अब यह समय है कि ज्यादातर स्त्रियां पर्दे की प्रथा या गुलामी की दास्तां को तोड़कर बाहर निकलकर पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हुई हैं।

थॉमस सांकरा ने कितना सही कहा है कि –'मैं महिलाओं की चुप्पी की दहाड़ सुन सकता हूं।'[6]

स्त्रियां समाज सेवा करना, लोगों को शिक्षित करना, आंदोलन करना अपना कर्तव्य समझने लगी है। निर्दई कानून की जगह हितकर कानून पास करवाना, ज्ञान का प्रचार–प्रसार कर राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रही हैं।

गरीबी न्याय सामाजिक असमानता और अन्य सामाजिक मुद्दे के खिलाफ लड़ाई लड़ रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्राप्त कर शिक्षित स्त्रियों ने ना केवल अपनी खुद की स्थिति सुधारी है, बल्कि वे परिवार और समाज के विकास में भी मदद करती हैं। स्त्री मतदान कर्ताओं के रूप में, स्त्रियाँ भारतीय लोकतंत्र में अपना आधिकारिक वोट देती हैं और राजनीतिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भूमिका निभाती हैं।

स्त्रियाँ आजकल साक्षात्कारों से लेकर सीईओ तक कई महत्वपूर्ण पदों पर कार्य कर रही हैं। वे सरकारी नौकरी, बैंकिंग, आर्थिक सेवाएं, सैन्य, मीडिया, विज्ञान और प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में सक्रियता दिखा रही हैं। स्त्रियाँ भारतीय साहित्य और कला में भी अद्यतित हैं। उन्होंने उपन्यास, कविता, कहानी, नाटक, फिल्म, फोटोग्राफी, पेंटिंग और संगीत आदि क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाई है। उनकी रचनाएँ और क ला कार्य प्रेरणादायक हैं और समाज में सुधार की दिशा में प्रभावी रूप से काम करती हैं।

महिलाएं सशक्तिकरण के लिए नारीवाद आंदोलन संगठन और मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान है। सामाजिक सुधार और समानता के प्रति हमारे समाज के हर सदस्य को सहयोग करना आवश्यक है। हमें नारी के अधिकारों और स्वतंत्रता के साथ अपनी स्वायत्तता और सम्मान की पहचान देनी चाहिए। नारी को समाज में उचित स्थान देना हम सबकी नैतिक जिम्मेदारी है। नारी के अधिकारों के प्रोत्साहन के लिए हमें सामाजिक

मान्यता कानूनी सुरक्षा और संरक्षण की व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिए। इसके लिए हमें दहेज प्रथा, बाल विवाह और परिवार में हिंसा जैसी खतरनाक प्रथाओं के खिलाफ लड़ना होगा। हर व्यक्ति को नारी का सहयोग करना चाहिए। हमें समाज के हर नारी के लिए समान अवसर, उच्च शिक्षा, साक्षरता, रोजगार और उद्यमिता के क्षेत्र में समर्थन और अवसर प्रदान करने की जरूरत है। हमें सामाजिक बदलाव प्रोत्साहित क रने मानवीयता, नैतिकता और उत्तममान दंडों का पालन करने की आवश्यकता है। हमें नारी को सशक्त बनाने के लिए प्रतिष्ठा, नेतृत्व और निर्णायक रोल में सम्मानित करना है।

नारी की शिक्षा, बालिकाओं की शिक्षा पर ध्यान देना उन्हें विज्ञान प्रौद्योगिकी गणित और क्षेत्रों में उन्नति के लि ए प्रोत्साहित करना चाहिए। विभिन्न सरकारी और गैर सरकारी संगठनों को उनके विकास में सहायता करनी चाहिए। महिलाओं को अपनी स्थिति में सुधार के बावजूद कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वे अक्सर पुरुषों से कम तर समझी जाती हैं और प्रताड़ित होती हैं। हालांकि, सरकार और समाज के प्रयासों से महिलाओं की स्थिति में सुधार हो रही है, लेकिन पश्चिमी देशों की महिलाओं की तुलना में वे अभी भी पीछे हैं। स्वतंत्रता हासिल होने के बाद भी नारियाँ पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं है। नेल्सन मंडेला जी ने बिल्कुल सही कहा है कि–'जब तक महिलाओं को सभी प्रकार के उत्पीड़न से मुक्त नहीं किया जाता, तब तक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती।'[7]

महिलाओं को अधिक अवसर प्रदान करने और उनकी प्रगति को बढ़ाने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए, समाज में महिलाओं के प्रति अधिक सम्मान का होना चाहिए और सरकारी नीतियों को महिलाओं के हित में और प्रगति में संशोधन करने की आवश्यकता है। नारियों को भी खुद से भी अपनी स्थिति बेहतर करने के लिए आगे आना होगा। नोराए फ्रॉन ने सही कहा है –'आगे बढ़कर, अपने जीवन की नायिका बनो, न कि पीड़िता। '[8]

**निष्कर्ष :-**

सामारिक दृष्टि कोण से देखें तो, पुरातत्व में कई देवी–देवताओं की मूर्तियां मिली हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय महिलाएं देवी–देवताओं की पूजा करती थी और उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता मिलती थी। वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति बेहतर थी। हालांकि, समय के साथ, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के कारण, महिलाओं की स्थिति में कमी आई और उन्हें पुरुषों के साम्राज्य के तहत रहना पड़ा। हालांकि, अभी भी लिंगानुपात, बाल विवाह, दहेज प्रथा, परिवार में हिंसा, और महिला शोषण जैसी समस्याएं मौजूद हैं। हमें इन मुद्दों पर विचार करने, जागरूकता फैलाने और समाज में संशोधन के लिए आवाज़ उठाने की आवश्यकता है। नारी का स्थान भारतीय समाज में एक प्रशंसनीय और समर्पित स्थान होना चाहिए, जहां उसकी आत्मा की महत्वाकांक्षा, अभिवृद्धि और समान अवसरों की पहचान हो। हमें बिना जाति, धर्म, लिंग और भेदभाव के समाज की नींव का निर्माण करना चाहिए।

वर्तमान में महिलाओं को अपनी पहचान स्थापित करने के लिए कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन कठिनाइयों में सामाजिक और पारंपरिक मान्यताओं की समस्याएं, स्थानीय बाधाओं की अनुपस्थिति पेशेवर संगठनों में उच्च स्तरीय पदों की कमी और विशेष रूप से व्यापार में भागीदारी में और असमानता शामिल होती है। नारी को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए उन्हें व्यापार उद्योग और नवाचार में स्वतंत्रता और समर्थ न

प्रदान करने की आवश्यकता है। सरकार को आर्थिक सहायता, कर्मचारी सुरक्षा योजना और बैंक जनों की सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिए ताकि नारी आत्म निर्भर बन सके।

**सहायक ग्रंथ सूची :-**


1. कामायनी महाकाव्य (लज्जा सर्ग)–जयशंकर प्रसाद।
2. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, पेज नंबर– 111
3. गबन पेज नंबर– 337
4. स्त्री विमर्श का काल जयी इतिहास, राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त – पेज नंबर –121
5. https://www.digitalkhabar.in/women.quotes.in.hindi/
6. https://www.digitalkhabar.in/women.quotes.in.hindi/
7. अमर उजाला, पत्रिका जुलाई 2017
8. अंतराजाल के सौजन्य से।



फोन न०–8867343688

ईमेल– kumsmita886@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 112-115

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# हिंदी सिनेमा और सामाजिक चेतना

**आपी लंकाम**

सहायक प्रोफेसर, इंदिरा गाँधी शासकीय महाविद्यालय, तेजू, लोहित, अरुणाचल प्रदेश, पिन कोड –792001

**शोध सार :–**

हिंदी सिनेमा समाज में बदलाव लाने और समाज को प्रभावित कर सामाजिक चेतना जगाने का काम करता है। सिनेमा का अर्थ है –चलचित्र फिल्म, यह किसी घटना या कहानी की चलती हुई तस्वीरें हैं जो एलेक्ट्रोनिक उपकरण के माध्यम से या सहायता से पर्दे पर दर्शकों को दिखाई जाती है। सामाजिक चेतना जगाने में हिन्दी सिनेमा ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। सिनेमा ही एक ऐसा माध्यम हैं जिससे लोग पूरे रूप से प्रभावित होता है। इसमें कथा, ध्वनि, चित्र, संदेश, उपदेश, ज्ञान, बुद्धि, गीत, संगीत, विज्ञान और भी कई सारें विशेषताएँ संकलित होते हैं। इस प्रकार यह जनता का मन मोह लेते हैं। दुनिया में ऐसा कोई इंसान नहीं होगा जिसने सिनेमा न देखा हो। हिन्दी सिनेमा ने लोगों में राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीयता, प्रेम, देशभक्ति, समाज सुधार, यथार्थ, मानवता आदि से प्रभावित किया और समाज को एक नया दिशा प्रदान किया। हिन्दी सिनेमा के साथ सिनेमा बनाने वाले निर्माता, निर्देशक, किड़दार, अभिनयकर्ता तथा अन्य पात्र का भी बहुत बड़ा योगदान है। सिनेमा में मौजूद गीत–संगीत ही हिन्दी सिनेमा का आत्मा है। इन सभी के युक्त होने पर ही एक सफल फिल्म बन पाते हैं और लोगों को जागृत करने में सक्षम हो पाते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि जिस तरह साहित्य समाज का दर्पण होता है, उसी तरह सिनेमा समाज को प्रतिबिंभित करता है और इस तरह वह सामाजिक चेतना दिलाने में सक्षम हुए हैं।

**बीज शब्द :–** राष्ट्रीयता, प्रेम, यथार्थ, मानवता, उपदेश, ज्ञान।

**मूल आलेख :–**

सिनेमा का अर्थ है–चलचित्र फिल्म, यह किसी घटना या कहानी की चलती हुई तस्वीरें, जो एलेक्ट्रोनिक उपकरण के माध्यम से या सहायता से पर्दे पर दर्शकों को दिखाई जाती है। हिन्दी सिनेमा का जन्म हुए सौ वर्ष हो गए हैं। इन सौ वर्षों में हिन्दी सिनेमा ने राजनीनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना को जागृत किया। हिन्दी सिनेमा समाज में केवल मनोरंजन या पैसे कमाने के लिए नहीं जन्मा है। यह भारतीय जीवन के विविध पहलुओं को बदलने के लिए और समाज में व्याप्त हर तरह की संवेदनाओं को दर्शाने और परिवेश में चित्रित कराने के लिए ही जन्म लिया गया है। हिन्दी सिनेमा सामाजिक समस्याओं के प्रति एक ईमानदार संवेदनशीलता और समस्याओं का समाधान करने में दर्शकों में जागरूकता पैदा कराना चाहते थे। जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण है उसी प्रकार सिनेमा भी समाज का दर्पण है। समाज में हो रहे यथार्थ का चित्रण साहित्य में चित्रित

किया जाता है, ठीक उसी प्रकार समाज में में हो रहें सच्ची तस्वीर को ही सिनेमा में दर्शाया जाता है। साहित्य के ही तरह हिन्दी फिल्मों का प्रथम दौर भी एतिहासिक और धार्मिक फिल्मों का था। इस प्रकार यह लोगों में देश प्रेम, सांस्कृतिक चेतना, आदर्श–सम्मान की भावना जगाने में प्रेरित किया। नवजागरण के रूप में भी हिन्दी सिनेमा ने देश को जागृत करने में अहम भूमिका निभाई है। देश में प्रचलित कुप्रथाएँ, कुरीतियाँ, रूढ़िवादिता, पाखंड और अंधकार से लोगों को जागृत किया। फिल्मों के निर्माता, निर्देशक, अभिनयकर्ता और अन्य पात्र सभी सम्मिलित होकर बड़े ही जीजान से और मेहनत से काम करते है ताकि उनके फिल्म देखने वाले दर्शकों को जागरूक कराने का और प्रभावित कराने में सक्षम हो सकें। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी सिनेमा ने समाज में स्वतन्त्रता संग्राम, देशभक्ति, देशप्रेम, सामाजिक एकता, अंग्रेजों के प्रति आंदोलन, राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीय एकता जैसे फिल्म बनाकर समाज को नए दिशा की और सूचित किया और सामाजिक चेतना जागृत कराने में सफल भी रहा।

जिस तरह देश का विकास होते जा रहा है, उसी तरह हिन्दी सिनेमा भी प्रगति की और कदम बढ़ाते जा रही है। समाज में बहुत सारें समस्याएँ हैं जैसे– ग्रामीण जीवन को लेकर, किसान जीवन, स्त्री केन्द्रित, दलित दुर्दशा, बुजुर्गों के मुद्दे, वेश्याओं के जीवन, राजनीति पर आधारित हिन्दी सिनेमा, शिक्षा पर आधारित हिन्दी सिनेमा, मानव तस्करी पर बनी हिन्दी सिनेमा और भी कई सारें अन्य समस्याओं को दर्शाया गया है। सिनेमा के माध्यम से समस्याओं का समाधान कराने का प्रयास किया गया है। समाज में विख्यात उलझनों को सुलझाने का भी प्रयास किया गया है। इसके चलते लोगों को जागरूकता और चेतना प्रदान कराने में कामयाब होते जा रहे हैं। यह लोगों को सतर्क, सावधान और सचेतन रहने का संदेश दे रहा है। आधुनिक होने पर भी हिन्दी सिनेमा ने अपने देश की सांस्कृति, ऐतिहासिकता और आदर्श–सम्मान चित्रित कराने वाले सिनेमा के माध्यम से समाज के मन और मस्तिष्क में सकुशल भावना का चेतना प्रदान किया। इस तरह हिन्दी सिनेमा ने प्राचीन भारतीयों में विद्यमान सकुशल भावना को बरकरार रखने में अहम भूमिका निभाई है। प्राचीन भारतीय विशेषताओं के साथ–साथ आधुनिक युग की प्रभावशाली विशेषताओं का समन्वय हिन्दी सिनेमा में विद्यमान है। इस प्रकार समन्वयतमकता की भावना से लोगों को जागृत करा रहे है। अतः उपरोक्त में बताएं गए विशेषताओं से युक्त समस्त समाज को जागृत कराने वाले और लोगों में चेतना प्रदान कराने वाले कुछ पुराने और आधुनिक हिन्दी की सिनेमाओं के नाम निम्नलिखित है :–

1. **देशभक्ति जागृत कराने वाले हिन्दी सिनेमा :** बार्डर, द लीजेंड ऑफ भगत सिंह, चक दे इंडिया, लगान, गदर : एक प्रेम कथा, भाग मिलका भाग, तिरंगा, ए वेडनसडे, मदर इंडिया, पूरब और पश्चिम, आदि।
2. **ग्रामीण और किसान जीवन पर केन्द्रित हिन्दी सिनेमा :** दो बीघा जमीन (1953), मदर इंडिया (1957), लगान (2001), पीपली लाइव (2010), उपकार (1967) आदि।
3. **ऐतिहासिक हिन्दी सिनेमा :** मुगल–ए–आजम (1960), गरम हवा (1974), शतरंज के खिलाड़ी (1977), द लीजेंड ऑफ भगत सिंह (2002), सरदार (1993), अर्थ (1999), नेताजी सुभाष चन्द्र बोस : द फॉरगोटन हीरो (2005), सरदार उधम (2021), बाजीराव मस्तानी (2015), केसरी (2019)। मानिकरणिका : झांसी की रानी (2019), पद्मावत (2018)
4. **दलित दुर्दशा पर केन्द्रित हिन्दी सिनेमा :** अंकुर (1974), सद्रग्ति (1981), चमेली की शादी (1986), बैंडिट क्वीन (1994), अनुच्छेद 15 (2019), आरक्षण (2011), धडक (2018), खाप (2011), मांझी–द माउंटेन मैन

(2015), शूद्र : द राईजिंग (2012), सुजाता (1959), समर (1999) आदि।

5. **स्त्री केन्द्रित हिन्दी सिनेमा :** मदर इंडिया, बैंडिट क्वीन, लज्जा, डोर, अस्तित्व, अर्थ, कहानी, क्वीन, नीरजा, इंगलिश विंग्लिश आदि।

6. **बुजुर्गों के मुद्दो पर बनी हिन्दी सिनेमा :** बागबान (2003), अवतार (1983), शौकीन (1981), सारांश (1984), मम्मों (1994), 36 चौरंगी लें (1981), भुवन क्षोम (1969), वन्स अगेन (2019),रामप्रसाद की तेहरवि (2019), कल आज और कल (1971)

7. **वेश्याओं के जीवन पर बनी हिन्दी सिनेमा :** पाकीजा, उमराव जान, शराफत, देवदास, गंगूबाई काठीयावाड़ी।

8. **बच्चों पर बनी हिन्दी सिनेमा :** तारे जमीन पर, चिल्लर पार्टी, स्टेनली का डब्बा, फरारी की सवारी, बम बम बोले, तहान, निल बटे सन्नाटा, स्लमडॉग मिलेनियर, आई एम कलाम, इकबाल आदि।

9. **मानव तस्करी पर बनी हिन्दी सिनेमा :** मर्दानी, लक्ष्मी, बाज़ार, लव सोनिया, पाखी आदि।

10. **शिक्षा पर आधारित हिन्दी सिनेमा :** तारे जमीन पर (2007), 3 इडियट्स (2009), चल चलें (2009), पाठशाला (2010), आई एम कलाम (2010), फालतू (2011), आरक्षण (2011), इंगलिश विंग्लिश (2012), निल बटे सन्नाटा (2016) फिल्म चालक एंड डस्टर (2016) आदि।

11. **राजनीति पर आधारित हिन्दी सिनेमा :** आंधी, किस्सा कुर्सी का, युवा, नायक, सत्ता, गुलाल, राजनीति, सत्याग्रह, सरदार, यांगिस्तान आदि।

हिन्दी सिनेमा को सम्पन्न बनाने में कथा लेखक या पटकथा लेखक का भी बहुत बड़ा योगदान है। जिस प्रकार 'काव्यशास्त्र' में 'अलंकार' भाषा को शब्दार्थ से सुसज्जित और सुंदर बनाने का काम करता है, ठीक उसी प्रकार कथा लेखक अपने पटकथा को सुसज्जित और सुंदर तरीके से लिखने का काम करता है ताकि वह सिनेमा लोगों को अधिकतम रूप से प्रभावित कर सकें। इसके साथ सिनेमा में मौजूद गीत–संगीत ने भी लोगों में चेतना प्रदान करने में अहम भूमिका निभाई है। जिस प्रकार 'काव्यशास्त्र' में आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यम रसात्मक कावयम' कहकर रस को काव्य की आत्मा बताया है।

उसी प्रकार हिन्दी सिनेमा में गीत–संगीत ही सिनेमा का आत्मा है। गीत–संगीत के बिना हिन्दी सिनेमा अधूरा है। यह गीत–संगीत ही है जो सिनेमा को आत्मा प्रदान करता हैं। गीत संगीत ही दर्शकों को 'रस' यानि 'आनंद' प्रदान करता है। सिनेमा में गाये जाने वाले गीत–संगीत के द्वारा ही जागरूकता और चेतनता का संदेश दर्शक के चित्त तक पहुँचाते हैं। इस चित्त की एकाग्रता ही समाज में चेतना प्रदान करने का काम करता है। इस प्रकार सामाजिक चेतना दिलाने में गीतकार–संगीतकार का भी बहुत बड़ा योगदान है। एक सक्षम और सफल सिनेमा बनाने में सिनेमा के निर्माता, निर्देशक, नायक–नायिका, अभिनयकर्ता, किड़दार निभाने वाले, अभिनय करने वाले, कथा लेखक या पटकथा लेखक, गीतकार–संगीतकर तथा अन्य किड़दार निभाने वाले सभी पात्रों और सदस्यों का अहम भूमिका होता है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि सिनेमा और सिनेमा बनाने वाले सभी सिनेमा सदस्यों का उद्देश्य केवल पैसा कमाना नहीं होता है बल्कि वे इस बात पर ज्यादे ध्यान देते हैं कि किस प्रकार समाज को अंधकार से बाहर निकालकर प्रकाश की ओर लेकर जाए? किस प्रकार समस्त भारत के साथ समस्त विश्व को और समस्त

विश्व के साथ समस्त पृथ्वी पर रहने वाले मानव जाति को जागृत कराया जाए? और किस प्रकार उनमें चेतना प्रदान करें। इन सभी विशेषताओं से युक्त होने पर ही एक सफल ब्लॉकबास्टर सिनेमा सम्पन्न होता है। सम्पन्न होने पर ही वह सिनेमा अधिकतम रूप से समाज को प्रभावित कर सकेंगे।

अतः भारत में सिनेमा के प्रारम्भ से आज तक हिन्दी सिनेमा सामाजिक चेतना जगाने में अहम भूमिका निभाते आ रहे हैं और भविष्य में भी सामाजिक चेतना जागृत कराने वाले सशक्त मिसाल बनकर खड़े रहेंगे।

**संदर्भ ग्रंथ :-**


1. https://www.prabhasakshi.com
2. https://hindi.careeridia.com
3. https://www.downtoearth.org
4. https://m.sahityakunj.net
5. https://www.thelallantop.com
6. www.indiatimes.com
7. www.aajtak.in



apilangkam1986@gmail.com,
मोबाइल नंबर 9862857587

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 116-118

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# आधुनिक युग में मीरा के पदों का प्रभाव

**विनीत शर्मा**

प्राथमिक संगीत शिक्षक, केंद्रीय विद्यालय, समालखा।

**भूमिका :–**

मीरा एक रचनाकार होने के साथ–साथ श्रेष्ठ संगीतकार भी थी। उनकी भक्ति भावना और संगीत के समन्वय ने उन्हें सदा के लिये अमर बना दिया। मीरा आज के युग में भी उतनी ही प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं, जितनी वह अपने समकालीन युग में थी, अपितु आज और अधिक प्रासंगिक बनकर संस्पर्श करने लगी हैं। चाहे यजुर्वेद का भद्रभाव हो या सामवेद की सांगीतिक परम्परा का विविध राग रागिनियों में विकास करना हो, या गीता के निष्काम भाव का पल्लवन हो, सबकी भूमिका का संदर्भ भक्त मीरा के पदों तथा भजनों से सम्बंधित है।

**भारतीय संगीत पर मीराबाई का प्रभाव :–**

मीरा की आत्मा अपने प्रभु के दर्शन के लिये इतनी व्याकुल थी कि उससे मिलने के लिये उन्होंने सब साधन खोज निकाले, परन्तु मीरा को कहीं भी प्रभु मिलन की आस दिखाई न दी, तब उन्होंने हाथ में इकतारा लेकर संगीत के सुरों से अपनी भक्ति भावना को प्रकट किया। संगीत के इसी गेयत्व ने उन्हें अमरत्व प्रदान किया। उनका गान उनकी आह से निकलकर सीधे कृष्ण भगवान के हृदय में पहुंच कर अनाहत नाद बन गया था, इसलिये मीरा के पदों में आज भी संगीत की अविरल धारा प्रवाहित हो रही है। गीति काव्य की इस गायिका को देखकर महाकवि निराला जी ने सही कहा है कि 'मीरा संगीत की देवी थी'। संगीत साधना का उद्देश्य मूलतः मोक्ष साधन है, इसका प्रमाण मीराबाई के संगीत में मिलता है। जिस प्रकार उच्च काव्य का जन्म अनुभव से होता है, उसी प्रकार संगीत साधना जब आत्मानंद के समय की जाती है, तब दिव्य आनंद मिलता है। मीरा बचपन से ही भक्ति तथा संगीत में डूबी हुई थी। मीरा के पदों में प्रेम तथा विरह का गुंफन दिखाई देता है। इन पदों को नृत्य करते–करते गायन का रूप देकर अपने ईष्ट देवता को प्रसन्न करना मीरा का लक्ष्य रहा। मीरा के पदों में गेयत्व अधिक है, इसलिये मीरा की अधिकतर पद रचनाएं गायन में मिलती हैं। मीरा ने भक्ति गीतों की सराय गायक पथियों के लिये खुली रखी है। निश्चित रूप से संगीत रचनाकारों में मीरा का स्थान अलग तथा महत्वपूर्ण था। मीरा की संगीत निपुणता उनके काव्य को लय, कोमलता तथा मिठास देती है। मीरा के पदों में एक नर्तक का ताल ज्ञान है, जिसकी टेक गिरधर का रमण है।

रंग भरी राग भरी राग सूं भरी री।
होली खेल्यां स्याम संग, रंग सूं भरी री।

मीरा के पद गेय तत्व से युक्त होकर छंदबद्ध अवस्थय हैं परन्तु आवेग नियमों के तट बंध छित्र भित्र कर

देती है। अन्य संत कवियों की भान्ति मीरा के गीतों की अद्‌भुत गीतात्मकता ने भारत में इनकी पदावली को निरविधी काल में अधिष्टित किया।

**भारतीय समाज पर मीराबाई का प्रभाव :–**

मीरा के जीवनकाल से लेकर आज तक उनके पदों का भक्ति तथा संगीत का सीधा सम्बंध रहा है। जनमानस पर मीरा का इतना प्रभाव पड़ा कि हिन्दी, गुजराती तथा बांगला भाषाओं में ही नहीं अंग्रेजी में भी मीरा के पदों का भाषानुवाद हुआ है। पूना के हरिकृष्ण मठ में श्रीमती इन्दिरा देवी ने मीरा के नाम से श्रद्धान्जली में 136 पुष्पांजली में 95 सुधांजलि में 185 तथा दीपांजलि में 167 भजन लिखे हैं। उनकी यह श्रद्धा रही है कि ये भजन स्वयं मीरा ने उन्हें डिक्टेट किये हैं। भक्ति भागिरथी राजरानी मीरा सृजिक साहित्य भारतीय समाज की संपदा है। मीरा की भक्ति रस पूर्ण वाणी ने भारतीय जनमन को ही नहीं विश्व के भक्त हृदयों तक को विमोहित किया है। मीरा के साहित्य ने पूरे देश को प्रभावित किया है। यह समाज पहले उनकी रचनाओं को पढ़ कर तथा सुन कर उसके साथ अपने हृदय के भावों का जब तारतम्य जुड़ा पाता है, तब वह जिज्ञासु भी हो उठता है कि ऐसी रचना वाला कौन था और तब मीराबाई के जीवन के ऐतिहासिक एवं जनश्रुति आधारित तथ्यों को जानकर उसका मानस रचनाकार के प्रति और भी जुड़ जाता है।

मीरा की रचनाओं में वेदना अपनी मौलिकता में और पूरी सहजता में प्रकट होती है। वेदना और प्रेमाभिव्यक्ति जब सुरों में ढ़लने योग्य हो जाएं तब जनमानस के कंठ में बस जाती हैं। श्रोता की वेदना को साम्य मिल जाता है। मीरा की रचनाएं आज भी भारतीय समाज के हृदय में बसी है, आज भी भक्ति संगीत के कार्यक्रमों में मीरा के भजन आवश्यक अंग रहते हैं। समाज पर मीरा के प्रभाव को बढ़ाने में उनसे सम्बन्धित जनश्रुतियों का भी हाथ रहा है।

मीरा को ज़हर का प्याला दिया जाना, साँप का पिटारा भेजा जाना, शूलों की सेज पर सुलाना तथा अंत में द्वारिका के रणछोड़ मंदिर में उनकी मूर्ती में ही समा जाना, ये जनश्रुतियां भले ही ऐतिहासिक रूप से असत्य ही हों, परन्तु मीरा के प्रभाव को जनमानस में दुगुना तिगुना कर देती हैं। मीरा के पदों से लोक हृदय का स्पंदन जुड़ा है। ऐसा मर्मस्पर्शी तथा अद्‌भुत काव्य पाँच सौ वर्षों के पश्चात भी पूरे विश्व में कहीं देखने को नहीं मिलता, यही मीरा की सबसे बड़ी विशेषता है।

मानव की आत्मा बनकर बोलने वाली त्याग व प्रेम की मूर्ती मीरा, जिसका गीत गुंजन रामायण पाठ की भान्ति देश के कोने–कोने में होता रहा है। सामाजिक दृष्टी से मीरा शोषित, अपमानित और पीड़ित नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती है। किसी भी महान उद्देश्य को लेकर चलने में अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं और वे बाधाएं भी परिजनों द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। संघर्ष के मूल में यदि न्याय, धर्म, लोकहित की भावनाएं निहित हों तो वह संघर्ष सदैव सफल होता है। मीरा के जीवन का संघर्ष भी ऐसा ही था। मीरा की आध्यात्मिकता लोक संस्कारों से आप्लावित है। उन्होंने नारी जीवन के वास्तविक अनुभवों को शब्दबद्ध किया है। उन्होंने सिर्फ अपनी ही व्यथा नहीं कही, बल्कि अपने युग की असंख्य नारियों की व्यथा कही है। संपूर्ण भारतवर्ष में मीरा के पद घर–घर में समाज और मंदिरों में भजन, कीर्तन और पूजन में गाए जाते हैं। उन्होंने सभी संप्रदायों और विविध भाषा भाषी जनों को भक्ति के रंग में रंगा है।

मीरा के पद किसी विशेष संप्रदाय से सम्बंधित नहीं थे। इसी कारण मीरा भारतीय जनमानस पर छा गई।

लोक चित्त में घटित एक सहज शान्त प्रक्रिया द्वारा मीरा का प्रभाव जन–जन तक व्यापी हुआ है। यही मीरा के प्रभाव की महत्ता है।

**निष्कर्ष :–**

मीरा की गणना भारत के महान संत कवियों में की जानी चाहिये, क्योंकि काव्य रचना में यदि शुद्ध भावना भी सम्मिलित हो जाये तो वह रचना तथा रचनाकार दोनों अमर हो जाते हैं। अर्थ व धन की कामना से दूर मीरा तो केवल अपने प्रभु कृष्ण में लीन रहती थी। परिवार और समाज के द्वारा दी गई यातनाएं भी उन्हें अपने पथ से ना डिगा सकी। कृष्ण पर उनका अटूट विश्वास उन्हें हर बाधा से पार ले गया। गायन तथा नृत्य के माध्यम से वह अपने प्रियतम को रिझाती थी। मीरा की संगीतबद्ध रचनाएं आज भी प्रभु भक्तों के लिये प्रेरणा स्त्रोत तथा मार्गदर्शक हैं। सारा भारतवर्ष भक्त शिरोमणी मीराबाई पर गर्व करता रहेगा।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :–**


1. मीरा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व।
2. संजय मलहोत्रा।
3. मीरा संगीत, अंक 1978
4. मीराबाई, डॉ. प्रभात।



vineetsharma1501@gmail.com

M. 9537159404 by Nirala

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 119-122

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# बालकृष्ण शर्मा नवीन के काव्यों में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना

**डॉ. जे. सेन्दामरै**

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सीतालक्ष्मी रामस्वामी महाविद्यालय, तिरुच्चिरापल्ली– 620002, तमिलनाडु

श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन हिन्दी के रस–सिद्ध कवि है। उनमें आवेग और कल्पना का मणि–कांचन योग साधित हुआ है। कवि के काव्यों में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना कूट–कूट के भरी है। देशप्रेम की भावना आधुनिक काल की एक मुख्य प्रवृत्ति रही है। युगीन परिस्थितियों से प्रभावित साहित्य जन–जीवन के स्वातंत्र्य के लिए मुखरित हो उठा था। डॉ॰ नगेन्द्र ने इस प्रवृत्ति को ''आधुनिक हिन्दी की एक अत्यन्त प्रबल प्रवृत्ति'' माना है जिसमें उनके अनुसार ''भावात्मक और क्रियात्मक दोनों रूपों की अभिव्यक्ति मिलती है''।

देश–प्रेम की भावनाओं से संकुल रचनाएं अत्यन्त विस्तृत भावभूमि पर स्थित होती है। इसका कारण यह है कि 'देशभक्ति में प्राधान्य तो निस्संदेह 'उत्साह' का ही है परन्तु उसमें राग का आधार भी वर्तमान है। देशभक्ति व्यक्तिपरक न होकर समष्टिपरक भाव है, अर्थात् यह राग–मिश्रित उत्साह व्यक्ति के प्रति न होकर समष्टि के प्रति होता है। जब मनुष्य के रागवृत्त का विस्तार होता है तो वह अपने व्यक्तित्व से परिवार, परिवार से ग्राम नगर फिर प्रदेश, देश और इसके आगे विश्व तक व्यापक हो जाता है। यह वास्तव में स्व का विस्तार ही है, उसका निषेध नहीं है–देशभक्ति में स्व का वृत समग्र देश और उसके निवासियों तक विस्तृत हो जाता है।

देशभक्ति की रचनाएँ वीरगाथा काल से लेकर आज तक के हिन्दी–साहित्य में देखने को मिलती हैं किन्तु राष्ट्रीयता के जिस अर्थ को आज हम प्रयोग में लाते हैं, उस अर्थ में वीरगाथा काल की तथा बाद में भूषण आदी की रचनाएँ में ग्रहित नहीं होती। वीरगाथा काल की कविता में देशभक्ति केवल वैयक्तिक शौर्य तथा गौरव के गुणगान तक ही सीमित थी, जबकि भूषण में राष्ट्रीयता की भावना का अर्थ हिन्दुत्व था। ''हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना भारतेन्दु युग से मिलती है। इसके पहले चन्दबरदाई, भूषण आदि कवियों की रचनाओं में हिन्दू–मुसलमानों का संघर्ष मिलता है जो सामन्तों के परस्पर भगड़ों का ही एक रूप है।'' राष्ट्रीय–सांस्कृतिक कविताओं की तुतलाहट भारतेन्दु जी में देखी जाती है जिसकी पृष्ठभूमि में 1757 के विद्रोह का अभियान था। ''भारतेन्दु के समय तक सन् 27 का गदर तो विफल हो चुका था, परन्तु, वह अपने पीछे एक राष्ट्रीय चेतना छोड़ गया था जिसका प्रभाव उस युग के विचारवान् व्यक्तियों पर पड़ रहा था। अंग्रेजों की बढ़ती हुई वणिक वृत्ति, भारतीय जन की शोचनीय अवस्था, विदेशी दासता और अराजकता, सभी ने भारतेन्दु जी को वाणी प्रदान की और उनकी ''वे ही अभिव्यक्तियाँ जो शैशव की तुतलाहट के समान थीं तथा किंचित् संकोचमयी भावना भी थी, हिन्दी के राष्ट्रीय कविता साहित्य की मूल हुईं।'' ''फिर भी उस युग की देशभक्ति और राजभक्ति में एक

प्रकार का समझौता रहा।'' देशवासियों के मन में दासता की बेड़ियों से जकड़े होने के फलस्वरूप ग्लानी की भावना उत्पन्न हो गई थी जिसके निवारणार्थ देश में कुछ ऐसे नेता उत्पन्न हुए जिन्होंने धार्मिक–सांस्कृतिक पुनरुथान की आवाज ऊँची उठाई। ऐसा करके उन्होंने दासता की बेड़ियों पर आघात किया था। इसके पश्चात् कांग्रेस का रणभूमि में उतरना एक वरदान सिद्ध हुआ जिसने देशवासियों को बतला दिया कि गुलामी सबसे बड़ा अभिशाप है। इस अभिशाप के विरुद्ध जन–जीवन भड़क उठा। द्विवेदी–युग राष्ट्रीय कविताओं का मध्याहन् काल कहा जा सकता है। 'खड़ी बोली के काव्य–साहित्य में राष्ट्रीय भावनाएँ श्रीधर पाठक द्वारा प्रस्फुटित हुईं।' 'एक भारतीय आत्मा' मैथिलीशरण गुप्त, निराला, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियों की ओजस्विनी ध्वनी भारतीय गगन मंडल में पराधीनता और दमन के विरुद्ध गूँज उठी। भारतेन्दु जी के स्वरों में ओज और जोश नहीं था, उसमें दुःखी और अशक्त व्यक्ति की ग्लानि ही थी–

''आवहु, सब मिलि रोवहु भारत भाई,
हा, हा, भारत–दुर्दशा देखि न जाई।''

किन्तु इस युग के कवियों की वाणी तो चीत्कार कर उठी थी। कवियों ने ललकार भरे स्वर में कहा–

''बलि होने की परवाह नहीं, मैं हूँ कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता–जीता हूँ, माता के हाथ स्वराज्य रहे।'' –(माखनलाल चतुर्वेदी)

देशभक्ति की ऐसी रचनाओं के लिए एक तथ्य और लक्ष्य है कि इन रचनाओं में सक्रियता है, क्रियात्मकता है। 'नवीन' जी तथा इस युग के अन्य राष्ट्रीय कवि स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेते रहे। वे जन–जीवन के लिए आवश्यक कर्मप्रवणता से दूर कहीं बैठकर केवल गाते ही नहीं रहे। ''उत्तेजक परिस्थिति और कवियों के समानुभूति पूर्ण सक्रिय सहयोग ने कवियों की रचनाओं को आदर्श नैतिक उद्‌गार मात्र न बनने दिया। ये कवि सिंहासन पर आसीन रहने वाले उपदेशक नहीं थे।'' 'नवीन' जी ने तो कई बार जेल–यात्राएँ की हैं और उनका अधिकांश साहित्य जेल–जीवन की ही देन है।

'विप्लव–गायन' कविता की पंक्ति–पंक्ति में विप्लव फूट पड़ता है। महानाश, महाप्रलय का ऐसा आह्‌वान है जिसमें 'प्राणों के लाले पड़ जाएँ और त्राहि–त्राहि रव नभ में छाए।' वे जन–जीवन में जागृति चाहते थे। एक ओर वे मिल मालिक से कहते हैं–

''इतना छोटा अस्तित्व और
इतनी लिप्सा? इतना प्रमाद?
इतना शोषण? इतना दोहन?
इतना यह भैरव शंखनाद?

'नवीन' जी की कविता में राष्ट्रवाद का प्रौढ़ और परिष्कृत रूप हम देखते हैं। क्योंकि 'नवीन' जी ने स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया है और कठोर यंत्रणाएँ सही है अतः इनकी ''राष्ट्रीय भावनाओं में स्वाभाविक उन्मेष है। उसमें हृदय की सच्ची अनुभूतियों का अभिव्यंजन है तथा दृढ़ता एवं साहस का पूर्ण विकास है।'' देशभक्त भावुक कवि की कल्पना स्वतंत्रता प्राप्ति तक ही सीमित नहीं थी, वह विभिन्न सामाजिक संबंधों तक पहुँची है। ''राष्ट्रीय आन्दोलन गांधीवाद और प्रगतिवाद से प्रभावित गीतों में उनका व्यक्तिवाद 'दिनकर' की तरह प्रगति का इतिहास चेतना का विश्वास भरा गर्व स्फीत स्वर लेकर प्रकट हुआ–

मैं हूँ भारत के भविष्य का,
मूर्तिमान विश्वास महान्''

देश में तीव्र होते हुए वर्ग–संघर्ष, मजदूर आन्दोलन और प्रगतिवादी विचारधारा के प्रभाव में 'नवीन' जी का भाव प्रवण कवि–हृदय फेंकी पत्तल से उठाकर जूठन खाते हुए इन्सान की दुर्दशा से ममहित और कुपित हो उठा और उन्होंने भी अन्य प्रगतिशील कवियों की तरह अपने कवि से माँग की–''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ।'' 'नवीन' जी की ऐसी कविताओं में जो ओज–भरा गर्वस्फीत स्वर है, वह क्रान्तिवादी कहा जा सकता है। क्रांतिवादी कविता धारा का उल्लेख करते हुए डॉ॰ केशरी नारायण शुक्ल ने लिखा है कि ''क्रान्तिवादी कवियों में समझौता और सुधार की भावना नहीं मिलती। ये अधिकतर क्रांति और विद्रोह करने का निमंत्रण देते हैं।'' 'नवीन' जी मनुष्यों को ऐसी दुनिया बनाने के लिए बुला रहे हैं जिसमें गरीब अपना सर उठकर चल सके''–

''हे मानव कब तक मिटोगे यह निमर्म महा भयंकरता,
बन रहा आज मानव देखो मानव का ही भक्षणकर्ता।''

'नवीन' जी को हिन्दी कविता में क्रान्ति का अग्रदूत बताते हुए श्री कन्हैयालाल सहल ने लिखा है कि ''कवि केवल भारत में ही उथल–पुथल नहीं चाहता, वह विश्व भर में एक नई व्यवस्था देखना चाहता है। जिस दिन वह मनुष्य को लपककर जूठे पत्ते चाटते देखता है, उसके मन में यह इच्छा होती है कि आज मैं इस दुनिया भर को आग क्यों न लग दूँ ? इतना ही नहीं, वह यह भी सोचता है कि–

''यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का,
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।''

शिवदान सिंह चौहान ने 'नवीन' जी के विद्रोही स्वर को प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित माना है किन्तु वास्तव में यह स्वर किसी वाद विशेष के कारण नहीं है अपितु यह युगीन–परिस्थिति–जन्य स्वर है। डॉ॰ प्रभाकर मानते के अनुसार, ''उनकी रचनाओं में एक विद्रोह–पूर्ण अराजकता का स्वर भरा है।

'नवीन' जी में राष्ट्रीय कविता की यह धारा अपने लगभग सभी रूपों में प्रवाहमान दीख पड़ती है। भारतमाता की वन्दना तथा भारत के सांस्कृतिक विकास के सिंहावलोकन से पूर्ण ''हिन्दुस्तान हमारा है'' कविता से लेकर भारत की पीड़ित और शोषित जनता के करुणा चित्र उपस्थित करने वाली रचनाओं तक यह धारा प्रवाहमान दीखती है। पीड़ित और शोषित जनता का चित्र 'जूठि पत्तल चाटनेवालों ' की कविता में बड़ा खरा उतरा है। इस प्रकार की कविताओं में मानवता के शोषण के विरुद्ध पृष्ठभूमि तैयार करने की क्षमता है। 'नवीन' जी की लगभग सभी ऐसी राष्ट्रीय रचनाओं में क्रान्ति और विद्रोह की भावना ही प्रमुखता मिलती है।

'नवीन' जी गांधी जी की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित है। उनकी 'गरल–पान' नामक कविता में पूज्य बापू के प्रति वे कहते मिलते हैं :–

''ओ करुणाकर मेरे बापू, जियो जियो शत वर्ष जियो तुम।
मानवता के अर्थ शम्भु है, गरल पियो तुम, गरल पियो तुम।।''

अहिंसा के तत्व के विषय में वे कहते मिलते हैं–

''हिंसा में विचार मन्थन का,
समय नहीं, अभ्यास नहीं है,

हिंसा में सान्तता भरी है,

वॉ अनन्त अवकाश नहीं है।''

'नवीन' जी की क्रान्ति भावना में गाँधीवादी विचारधारा अवश्य काम कर रही है। अहिंसा को वे हिंसा से श्रेष्ठ मानते हैं। ''ऊर्मिला ''प्रबन्ध काव्य में भी उन्होंने उसी अहिंसा के तत्व पर स्थित सदाशयता, शुद्ध विचार और सदाचरण को प्रमुखता दी है –

''शुद्ध विचार प्रौढ़ता ही है,

भित्ति, सभ्यता संस्कृति की।''

नवीन जी की कविताओं ओज, आक्रोश, उत्साह, देश भक्ति का रागात्मक स्वरूप है। 'नवीन' जी में पाई जाने वाली राष्ट्रीय–सांस्कृतिक कविता की यह धारा मानवता के गीतों को अपने में समेटे हुए है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ :–**

1. नवीन और काव्य–जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास– गणपति चन्द्र गुप्त।

मोबाइल नंबर –9443764823

ईमेल –sentha2011@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 123-127

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# अनामिका एवं कात्यायनी के काव्य में नारी-विमर्श

**अनामिका शिल्पी**, शोधार्थी
**डॉ. कुमारी विभा,** शोध–निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर (सेवानिवृत्त)
हिन्दी विभाग, पटना कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

**शोध सार :-**

नारी–विमर्श पितृसत्तात्मक समाज के मान्यताओं, उसके दोहरे चरित्र, नैतिक मापदंडों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। नारी–विमर्श रूढ हो चुकी मान्यताओं–परंपराओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का स्वर है तथा नारी को पुरुष के समकक्ष समानाधिकार प्रदान करने की वकालत करता है।

अनामिका एवं कात्यायनी हिन्दी काव्य जगत में अपनी संवेदनशील रचनाओं के कारण एक विशेष स्थान रखती हैं। इन दोनों की कविताओं में नारी–विमर्श का स्वर प्रमुखता से परिलक्षित होता है। इन दोनों ने अपनी कविताओं के माध्यम से नारी–अस्मिता, स्वतंत्रता एवं नारी–गरिमा को स्थापित करने का प्रयास किया है। अपनी कविताओं के द्वारा ये नारी की सामाजिक–आर्थिक स्वतंत्रता की मांग तो करती ही हैं, साथ ही समाज में व्याप्त रुग्ण परंपराओं का विरोध कड़े शब्दों में करती हैं। इनकी कविताएं समाज में पुरुष की नारी के प्रति जो मानसिकता है, उसे बदलने का आग्रह भी करती है। इनकी कविताएं नारी–संघर्ष, अत्याचार, उसकी विवशता का विरोध तथा शिक्षा व समाज मे समानाधिकार एवं नारी–पुरुष के मध्य समानता का समर्थन करती हैं।

**बीज शब्द :-** नारी–विमर्श, पितृसत्तात्मक, नारी–अस्मिता, समानाधिकार, विसंगति, अंतर्विरोध।

**अनामिका एवं कात्यायनी के काव्य में नारी-विमर्श :-**

नारी–विमर्श उस साहित्यिक आंदोलन को कहा जाता है, जिसके द्वारा नारी–अस्मिता को केंद्र में रखकर नारी–संघर्ष, समाज में उसकी स्थिति, दयनीयता, रूढ हो चुकी मान्यताओं का विरोध, नारी–पुरुष के मध्य जो प्रधान व गौण का स्तर है, इन सबको आधार बनाकर नारी–साहित्य की रचना की जाती है। "स्त्री–विमर्श, पुरुष चिंतन के यथार्थ की विसंगतियों और अंतर्विरोधों को प्रकट करता है।"[1] अतः नारी–विमर्श, नारी के लिए विकास के अवसर, उसके स्वतंत्र जीवन की संभावनाओं एवं स्वतंत्र चिंतन की क्षमता को विकसित करता है, जिससे नारी अपने स्वयं के हित में निर्णय ले सके और अपने जीवन को नई दिशा प्रदान कर सके।

हिन्दी काव्य–जगत में अनामिका और कात्यायनी का आगमन 1990 के दशक में हुआ, इन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से नारी–विमर्श को प्रखर स्वर प्रदान किया। इनकी कविताओं में जहां एक ओर कोमल, संवेदनशील भावनाएं हैं, तो वहीं दूसरी ओर नारी–अस्मिता को तलाशती एक सजग नारी का दृढ़ संकल्प। इनकी

कविताओं में संघर्षशील नारी का चित्रण है, जो किसी भी परिस्थिति में हार नहीं मानती। नारी–स्वातंत्र्य की पक्षधर अनामिका का सम्पूर्ण साहित्य नारी की संवेदनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। इनके प्रमुख काव्य–संग्रह हैं– 'शीतल स्पर्श एक धूप को', 'गलत पते की चिट्ठी', 'समय के शहर में', 'बीजाक्षर', 'अनुष्टुप', 'कविता में औरत', 'पानी को सब याद है', 'बंद रास्तों का सफर' एवं साहित्य अकादमी से सम्मानित काव्य–संग्रह– 'टोकरी में दिगंत, थेरी गाथा : 2014' आदि। इन सभी काव्य–संग्रहों की कविताओं के माध्यम से कवयित्री ने नारी–जीवन के विभिन्न पहलुओं, संघर्षों, कठिनाईयों एवं नारी–व्यक्तित्व की दृढ़ता को दर्शाने का प्रयास किया है।

कवयित्री कात्यायनी के लिए कविता जीवन, सृजन और संघर्ष की बुनियादी आवश्यकता है। इनकी कविताएं जीवन की यथास्थिति की निर्मम आलोचना करने के साथ ही वर्चस्वतावादी शक्तियों का प्रतिरोध एवं तत्कालीन समय की त्रासदी व विडंबनाओं से भरे अंधेरे में उम्मीद की किरण जागृत करती हैं। इनके काव्य में प्रेम, ममता, दुख, वेदना, उदासी के साथ ही नारी के अन्तर्जगत और बहिर्जगत में उठते यक्ष–प्रश्न, दैनिक जीवन की बहुविध चिंताएं हैं, जो अपने समय का व्यापक चित्र प्रस्तुत करती हैं। जीवन–रूढ़ियों को तोड़ने के बहुआयामी संघर्ष के मध्य इन्होनें काव्य–रूढ़ियों को भी तोड़ा। इनके प्रमुख काव्य–संग्रह हैं– 'सात भाइयों के बीच चंपा', 'इस पौरुषपूर्ण समय में', 'फुटपाथ पर कुर्सी', 'जादू नहीं कविता', 'राख–अंधेरे की बारिश में' एवं 'एक कुहरा पारभासी' आदि।

इन दोनों ही कवयित्रियों की कविताओं में मन की गहराई में छिपी हुई भावनानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। अनामिका कहती हैं– "स्त्री समाज एक ऐसा समाज है, जो वर्ग, नस्ल, राष्ट्र आदि संकुचित सीमाओं के पार जाता है और जहां कहीं दमन है–चाहे जिस वर्ग, जिस नस्ल, जिस आयु, जिस जाति की स्त्री त्रस्त है–उसको अँकवार लेता है। बूढ़े–बच्चे–अपंग–विस्थापित और अल्पसंख्यक भी मुख्यतः स्त्री ही हैं– यह मानता है।"[2] इनकी कविताओं में नारी–अस्मिता और संघर्ष के स्वर सर्वत्र व्याप्त है। अपनी कविता के माध्यम से इन्होनें नारी के प्रत्येक वर्ग का चित्रण किया है। 'चिट्ठी लिखती हुई औरत' में कवयित्री ने नारी–जीवन के कठिन सफर को दर्शाने का प्रयास किया है, वे कहती हैं– 'इतना उनके भीतर क्या है, जो शताब्दियों से संचित है और जिसकी टीस आज भी है,' जिसका आकार द्रौपदी की उस साड़ी के समान है, जो कभी खत्म ही ना हो। पुनः कवयित्री नारी को पानी और मिट्टी सदृश्य बतलाती हैं, एक जो जीवन प्रदान करता है, दूसरा नव–सृजन करता है, परंतु दोनों का कोई ओर–छोर नहीं होता, नारी भी ऐसी ही है, जीवन–दायिनी, नव–सृजन करने वाली। कवयित्री मानती हैं ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है 'नारी'–

"पानी और मिट्टी .....
खुद एक धारावाहिक चिट्ठी ही तो हैं,
ईश्वर की–"[3]

अनामिका नारी–मन की सूक्ष्मता को भी बखूबी चित्रित करती हैं। नारी के विविध गुण धैर्य, बुद्धि, सहनशीलता, सृजनात्मकता नारी के व्यक्तित्व के विशिष्ट गुण हैं, जो कवयित्री अपनी कविताओं में दर्शाती हैं। अनामिका के काव्य–संग्रह 'खुरदुरी हथेलियाँ' के विषय में समीक्षक नैया कहते हैं– "खुरदुरी हथेलियाँ संग्रह की कविताएं एक स्त्री की दृष्टि से देखी गई उत्तर–आधुनिक समाज और समय की विडम्बनाओं का बयान करती है। कवयित्री अनामिका ने स्त्री–मुक्ति के प्रश्नों, संबंधों में आई रिक्तता की भूख, साधारण आदमी के दुःख–दर्द

को और अपने हिस्से की धूप तलाशती स्त्री की पीड़ा को इस कविता–संग्रह में व्यक्त किया है। इन कविताओं में एक ओर जहां वे समय की कड़वाहटों को देखती हैं, वहीं दूसरी ओर जीवन की कोमलता को भी अनदेखा नहीं करती हैं। यह कोमलता चाहे उन्हें घर में काम करने वाली महरी की खुरदुरी हथेलियों से क्यों ना मिली हो।"[4] अनामिका कहती हैं :–

"हालांकि ज्योतिषी नहीं मैं
दानवीर कर्ण भी नहीं हूँ –
पर देखी है मैंने
फैलती–सिकुड़ती हथेलियाँ
कई तरह की!
हाथों में हाथ लिये और दिये हैं कितनी बार!
जानती हूँ ये भी
दुनिया का सबसे मजबूत और नाजुक पुल होते हैं
दो लोगों के बढ़कर मिले हुए हाथ।"[5]

इसी प्रकार अनामिका पुरुषवादी समाज पर करारा प्रहार करते हुए कहती हैं, अब तक पुरुष नारी को उपभोग की वस्तु की नजर से देखता है, कवयित्री कहती हैं कि अब समय आ गया है, हम नारियों को अब एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में देखा–समझा और सुना जाए। पुरानी सभी अवधारणाओं से मुक्त, हमें अपने अधिकार दिये जाए, जिनसे अब तक हमें वंचित कर रखा था–

"एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं–
हमें कायदे से पढ़ो एक–एक अक्षर
जैसा पढ़ होगा बीए के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन।"[6]

अतः कवयित्री नारी को दीनता त्याग कर संघर्ष के मार्ग पर चलने का आह्वान करती हैं, पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ धारा के विपरीत तैरने का साहस देती हैं और अपनी अस्मिता को तलाशती नारी हर संभव, हर परिस्थिति में अपने स्वाभिमान–संकल्प को दृढ़ रखते हुए अपने अभीष्ट को प्राप्त करने का अथक प्रयास करती है।

कात्यायनी कविता के माध्यम से नारी के साहस, दृढ़ता व संकल्प शक्ति का आह्वान करती हैं। अपने काव्य संग्रह 'इस पौरुषपूर्ण समय में' वे कहती हैं :–

"संकल्प चाहिए, अद्भुत–अंतहीन
इस सांद्र, क्रूरता भरे अँधेरे में
जीना ही क्या कम है, एक स्त्री के लिए
जो वह रचने लगी कविता!"[7]

कात्यायनी की कविता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए, विश्वनाथ मिश्र जी कहते हैं– "बीसवीं सदी के

अंतिम दो दशक की हिन्दी कविता पर उनकी कविताओं के बिना चर्चा नहीं की जा सकती।.....स्त्री–प्रश्न के विविध पक्षों की कात्यायनी की समझ में इतिहास–बोध और वैज्ञानिक तर्कसम्मति के साथ की एक कवि की गहरी संवेदना भी है और एक 'ऐक्टिविस्ट' की सुलझी हुई व्यवहारोन्मुखता भी।"[8] कात्यायनी की कविताओं में नारी की स्वतंत्रता की तीव्र छटपटाहट तो है ही, वहीं समाज को बदलने का आह्वान भी है। नारी किस प्रकार रचती है जीवन और संसार एवं उसके अंतर्मन की पुकार क्या है? इसे कवयित्री ने अपनी कविता 'वह रचती है जीवन और.....'–

"जिसके बिना सब कुछ अधूरा है
प्यार भी, सौन्दर्य भी, मातृत्व भी....
सोचती है वह
और पूछती है चीख–चीखकर।
प्रतिध्वनि गूँजती है
घटियों में मैदानों में
पहाड़ों से, समुद्र की ऊँची लहरों से टकराकर
आजादी ! आजादी !! आजादी !!!"[9]

कवयित्री कहती हैं, अब समय आ गया है, नारियाँ अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को पहचानने लगी हैं, उन्हे पता है कि किस प्रकार परंपरा और रुग्ण मान्यताओं को आधार बनाकर उनसे उनके जीवन जीने का हक छिन लिया जाता था। अपने अस्तित्व को स्थापित करने के लिए अब संघर्ष की आवश्यकता है, क्योंकि अब वक्त आ गया है जब इन बंधनों को तोड़कर नीले अनंत विस्तार में उड़ने का और उस अनुभव को महसूस करने का। अब वक्त है–

इस स्त्री से डरो, क्योंकि :
"यह स्त्री, सब कुछ जानती है/पिंजरे के बारे में
जाल के बारे में/यंत्रणागृहों के बारे में .....
वह बताती है/नीले अनंत विस्तार में
उड़ने के/रोमांच के बारे में।
इन्हें समझो।/इस स्त्री से डरो।"[10]

नारियों की इस विवशता का एक मुख्य कारण आर्थिक परतंत्रता भी है। शिक्षा के अभाव में अशिक्षित रहने के कारण उन्हें दोयम दर्जे पर रहने को मजबूर किया जाता है। शिक्षित नारियां अपने अधिकारों को समझ सकेंगी और अन्याय का विरोध भी करेंगी। शिक्षा से उनके व्यक्तित्व का विकास होगा और वह अपने स्व–अस्तित्व को जान सकेंगी। अनामिका नारी के जीवन में भाषा के माध्यम से शिक्षा के महत्व को रेखांकित करती हैं। शिक्षा ही वह साधन है, जिसके माध्यम से स्वतंत्र–जीवन व्यतीत किया जा सकता है। "भाषा एक लीलाभूमि है तो एक युद्धभूमि भी! अस्मिता की लड़ाई हो या कोई अन्य मनोसामाजिक संघर्ष–उसकी सबसे महीन और सार्थक अनुगूँजें भाषा में ही दर्ज होती हैं!"[11]

नारी मन की दृढ़ता को अभिव्यक्त करते हुए कवयित्री कात्यायनी तल्ख स्वर में अपनी कविता 'सात

भाईयों के बीच चम्पा' में कहती हैं–

"हर दरवाजे के बाहर
नागफनी के बीहड़ घेरों के बीच
निर्भय–निस्संग चम्पा
मुसकुराती पाई गई।"[12]

इस प्रकार कवयित्री नारी मन की दृढ़ता एवं उसकी वह संतुलित पुकार, जिसमें समाज के बदलने का आह्वान है। यह एक ऐसे समाज की कल्पना करती हैं, जहाँ नारी–पुरुष परस्पर सहयोगी बनकर एक आदर्श समाज की स्थापना करें।

**निष्कर्ष :-**

इन दोनों ही कवयित्रियों की कविताओं में नारी–विमर्श का एक व्यापक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। इनकी कविताएं नारी–पुरुष की समानता के साथ ही एक ऐसे आदर्श समाज का निर्माण करना चाहती हैं, जहां नारी भी पुरुष के समान अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित कर सके और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में उसका स्वतंत्र महत्व हो, साथ ही अपने अस्तित्व को एक नया आयाम प्रदान कर सके। इनकी कविताओं में जो नारी–विमर्श की सशक्त अनुगूँज है, वह नारियों को नई चेतना एवं दिशा प्रदान करेगा।

**संदर्भ ग्रंथ :-**


1. प्रभा खेतान, विमर्श : नारी–विमर्श की वास्तविक जमीन, प्रभा खेतान, प्रगतिशील वसुधा, प्रगतिशील लेखक संघ का प्र. सं. स्वयं प्रकाश, राजेन्द्र शर्मा पृष्ठ संख्या– 75
2. अनामिका, स्त्री–विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 23–24
3. अनामिका,कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, पृ. दृ 39
4. प्रगतिशील वसुधा 75, अक्टूबर–दिसंबर 2007, पृष्ठ संख्या– 292
5. अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 156
6. पूर्ववत, स्त्रियाँ (कविता), पृष्ठ संख्या– 13
7. कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में, परिकल्पना प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 57
8. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, फ्लेप से
9. कात्यायनी, सात भाईयों के बीच चम्पा,परिकल्पना प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 42
10. पूर्ववत, पृष्ठ संख्या– 15–16
11. अनामिका, स्त्री–विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 120
12. कात्यायनी, सात भाईयों के बीच चम्पा, परिकल्पना प्रकाशन, पृष्ठ संख्या– 30

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 128-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# महिला शक्ति आधुनिक समाज की निर्माता के रूप में

**कल्पना उप्रेती**

शोधार्थी, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा।

**सार :–**

प्रत्येक देश के निर्माण में उसके नागरिकों का अहम योगदान रहता है। इसके लिए स्त्री व पुरूष समान रूप से अपनी भागदीरी सुनिश्चित करते हैं। एक समाज अथवा देश तभी विकास की सीढ़िया चढ़ सकता है जब उसके नागरिक कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़े। प्रत्येक विकसित समाज के निर्माण में स्त्री एवं पुरूष दोनों की सहभागिता आवश्यक है। भावी पीढ़ी के रूप में व्यक्ति से लेकर परिवार समाज तथा राष्ट्र तक के चहुंमुखी विकास की जिम्मेदारी में पुरूषों के साथ स्त्रियों की अपेक्षाकृत अधिक भागीदारी है। आज महिलाएं राजनीति, समाज सुधार, शिक्षा, पत्रकारिता, साहित्य, विज्ञान, उद्योग, व्यावसायिक प्रबंधन शासन–प्रशासन, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, पुलिस, सेना, कला, संगीत, खूलकूद आदि क्षेत्रों में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं। आज देश लगातार प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रहा है। नित नयी ऊंचाइयों को छूता जा रहा है। नये–नये आयामों को स्थापित करता जा रहा है। इन सभी उपलब्धियों में महिला शक्ति का भी बराबर का योगदान रहा है। महिलाएं घर–परिवार की जिम्मेदारियों के साथ–साथ देश की जिम्मेदारियों को भी बखूबी निभा रही हैं। एक देश तभी विकसित माना जा सकता है, जब वह आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप में सम्पन्न हो तथा उसकी शिक्षा प्रणाली उच्च कोटि की हो। इन सभी क्षेत्रों में विकास तभी संभव है जब देश का प्रत्येक नागरिक इसमें अपना योगदान दे। आज महिलाएं किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं हैं। घर के चौका–बर्तन से लेकर अतंरिक्ष तक का सफर उसने तय किया है। इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण बाते यह है कि वे इन सभी कार्यों के साथ–साथ देश को एक कुशल, सक्षम तथा उच्च कोटि के आदर्शों वाली नयी पीढ़ी को देती हैं। जो कि देश का भविष्य संवारते हैं या यूं कहें भविष्य के निर्माण की नींव भी महिला शक्ति द्वारा रखी जाती है।

**की–वर्ड :–** महिला शक्ति, नेतृत्व, विकास लक्ष्य, राष्ट्र निर्माण, डिजिटलीकरण।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक भारत के विकास के सफर में महिलाओं का बराबर का सहयोग रहा है। महिलाओं ने दोहरी जिम्मेदारियों को निभाते हुए देश को शिखर पर पहुंचाने का प्रयास किया है। भारत वर्ष एक संपन्न परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों से समृद्ध देश माना जाता है। जहां महिलाओं को समाज में हमेशा से ही प्रमुख स्थान रहा है। माना कि अंग्रेजों के शासन काल में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी, अनेक कुरीतियां व विकृतियां पैदा हुई। जिससे महिलाओं को उत्पीड़न हुआ।

आजादी के बाद महिलाओं का समाज में सम्मान बढ़ा लेकिन उनके सशक्तिकरण की गति दशकों तक

धीमी रही। गरीबी व निरक्षरता महिलाओं की प्रगति में गंभीर बाधां रही है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और कौशल के माध्यम से महिलाओं को व्यवसाय की ओर प्रोत्साहित कर इन्हें आर्थिक रूप से सुदृढ़ किया जा सकता है। विशेषकर कृषि प्रसंस्करण उद्योंगों, बैंकिंग सेवाओं और डिजिटलीकरण की सहायता से महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया जा रहा है। क्योंकि जब महिलाएं आत्मनिर्भर होंगी तभी प्रगति संभव हो सकती है।

भारतीय महिलाएं ऊर्जावान, दूरदर्शिता, जीवन्त उत्साह और प्रतिबद्धता के साथ सभी चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हैं। भारत के प्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में, ''हमारे लिए महिलाएं ने केवल घर रोशनी है, बल्कि इस रोशनी की लौ भी हैं।'' अनादि काल से महिलाएं मानवता की प्रेरणा का स्रोत रही हैं। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई से लेकर भारत की पहली महिला शिक्षिका सावित्री बाई फूले तक, महिलाओं ने बड़े पैमाने पर समाज में बदलाव के बड़े उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। भारत लगातार सतत् विकास लक्ष्यों की ओर तेजी से बढ़ रहा है। लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण करना सतत विकास लक्ष्यों में एक प्रमुखता है। वर्तमान में प्रबंध, पर्यावरण संरक्षण, समावेशी आर्थिक और सामाजिक विकास जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए विशेष ध्यान दिया गया है। महिलाओं में जन्मजात नेतृत्व गुण समाज के लिए संपत्ति हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी धार्मिक नेता ब्रिहम यंग ने कहा है कि ''जब आप एक आदमी को शिक्षित करते हैं, तो आप एक आदमी को ही शिक्षित करते हैं। जब आप एक महिला को शिक्षित करते हैं तो आप एक पीढ़ी को शिक्षित करते हैं।

भारत के विकास में महिलाअें के योगदान को अनेक विद्वानों ने सराहा है। भारत में महिलाओं की स्थिति ने पिछले कुछ सदियों में बड़े बदलाव का सामना किया है। प्राचीन काल में पुरूषों की बाराबरी से लेकर मध्ययुगीन काल के निम्न स्तरीय जीवन और साथ ही कई सुधारकों द्वारा समान अधिकारों को बढ़ावा दिये जाने तक, भारत में महिलाओं का इतिहास काफी गतिशील रहा है। आधुनिक भारत में महिलाएं राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, प्रतिपक्ष की नेता आदि शीर्ष पदों पर आसीन हुई हैं। प्राचीन भारत में महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ बराबरी का दर्जा हासिल था। हालांकि कुछ अन्य विद्वानों का नजरिया इसके विपरित है। पतंजलि और कात्यायन जैसे प्राचीन भारतीय व्याकरणविद्ों का कहना है कि प्रारंभिक वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेदिक ऋचाएं यह बताती हैं कि महिलाओं की शादी एक परिपक्व उम्र में होती थी। संभवतः उन्हें अपना पति चुनने की भी आजादी थी। ऋग्वेद और उपनिषद जैसे ग्रंथ कई महिला साध्वियों और संतो ंके बारे में बताते हैं। जिनमें गार्गी और मैत्रेयी के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार भारत की भूमि पर अनेक महान स्त्रियों ने जन्म लिया था जिन्होंने भारत के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक भारत में महिलाओं की भूमिका का इतिहास काफी गतिशील रहा है। दूसरे शब्दों में समय के साथ–साथ महिलाओं की भूमिकाओं ने कई बड़े बदलावों का सामना किया है। एक समय था जब भारतीय महिलाओं की भूमिका सिर्फ घर की चारदीवारी तक सीमित थीं, वहीं आज उनकी भूमिकाओं ने घर की चारदीवारी को तोड़ते हुए उन्हें अंतरिक्ष में पहुंचा दिया है। पिछले कुछ सालों में महिलाएं कई क्षेत्रों में आगे आयी हैं। उनमें नया आत्मविश्वास पैदा हुआ है और वे अब हर काम को चुनौति के रूप में स्वीकार करने लगी हैं। अब महिलाएं सिर्फ चूल्हे–चौके तक सीमित नहीं रह गई हैं या सिर्फ नर्स, एयर हॉस्टेज, या रिसेप्शनिस्ट ही नहीं रह गई हैं बल्कि उन्होंने हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी है। अब हर वैसा क्षेत्र

जहां पहले केवल पुरूषों का ही वर्चस्व था, वहां स्त्रियों को काम करते देखकर हमें आश्चर्य नहीं होता है। महिलाओं को काम करते हुए देखना हमारे लिए अब आम बात हो गई है। महिलाओं में इतना आत्मविश्वास पैदा हो गया है कि वे अब किसी भी विषय पर बेझिझक बात करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अब कोई भी क्षेत्र महिलाओं से अछूता नहीं रहा है।

आज भारत की महिलाएं उस दिशा में अनुगमन कर रही हैं, जिसे पाश्चात्य देशों की महिलाओं ने 80 वर्ष पहले अपनाया था, अर्थात् समान मानव की तरह व्यवहार करने की मांग, जैसे–जैसे क्रान्ति पुरानी हुई, यह और अधिक स्पष्ट हो गया कि भारतीय महिलाएं अपनी बेहद पारंपरिक और धार्मिक संस्कृति के बावजूद पश्चिमी नारीवाद के प्रति अनुकूलित हो सकती हैं। यद्यपि भारतीय समाज की जटिलताओं के कारण भारत में महिलाओं का विकास उनकी पाश्चात्य समकक्षों की तुलना में पूर्णतः परिवर्तित सन्दर्भ में हुआ लेकिन मुख्य लक्ष्य समान है। समाज, कार्यस्थलों, विद्यालयों तथा घर में पुरूष और महिलाओं में समानता के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार, शिक्षा और रोजगार के अवसर पुरूषों के समकक्ष, स्वतंत्र धरातल पाने के लिए महिलाओं की व्याकुलता स्पष्ट देखी जा सकती है। भारतीय महिलाओं के समक्ष जाति प्रथा, धार्मिक परम्पराओं, प्राचीन प्रचलित भूमिकाओं जैसी अन्य चुनौतियां तो है ही साथ ही उसे पहले से अधिक मजबूत भारतीय समाज के पुरूष सतात्मक ताने–बाने से भी लोहा लेना है। एक समय था जब यह स्थिति स्वीकार्य थी, लेकिन पाश्चात्य महिला क्रान्ति तथा अनुभूति के पश्चात् समानता के अधिकार की वकालत करने वाले 'राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर के संगठनों तथा महिलाओं के स्वतंत्र समूहों के योगदान से महिलाओं की भूमिका में धीरे–धीरे विकास के लक्ष्य परिलक्षित हो रहे हैं। इन सभी का योगदान सराहनीय है। लेकिन अभी भी काफी कुछ करना शेष है। जिसके लिए पुरूषों को अपना सहयोग देना होगा। अब वे महिलाएं नहीं है जो स्वयं पर हुए अत्याचारों और असुरक्षा का वर्णन करने वाली पुस्तकों की रचना करती थी, आज की भारतीय नारी की रचनाओं को अनेक महान पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता है, जो आकांक्षी पुरूष लेखकों को यह बताने के लिए पर्याप्त है कि कितनी प्रतिभाशाली तथ क्षमतावान हैं।

भारत को विश्व पटल पर पहचान दिलाने में आज महिलाएं काफी आगे हैं। भारतीय समाज आज कल्पना चावला, सानिया मिर्जा, सायना नेहवाल, बरखा दत्त, शबाना आजमी इत्यादि जैसी आज के भारत की असाधारण महिलाओं को लेकर गौरवान्वित महसूस करता है। राजनीति के क्षेत्र में भी महिलाएं अपना परचम लहरा रही है। प्रतिभा पाटिल, सुषमा स्वराज, स्मृति ईरानी, द्रोपती मुर्मु, सोनिया गांधी, मायावजती, ममता बनर्जी, निर्मला सीतारमण आदि इनके उदाहरण हैं। निश्चित ही एक ऐसे समाज में जहां एक समय महिला का शिक्षित होना आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता था, यह आश्चर्य जैसा ही प्रतीत होता है कि आज विद्यालय में शिक्षा देने का अधिकांश दायित्व महिलाएं ही उठा रही हैं।

उच्च शिक्षा प्राप्त कर महाविद्यालयों में प्राध्यापक बनने वाली महिलाओं की संख्या भी कम नहीं है। महिलाओं ने व्यक्तिगत स्तर पर जो यह उपलब्धियां प्राप्त की हैं, उसने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है और आज महिलाएं कई क्षेत्रों में पुरूषों की तुलना में बेहतर कार्य करनेवाली मानी जाती हैं। इन सभी उपलब्धियों के अलावा आज महिलाओं के सामने ऐसे अनेक अवसर उपलब्ध हैं जो एक समय उनके लिए स्वप्न जैसे थे। एक समय की वह गहरी अंधेरी सुरंग आज अवसरों, उपलपब्धियों और समानता के प्रकाश की ओर ले जाने वाली राह बन गई है। भारत में महिलाओं का भविष्य उज्जवल और सुरक्षित प्रतीत होता है और उनकी भूमिका पत्नी, मां,

पुत्री तक सीमित न रहकर बहुत विस्तृत हो गई है। आज बिना महिलाओं के हस्तक्षेप के किसी समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं का योगदान है। यहां तक आजादी की लड़ाई से लेकर वर्तमान समय में किसी भी अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने में महिलाएं पीछे नहीं हैं। अनेक आन्दोलनों का वे स्वयं नेतृत्व करती हैं। अपने अधिकारों के लिए भी जागरूक हैं वे अपने अधिकारों के लिए लड़ना जानती हैं। अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए एक उच्च कोटि का जीवन जीने में समर्थ हैं।

**साहित्यिक क्षेत्रों में योगदान :-**

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य के माध्यम से राष्ट्र–निर्माण और विकास उच्चतम स्तर पर किया जा सकता है, क्योंकि साहित्य के द्वारा न केवल बुद्धि–कौशल वरन् व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास किया जा सकता है। यह साहित्यिक कर्म यदि यदि महिलाओं के द्वारा हो तो यह सोने पर सुहागा होता है, क्योंकि महिलाओं में विद्यमान 'मर्म' साहित्य को गुणवत्तापूर्ण बनाता है। अनेक महिलाओं ने साहित्य–सर्जन के द्वारा राष्ट्र–निर्माण और विकास में अपना विशेष योगदान दिया है, जैसे – महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, मीरा, आशापूर्णा देवी, महाश्वेता देवी, झुंपा लाहिड़ी, सुभद्रा कुमारी, चौहान, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, पद्मा सचदेव इत्यादि। इन्होंने ऐसा कालजयी साहित्य लिखा, जो व्यक्तित्व के विकास के साथ–साथ आध्यात्मिक और नैतिक विकास को भी बल प्रदान करता है, जिसमें चेतना और राष्ट्र–निर्माण के स्वर मुखरित होते हैं।

जब भारतीय ऋषियों ने अथर्ववेद में 'माता भूमिः पुत्रों अहं पृथिव्या' अर्थात् भूमि मेरी माता है और हम इस तरह के पुत्र हैं कि प्रतिष्ठा की, तभी संपूर्ण विश्व में 'नारी–महिमा' का उद्घोष हो गया था। नेपोलियन बोनापार्ट ने नारी की महत्ता को बताते हुए कहा था कि 'मुझे एक योग्य माता दे दो' मैं तुमको एक योग्य राष्ट्र दूंगा।

'नारी' भारतीय जनजीवन की मूल धूरी है। यदि यह कहा जाए कि संस्कृति, परंपरा या धरोहर नारी के कारण ही पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है, तो यह कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। जब–जब समाज में जड़ता आई है, नारी शक्ति ने ही उसे जगाने के लिए तथा उससे जूझने के लिए संतति तैयार करके आगे बढ़ने का संकल्प लिया है।

'नारी' विधाता के सर्वोत्तम और उत्कृष्ट सृष्टि है। नारी की सूरत और सीरत की पराकाष्ठा और उसकी गहनता को मापना दुष्कर ही नहीं, अपितु असंभव भी है। सामाजिक, संस्कृतिक, धार्मिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक जगत में नारी के विविध स्वरूपों का न केवल बाह्य, अपितु अंतर्मन के गूढ़तम सौंदर्यात्मक स्वरूप का भी रहस्योद्घाटन हुआ है। नारी प्राकृति एवं ईश्वर द्वारा प्रदत्त अद्भुत 'पवित्र साध्य' है, जिसे अनुभव करने के लिए 'पवित्र साधन' का होना आवश्यक है। इसकी न तो कोई सीमा है और न ही कोई छोर। यह तो एक विराट स्वरूप है, जिसके समक्ष स्वयं विधाता भी नतमस्तक होता है।

**नागरिक निर्माण के रूप में योगदान :-**

मानव कल्याण की भावना, कर्तव्य, सर्जनशीलता एवं ममता को सर्वोपरि मानते हुए महिलाओं ने इस जगत में मां के रूप में अपनी सर्वोपरि भूमिका को निभाते हुए राष्ट्र–निर्माण और विकास में अपने विशेष दायित्वों का निर्वहन किया है। महिलाएं बच्चों को जन्म देकर उनका पालन–पोषण करते हुए उनमें संस्कार एवं सद्गुणों का उच्चतम विकास करती हैं तथा राष्ट्र के प्रति उनकी जिम्मेदारी को सुनिश्चित करती हैं, ताकि राष्ट्र–निर्माण और विकास निर्बाध गति से होता रहे। वीर भगत सिंह, चंद्रशेखर, विवेकानंद जैसी विभूतियों का देशहित में

अवतार 'मां' के स्वरूप की देन है। माता जीजाबाई, जयवंताबाई, पन्नाधाय जैसी अनेक माताओं का त्याग, समर्पण और बलिदान आज भी इतिहास के स्वर्णिम पन्नों पर अंकित है। मां ही है, जो बहुआयामी व्यक्तित्व का निर्माण और विकास करती है।

**पथ-प्रदर्शक के रूप में योगदान :-**

मां के बाद पत्नी का अवतार राष्ट्र–निर्माण और विकास के साथ पथ प्रदर्शक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पत्नी चाहे तो पति को गुणवान और सदगुणी बना सकती है। सदियों से देखने में आया है कि जब भी कभी देश पर संकट आया है, तो पत्नियों ने अपने पतियों के माथे पर तिलक लगाकर जोश, जुनून और विश्वास के साथ रणभूमि में भेजा है। यही नहीं पत्नी 'हाड़ी' रानी बनकर शीश काटकर दे देती है। तुलसीदास जी के जीवन को आध्यात्मिक चेतना प्रदान करने में उनकी पत्नी 'रत्नावली' का ही हाथ था। 'विधोत्मा' ने कालिदास को संस्कृत का प्रकांड महाकवि बनाया था। इसके अतिरिक्त यह कहना गलत नहीं होगा कि पति को भ्रष्टाचार, बेईमानी, लूट, गबन इत्यादि, जोकि राष्ट्र को खोखला बनाते हैं, जैसे कुकृत्य के पत्नी ही दूर रखती हैं, जोकि देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक भी है।

**गृहिणी के रूप में योगदान :-**

भारतीय समाज में महिलाएं परिवार की 'धूरी' होती हैं, जो कि एक गृहिणी के रूप में राष्ट्र–निर्माण और विकास के रूप में अपनी उत्कृष्ट भूमिका निभाती है, जो कि 'अन्नपूर्णा' के ऐश्वर्य से अलंकृत और सुशोभित है। एक गृहिणी के रूप में वह संपूर्ण परिवार का सुचारू रूप से संचालन करती हैं तथा परिवार के संचालन हेतु बचत की प्रवृत्ति को भी विकसित करती हैं। वर्ष 1930, 1998, 2008 और 2014 में आई वैश्विक मंदी से सभी देश ग्रसित हुए, परंतु भारत बहुत अल्प रूप में, क्योंकि भारतीय महिलाओं की बचत की प्रवृत्ति ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बचाया। ऐसा ही उदाहरण हमें वर्ष 2016 की नोटबंदी के दौरान देखने को मिला। इसी के साथ ही लगभग 65 प्रतिशत महिलाएं कृषि एवं पशुपालन का कार्य करते हुए देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में योगदान देती है। इसके अतिरिक्त हस्तकलाओं का निर्माण करते हुए भी विकास कार्यों को गति प्रदान करती हैं। अतः यह भी राष्ट्र–निर्माण और विकास का हिस्सा है।

**सामाजिक- शैक्षिक-धार्मिक योगदान :-**

सभ्यता, संस्कृति, संस्कार और परंपरा महिलाओं के कारण ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते हैं। अतः महिलाओं के सामाजिक– शैक्षिक–धार्मिक कार्य व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को सशक्त बनाते हैं। कहा भी गया है कि 'सशक्त महिला सशक्त समाज की आधारशिला है।' माता बच्चों की प्रथम शिक्षिका होती है, जो बच्चे के सर्वागीण विकास के लिए उत्तरदायी होती है। यह शिक्षिका परिवार से निकलकर समाज में शिक्षा का दान करती है। देश की प्रथम शिक्षिका 'सावित्री बाई फुले' एक अनुकरणीय उदाहरण है। वैदिक सभ्यता की मैत्रेयी, गार्गी, विश्ववारा, घोषा, लोपामुद्रा और विदुषी नामक महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में योगदान हेतु आज भी पूजनीय है, जिन्होंने रराष्ट्र–निर्माण और विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया।

**स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान :-**

पराधीनता रराष्ट्र–निर्माण और विकास में न केवल बाधक होती है, अपितु यह राष्ट्र को अस्थिरता प्रदान करती है। यही कारण रहा है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं ने अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर

भारत का नव–निर्माण करवाया। हमारे स्वतंत्रता आंदोलन में अनेक महिलाओं ने अपना अमूल्य योगदान देते हुए अपना सर्वस्य न्यौछावर कर दिया। कैप्टन लक्ष्मी सहगल, अरुणा आसफ अली, मैडम भीखाजी कामा, सरोजिनी नायडू, एनी बेसेंट और दुर्गा भाभी जैसी न जाने कितनी ही महिलाओं ने राष्ट्र–निर्माण और विकास में अपना अमूल्य योगदान दिया।

**राजनैतिक क्षेत्र में योगदान :–**

देश की राजनीति और की दिशा और दशा इस बात पर निर्भर करती है कि उसका संचालन करने वाला व्यक्ति कैसा है? इसी क्रम में महिलाओं ने यह सिद्ध करके दिखाया कि वे राजनीतिक विकास में अपनी भागीदारी बखूबी निभा सकती हैं। श्रीमती 'विजयलक्ष्मी पंडित' विश्व की प्रथम महिला थी, जो संयुक्त राष्ट्र महासभा की अध्यक्ष बनी। सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी, इंदिरा गांधी इत्यादि अनेक महिलाओं ने राजनैतिक प्रतिभा का प्रयोग राष्ट्र–निर्माण और विकास में किया है, जो एक महत्वपूर्ण और सार्थक कदम है। वर्तमान समय में भी राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका अत्यंत बढ़ गई है और इस क्षेत्र में भी महिलाएं बढ़–चढ़कर अपनी भूमिका के साथ न्याय कर रही हैय जैसे– वित्तमंत्री निर्मला सीतारमन, ममता बनर्जी, मायावती, स्मृति ईरानी, सोनिया गांधी, प्रियंका गांधी, हरसिमरत कौर, वसुंधरा राजे सिंधिया, द्रौपदी मुर्मू, प्रतिभा पाटिल, मृदुला सिन्हा आदि प्रमुख राजनीतिक हस्तियां है, जिन्होंने अपने कार्यों से देश का सम्मान बढ़ाया है तथा देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने में अपना योगदान दिया है तथा वर्तमान में भी दे रही है।

**प्रशासनिक क्षेत्र में योगदान :–**

किसी भी राष्ट्र का प्रशासन उस राष्ट्र की प्रगति और विकास का सूचक होता है। यदि प्रशासनिक दक्षता और कुशलता सुदृढ़ है, तो राष्ट्र की प्रगति और विकास सुनिश्चित है। प्रथम महिला आई.ए.एस अन्ना जॉर्ज हो या प्रथम में अनेक महिलाएं भारतीय प्रशासनिक सेवा और राज्य प्रशासनिक सेवाओं में न केवल अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं, अपितु सर्वोच्च रैंक प्राप्त कर समाज और देश का गौरव भी बढ़ा रही है।

जेंडर समानता का सिद्धांत भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्तव्यों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में प्रतिपादित है। संविधान महिलाओं को न केवल समानता का दर्जा प्रदान करता है अपितु राज्य को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपाय करने की शक्ति भी प्रदान करता है।

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के ढांचे के अंतर्गत हमारे कानूनों, विकास संबंधी नीतियों योजनाओं और कार्यक्रमों में विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की उन्नति को उद्देश्य बनाया गया है। पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974–78) से महिलाओं से जुड़े मुद्दों के प्रति कल्याण की बजाय विकास का दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। हाल के वर्षों में, महिलाओं की स्थिति को अभिनिश्चित करने में महिला सशक्तिकरण को प्रमुख मुद्दे के रूप में माना गया है। महिलाओं के अधिकारों एवं कानूनी हकों की रक्षा के लिए वर्ष 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई। भारतीय संविधान में 73वें और 74वें संशोधनों (1993) के माध्यम से महिलाओं के लिए पंचायतों और नगरपालिकाओं के स्थानीय निकायों में सीटों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है जो स्थानीय स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है।

यह अमृत वरदान होने के साथ–साथ दिव्य औषधि भी है। ना ही वह सौंधी मिट्टी की महक है, जो जीवन

की गया को महकाती है और न केवल व्यक्तिगत, बल्कि राष्ट्र–निर्माण एवं विकास में अपनी महती भूमिका निभाती है। नारी के लिए यह कहा जाए कि यह 'विविधता में एकता है' तो कोई बड़ी बात नहीं होगी, क्योंकि महिलाओं के बाह्य स्वरूप, सौंदर्य और पहनावे में विविधता तो होती है, लेकिन उनके मानस में एकाकार और केंद्रीय शक्ति ईश्वर की तरह 'एक' ही होती है।

इसी शक्ति के इर्द–गिर्द सूर्य और अन्य ग्रहों की भांति अनेक प्रकार के सद्गुण निरंतर गतिमान रहते हैं। जैसे विश्वास, प्रेम, करुणा, निष्ठा, दया, समर्पण, त्याग, बलिदान, ममता, शीतलता, स्नेह, कुशलता, कर्तव्य परायणता, सहनशीलता, मर्यादा, समता, सृजनशीलता एवं सहिष्णुता इत्यादि। इन्हीं विविध शक्तियों के परिणाम स्वरूप महिलाओं का राष्ट्र–निर्माण और विकास में अद्भुत और अतुलनीय योगदान पाया जाता है। महिलाओं के सतत् योगदान को हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं

महिलाएं ही संस्कृति, संस्कार और परंपराओं की संरक्षिका होती है। वे पीढ़ी–दर–पीढ़ी इनका संचालन और संरक्षण करती रहती हैं। संपूर्ण विश्व में भारत को विश्व गुरु का दर्जा दिलाने में महिलाओं की ही भूमिका रही है। यही कारण है कि भारत को विविध समृद्ध संस्कृति और परंपराओं का देश कहा जाता है।

**निष्कर्ष :–**

अतः हम कह सकते हैं कि महिलाओं ने अपने कर्तव्य कर्मठता और सृजन शीलता के माध्यम से राष्ट्र निर्माण और विकास में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। आज नारी पुरूषों के सामने ही सुशिक्षित, समक्ष और सफल है, चाहे वह क्षेत्र सामाजिक साहित्यिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, खेल, कला, इतिहास, भूगोल, खगोल, चिकित्सा सेवा, मीडिया या पत्रकारिता आदि कोई भी हो। नारी की उपस्थिति, योगदान, योग्यता उपलब्धिता, मार्मिकता ओर सर्जन शीलता स्वयं एक प्रत्यक्ष परिचय देती हे। परिवार की जिम्मेदारियों को संभालते हुए समाज, राष्ट्र व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर नारी ने सदैव ही विजय पताका लहराते हुए राष्ट्र निर्माण और विकास में अपना विशेष और अभूतपूर्व योगदान दिया है। नारी सदैव ही पूजनीय रही है और युगों–युगों तक रहेगी। नारी एक ऐसी भाक्ति है, एक ऐसी अतुलनीय ऊर्जा है जो दिन–रात एक करते हुए अपने परिवार, समाज व देश का निर्माण करती है।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची :–**


1. गजभिये, डॉ0 अनिल, हिंदू कोड बिल, इतिहास और संघर्ष सम्यक प्रकाशन ISBN-978-81-940732-0-8
2. अग्रवाल, जे0सी0 भारत में नारी शिक्षा प्रभात प्रकाशन, ISBN-978-81-85-8228-77-0
3. कांत, सुमन कृष्ण, इक्कीसवी सदी की ओर राजकमल प्रकाशन ISBN-978-81-267-0244-2
4. सिंह, जे0पी0, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन ISBN-978-81-203-5232-2
5. राठौर, मधु, पंचायती राज व महिला दिवस।
6. चतुर्वेदी, डॉ0 मुरलीधर, ट्0ला0ए0 भारत का संविधान, 1994

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 135-138

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# संवेदनशील गद्य लेखिका : महादेवी वर्मा

**डॉ. अनिता जोशी**

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी, एम0बी0, राज स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (नैनीताल) –263139

**शोध सार :–**

महादेवी जी के काव्य में युग–युग की पदाक्रांत, पीड़ित भारतीय नारी की करूणा साकार हुई है। पद्य की ही भांति उनके गद्य–साहित्य में भी इस आंदोलन की अनुगूंज सुनाई पड़ती है। उनके अधिकांश गद्य चित्रों के पात्र मानवेतर होते हुए भी मानवीय संवेदना की सूक्ष्मतम अनुभूति से ओत–प्रोत हैं। उनके गद्य में उनका विद्रोही तेवर स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। इसके बावजूद दुःख की गहनता मे डूबने वाली महादेवी जी की किसी भी रचना में किसी के प्रति भी खीज, निराशा, उपालंभ, व्यक्तिगत आक्षेप, आक्रोश आदि के चिह्न नहीं मिलते। उनका संपूर्ण साहित्य भारतीय नारी और भारतीय जन की मुक्ति की गतिशील आकांक्षा की देन है, इसमें कोई संदेह नहीं।

**मुख्य कूट शब्द :–** संवेदना, विद्रोही तेवर, कोमल हृदय, गुरूतर व्यक्तित्व, अगाध करूणा।

आधुनिक हिन्दी कविता की रहस्यवादी भावधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले छायावादी चार आधार स्तंभों में से एक महादेवी वर्मा को कोमल कांत पदावली युक्त भाषा में उच्च कोटि के गीतों की सर्जक के रूप में ही जाना जाता है। आध्यात्मिक प्रणय भाव तथा वेदनापूर्ण करूण क्रंदन के कारण कुछ लोग महादेवी वर्मा के कृतित्व पर असामाजिकता का आरोप लगाते हैं, लेकिन उनके मूल्यांकन का यह दृष्टिकोण बहुत उचित नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः महादेवी जी के काव्य में युग–युग की पदाक्रांत, पीड़ित भारतीय नारी की करूणा साकार हुई है और इन्होंने आत्मा–परमात्मा के प्राय–रूपक द्वारा जिस मुक्ति की कामना की है, उससे बंदिनी नारी–जाति के मुक्ति आंदोलन को प्रोत्साहन मिला है। पद्य की ही भाँति उनके गद्य–साहित्य में भी इस आंदोलन की अनुगूंज सुनाई पड़ती है।

'डॉ. रामविलास शर्मा' ने इस संबंध में लिखा–''महादेवी वर्मा जी की कर्मठता, समाज सुधार और जनसम्पर्क की सीमाएँ हैं, लेकिन उनका एकांत अभाव हो, ऐसी बात नहीं है। 'श्रृंखला की कड़ियाँ', 'स्मृति की रेखाएं', 'अतीत के चलचित्र' आदि पुस्तकें इस बात का प्रमाण है। महादेवी जी का कवि और गद्यकार एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। वे दो बिखरी हुई विरोधी इकाइयाँ नहीं हैं।''[1]

महादेवी जी के अधिकांश गद्य–चित्रों के पात्र मानवेतर होते हुए भी मानवीय संवेदना की सूक्ष्मतम अनुभूति से ओत–प्रोत हैं। उन्होंने 'स्मारिका' की भूमिका में लिखा हैं– ''अतीत में मिले खोये व्यक्तियों या पशु–पक्षियों को स्मरण करते समय कभी–कभी इतने आँसू गिरे हैं कि लिखा हुआ कागज गीला हो जाने के कारण खराब

हो गया है और कभी–कभी हंसी ने इतना अस्थिर कर दिया है कि लिखावट टेढ़ी–मेढ़ी हो गई है। मेरे संस्मरणों में मेरे आँसू और हंसी के नहीं, अनेक तीव्र आवेगों के गहरे चिह्न अलग–अलग पहचाने जा सकते हैं।''[2]

नीलकंठ (मोर), सोना (हिरणी), नीलू (कुतिया) जैसे मूक पशु का वर्णन हो या 'रामा' जैसे कुरूप और 'अलोपी' जैसे नेत्र विहीन सेवक का, चाहे मावाड़िन 'बिन्दो' और बिट्टो' जैसी विधवायें हों, या 'घीसा' जैसा दीन–दुःखी ग्राम्य बालक, दुनिया में अकेला 'चीनी भाई' हो या फिर अभागी 'लछमी'– सभी पर महादेवी के ममत्व की अजस्त्र धार समान रूप से बरसी है। महादेवी के संस्मरणों–रेखाचित्र के पात्र अज्ञात कुलोत्पन्न, विपन्न, उपेक्षित एवं दीन–हीन साधारण मनुष्य हैं, जिनकी व्यथा–कथा महादेवी जी की अपनी व्यथा बन अभिव्यक्ति पाती है। यथार्थ के धरातल पर खड़े ये पात्र मानो इन शब्दों में बरबस ही अपनी ओर सहृदय पाठक का ध्यान आकृष्ट करते दिखाई पड़ते हैं–''हम कार्बन की कापियाँ नहीं हैं। हमारी भी एक कथा हैं। यदि जीवन की वर्णमाला के संबंध में तुम्हारी आँख निरक्षर नहीं, तो तुम पढ़कर देखो न।''[3]

'मेरा परिवार' की भूमिका में इलाचन्द्र जोशी ने लिखा भी है कि– ''उन सभी मानवेतर पात्रों की गतिविधि की संचालिका के रूप में कवयित्री का व्यक्तित्व इन चित्रों में अपनी परिपूर्ण मानवीयता के साथ उभर कर पग–पग पर पाठक की चेतना के अणु–अणु में अपने अमृत–स्पर्श का संचार करता चला जाता है।''[4]

महादेवी जी के गद्य में उनका विद्रोही तेवर स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। इसके बावजूद दुःख की गहनता में डूबने वाली महादेवी जी की किसी भी रचना में किसी के प्रति भी खीज, निराशा, उपालंभ, व्यक्तिगत आक्षेप, आक्रोश आदि के चिह्न नहीं मिलते।

कोमल–हृदया महादेवी के मन ने करूणा से, उपेक्षा से जितनी चोट खाई है, उतनी किसी और विषय से नहीं। दीन–हीन, दुःखी एवं असहाय व्यक्ति ही इनके रेखाचित्रों में जीवंत हो उठा है। इनके व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि उन्होंने न केवल ऐसे चरित्रों को अपने संस्मरणात्मक साहित्य में स्थान दिया, बल्कि ईमानदारी के साथ उनसे प्रेरणा ग्रहण करने की बात भी स्वीकारी। 'लछमा' में उन्होंने लिखा–''पर कंटीली डालियों से छिदे हाथों और पैने पत्थरों से क्षत–विक्षत पैरों वाली मलिन, पर ह्यस से उज्ज्वल लछमा के प्रति मेरे मन मे सम्मान युक्त सख्यत्व की भावना की प्रधान है। वह अपने दुःख में न इतनी अस्थिर है, न हल्की कि उसे मेरे सहारे की आवश्यकता जान पड़े और अनेक अवसरों पर तो मैंने उसे अपने आप से बहुत गुरू और ऊँचा पाया है।''[5]

ऐसी पंक्तियाँ गुरूतर व्यक्तित्व से ही अपेक्षित हैं। करूणा एवं वात्सल्य से परिपूर्ण इनका ममतामय हृदय समाज के ऐसे ही दीन–हीन, दुःखों से त्रस्त, प्राणियों के लिए दौड़ पड़ता है। उन्होंने स्वीकारा– ''अपने आनंद के प्रकाशन के लिए मेरे निकट कला ही नहीं, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे भी महत्व रखते हैं, क्योंकि उन पर भी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करके मुझे पूर्ण संतोष हो जाता है। रहा दुःख का प्रकटीकरण तो उसका लेश मात्र भी, भार बना कर किसी को देना मुझे अच्छा नहीं लगता।.....दुसरे के सुख में एक प्रकार की निश्चिन्तता का अनुभव करके मैं दूर ही रह जाती हूँ और दुःख ग्रस्त मेरे संबंध का आधार वात्सल्य ही रहता है।''[6]

गरीबी की पराकाष्ठता व्यक्ति को कितना दीन–हीन बना देती हैं, इसका अत्यंत मार्मिक चित्रण महादेवी ने किया–''जब बहुत भूखा हुआ तब पीली मिट्टी का गोला बनाकर मुँह में रखा और आँख मूंदकर सोचा –'लडडू खाया, लडडू खाया।' बस फिर बहुत–सा पानी पी लिया और सब ठीक हो गया।''[7]

समाज के अत्याचारों, अनाचारों, कुरीतियों, पाखंडों एवं अंधविश्वासों के विरूद्ध वे निर्भीक भाव से आवाज उठाती हैं। इनके रेखाचित्रों में स्त्री–पात्रों के चित्र पुरूष–पात्रों से अधिक सजीव हैं। समाज मनोविज्ञान मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्र की विषम भूमि के भेद से इतर सम ही रहता है–''एक पुरूष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरूष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहती।''[8]

पुरूष मनोविज्ञान का बड़ा ही सटीक वर्णन महादेवी जी ने यहाँ किया है। वस्तुस्थिति यह है कि पुरूष स्त्री को प्रताड़ित कर स्वयं के अहं को तुष्ट करता है, किन्तु वहीं यदि स्त्री पुरूष के पाश से मुक्त हो, स्वतंत्र एवं आत्म–निर्भर हो जीवन–यापन करने के लिए तत्पर होती है तो समस्त समाज उस पर मिथ्या दोषारोपण कर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेता है।

मानवीय चरित्रों के अतिरिक्त महादेवी की अगाध करूणा की धार मानवेतर मूक पशु–पक्षियों पर भी न केवल अजस्र बरसी है, बल्कि मानव का इन पशु–पक्षियों के प्रति क्रूर व्यवहार भी इन्हें विचलित कर देता है। 'सोना' नामक संस्करण में उन्होंने हरिण–शावक के संबंध में करूणापूर्ण लेखनी से लिखा ''परन्तु उस बेचारे हरिण शावक की कथा तो मिट्टी की ऐसी व्यथा कथा है, जिसे मनुष्य की निष्ठुरता गढ़ती है।.....मैं प्रायः सोचती हूँ कि मनुष्य जीवन की ऐसी सुन्दर ऊर्जा को निष्क्रिय और जड़ बनाने के कार्य को मनोरंजन कैसे कहता है।

मनुष्य मृत्यु को असुन्दर ही नहीं अपवित्र भी मानता है। उसके प्रियतम आत्मीय जन का भाव भी उसके निकट अपवित्र, अस्पृश्य तथा भय जनक हो उठता है। जब मृत्यु इतनी अपवित्र और असुन्दर है तब उसे बांटते घूमना क्यों अपवित्र और असुन्दर कार्य नहीं है, यह मैं समझ नहीं पाती।''[9]

'मेरा परिवार' में पशु–पक्षियों पर आधारित संस्मरणों में महादेवी ने पशु–पक्षियों के प्रति अपनी आत्मीयता करूणा एवं प्रेम को बिखेर दिया है। श्री रामचन्द्र तिवारी जी ने लिखा– ''मेरा परिवार'' हिन्दी साहित्य में अकेली ऐसी कृति है, जिसमें करूणा की स्निग्धता और शीतलता ने पशुओं को भी व्यक्तित्व प्रदान किया है।''[10]

महादेवी जी ने पशु–पक्षियों को पाला ही नहीं, अपितु उनकी विशेषताओं से भी पाठक–वर्ग को परिचित कराया। 'मोर' के संबंध में उन्होंने लिखा–''मयूर कला प्रिय वीर पक्षी है, हिंसक मात्र नहीं। इसी से उसे बाज, चील आदि की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, जिनका जीवन की क्रूर कर्म है।''[11]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है ''महादेवी जी ने जहाँ सदियों से मुख्य धारा से वंचित स्त्री को अपने रेखाचित्रों द्वारा स्वर दिया, वहीं मूक प्राणियों की संवेदना को भी अपने समय के साथ चिह्नित करते हुए रेखांकित किया, जो कि उनके परिवार के अभिन्न सदस्यों, उनके अंग की तरह हमेशा उनके साथ रहे। उनका सारा संस्मरणात्मक गद्य–साहित्य इसी पक्ष की रचनात्मक अभिव्यक्ति है। वस्तुतः उनके अंतर में जो 'महानारी' बैठी है उसकी 'विवशता' श्रृंखला की कड़ियों में 'ममता' अतीत के चलचित्र में प्रकट हुई है।''[12] वस्तुतः महादेवी जी की वाणी निर्विवाद रूप से समाज और व्यवस्था द्वारा पीड़ित मनुष्यता की वाणी है जो निडर भाव से अपने प्रति किए षड्यन्त्र का विरोध करती दिखती है। उनका संपूर्ण साहित्य भारतीय नारी और भारतीय जन की मुक्ति की गतिशील आकांक्षा की देन है, इसमें कोई संदेह नहीं। हिन्दी साहित्यकाश में उनका स्थान अक्षुण्ण है, वे वास्तव में साहित्य की 'महादेवी' ही हैं।

**संदर्भ संकेत :-**


1. उद्धृत – आलोचना (जुलाई–सितम्बर 2010) – गोपेश्वर सिंह (लेख), पृष्ठ 54
2. स्मारिका–महादेवी वर्मा –भूमिका, पृष्ठ –9
3. महादेवी साहित्य समग्र –चीनी फेरी वाला (स्मृति की रेखाएँ), पृष्ठ –111
4. मेरा परिवार– महादेवी वर्मा– भूमिका (इलाचन्द जोशी)
5. स्मारिका –महादेवी वर्मा (लछमा), पृष्ठ–123
6. वहीं, पृष्ठ –123
7. वहीं, पृष्ठ– 121
8. वहीं, पृष्ठ– 127
9. वहीं, पृष्ठ–140
10. महादेवी – सं0 परमानंद श्रीवास्तव (लोकभारतीय मूल्यांकन माला) पृष्ठ–149
11. स्मारिका – महादेवी वर्मा, पृष्ठ – 135
12. महादेवी की रहस्य साधना – विशंभर मानव, पृष्ठ –21



मो0न0 9411596889

ई मेल – anujoshia54@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 139-146

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा साहित्य में संवेदनात्मक दृष्टिकोण

**सुनीता रानी**

शोधार्थी, पी–एच.डी. हिन्दी, हिन्दी विभाग, गुरुकाशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो, बठिण्डा, पंजाब–151302

**शोध पत्र सारांश :–**

साहित्य की समाज के लिए अनिवार्यता सर्वव्यापक है साहित्य की प्रयोजनीयता व्यक्ति सापेक्ष होने के साथ समाज सापेक्ष भी है। साहित्य किसी भी रूप में रचा गया हो उसका संबंध अथवा सरोकार अन्ततः मानव जीवन से है। मानव जीवन की संवेदना ही साहित्य के रूप में आकार ग्रहण करती है। साहित्यकार की साधना भी सामाजिक संवेदना की दृष्टि से ही सिद्ध होती है। कथा साहित्य जीवन की व्यापकता के साथ अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखता है अर्थात् कथा साहित्य मानव जीवन को गहराई से विश्लेषित कर उसे अभिव्यक्त करता है। जीवन के प्रति बगैर जुड़ाव के यह संभव नहीं है अतः कथाकार या रचनाकार का जुड़ाव समाज से परिवेश से गहरा होता है जीवन के प्रति रचनाकार की गहरी सम्पृक्तता ही उसके साहित्य को पठनीय, संवेदनागत और विशिष्ट अथवा अद्वितीय बनाता है। साहित्यकार के लिए जीवन के प्रति आस्था का भाव होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना आस्था के उसकी रचना अपना वास्तविक स्वरूप ग्रहण नहीं सकती। महादेवी वर्मा ने अपने निबन्ध 'साहित्यकार की आस्था' में इस तथ्य को इस प्रकार से उद्घाटित किया है :–

"साहित्य जीवन साहित्यकार की निजी संवेदनीयता तथा सात्विकता से अपना स्वरूप पाता है। मानव जीवन कितना ही विभिन्न होकर मूलरूप में एक है अतः एकाकी जीवन साधना से सबकी सहानुभूति जागृत हो उठती है। जो कलाकार के साधना की चरम सिद्धि है।"[1]

**विशिष्ट शब्द :–** संवेदनात्मक दृष्टि, सहानुभूति, प्रयोजनीयता, भाववादी, सांस्कृतिक मूल्य, धार्मिकता, आंतरिक विचारधारा, साहित्यिक रस, अंतर्वस्तु, प्रतिबिंब, विवेचना।

**भूमिका :–**

मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा साहित्य की संवेदना उनकी रचनाओं का मूल कथ्य है इसमें आलोच्य कृतियों की संवेदनात्मक दृष्टि से आलोचना की गई है। इसमें संवेदना की परिभाषा व स्वरूप को स्पष्ट करते हुए परिवर्तित संदर्भों का संवेदना पर पढ़ने वाले प्रभाव तथा कथ्य से निष्पन्न होने वाली विभिन्न संवेदनाओं को रेखांकित किया गया है। साथ ही स्त्री की यथार्थ स्थिति को उजागर करने का प्रयास किया गया है। कथा साहित्य जीवन की व्यापक संवेदना को विस्तृत रूप में अभिव्यक्त करने वाली सशक्त विद्या है। आधुनिक युग के

बदलते जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करने में कथा साहित्य जितना समर्थ हुआ है उतनी और विधा नहीं हुई है। कथा साहित्य में जीवन का विस्दर्शन होता है, रचनाकार के पास अभिव्यक्ति के व्यापक अवसर होते हैं। रचनाकार समाज के विभिन्न पहलुओं को कथा साहित्य में सहजता से अभिव्यक्त कर पाने में समर्थ होता है। हिन्दी कथा साहित्य की समृद्ध परम्परा विद्यमान है।

भारतेन्दु से लेकर आज तक अपने समय एवं युग की नब्ज को पकड़ते हुए अपने समय की संवेदनाओं एवं समस्याओं को मुखरित करने का प्रयास किया है। समय के साथ बदलते मूल्यों के अनुरूप कथा साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। कथ्य के अनुरूप शिल्प में बदलाव कथा साहित्य में निरन्तर दृष्टिगत होते रहे हैं। साहित्य और समाज का अंतसंबंध बहुत गहरा और महत्वपूर्ण होता है। साहित्य समाज के साथी रूप में कार्य करता है और समाज को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्य समाज के विभिन्न पहलुओं, विचारधाराओं, और अनुभवों को दर्शाने का माध्यम होता है और लोगों के विचारों, भावनाओं और जीवन शैली को प्रभावित करता है। साहित्य के माध्यम से लेखक अपने विचारों, दृष्टियों, और भावनाओं को साझा करते हैं, जो समाज की चिंताओं, आंतरिक विचारधाराओं और सामाजिक मुद्दों को प्रतिष्ठित करते हैं।

इस प्रकार, साहित्य समाज की समस्याओं, सांस्कृतिक मूल्यों, और मानसिक स्थिति के साथ संवाद स्थापित करता है। वास्तविकता में, साहित्य समाज के साथी के रूप में कार्य करता है जो समाज को अवसर प्रदान करता है अपने आपसे जुड़ने, बोझ को हल करने, ज्ञान और संवेदन शीलता के माध्यम से जीवन को सुंदर बनाने के लिए। साहित्य से संवाद शुरू होता है, विचारों और विपणन शास्त्र के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुंचता है और सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करता है। साहित्य समाज के माध्यम से अभिव्यक्ति, प्रतिरोध, जागरूकता और समझ के बढ़ाव को प्रदान करता है। यह विभिन्न चिंताओं, भाषाओं, क्षेत्रों और समाज शास्त्रीय परियोजनाओं के माध्यम से विविधता और विचार धाराओं की मान्यता प्रदान करता है। साहित्य के माध्यम से साहित्यिक योग्यता, साहित्यिक रस, और साहित्यिक सृजन का महत्वपूर्ण योगदान होता है जो समाज के विचार और भावनाओं को परिभाषित करता है और लोगों के मनोबल को बढ़ाता है।

समकालीन कथा साहित्य सामाजिक, राजनीतिक संदर्भों से गहरा सरोकार रखता है। अतः मानवीय शोषण, अत्याचार, हिंसा, स्त्री–शोषण, युवा वर्ग की पीड़ा संघर्ष व परिस्थितियों की मार झेलते हुए आम आदमी का चित्रण करते हुए सामाजिक व राजनीतिक जागरूकता का परिचायक बना और समकालीन कथा साहित्य में यही संवेदनात्मक संदर्भों में मुखरित हुई है। रचनाकारों ने बदलती संवेदनाओं के लिए शिल्प के लिए प्रयोग किए हैं। भाव–भाषा के स्तर पर तात्कालिक जीवन का प्रभाव दिखाई देता है।

समकालीन युवा कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ की रचना यात्रा आद्यन्त जारी समकालीन कथा साहित्य में मनीषा कुलश्रेष्ठ अपने रचनात्मक वैशिष्ट्य और यथार्थवादी जीवन दृष्टि से अपनी एक अलग पहचान बनाने में सफल एवं समर्थ सिद्ध हुई है उनके साहित्य के संदर्भ में प्रश्न समाधान चाहते हैं कि जीवन और उसका सहज विकास क्या है? क्या आदर्श, सिद्धान्त, नियम और परम्परा आदि उसमें बाधक बनते हैं या नहीं?

पुरुष के प्रति घृणा का भाव भी मनीषा के कथा साहित्य में व्यक्त हुआ है। "प्रज्ञा का पुरुष जाति के प्रति विश्वास ही खत्म हो गया है। उसकी नजर में सारे पुरुष एक से होते हैं, उनसे किसी प्रकार का संबंध बनाना विश्वसनीय नहीं है। ये कभी भी धोखा दे सकते हैं।"[2]

**अध्ययन का उद्देश्य :-**

इस अध्ययन में साहित्य का संवेदनात्मक पक्ष समझने का प्रयास किया गया है। समाज की संकल्पना भावों के रूप में वह किस तरह से समाज को प्रभावित करती है यह साहित्य और समाज के अंतसंबंध को समझने का प्रयास है।

**शोध पद्धति :-**

विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि को आधार मानकर विभिन्न पुस्तकालयों से पुस्तकों का अध्ययन पत्र–पत्रिकाओं का विश्लेषण तथा शोध प्रबंधों की सहायता से जानकारी इकट्ठा करना।

मुख्यविषय३.मनीषाकुलश्रेष्ठ समर्थ कथाकार है इन्होंने जीवन को नजदीक से देखा है उनके साहित्य में सांस्कृतिक, धार्मिक आदि संवेदनाएं भी दृष्टिगत होती हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ के लेखन का विशेषता यह है कि वह अपने विषयों को गहराई से अध्ययन करती हैं और सामान्यतः वहां से अनजाने पहलुओं को प्रकट करती हैं। उनकी लेखनी दर्पण की भाँति होती है, जो हमें स्वीकार्यता और सत्य की ओर प्रेरित करती है। उनकी रचनाएं अपने चरित्रों, वातावरण, और विविध संघर्षों के माध्यम से वास्तविकता को दर्शाने का कार्य करती हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठा ने उन्नति और परिवर्तन की विभिन्न पहलुओं को छूने का प्रयास किया है। उनकी रचनाएं सामाजिक मुद्दों, महिला मुद्दों, पर्यावरण बचाव, बाल शिक्षा, आधुनिकता और संघर्षों के मुद्दों को संवेदनशीलता के साथ बताती हैं। वे व्यापक रूप से जागरूकता फैलाने के लिए अपनी लेखनी का उपयोग करती हैं और सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करती हैं। लेखिका की चिन्ता गहरी है। वह आपसी सद्भाव और साझा कहां लुप्त हो गया है, लोगों में अलगाव का भाव कहां से आ गया है? नुकसान दोनों को ही हुआ है, और होगा? राजस्थान में बाल विवाह की परम्परा का चित्रण लेखिका ने इस तरह किया है।

"यह हमारी संस्कृति की पहचान है– तभी शोर उठा और नन्ही–नन्हीं दुल्हने थालियों में बाहर लाई गई। चांदी के अनगढ़ जेवरों से लदी नए घाघरे ओढनों में बेहाल, रोती, ऊंघती गैस के डंडों की रोशनी में बहुत ही अनोखा दृश्य बन पड़ा था सामूहिक फेरों का।"[3]

**बदलते संदर्भ और संवेदना :-**

जब साहित्य और जीवन की परस्पर पूरकता को स्वीकार कर लिया गया है तो यह स्पष्ट है कि जीवन की गति के साथ साहित्य की गति होती है और साहित्य की सार्थकता ही जीवन की गतिशील संवेदना की अभिव्यक्ति से है। कथा साहित्य के उपन्यास तथा कहानियों में भी जीवन की पल पल की गतिशील परिवर्तित यथार्थ स्थिति, संघर्ष, सुख–दुःख, पीड़ा असतोष, विद्रोह आदि मुखरित होते रहते हैं। सामाजिक समस्याओं को आंकने की परम्परा को कुछ उपन्यासकारों ने अक्षुण्ण रखने का प्रयास भी किया, लेकिन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

ने साहित्य की संवेदना को नया रूप दिया और सामाजिक प्रगति रोकने वाले तत्त्वों के विरुद्घ उद्घोष किया। रचनाकारों ने शोषण के दोनों स्तरों आर्थिक और वैचारिक स्तरों के विरुद्ध जागृति फैलाना अपने रचनाकर्म का उद्देश्य माना और अपनी रचनाओं के कथ्य द्वारा इस शोषण के खिलाफ विद्रोह का साहस उत्पन्न करना अपना लेखकीय दायित्व माना वर्ग संघर्ष की उभरती चेतना ऐसे कथा साहित्य की मूल संवेदना बनी।

समाज की गतिविधियों को नवीन जीवन दृष्टि और विचारधारा से जोड़ने के प्रयास ने हिन्दी कथा साहित्य की संवेदना को बदल दिया था. लेकिन समाज और व्यक्ति के बाह्य संघर्षों से इतर रहकर व्यक्ति के अन्त मन की गुत्थियों और मन स्थितियों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण कुछ कथा साहित्यकारों की रचनागत संवेदना बनी और व्यापक स्तर पर संवेदना ने नया स्वरूप ग्रहण किया तथा मानव मन की गतिविधियों का सूक्ष्म विश्लेषण करना इनकी मूल प्रवृत्ति रही। व्यक्तिवादी उपन्यासों में कथानक का महत्त्व कम हो गया. सीमित पात्रों द्वारा बाह्य संघर्ष के स्थान पर आन्तरिक संघर्ष, विस्तार के स्थान पर गहराई आ गई। अमानवीकरण, त्रासदी, विडम्बना, अजनबीपन आदि का चित्रण इसमें दृष्टिगत होता है। जैसे–जैसे युग एवं सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थितियां बदलती है, समाज के सरोकार भी उसी अनुपात में बदलते रहते हैं। साहित्य के विषय समय सापेक्ष होते हैं अतः बदलते समय और परिवेश के साथ–साथ नवीन विषय वस्तु और संवेदना भी साहित्य के अन्तर्गत सम्मिलित होते रहते हैं।

संवेदना के अनेक रूप साहित्य में दृष्टिगत होते हैं। रचनाकार का किसी विशेष संवेदना चित्रण के प्रति आग्रह होता है तो कभी–कभी अनायास ही कथ्य के साथ–साथ जीवन के विभिन्न संवेदनागत पक्ष मुखरित होते रहते हैं। साहित्य की सार्थकता भीसमाज के समग्र चित्रण में है। अतः रचनाकार की रचना में संवेदनागत विविधता के वर्णन स्वाभाविक रूप से वर्णित होते ही हैं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का कथा साहित्य भी संवेदनागत दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न है। उसमें समाज एवं जीवन के विविध पहलू स्थूल एवं सूक्ष्म रूप से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होते रहते हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ का रचनाकर्म इस सदी के प्रथम दशक में व्यापकता प्राप्त करता है। इस सदी का मूल परिवेश वैश्वीकरण का रहा है। अतः साहित्य के विषय भी बदलते परिवेश के अनुरूप बदले हैं अथवा कुछ विषय शाश्वत होते हैं जो समाज में बदलते परिदृश्य के साथ यत्किचित रूप से बदलते रहते है। अनमेल विवाह की समस्या हो अथवा स्त्री–पुरुष संबंध हो या स्त्री के शोषण की समस्या हो ये समाज में आज भी विद्यमान है, इनके स्वरूप मात्र बदले है कोई विशेष परिवर्तन आज भी अपनी व्यापकता में दृष्टिगत नहीं होते हैं।

**सामाजिक संवेदना :–**

नए विचारों के लिए नया शिल्प ही समर्थ हो सकता है, अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने में। इस समय के कथा साहित्य में विषयगत नवीनता और विविधता परिलक्षित होती है. किन्तु कथ्य की दृष्टि से यही शहरी जीवन और मध्यमवर्गीय विषमता के चारों ओर घूमती विषय वस्तु में निराशा और कुण्ठा के ही स्वर मुखर है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ के साहित्य में सामाजिक जीवन के विस्तृत आयाम हैं या यूं कहें कि शिंगाफ,

शालभञ्जिका, पंचकन्या उपन्यासों के अलावा बौनी होती परछाई.. केयर ऑफ स्वात घाटी कठपुतलियाँ कुछ भी तो रूमानी नहीं गधर्वगाथा अनामा आदि कहानी संग्रहों में किसी न किसी सामाजिक स्थिति समस्या विषमता, घटना, प्रसंग, प्रेम, सेक्स और वर्जना जैसे बिन्दुओं को रेखांकित किया गया है।

सामाजिक संवेदना की दृष्टि से शिगाफ उपन्यास महत्वपूर्ण रचना है। इसमें कश्मीर की आतंक की समस्या से उत्पन्न जीवन की त्रासद विडम्बनाओं का अंकन किया गया है कि किस तरह आतंक से सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का विघटन हो गया है और इसका सबसे अधिक खामियाजा औरतों को भोगना पड़ा है–

'मैं कश्मीर की औरतों को करीब से बहुत सालों से देख रहा हूं। बेशक बुरी तरह शोषित हुए भी अपनी रिपोर्टिंग के दौरान बहुत सी औरतों से मिला हूँ जो मानसिक और शारीरिक शोषण का शिकार हुई हैं। सेना या पुलिस के जवानों और पाकिस्तानी और कश्मीरी मिलिटेंट्स के हाथों भी सबसे करीब जाएं तो हाल ही की कुख्यात सेक्स स्कैण्डल देवें, जिसमें बहुत सी कमसिन लड़कियां और जवान औरता को ब्लैकमेल किया गया उन मजलूम औरतों को नौकरी दिलाने के बहाने राजनेताओं ब्यूरोक्रेट्स और पुलिस अधिकारियों के सामने कम्फर्ट वुमन बनाकर पेश किया। बहुत से बड़े नामचीन लोग बेनकाब हुए लेकिन किसी औरत ने यह वास्ता अख्तियार नहीं किया है। बदले या किसी गुस्से में, बल्कि उन्होंने नौकरियों से इस्तीफे दिए या फिर जिन्दगी बनाने में जुट गईं। मगर फिदायीन बनकर बदला शायद ही किसी ने लिया हो।'[4]

प्रस्तुत उपन्यास में आतंक के परिणामों की चर्चा है, जिसमें कुल मिलाकर जीवन जीने के अर्थ बदल जाते हैं, उमंग, उत्साह सब निरर्थक प्रतीत होते हैं।

'शाल भंजिका' उपन्यास का कथानक चेतन पद्मा और ग्रेशल के इर्द–गिर्द घूमता है। इसमें ग्रेशल के माध्यम से स्त्री की त्रासद स्थिति का चित्रण किया गया है किस तरह एक स्त्री समाज में छली जाती है या उसकी नियति अन्त में एकाकी ही है। हर स्त्री से पुरुष अपेक्षाएं रखता है, परन्तु पुरुष का स्त्री के प्रति कोई संवेदनात्मक भाव, निष्ठा भाव नहीं है :–

'कुछ नहीं यार, मोपासा ने ग्रेशल जैसी लड़कियों की तारीफ में एक ही वाक्य लिखा है– हर ऑनलीडेफि शिएंसी इन... शीगे व हर हर सेल्फटूयू (उसकी एकमात्र कमी यही है कि उसने खुद को पूरी तरह तुम्हें सौंप दिया है)।'

'तो क्या तुम्हारी पत्नी छवि की कमी भी यही नहीं थी क्या? या तुम्हारी पद्मा दलोट सयानी शाल भंजिका–को कभी भी यही रही होगी नहीं? तेरा यह मोपांशो पाजो भी था, उल्लू था। सारी औरतें ऐसी ही होती हैं। कभी सोचा तूने कि इन सबके लिए तेरी अपनी डेफिशिएंसीज!'[5]

उपर्युक्त कथन स्त्री के प्रति पुरुष मानसिकता को तथा समाज में स्त्री की हैसियत को उजागर कर देता है बेबाकी से। स्त्री–पुरुष संबंधों की भी चर्चा प्रस्तुत उपन्यास में कर दी गई है। प्रेम में स्त्री सदैव भ्रमित होकर अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है, यह भी हमारे सामाजिक जीवन का एक पहलू है। मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा साहित्य की अधिकांश पात्र आधुनिका हैं। अतः प्रेम जैसे क्रिया व्यापार में उसकी मौन सहमति है :–

**राजनैतिक संवेदना :–**

खाप पंचायत एवं जाति पंचायत का वर्चस्व आज भी समाज में विद्यमान है। अपने निर्णय वह समाज पर थोपती है। इसी विसंगति को मनीषा कुलश्रेष्ठ ने अपनी कहानी कठपुतलिया में रेखांकित किया है– "राजस्थान के मरुस्थलीय इलाकों के अंदरूनी हिस्से में जहां जातिगत पंचायत ही समस्त कानून व्यवस्था का काम करती है, वहां पुलिस या घरेलू अदालत का क्या काम?'[6]

मनीषा कुलश्रेष्ठ की रचनाओं में राजनैतिक संवेदना के प्रत्यक्ष प्रसंग न के बराबर वर्णित हुए हैं। अधिकांशतया प्रासंगिक रूप में ही चर्चा की गई है। शिगाफ उपन्यास में आतंक की समस्या को राजनैतिक समस्या के रूप में चित्रित किया गया है। मनीषा जी इस संबंध में अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं–

"जितना शोर राजनेताओं और बुद्धिजीवियों ने गोवरा काण्ड के शिकार कुछ सौ लोगों के लिए मचाया है उसका आधा भी कश्मीर में मारे गए हजारों हिन्दुओं के लिए मचाया गया होता तो लगता कि हम अपने देश के अपने है विस्थापितों की पीड़ा का तो यहां जिक्र करता ही नहीं, उन्हें तो जाने दो। सच पूछो तो हम देश की लिजलिजी नीतियों के मार हुए हैं। इसलिए कश्मीरी पंडित किसी राजनैतिक पार्टी पर भरोसा नहीं कर पाता।'[7] मनीषा ने इस बात की ओर भी संकेत किया है कि सभी में राजनीति के प्रति आर्थिक स्थितिया से उत्पन्न विभिन्न दृश्यों को प्रसंगों को और संबंधों में आए बिखराव तथा पीड़ाओं को संवेदनाओं को यथार्थ दृष्टि से मुखरित किया है।

'यही तो सबसे बड़ी बेवकूफी हुई कि शांति प्रिय और अपने व्यवसाय में मस्त कश्मीरी पंडित ने जम्मू कश्मीर की राजनीति में कोई खास रुचि ही नहीं ली। ली होती तो हालात बेहतर होते।"[8]

**सांस्कृतिक संवेदना :–**

संस्कृति एक देश की उपज होती है, उसका संबंध देश के भौतिक वातावरण और उसमें पालित पोषित एवं परिवर्धित विचारों से होता है। संस्कृति जिसका संबंध ईश्वर, धर्म, अध्यात्म, नैतिकता, सरकार, त्योहार, पूजा तथा रीति–रिवाज आदि से होता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा साहित्य में यत्र–तत्र सांस्कृतिक संवेदना का वर्णन हुआ है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ ने सांस्कृतिक संवेदनाओं के अन्तर्गत विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। मनीषा जी पाम्पालोना के सांस्कृतिक परिवेश को इस तरह रूपायित करती है–

'दोनों तरफ मध्यकालीन हवेलिया और बीच में ऊँघती पड़ी गली हवेलियों की आबनूस की चिकनी लकड़ीवाली खिड़किया और संकरे दरवाजे, जो भीतर कहीं जाकर किसी गिरजे में किसी पुराने बन्द पड़े वेश्यालय में खुलते हैं। गलियां के निचले हिस्सो में दुकानें थी। चाँदी के कलात्मक सामानों की दुकानें पुराने क्लासिक संगीत के दुर्लभ एलबमों की दुकानें, किताबों की दुकानें, इन दुकानों के बाहर एक चिडिया फ्रांसीसी गली में ही मेज लगाकर शतरंज की बिसात बिछाए शर्त लगाकर जाने जाने वालों को चुनौती देते खिलाड़ी, गुने बेस्ट नट

बेचने वाले।'[9]

**धार्मिक संवेदना :-**

धर्म मानव जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। धर्म मनुष्य को संस्कार देता है। धर्म मनुष्य को जीवन जीने की कला देता है। धर्म और नीति जीवन की गति के नियामक भी हैं और कभी–कभी इनमें पनपते अंधविश्वास जीवन को जड़ता की ओर भी ले जाते हैं। मनीषा जी ने अपने कथा साहित्य में धार्मिक संवेदना को भी सहज अभिव्यक्ति दी है। धर्म ने अपना स्वरूप बदल दिया है। धार्मिक भावनाएं वर्तमान में जोड़ने की अपेक्षा तोड़ने का कार्य अधिक कर रही है। शिगाफ उपन्यास की निम्न पंक्तिया उल्लेखनीय है :–

"इन्ही गलियों में आसपास की दीवारों पर मैने नस्लवादी टिप्पणियों के साथ स्वस्तिक चिह्न को भी देखा ये हर जगह नहीं है... लेकिन मैंने कई जगह इन्हें बने देखा, बिल्डिंगों पर अक्सर प्रवासियों के विरोध में लिखे नारों के साथ मुझे नहीं पता था, सपने में यह समस्या भी है।"[10]

धार्मिक संवेदना ने लोगों को इतना भ्रमित कर दिया है कि वे धर्म के सच्चे स्वरूप से अनभिज्ञ हैं। धार्मिक स्थलों को आतंक का निशान बनाया जा रहा है – "पता नहीं, ये हिन्दू है कि मुसलमान... इनमें ये चरारे शरीफ की दरगाह की भी कुछ तस्वीरें हैं। दरगाह जिसे बाहर से आए इस बड़े आतंकी ने उड़ा दिया. मेरी भी समझ में नहीं आता, दरगाह बरबाद करने वाला इस्लाम का हीरो कैसे हो सकता भी है।"[11]

मनीषा जी ने कथा प्रसंग में मंदिर की आरती के दृश्य का वर्णन भी किया है–

"मंदिर में पहुंचे तो आरती की शुरुआत ही से नगाड़ा वादक भयानक डांस में था नगाड़ा गूंज रहा था। पुजारी के मन्द्र स्वरों में शामिल थे कई सारे भक्तों के स्वर डंका, घंटा, धुआं, भभूत कपूर।"[12]

मनीषा जी ने धार्मिक संवेदना के अन्तर्गत वृन्दावन के श्रीकृष्ण मंदिर परिक्रमाका उल्लेख किया है– धार्मिक स्थलों की दुर्दशा पर भी मनीषा जी ने दुःख प्रकट किया है कि ये भी आय के स्रोत बन चुके हैं, धर्म का पूर्ण व्यावसायीकरण हो चुका है।

**निष्कर्ष :-**

मनीषा कुलश्रेष्ठ के आलोच्य कथा साहित्य में संवेदना का व्यापक क्षेत्र रहा है। मनीषा जी की संवेदना मानव जाति के प्रति रही है। मनुष्य समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक मनोवैज्ञानिक संदर्भों को एवं संवेदनाओं को व्यापक परिवेश में चित्रित किया है। मनीषा जी ने संवेदनात्मक स्तर पर समाज के विभिन्न क्षेत्रों के विषयों को लिया है जिसमें स्त्री की संवेदना, प्रदूषण की समस्या, सामाजिक आचार विचार, मान्यताएं परम्पराएं आदि सम्मिलित है, तो राजनैतिक संवेदना के अन्तर्गत प्रतिपादित किया कि राजनीति का स्वरूप बदल गया है, वर्तमान में राजनीति स्वार्थ से युक्त हो गई है और इससे अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। आर्थिक संवेदना के अन्तर्गत बेरोजगारी की समस्या पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। सांस्कृतिक संवेदनार्गत राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराओं का वर्णन है तो साथ ही हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के टूटते स्वरूप पर भी चिन्ता व्यक्त की गई है। स्त्री के विशेष व्यवहार को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित किया गया है। आलोच्य कथा

साहित्य का कथ्य समसामयिक होने के साथ ही युग सापेक्ष भी है। इसमें निहित तथ्य शाश्वत है, यथार्थपरक है संवेदनात्मक दृष्टि से मनीषा कुलश्रेष्ठ का साहित्य सशक्त एवं समर्थ है।

**संदर्भ :-**


1. गंगा प्रसाद, आधुनिक कथा साहित्य, पृष्ठ संख्या 14
2. कुलश्रेष्ठ मनीषा, गंधर्व गाथा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2013, पृष्ठ संख्या 27
3. कुलश्रेष्ठ मनीषा, शाल भंजिका, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2012, पृष्ठ संख्या 56
4. कुलश्रेष्ठ मनीषा, शिगाफ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ संख्या 198
5. कुलश्रेष्ठ मनीषा, शाल भंजिका, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 94
6. कुलश्रेष्ठ मनीषा, कठपुतलियां, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 18
7. कुलश्रेष्ठ मनीषा, अनामा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या 20
8. कुलश्रेष्ठ मनीषा, गंधर्व गाथा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2013, पृष्ठ संख्या 49
9. कुलश्रेष्ठ मनीषा, शिगाफ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ संख्या 15
10. वही, पृष्ठ संख्या 15
11. वही, पृष्ठ संख्या 35
12. कुलश्रेष्ठ मनीषा, पंचकन्या सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 81
13. साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका, मैनेजर पांडेय, हरियाणा साहित्य अकादमी (चंडीगढ़), प्र. सं.1989



सुनीता रानी

शोधार्थी–पी–एच.डी.–हिन्दी, गुरुकाशी विश्वविद्यालय, तलवंडी साबो, बठिंडा, पंजाब–151302

ईमेल–sunitabhakar07@gmail.com

मो.नं.–8901212007

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 147-150

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# सुकेश साहनी का लघुकथा सम्बंधी समीक्षात्मक अनुशीलन

**डॉ. नितिन सेठी**

सी–231, शाहदाना कॉलोनी, बरेली (243005)

लघुकथा का इतिहास लगभग पचास वर्ष पुराना है। इस अर्ध शताब्दी में लघुकथा ने सृजन के अनेक पक्ष देखे हैं। आज लघुकथा ने सृजन, मनन, चिंतन, समालोचन के वैराट्य को छुआ है। अपने आरंभ से लेकर आज तक यद्यपि इसकी काया छोटी ही रही है, तथापि कम से कम शब्द योजना में अधिक से अधिक भाव बोध भरने का काम और नाम लघुकथा का है। लघुकथा की यही विशिष्टता उसे साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करती है। प्रसन्नता की बात है कि आज लघुकथा में सृजन के साथ–साथ सिद्धांत का भी स्थान निर्धारित है। अनेक वरिष्ठ लेखकों के साथ नये लेखक भी लघुकथा सर्जन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। स्थापित लघु कथाकारों से यह भी आशा की जाती रही है कि वे अपने अनुभवों को समय–समय पर साहित्य समाज में बांटते रहें। संतोष की बात यह है कि इस दिशा में कुछ सकारात्मक कदम उठे हैं। लघुकथा के सिद्धांतों पर आधारित कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियाँ पिछले पांच–सात वर्षों में आती रही हैं। इसी के साथ–साथ अनेक लघुकथाकार लघुकथा की समीक्षा और उसके सिद्धांतों को सामने लाने पर भी अपना श्रम करते रहे हैं। वरिष्ठ लघु कथाकार सुकेश साहनी भी अपनी विशिष्ट चिन्तन–पद्धति द्वारा लघुकथा के मानक सिद्धांतों का सफल अभिलेखन कर रहे हैं। 'लघुकथा–सृजन और रचना कौशल' इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कड़ी कही जा सकती है।

सुकेश साहनी अपने समीक्षा परक आलेखों के माध्यम से अक्सर लघुकथा के वैचारिक और चिंतन पक्ष को सामने लाने का प्रयास करते हैं। सुकेश साहनी के चिंतन के चार बिंदु लघुकथा के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं–लघुकथा के रचनात्मक पहलू पर विचार और मंतव्य, विभिन्न विषयों पर केंद्रित लघुकथाओं की गुण धर्म के आधार पर समालोचना, कथा देश की वार्षिक लघुकथा प्रतियोगिता में निर्णीत रचनाओं के माध्यम से सृजन प्रक्रिया और रचना कौशल पर महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ तथा स्थापित कथाकारों की चुनिंदा लघुकथाओं की गुण–दोष पर आधारित समीक्षाएँ। इन मुख्य चार चिंतन बिंदुओं को आधार बनाकर उन्होंने अनेक आलेख भी समय–समय लिखे हैं।

लघुकथा सृजन की रचना प्रक्रिया दर्शाते हुए साहनी जी महत्वपूर्ण बात कहते हैं, "जीवन यात्रा के विभिन्न पल छोटे–छोटे एहसासों के रू प में दिलोदिमाग पर छा जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियाँ पाते ही जब इनमें साहित्यिक रूप के साथ जीवन का गर्म लहू दौड़ने लगता है, जब उसके साथ उससे संबंधित कुछ विचार

व्यवस्थित होकर घुल मिल जाते हैं, तभी लघुकथा कागज पर उतरती है।"[1] सरल शब्दों में एक मार्मिक बात साहनी जी यहाँ प्रस्तुत करते हैं। प्रायः लघुकथा को कथा के साथ 'लघु' शब्द जुड़ा होने के कारण कहानी का छोटा रूप मान लिया जाता है। आलेख 'कहानी का बीज रूप नहीं है लघुकथा' में इसे स्पष्ट किया गया है, "यह भ्रम की स्थिति भी दूर होनी चाहिए कि जिन विषयों पर लघुकथाएँ लिखी गई हैं, उन पर कहानी नहीं लिखी जा सकती। लघुकथा के साथ जुड़े लघु शब्द को उसके शाब्दिक अर्थ में न समझा जाए, बल्कि आकारगत लघुता की दृष्टि से देखा जाए।"[2]

लघुकथा के आरंभ से आज तक अनेक विषयों पर आधारित लघुकथाओं का सृजन किया गया है। समाज का कोई भी पक्ष लघुकथा से अछूता नहीं रह पाया है। विभिन्न लेखकीय आयाम लघुकथा को सृजन विस्तार प्रदान करते हैं। सुकेश साहनी इन आयामों की यहाँ गहराई से पड़ताल करते हैं। वे मुख्यतः चार सामाजिक आधार चुनते हैं, जिन पर सशक्त लघुकथाएं लिखी गई हैं। स्त्री–पुरुष सम्बंध, महानगर, देह व्यापार, बाल मनोविज्ञान–इन चार आधारों पर केंद्रित लघुकथाओं के गुण–दोषों की विस्तृत समालोचना में लघुकथाओं के सौंदर्य बोध, उनका कथानक, शीर्षक उपयुक्तता, शिल्प संरचना जैसे विषयों पर साहनी जी द्वारा कलम चलाई गई है। 'महानगर की लघुकथाएँ' आलेख में साहनी जी के विचार हैं, "अर्थ प्रधान महानगरीय सभ्यता में सम्बंधों की शिथिलता पर केंद्रित बहुत–सी लघुकथाएँ लिखी गई हैं। महानगर का आदमी केवल अपने विषय में सोचता है।"[3] महानगरीय जीवन की लघुकथाओं में मानव मूल्यों हेतु संघर्ष, अर्थ लोलुपता, झूठे सम्बंध, कुंठित जीवन, कलुषित राजनीति आदि तत्त्वों पर आधारित अनेक लघु कथाकारों की लघुकथाओं पर साहनी जी की कलम से विवेचना निकली है।

अपने आलेख 'देह व्यापार पर केन्द्रित लघु कथाएँ' में साहनी जी इस संवेदनशील मुद्दें पर अपनी कलम चलाते हैं। वेश्यावृत्ति का विश्वव्यापी तंत्र किस प्रकार स्त्री को एक वस्तु या कीमत में तब्दील कर देता है, यहाँ जाना जा सकता है। पति–पत्नी सम्बंधों के बिगड़ने पर भी अनेक स्त्रियों को ऐसा जीवनयापन करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। वहीं कुछ शौक को पूरा करने वाली लड़कियाँ भी इस काम को करती हैं। साहनी जी इस समस्या को यूँ दर्शाते हैं, "वेश्याओं के प्रति संवेदना पूर्ण व्यवहार, उनके सामाजिक स्वीकार की कोशिश, उनके प्रति एक मानवीय दृष्टि, सम्मान पूर्ण नागरिक अधिकार और उनके लिए रोजी–रोटी का विकल्प तैयार करना आदि किसी भी सरकार की जिम्मेदारी होते हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए पुलिस, प्रशासन और नेताओं का सहयोग अपेक्षित होता है। वास्तव में लघुकथा ऐसे ज्वलंत सामाजिक मुद्दों को न केवल पाठकों के समक्ष ला रही है बल्कि उन्हें व्यापक विमर्श का केंद्र बिंदु भी बना रही है।"[4]

बच्चे किसी भी राष्ट्र के कर्णधार हैं। उनके पालन की प्रवृत्तियों पर आधारित अनेक लघुकथाएँ लिखी गई हैं। बाल मनोविज्ञान बच्चों के शारीरिक–मानसिक चिंतन की अभिव्यक्ति करता है। सुकेश साहनी 'बाल मनोविज्ञान पर आधारित लघुकथाएँ' आलेख में इस दिशा में किए गए कार्यों का समीक्षात्मक अनुशीलन प्रस्तुत करते हैं। संतोष की बात यह भी है कि लघुकथा ने बाल विमर्श को भी अपना स्वर प्रदान किया है। बाल मनोविज्ञान पर आधारित अनेक लघुकथाएँ बच्चों के सामाजिक, नैतिक, शैक्षिक जीवन को संवारने में पर्याप्त उपयोगी हैं।

रचनाकार यदि वरिष्ठ है तो उससे यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह अपने पीछे आने वाले लेखकों को सही मार्गदर्शन प्रदान करे। सौभाग्य से सुकेश साहनी अपने दायित्व को बखूबी निभाते आ रहे हैं। अनेक लघुकथा प्रतियोगिताओं के आप निर्णायक मंडल में रहे हैं। 'कथादेश' मासिक पत्रिका की प्रतिवर्ष सम्पन्न होने

वाली लघुकथा प्रतियोगिता के आप निर्णायक रहे हैं। प्रति वर्ष सैकड़ों की संख्या में प्राप्त होने वाली लघुकथाओं में से सर्वश्रेष्ठ पाँच लघुकथाओं का चयन करना आपको नीर–क्षीर विवेकी सिद्ध करता है। किन आधारों पर वह लघुकथा चुनी गई, उसकी गुणवत्ता की क्या–क्या कसौटियाँ हैं, इन सबका विवेचन साहनी जी के यहाँ उपलब्ध है।

साहनी जी लघुकथा सृजन के मर्म को इन शब्दों में समझाते हैं, "लघुकथा को सुगठित होना चाहिए, उसमें दोहों जैसी बारीक खयाली होनी चाहिए। लघुकथा को सांकेतिक, प्रतीकात्मक या अभिव्यंजनात्मक होना चाहिए। कथ्य प्रकटीकरण का समायोजन सशक्त होना चाहिए। लघुकथा को चरमोत्कर्ष पर समाप्त होना चाहिए आदि न जाने कितने निकष हैं, जिन पर लघुकथा को खरा उतरना चाहिए। आम पाठक के लिए इन बातों का कोई महत्व नहीं है। उसे तो रचना पढ़कर मुकम्मल कृतिका स्वाद मिल गया तो रचना सफल अन्यथा बेकार। लेकिन लघुकथा लेखन में लगे रचनाकारों को इन बिंदुओं पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।"[5] सुकेश साहनी जी अनेक आलेखों में कथोपकथन की रूप रेखा, शीर्षक, समापन, काल दोष जैसे महत्वपूर्ण तत्त्वों को लघुकथा के सन्दर्भ में उठाते हैं। वास्तविकता तो यह है कि सुकेश साहनी के ये आलेख लघुकथा लिखने की 'प्रैक्टिकल अप्रोच' हैं, जिनके सम्यक् पालन से लघुकथा सृजन की बारीकियों को जान–समझा जा सकता है। उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि साहनी जी सृजन के साथ–साथ शास्त्र के भी धनी हैं और रचना कौशल के मूल तत्त्वों को भली भांति समझाना भी जानते हैं।

अपने स्वाध्याय को पुष्ट करते हुए साहित्यकार अपने वरिष्ठ व समकालीन रचनाकारों को भी पढ़ता–गुनता है। इससे उसकी पाठकीयता और लेखन शक्ति– दोनों में ही गुणात्मक अभिवृद्धि होती है। साहनी जी ने विश्व की अनेक भाषाओं की लघुकथाओं का अनुवाद भी किया है। प्रसिद्ध लेबनानी लेखक खलील जिब्रान की लघुकथाएँ वर्तमान समय की धरोहर हैं। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के शब्दों में, "मैं खलील जिब्रान को लघुकथा का जनक मानता हूँ। खलील जिब्रान के पास जो अंतर्दृष्टि है, उच्च कोटि की प्रतिभा है, मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वर्तमान में हमारे यहाँ अभी किसी के पास नहीं है।"[6] साहनी जी खलील जिब्रान की लघुकथाओं को कुल छः श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं– सामाजिक असमानता और शोषण के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित करती लघुकथाएँ, धर्मांधता–कुरीतियों के विरुद्ध लिखी लघुकथाएँ, कूपमंडूक सोच–समाजिक जड़ता के विरुद्ध लिखी लघुकथाएँ, जीवन की विसंगतियों पर प्रहार करती लघुकथाएँ, मानव कल्याण एवं विश्व बंधुत्व का संदेश देती लघुकथाएँ, स्त्री–पुरुष सम्बंधों की लघु कथाएँ। प्रस्तुत आलेख में उपरोक्त छः श्रेणियों के अंतर्गत खलील जिब्रान की अनेक प्रसिद्ध लघुकथाओं का विवेचन अत्यधिक सतर्कता, सजगता, श्रम और व्यापक समीक्षात्मक दृष्टिकोण के साथ किया गया है। स्वयं साहनी जी के शब्दों में, "लघुकथा के विद्यार्थी के रूप में मैं इन कथाओं को बहुत महत्वपूर्ण मानता हूँ। इनसे गागर में सागर भरने की तकनीक सीखी जा सकती है।"[7]

राजेंद्र यादव प्रख्यात् कथाकार और सम्पादक रहे हैं। आपने भी लगभग दस–पंद्रह लघुकथाएँ लिखी हैं। परंतु राजेंद्र यादव के शब्दों में, "मुझे लगा यह विधा बहुत कठिन है। मैं लघु कथा नहीं लिख पाऊँगा। लघुकथा में लेखक मूल स्वर पकड़ता है। बड़ी कहानी को संक्षिप्त करके लिखना लघुकथा नहीं है।"[8] साहनी जी अपने आलेख में राजेंद्र यादव की पंद्रह लघुकथाएँ लेते हैं और उनका परीक्षण लघुकथा की कसौटियों पर करते हैं। उनका निष्कर्ष यह है कि राजेंद्र यादव लघुकथा के मूल स्वर को नहीं पकड़ना चाहते। उन्हीं के शब्दों में, "अपने

पार जैसी उत्कृष्ट लघुकथा का लेखक अपनी दूसरी लघुकथाओं में वैसा गहरा प्रभाव नहीं छोड़ पाता। इसी क्रम में रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जी की लघुकथाओं पर समीक्षात्मक आलेख भी उपयोगी है। उनकी ग्यारह लघुकथाओं को यहाँ विवेचन के लिए चुना गया है। 'मिन्नी' मासिक के संपादक डॉ० श्यामसुंदर 'दीप्ति' की लघुकथाओं पर आधारित आलेख में साहनी जी का निष्कर्ष उल्लेखनीय है, "डॉ० दीप्ति की लघु कथाएँ अपनी सरलता के कारण अलग से पहचानी जा सकती हैं। उनकी सीधी–सरल भाषा मुंशी प्रेमचंद की कहानियों की याद दिलाती है। प्रत्येक रचना लघुकथा की कसौटी पर खरी उतरती है। लघुकथा के शीर्षक, प्रारंभ और समापन में स्वाभाविक प्रवाह लेखक की विशेषता है जो उसे अपने समकालीन लेखकों से अलग करती है।"[9]

स्पष्ट है कि सुकेश साहनी अपने विभिन्न आलेखों में न केवल लघुकथा की सैद्धांतिक विवेचना प्रस्तुत करते हैं बल्कि लघुकथा का व्यावहारिक पक्ष भी पूर्णतया उजागर करते हैं। सुकेश साहनी अपने इन आलेखों में कहीं भी पक्षपाती दृष्टि नहीं रखते। अपनी बात को स्पष्ट शब्दों में बोधगम्य रूप से रखने में वे पूर्णतया सफल रहे हैं। लघुकथा विधा को उनकी दृष्टि समालोचना की कसौटी पर कसती है और उपयोगी मंतव्य सृजकों, पाठकों और शोधकर्ताओं के समक्ष प्रस्तुत करती है।

**संदर्भ :–**


1. सुकेश साहनी, 'लघुकथा : सृजन और रचना कौशल' (अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2019), पृ. 12
2. वही, पृ. 17
3. वही, पृ. 35
4. वही, पृ. 57
5. वही, पृ. 74
6. सतीश राजपुष्करणा (संपा.),'लघुकथा बहस के चौराहे पर', आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री का लेख, पृ. 35
7. वही, पृ. 42
8. वही, पृ. 132
9. वही, पृ. 147



मो. 9027422306

drnitinsethi24@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 151-155

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# धूमिल की रचनाओं में यथार्थबोध

**Bharoti Apum**

Assistant Professor, Department of Hindi, Indira Gandhi Govt. College, Tezu,
District – Lohit, PO/PS – Tezu, Pin Code – 792001, Arunachal Pradesh

**सार :–**

कवि धूमिल की रचनाओं में यथार्थबोध की व्यापकता है। उन्होनें अपनी रचनाओं में समाज का यथार्थ रूप सामने लाकर खड़ा कर दिया। ऐसा करने में वे कत्थई नहीं हिचकिचाते। जीवन से जुड़ी गतिविधियों को उन्होनें अपनी रचनाओं में सजीव रूप से व्यक्त कर दिए है। समकालीन कविता के कवि के रूप में जिस प्रकार कविवर धूमिल का समय रहा वह वाकई अत्यंत मनोरम रहा है। अपने जीवन के अल्प समय में ही उन्होनें जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में अपना स्वर्णिम स्थान प्राप्त कर लिए है वे वाकई सराहनीय हैं। अपनी काव्य–यात्रा में उन्होनें केवल तीन काव्य संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें – 'संसद से सड़क तक', 'कल सुनना मुझे' और 'सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र' हैं। अपने परिवेश में रहकर उन्होनें जिस प्रकार कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान किए है वे तत्कालीन अन्य कवियों से सर्वथा अलग रहा है।

इसी वजह से उनकी कविताओं में एक विशेष प्रवृति दिखाई पड़ती है। उनकी कविताओं में एक तीव्र आवेग, आक्रोश, परिश्रम, ईमानदारी आदि दिखाई पड़ती है। उनकी कविताओं का मूल विषय समाज के विभिन्न पहलुओं से रहा है जिनमें जनतंत्र से लेकर आजादी, संसद, संविधान, सरकार और प्रशासन, आम मनुष्य का जीवन आदि रहा हैं। इनमें यथार्थ चित्रण पूर्ण रूप से हुआ है। उनकी रचनाओं को पढ़कर पाठकों को ऐसा लगेगा की जरूर कवि स्वयं उस दौर से गुजरे होंगे। यही उनकी खासियत भी रहा है। 'मोचीराम' जैसी कविता में किस प्रकार साधारण 'मोची' के माध्यम से समाज में हो रहे गतिविधियों की झलक प्रस्तुत कर देती है, लोगों की अलग–अलग मानसिकता का परिचय देते है, सत्य का रूप दिखाती है, वे वाकई प्रशंसनीय है। ऐसे ही यथार्थबोध उनकी कृतियों में कूट–कूटकर भरे पड़े है। अतः कविवर धूमिल जी की रचनाओं में निश्चित रूप से यथार्थबोध की व्यापकता है।

**बीज शब्द :–** यथार्थ ,समाज, जीवन, सजीव, अभिव्यक्ति।

कविवर धूमिल का असली नाम सुदामा पाण्डेय था। इनका जन्म वाराणसी में खेवली नामक ग्राम में 9 नवम्बर सन् 1936 में हुआ था। साहित्य के क्षेत्र में उन्होनें अपना नाम धूमिल रखा और उसी नाम से प्रसिद्ध भी

हुए। जीवन की शुरुआती दौर में ही धूमिल ने गरीबी करीब से देख लिए थे। अपने जीवन से जुड़ी विभिन्न संघर्षों से लड़ते–लड़ते वे आगे बढ़े और बहुत ही कम आयु में उनकी मृत्यु सन् 1975 में हुई। इसी बीच उनके तीन काव्य संग्रह हुए। इसमें भी उनकी पहली काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' का प्रकाशन ही उनके जीवन काल में हो पाई। बाकी बचे हुए काव्य संग्रह उनके मरणोपरांत प्रकाशित हुए।

वे समकालीन एवं साठोत्तरी कविता के प्रसिद्ध कवियों में से एक है जिन्होनें अपनी कविताओं में विशेष रूप से यथार्थ चित्रण किए है। वे अपनी कविताओं को ग्रामीण परिवेश के करीब लाकर उसे जनता के समक्ष उसी रूप में प्रस्तुत करते है जिस रूप में वे होते हैं। इसी कारण उसे 'जनकवि' भी कहलाते है। उन्होनें अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक विकृतियों को सामने लाकर जनता के समक्ष प्रस्तुत कर दिए। उनके लिए हरेक मनुष्य एक है। केवल मनुष्यों ने ही अपने बीच भेदभाव बना लिए है। रंग को लेकर रूप को लेकर, जात को लेकर, धर्म को लेकर, खान–पान को लेकर, पहनावे को लेकर आदि हम मनुष्यों ने ही एक दूसरे से अलगाव पैदा कर लिए है। ऐसी अलगाव जो कभी मिल नहीं सकते, वैसा माहौल हम मनुष्यों ने ही बना लिए है। ऐसे में धूमिल जैसे कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों के मध्य समरसता की भावना जगाती है। 'मोचीराम' कविता में 'मोची' का यह स्वर उनकी अपनी अभिव्यक्ति है :–

"बाबूजी! सच कहूँ – मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है।"

उनको इस बात पर एहसास हो गया था कि देश आजाद होने के बाद भी उसी बदहाली में लोग जी रहे है जैसे आजादी से पूर्व भी जी रहे थे। देशभर में गरीब अब भी गरीब है और अमीर लोग अब भी अमीर है। ऊंच–नीच की खाई अब भी वही–के–वही है जैसे पहले थे। सामान्य जन अब भी भूखे, बेबस और लाचार है। कविवर ने किस प्रकार नेतागण चुनाव से पहले जनता के समक्ष वोट के लिए गिड़गिड़ाते है और चुनाव जीतने के बाद उन्हीं लोगों को अनदेखा कर देते है, उसका सजीव चित्रण किए है :–

"नहीं अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है
मैंने एक–एक को
परख लिया है
मैंने हरेक को आवाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है

मगर बेकार।''

इसीलिए वे 'आजादी' जैसे स्वर्णिम शब्दों का अर्थ लोगों के बीच प्रस्तुत करते हुए कहते है –

"क्या आजादी
सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब है?"

यह वाकई सोचनीय है। कविवर धूमिल ने जिस प्रकार अपनी रचनाओं में यथार्थ चित्रण किए है वे प्रशंसनीय है। वे सामाजिक विसंगतियों को दर्शाने में कभी भी घबराते नहीं है। शायद इसीलिए भी उनकी कविताओं में व्यंग्य शैली का तीक्ष्ण रूप दिखाई पड़ता है। वे अपने परिवेश से जुड़ी सभी पक्षों के प्रति काफी सजग रहे है और यहीं सजगता उनकी कविताओं में परिलक्षित भी हुई है। भरण–पोषण से लेकर व्यक्तिगत समस्याएँ उनकी कविताओं में दिखाई पड़ते है। जनता के बीच ही कुछ ऐसे भी है जिन्होनें अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना सीख लिए, उन्हीं में से कुछ लोग ऐसे भी है जो अन्याय को चुपचाप सह लेते है और पेट की आग से डरते है। कवि आगे कहते है :–

"कुछ है जिन्हें शब्द मिल चुके हैं
कुछ है जो अक्षरों के आगे अंधे हैं
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं।"

वे निशब्द पड़े हुए जनता को जगाने का भरसक प्रयास करते है। शोषकों का काम तो केवल शोषण करना है। अतः जिन लोगों पर शोषण या जुल्म हो रहा है उसे ही आगे बढ़ना है, उनसे मुक्ति पाना है। इस प्रकार से कवि धूमिल उन जनताओं के समक्ष भी प्रश्न करते कतराते नहीं है –

"मैंने इंतजार किया
अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगा
इंतजार करता रहा।"

वे आगे उन्हीं देशवासियों को प्रश्न करते है जो व्यवस्था के तले दबे हुए हैं। 'बीस साल बाद' कविता की यह पंक्ति –

"बीस साल बाद
मैं आपसे

एक सवाल करता हूँ
जानवर बनने के लिए कितनी सबर की जरूरत है।"

उनको इस बात का विश्वास था की केवल विद्रोह द्वारा ही अन्याय के खिलाफ जंग जीत सकता है अन्यथा नहीं। चुप रहने से कुछ भी हासिल नहीं हो सकते है। उनके अनुसार ऐसी जिंदगी तो कायरों की होंगी जो अन्याय को चुपचाप सहते है। वे बारंबार जनता को इनसे उभरने के लिए प्रेरित करते नजर आते है। कई प्रयत्न के बावजूद भी जब मसला सुलझे नहीं सुलझते है तब कवि का स्वर नैराश्य में परिवर्तित हो जाते है। दरअसल कवि ने तत्कालीन समय का जो वातावरण रहा है, उसी परिवेश को अपनी कविताओं में व्यक्त कर दिए है। गौर फरमाने वाली बात यह है कि आज भी ये समस्याएँ प्रासंगिक लगते है। यह कोई नई या विशेष समस्या नहीं है जो केवल उसी समय का प्रतिनिधित्व करता है। वरन् यह अब भी उतना ही नया है जितना उस समय था। कवि की यहीं विशेषता उनकी सम्पूर्ण कविताओं में परिलक्षित हुए है। इसी क्रम में कविवर धूमिल अपने आस पास गरीबी, बेबसी और लाचारी को देखकर उदास हो जाते है। 'हर तरफ धुआँ' कविता की यह पंक्ति इसी उदासी का परिणाम है –

"हर तरफ धुआँ है
इस तरह कुहासा है
जो दाँतों और दलदलों का दला है
वहीं देश भक्त है
हर तरफ कुआँ है
हर तरफ खाई है।"

ऐसे में कवि जनता के समक्ष आशा की किरण भी जगाती है। केवल निराशा दिखाकर वहीं तक बातों को सीमित नहीं रखते वरन् जनता को उससे उभरने के लिए प्रेरित भी करते है। उनके अनुसार एक–न–एक दिन नई प्रभात फिर से खिल उठेगी जिसमें केवल सुख एवं खुशहाली का माहौल होंगे। 'सुदूर पूर्व' कविता की यह पंक्ति इसी की ओर इशारा करते है –

"सुदूर पूर्व में
जहाँ चमकते सितारे को
बम वर्षकों ने अपनी आज में ले लिया है,
धरती पर, एक हरी पत्ती
ओस–कणों के लिए
अब भी रात बीतने का इंतजार
कर रही है।"

इस तरह से कवि धूमिल की समस्त कविताओं में यथार्थबोध की व्यापकता है। उन्होनें कविता में जिस

प्रकार से सच्चाई या वास्तविकता को दिखाया है वैसा शायद अन्य किसी कवियों में उतनी ही अनुपात में नहीं हुआ होगा। अगर हुआ भी है तो जिस पकड़ के साथ उनकी अभिव्यक्ति शैली रही है वैसा नहीं मिलेंगे। व्यंग्य का तीखा बाण जिस तरह से उन्होनें वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ साधे है वैसा अन्यत्र किसी ने नहीं किए होंगे। उनकी कविताओं में जो आक्रोश दिखाई पड़ते है वैसा अन्यत्र किसी में शायद नहीं होंगे। इसी वजह से उन्हें हिन्दी साहित्य के 'एंगरी यंग मेन' भी कहा जाता है। समाज में जैसा चल रहा था, गलत व्यवस्था के खिलाफ उस समय आवाज उठाने का समय था। इसी दौर में धूमिल जैसे सशक्त कवि हिन्दी साहित्य में सामने उभरकर आए जिन्होनें केवल सत्य का साथ दिया और वर्तमान व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई। अतः हम कह सकते है की उनकी रचनाओं में यथार्थ बोध की व्यापकता है।

**संदर्भ ग्रंथ :–**


1. ब्रह्मदेव मिश्र, धूमिल और उसका काव्य संघर्ष, 2012
2. ब्रह्मदेव मिश्र, शिवकुमार मिश्र, धूमिल की श्रेष्ठ कविताएँ, 2009
3. धूमिल, कल सुनना मुझे, वाणी प्रकाशन, 2021
4. धूमिल, सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र,वाणी प्रकाशन, 2014
5. धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन 2009
6. नीलम सिंह, धूमिल की कविता में विरोध और संघर्ष, 2014
7. रत्नाकर पाण्डेय, धूमिल एक ठेठ कवि, 2022



Email Id – bhartiapum@gmail.com

Contact no- 7630815184

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 156-159

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# साहित्य के पारखी– निर्मल वर्मा

**Dr. G. Sugida**

Assistant Professor, Dept of Hindi, Nirmala College, Muvattupuzha, Ernakulam, Kerala

हिंदी साहित्यकारों में निर्मल वर्मा का नाम अद्वितीय व अनूठा है। निर्मल वर्मा, भारतीय मनीषियों की परंपरा के प्रतीक पुरुष है, जिन्होंने जीवन में कर्म, चिंतन और आस्था के बीच कभी सौदा नहीं किया। उनके लिए कला का मर्म जीवन का सत्य बन गया और आस्था की चुनौती जीवन की कसौटी बन गई। वे अपनी जिंदगी में कई बार गलत समझे गए और उस काल कोठरी से बेदाग भी निकल आए। स्वतंत्रता के बाद, अधिक सदी तक निर्मल वर्मा की रचनाएँ साहित्य जगत को ऊर्जा प्रदान करती रही। वे एक ऐसे कलाकार थे। जिन्होंने हमेशा एक संतुलन की स्थिति बनाए रखी। अपनी रचनाओं में उन्होंने संतुलन का भाव बखूबी निभाया। संवेदना का व्यक्तिगत स्पेस उनकी रचनाओं में देख सकते हैं। उनकी रचनाओं का अधिक भाग चेकोस्लोवाकिया के विदेश प्रवास में बीता।

निर्मल जी ने मनुष्य संबंधों की चीर–फाड की, उनके अनुसार आज के बदलते परिवेश में स्थिति क्या हो सकती है। उस पर भी प्रश्न चिह्न लगाया। आधुनिक समय प्राचीन संस्कृति की पीठिका क्या होगी इस पर भी चिंता जाहिर की। मदन सोनी लिखते है निर्मल वर्मा का हर पात्र कथा के एकांत में एक देह है : एक गुप्तचर की तरह अपने कोड (केट) में विचित्र संदेश देती हुई, अपने अतीत, अपनी यातनाओं के बारे में निर्मल स्वयं किसी तरह की तर्कता या परिपृच्छा से उसे पुकार कर या झिझोर कर उसका एकांत भंग नहीं करते। वे इस कूट बद्ध देह (वाक्य) के लिए एक अवकाश रचते हैं। अपनी कथा के माध्यम से, ऐसा धना सन्नाटा' जहाँ इस देह के विचित्र संदेश ग्रहण किए जा सके, जहाँ इस देह के विचित्र संदेश ग्रहण किए जा सके, जहाँ उसकी गुप्त गवाही का गवाह हुआ जा सके..... उनके यहाँ मनुष्य का सत्व भाषा में रूपायित है।

निर्मल जी एक यायावर रचनाकार है। उनकी यात्राओं का प्रभाव उनकी रचनाओं में साफ झलकता है। जी प्रसाद लिखते हैं 'निर्मल वर्मा अतीत के उस अनुभव को हमारे लिए पुर्वजीवित करते हैं जहाँ हमारे पुरखे खडे है अपने–अपने संदेशों के साथ उन गलतियों को न दुहराने की अपील करते हुए जिनसे मानवता गंभीर बीमारी की शिकार हुई थी। आज का मानव स्वतंत्रता की चाह में कहीं अकेला पड गया है। निर्मल जी मानव की संवेदना को भली–भांति पहचानते हैं। इसलिए वे मनुष्य जीवन की एकांतिक अनुभूतियों के रचनाकार है। उनका सरोकार भी समाज में कहीं अकेले होते जा रहे व्यक्ति के अंर्तमन से है। उनकी निर्मल संवेदना उस व्यक्ति के अकेलेपन से जा टकराती है। जो अपने में मजबूर महसूस करता है। उनकी हर रचना उस अकेले होते व्यक्ति के साथ बस जाती। उनके उपन्यास इस बात की साक्षी भी है। उनका बहुआयामी चितंन हमें समाज के हर एक पहलू

पर विचार करवाता है। उनके कथा पात्र आधुनिकता के साथ–साथ कहीं–कहीं भारतीय परंपरा के महत्व को पहचानने वाले भी है। उनका पहला उपन्यास 'वे दिन जो 1964 में प्रकाशित हुआ। उसकी पृष्ठभुमि चेकोस्लाविक्या के महानगर प्राग की है। श्वे दिनश में एक ओर सत्ता के पक्षों पर संकेत किया गया तो दूसरी ओर संबंधों की ओर संकेत किया गया है तो दूसरी ओर संबंधों की ओर संकेत हुआ है। यह उपन्यास उनके प्रवास के दिनों का पहला उपन्यास है इसमें नायक अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति में भरकता हुआ दिखाई देता है।

उनका दूसरा उपन्यास 'रात का रिपोर्टर' भी सत्ता से टकराते एक मनुष्य की कहानी है। इसका नायक रिशी चाहे रात का रिपोर्टर हो लेकिन वह रात उसे अपने में लील लेती है। यह रात का अंधकार सत्ता के व्यवस्था से उत्पन्न है। श्एक चिथडा सुखश में भी निर्मल वर्मा इस सत्य से रूबरू करवाते हैं कि चाहे सत्ता का सुख, चाहे दुनिया का कोई भी सुख एक व्यक्ति को मिल जाए, फिर भी उस सुख के चिथडे ही होंगे। याने कोई भी सुख पूर्ण नहीं होता, बल्कि सुख के चिथडे ही होते हैं। 'लालटीन की छत' भी व्यक्ति के अकेलेपन की त्रासदी बयान करता है। मनुष्य होना यानी संवेदनशील होना है। हालांकि इस संवेदनशीलता तक आते–आते मानव घुटने लगता है। 'अंतिम अरण्य' में आत्म विस्तार ही नहीं बल्कि मृत्यु से सीधे–सीधे साक्षात्कार का दृश्य भी दिखाया गया है। अकेलेपन, त्रासदी, भय आदि के संकट से जूझते पात्र इस उपन्यास में दिखाई देते हैं। उनका कथा साहित्य बड़ा ही अनोखा है, उनके पात्र विकास के संकट से घिरे है।

जी प्रसाद लिखते है 'निर्मल वर्मा भी आधुनिक कथा संरचनाओं के निर्माता हैं। जिस तरह प्रेमचंद मनुष्य के अच्छे होने के विश्वास की रक्षा करते हैं। प्रेमचंद के मनुष्य अविकास और अभाव के मनुष्य है। दुःखी है। निर्मल के मनुष्य विकास के संकट है। उधर बाह्य जगत के विकास की छटपटाहट इधर भीतरी संपूर्णता के। लेकिन दोनों की कथा संरचनाएँ कलात्मक उद्‌गाम को नहीं जगाते हैं। वे स्वयं भी मूलतः एक 'रियलिस्टिक प्रिसीपल को ही नहीं जगाते हैं। वे मनुष्य की संपूर्णता की तलाश करते है। वे समग्र यथार्थ की तलाश करते हैं।' नई कहानी के सूत्रपात में निर्मल वर्मा की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। किंतु उन्हें कभी उसकी मुख्यधारा का कहानीकार नहीं माना गया। मनुष्य जीवन के विविध उल्लास और यातना को पहचानने की समक्ष सोच निर्मल वर्मा की रचनाओं में विद्यमान है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित निर्मल वर्मा हिंदी के प्रमुख कलाकार की कोटि में आते हैं। उनके कहानी संग्रह परिंदे, जलती झाडी, पिछली गर्मियों से बीच बहस में, कव्वे और काला पानी है। वर्मा जी मानव की सघन आंकाक्षा और उसकी बहुआयामी यातना के कलाकार है। उनका कथा साहित्य मनुष्य के विभिन्न संदर्भों को एक साथ जोड़ने में सक्षम है। उनके कथा पात्र विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आते है। उनकी आलोचना पुस्तकें साहित्य का आत्म सत्य सर्जनापथ के सहयात्री आदि प्रमुख है। इस संदर्भ में उनके निबंध शब्द और स्मृति, कला का जोखिम, ढलान से उतरते हुए, भारत और यूरोप आदि विशेष महत्व रखते हैं।

निर्मल जी की सृजन प्रक्रिया में कई ऐसे पड़ाव है जो हमें अंतद्वंद की सीमा के बाहर ले जाकर छोडते हैं। क्योंकि उनके सृजन पर कई रचनाकारों का प्रभाव है। बचपन से ही निर्मल जी को प्रेमचन्द की, जेनेन्द्र की रवीन्द्रनाथ ठाकुर की, शरत बाबू की कहानियाँ लुभाती रही थी। बाद में थोड़ा वयस्क होने पर उनकी रुचि रूसी लेखकों में हो गई। चेखव तुर्नर्मव, टालस्टाय, गोर्की आदि। दोस्तों एस्वकी को उन्होंने बहुत बाद में पढ़ा। वहीं से सृजनता को एक नई राह मिली। बाद के वर्षों में केंद्रीय यूरोप के लेखकों ने, विशेषकर टॉमस मान, हर्मन

हैसा, मार्सल प्रस्त और काफ्का ने उनके लिए नई दिशाएं खोल दी। निर्मल जी की आलोचना में कई आयाम है उनका हर विषय संवेदनशील है और सुंदरता का विषय संवेदनशीलता से जुडा है। सुंदरता विषय पर उनका गहरा विचार है। उनके अनुसार 'मैं सुंदरता को कभी भी एक अलग मूल्य के रूप में नहीं देख पाया। वह एक अभिव्यक्ति है, जैसे पेड पर उगा हुआ एक फुल सुंदर है कि उसकी जड़ें, नीचे अंधेरी धरती से समूची संजीवनी शक्ति खींचकर उसे सुंदरत्व प्रदान करती है। मेरे लिए जीवन के सब मूल्य महत्वपूर्ण है जो सुंदरता को जन्म देते हैं।

आज के मानव की पीड़ा को निर्मल जी भली–भांति जानते हैं। वे पहचानते है कि मानव की त्रासदी आज की सबसे बड़ी समस्या बन गई हैं। अब मानव स्वतंत्र हो गया है। उसे इस स्वतंत्रता का भान नहीं, वह इस स्वतंत्रता से क्या करें। इसी स्वतंत्रता के चलते पारिवारिक संबंध भी ढीले पड़ गए है। पुरुष और स्त्री दोनों स्वतंत्र व्यक्तित्व चाहते हैं। तभी आज पारिवारिक ढांचा टूट गया है। मानव अपने में स्वतंत्रता की तलाश कर रहा है। इसी तलाश में कहीं दूर गया है अब उसे वापिस लाना नामुमकिन सा हो गया है।

निर्मल जी पर हमेशा विदेशीपन का आरोप लगाया जाता रहा है लेकिन निर्मल जी की निर्मलता ही रही होगी कि वे इस आरोप से भी नहीं बिखरे, बल्कि डटकर खड़े हुए और उस आरोप का करारा जवाब भी दिया। उन्होंने जिस सतर्कता से यूरोपिय समाज का अपनी कहानियों में संजीव चित्रण किया है। उतनी ही सर्तकता भारतीय समाज के प्रति भी मिलती है। निर्मल जी ने चाहे कितने ही वर्ष विदेश में बिताए हो। उनके लिए भारतीयता के प्रति लगाव छूट जाने की वस्तु नहीं है। उन्होंने दो संस्कृतियों का परिचय देते हुए अपनी संस्कृति की महत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा 'पश्चिम ने मुझे ऐसी समग्रता का बोध दिया जहाँ मैं सृष्टि की पवित्रता को पहचान सकूं। यह समग्रता हमारी संस्कृति की सुंदर धरोहर हैं। जिसमें बुद्धि, आत्मा, व देह के भीतर कृत्रिम संसार का विभाजन नहीं हैं।'

यदि उनके निबंधों की बात की जाए तो निबंध उनकी रचना भूमि के आधार स्तंभ है। उनके विचार विमर्श प्रस्तुत करते है उनके बीच से मनुष्य की स्वतंत्रता, रचनाकार की भूमिका, लेखक के दायित्व, कलाकृति और साहित्य की उपयोगिता, समाज और इतिहास, पूर्वी और पश्चिमी समाजों का असमंजस उनके लालसा और याचना के सरोकार स्पष्टतः पहचाने जा सकते है। लेकिन आत्मकेंद्रीत नहीं है, बल्कि सत्य तो यह है कि वे आत्मा व सत्य के अन्वेषक बन गए थे। उन्होंने अपने निबंध भारत और यूरोप में संस्कृति व सभ्यता के भेद को भी समझने का प्रयास किया है। उन्होंने उस निबंध में संस्कृति शब्द का प्रयोग किया है। इन दोनों के बीच के गहरे अंतर को वो पहचानते हैं। यानी सभ्यता संस्कृति से थोडा व्यापक अर्थ रखती है। एक समाज की लय पर अपने जीवन को निर्धारित करता है। सभ्यता उसका नाम है। जैसे 'संस्कृति तो बिना किसी शब्द के किसी गठित समाज के भी जीवित रह सकती है जैसे अफ्रीका में कितनी संस्कृतियाँ है जिनका कोई गठित समाज नहीं है लेकिन फिर भी उनका नृत्य है, संगीत है, उनका साहित्य है या उनकी बोलियाँ हैं। ये अच्छी संस्कृति तो बनाती है पर सभ्यता का रूप देने के लिए उन बातों की जरूरत है जो समाज के लक्ष्यों को पूरा कर पाए। ऐसे समाज को बनाने की परिकल्पना जिसने की वहीं संस्कृति के लक्ष्य चरितार्थ हो सके।

मानव के अकेलेपन की बात पर निर्मल जी ने अपना मत व्यक्त किया है। आज वह प्रकृति से दूर हो कर बस रहा है। लेकिन निर्मल ने इस खतरनाक मोड़ पर आकर रुके इस समाज को पहले ही आगाह कर दिया

था। उनके अनुसार 'जिस क्षण प्रकृति से अलग होकर मनुष्य को मनुष्य होने का आत्मबोध हुआ तब से यह सोचना कि वह एक सुंदर सुखी व्यक्ति है, मैं समझता हूँ कि झूठ है। अलगाव और अकेलेपन का यह भाव दुनिया के पशु–पक्षी, वनस्पति दूसरे शब्दों में प्रकृति का कोई भाग, महसूस नहीं कर सकता। जिस तरह से मनुष्य करता है।

वहीं निर्मल जी ने आज के सबसे बड़े संकट पर भी अपनी चिंता जाहिर की है। उनके अनुसार हम हमारे पारंपरिक स्रोतों से दूर होते जा रहे हैं। यह एक खतरनाक दौर है, इससे बडा अभिशाप क्या होगा कि एक पूरा समाज अपने मूल स्वभाव से दूर हो गया है। इसका समाधान यह होगा कि हम भारतीय परंपरा पर वापिस ध्यान दे क्योंकि भारतीय परंपरा हमें आत्मबोध का ज्ञान देती है। इस आत्मबोध का अर्थ है मनुष्यत्व को प्राप्त करना। उस आत्मबोध के बिना मनुष्य संपूर्ण रूप से मनुष्यत्व नहीं प्राप्त कर सकता। साहित्य के मायने में क्या साहित्य कैसा होना चाहिए, निर्मल जी ने उसे बारीकी से समझाने की कोशिश भी की है। साहित्य की आत्मा कैसे हमें आंदोलित करती है वे इस सत्य का खुलसा बेबाक रूप से करते हैं। उनके अनुसार साहित्य मनुष्य में सत्य खोजने की कहानी ब्यान करता है। साहित्य हमारी आत्मा की एक विराट ब्लू फिल्म है, एक बार उसे देखने के बात हम अपने समय के समस्त अश्लील प्रलोभनों से छुटकारा पा लेंगे। ट्रेन की पहियों के नीचे अपने को फेंक देने से पहले अन्ना कैरेनिना का हृदयभेदी एकालाप कुछ ही पक्तियों में जीवन के जिस विराट रहस्य को प्रर्दशित करता है, क्या दुनिया के सारे जासूसी उपन्यास और अपराध भरी सनसनीखेज कहानियाँ करने की क्षमता रखती है, हमारे युग के समस्त सम्मोहनों के बीच मनुष्य का साथ पाने का व्यसन सबसे पुरातन है और जब तक वह बाकी है, साहित्य रहेगा। निर्मल वर्मा सही मायने में निर्मलता के द्योतक रहे। उनकी हर रचना इस बात का सबूत पेश करती है।

**संदर्भ :–**


1. निर्मल वर्मा, मेरे साक्षात्कार।
2. निर्मल वर्मा, दुसरी दुनिया।
3. जी. प्रसाद निर्मल वर्मा का रचना संसार।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 160-165

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# प्राचीन कालीन "प्राथमिक शिक्षा" का सामाजिक संदर्भ

**अजय कुमार रणजीत**
मिजोरम हिन्दी प्रशिक्षण महाविद्यालय, आइजोल, मिजोरम।

**प्रस्तावना :-**

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से समान ही भारतीय शिक्षा का भी इतिहास अत्यंत प्राचीन है। भारतीय विद्वानों ने इसे लगभग 4,000 वर्ष से पहले भारत में आर्यों के आगमन के समय से आरंभ होता है। किन्तु, इसके सुसंबंध स्वरूप के दर्शन, वैदिक काल में आरंभ होता है। उस काल से आज तक भारतीय शिक्षा का प्रवाह अविराम गति से प्रवाहित होता चला आ रहा है।

भारतीय इतिहासकारों के विचारानुसार, ये स्पष्ट होता है की भारत में आर्यों का आगमन लगभग 3,000 ई. पूर्व में हुआ और ऋग्वेद की रचना लगभग 2,500 ई. पूर्व में की गई। ऋग्वेद के रचना काल के समय से आज तक भारतीय शिक्षा गंगोत्री से निकले अमृत जल धारा के समान अविचिछन्न गति से बहती चली आ रही है। भारतीय शिक्षा संसार की अति प्राचीन है। इसका गौरवमायी इतिहास बहुत मार्मिक एवं रसानुकूल अमृत के समान है इसके अध्ययन से भारतीय शिक्षा का स्वर्णिम काल का ज्ञानरूपि तथ्यों की जानकारी प्राप्त होता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली घर से शुरू होकर सामाजिक स्तर तक की व्यवस्था प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। यह शिक्षा संसार में अति प्राचीन एवं वैज्ञानिकी मानी जाती है। "शिक्षा" शब्द का उद्‌गार वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली की भाषा "संस्कृत" के "शिक्ष" धातु से हुई है। शिक्षा रूपी रत्न भारत की विरासत की अनमोल खजनाओं में एक है जो विविध योगों में "ज्ञान–अमृत" से अलंकृत महापुरुषों का अवतार हुआ है जो कहीं न कहीं भारत के गौरवमायी रूपों में अवस्थित हैं। आज हमारे देश के बदलते परिवेश ने प्राचीन कालीन वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली को पूर्णतः विस्मृत हो चुका है। उसकी बु आज भी हमारी भारतीय समाज की धरोहर बनी हुई है। वैदिक कालीन शिक्षा प्राचीन काल में भी सामाजिक अवधारणों के प्रति बहुत सजग और लोकव्यापीपूर्ण था।

**वैदिक काल 2,500 ई.पू.–500 ई.पू. :-**

वैदिक काल का विस्तार ऋग्वेद की रचना के समय लगभग 2,500 ई.पू., से बौद्ध–धर्म के उदय लगभग 500 ई.पू., तक है। उत्तर वैदिक काल में शिक्षा पर ब्राह्मणों का पूर्ण आधिपत्य था। अतः कुछ लेखकों ने उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा को "ब्राह्मणी शिक्षा" और कुछ ने "हिन्दू–शिक्षा" की संज्ञा दी है।

इस काल में प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप सीमित और लोकव्यापी दोनों था। सीमित के अर्थ में प्राथमिक शिक्षा परिवार तक ही सीमित रह जाता था। ये उन बच्चे के लिए था जिनके परिवार के कोई सदस्य शिक्षा के क्षेत्र में काम करते थे। जब ये बच्चे अपने घर से निकल कर आश्रम एवं गुरुकुल में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के

लिए प्रवेश लेते थे। तब जाकर ये शिक्षा अपने व्यापक रूप ग्रंहण कर लेता। व्यापक का अर्थ बालक या अद्धेयता पूर्ण शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत सामाजिक हित एवं राष्ट्र निर्माण के लिए धर्म प्रचार के क्षेत्र लग जाते थे। वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा उपनयन संस्कार के उपरांत विद्यारम्भ किया जाता था।

**वैदिक काल में सामाजिक–सांस्कृतिक का स्वरूप :–**

इस काल में समाज के मध्य काफी समानता, सर्व लोकव्यापीकरण, भाईचारा, सर्व साधारण के लिए अवसर सा सुलभता, संपूर्ण जीवन सादगी, सामाजिक सौहार्द, सभ्यता सांस्कृतिक का समन्वय आदि रूपों में इस देश की सांस्कृतिक विरासत फल–फूल चुका था। इस काल में सामाजिक व्यवस्था मूल्यतरू रूप से कार्य कारी व्यवस्था मानी जाती थी समाज में एकता, समानता, भाईचारा व लोक कल्याण का भाव का होता था। वैदिक काल में वर्णव्यवस्था समाज की व्यवस्था का प्रमुख आधार था, इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप कार्य के चयन की स्वतंत्रता थी। अतः व्यक्ति के कर्म का विशिष्ट महत्त्व था, क्योंकि व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण उसके कर्म से होता था। अपने गुण एवं कर्म के अनुरूप किये गये कर्तव्य, समाज में वर्ण–धर्म के नाम से अभिहित किये जाने लगे। वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के वृज वरणे धातु से हुई है जिसका अभिप्राय है वरण करना। इस प्रकार वर्ण से तात्पर्य किसी विशेष व्यवसाय (या वृत्ति) के चयन से लिया जाता है।

ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग रंग अथवा प्रकाश के अर्थ में हुआ है। कहीं–कहीं वर्ण का सम्बन्ध ऐसे जन वर्गों से दिखाया गया है जिनका चर्म काला या गोरा है। आर्य प्रारंभ में एक ही वर्ण के थे और आर्यों का समूह विश कहलाता था। इस समय वर्ण रंग का बोधक था। आगे चलकर दास भी उनसे जुड़ गए। इस प्रकार ऋग्वेद की प्रारंम्भिक स्थिति में समाज में दो वर्ण थे, अर्थात् आर्य और दास। इस ग्रंथ में उल्लिखित है कि उग्र प्रकृति के ऋषि अगत्स्य ने दोनों वर्णो का पोषण किया। जब उत्पादन अधिशेष की स्थिति उत्पन्न हुई तो विश का विभाजन योद्धा, पुरोहित एवं सामान्य लोगों में हो गया। इस तरह वर्ण व्यवस्था का आधार अब कर्म हो गया।

ऋग्वेद में एक छात्र लिखता है– मैं कवि हूँ, मेरे पिता चिकित्सक हैं, और मेरी माता आटा पीसती है.। ऋग्वैदिक काल में ही ब्रह्मक्षत्र की अवधारणा सामने आई, जिसका अर्थ वैसे व्यक्ति से था जो जन्म से क्षत्रिय, किन्तु कर्म से ब्राह्मण हो। इससे संकेत मिलता है कि ब्राह्मण–क्षत्रिय द्वंद्व प्रारंभ हो चुका था और क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी जा रही थी। एक राजन कर्म से पुरोहित हो सकता था एवं पुरोहित राजन एवं महर्षि विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए भी वे कर्म से ब्राह्मण थे। उसी तरह ऋषि भृगु के बारे में कहा जाता कि भृगु के वंशज ने अनेकों राज्यों की स्थापना की। ऋग्वेद में ब्राह्मण की चर्चा चौदह बार हई है जबकि क्षत्रिय शब्द की चर्चा नौ बार हुई है।

शूद्र की चर्चा प्रथम बार ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुष सूक्त में वैश्य शब्द का भी प्रथम बार प्रयोग यहीं मिलता है। इसमें चारों वर्णों ब्रह्मा के शरीर के अंगों से की गई है। ब्राह्मण की तुलना ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय की भुजा से, वैश्य की जंघा से एवं शूद्र की पैर से की गई है। रक्त संबंध सामाजिक व्यवस्था का आधार था। समाज पितृसत्तात्मक था। परिवार का मुखिया स्वाभाविक रूप में मानवीय एवं करूणाशील होता था। सिर्फ एक दो उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि घर का मुखिया कभी–कभी संतान को क्रूर रूप में भी दण्डित करता था। ऋजास्व एवं भुज्यु की कथा इस ओर इंगित करती है। ऋजास्व का आख्यान, जिसमें उसे

सौ भेड़ों को गवा देने के अपराध में अपने पिता द्वारा अंधा कर दिये जाने की चर्चा मिलती है। इसके द्वारा पुत्र के ऊपर पिता का पूर्ण नियंत्रण प्रदर्शित होता है। किन्तु, इस तरह के आख्यान को अपवाद स्वरूप ही लिया जाना चाहिए क्योंकि ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर पुत्र के कल्याण की कामना में निवेदन किया गया है। वैदिक समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था थी। अतः समाज में पुत्र का विशेष महत्त्व था। पुत्र न होना दरिद्रता के समान कहा गया है। पिता की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र को संपत्ति में अधिक हिस्सा मिलता था।

विवाह वैदिक काल में पवित्र संस्कार माना जाता था जो व्यक्ति एवं सामाजिक विकास के लिए आवश्यक था। याजक कार्यों हेतु पति एवं पत्नी दोनों की उपस्थिति वांछनीय थी। अग्नि से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि– हे अग्ने, तुम कन्याओं के अर्यमा अर्थात् विधान कर्ता के तुल्य हो, तुम जब पति–पत्नी को समान मन वाला बनाते हो, तब वे तुम्हें धृत–दुग्ध द्वारा बन्धु के समान सींचते हैं। लड़कियों को अपने पति के चयन करने की स्वतंत्रता थी।

**वैदिक काल में समाज के सर्व लोगों को बीच काम–कार्यकारी व्यवस्था का परिचालन था। इस उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा में ''सामाजिक स्वरूप'' :–**

इस काल में आर्यों ने कबीलाई जीवन का परित्याग कर स्थायी जीवन में प्रवेश किया। समाज में सम्पत्ति की अवधारणा प्रमुख हुई। फलतः कबीलाई समाज टूटकर वर्ण विभक्त समाज में बदल गया। चार वर्ण स्थापित हुए। प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था कर्म प्रधान थी, जन्म प्रधान नहीं थी। लेकिन बाद में वर्ण व्यवस्था जन्म प्रधान हो गई। उत्तर वैदिक काल की सामाजिक स्थिति में ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को द्विज कहा जाता था। इन तीनों को उपनयन (जनेऊ) धारण करने का अधिकार था। सभी वर्ण की महिलाओं एवं शूद्रों को उपनयन से वंचित कर दिया गया तथा उन्हें अधम (निम्न कोटि) का माना गया। लेकिन अभी भी इस काल में अस्पृश्यता (छुआ–छुत) की संकल्पना का उद्‌भव नहीं हुआ था। क्योंकि रत्नाकार जो शुद्र वर्ग में आता था उसकी समाज में काफी प्रतिष्ठा थी तथा उसे उपनयन का अधिकार दिया गया था। उत्तर वैदिक कालीन समाज में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई। सभा एवं समीति में उनका महत्व कम हो गया। कम उम्र में विवाह प्रारम्भ हो गया।

इस काल के ग्रन्थ में महिलाओं की निंदा की जाने लगी। ऐतरेय ब्राह्मण पुत्री को दुःख का कारण कहता है। महिलाओं को उपनयन से वंचित कर दिया गया। बहुविवाह तथा नियोग की प्रथा इस काल में भी जारी रही। इस काल में गोत्र की स्थापना हुई। अथर्ववेद में पहली बार इसकी चर्चा मिलती है। हिन्दू जीवन को चार भागों में बांटते हुए इस काल में आश्रम व्यवस्था की स्थापना हुई। हालाँकि महिलाओं एवं निचले वर्गों के लोगों के लिए आश्रम व्यवस्था का पालन करना आवश्यक नहीं था। यदि हम लोग वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली की सामाजिक स्तर की बात करें तो बिभिन इतिहासकारों ने इसके संदर्भ में बहुत से बातों की चर्चा कर चुके हैं। फिर भी हमें अपने आकलन के आधार पर अपना विचार व्यक्त करना हमारी अभिव्यक्ति की आजादी है।

इस काल में शिक्षा पर "एकात्मवाद" यानि एक पंथिय प्रणाली की व्यवस्था थी जो समाज को विभिन्न वर्ण, विभिन्न समुदाय, विभिन्न गौत्र, विभिन्न जाति, विभिन्न उपजाति, विभिन्न भाषाओं, विभिन्न खान–पान, विभिन्न रहन–सहन विभिन्न रीति–रिवाज, विभिन्न एवं विभिन्न बोली–उप बोली के आधार पर समाज का खंडन किया गया था। समाज में चारों ओर कलह और ईर्ष्या व्याप्त था। समाज में एकता एकात्म स्वरूप था। समाज अनेक पीड़ाओं से जूझ रहा था। समाज में असमानताएँ बहुत अति पर था। उत्तर वैदिक काल का धार्मिक जीवन में

धर्म की दो धाराएं देखने को मिलती है। एक कर्मकांडीय धारा तथा दूसरा दार्शनिक धारा। उत्तर वैदिक काल का धार्मिक जीवन में कर्मकांडीय धारा : इस काल में तंत्र–मंत्र, पशुबलि, यज्ञ पर अधिक बल दिया जाता था। विभिन्न देवी देवताओं की यज्ञों के माध्यम से पूजा का प्रचलन बढ़ा। प्रजापति विष्णु तथा रूद्र पहली बार एक साथ स्थापित हुए। (विष्णु पहले भी थे लेकिन इससे पहले उनका महत्व कम था)

उत्तर वैदिक काल का धार्मिक जीवन में दार्शनिक धारारू इसे उपनिषदों की धारा भी कहा जाता है। इसमें कर्मकांडो की निंदा की गई तथा ज्ञान और मोक्ष पर बल दिया गया। उपनिषदों में यज्ञ को टूटी हुई नौका के समान बताया गया।

वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली में शिक्षा प्रभावित करने वाले "सामाजिक कारक" :–

1. वर्ण–व्यवस्था 2. जाति– व्यवस्था 3. गौत्र–व्यवस्था 4. रूढ़िवादी व्यवस्था 5. छुआछूत व्यवस्था 6. भाषा–उपभाष 7. काम–कारी व्यवस्था 8. कर्म–कांडी व्यवस्था, आदि।

**1. वर्ण-व्यवस्था :-**

इस काल में समाज को मुख्य रूप से चार वर्णो में बाँटा दिया गया था। समाज में शीर्षथ–क्रमवार वर्ण के रूप में कुछ इस प्रकार थे।

(क) ब्राह्मण (ख) क्षत्रिय (ग) वैश्य (घ) शूद्र

**ब्राह्मण :-**

वैदिक काल में समाज में ब्राह्मणों का स्थान बहुत उच्च था द्य शिक्षा प्रणाली इन्हीं के अधीन था द्य इनके कुल के लोग ही विद्या देने लेने का कार्य किया करते थे। ये लोग बहुत कर्म–कांडी होते थे। इनका विचार समाजस्पर्शी नहीं के बराबर होता था। ये प्रायः समाज में छूआ–छूत को बहुत मानते थे। ये उपदेशक होते थे जो अज्ञान समाज में भ्रम फैलाने का कार्य किया करते थे। ये विद्वान होते थे परंतु समाज में सामाजिक परिवर्तन नही चाहते थे। इन्हीं के कुलों के द्वारा वेद, पुराण एवं वेदान्त का अन्वेषन किया है।

**क्षत्रिय :-**

वैदिक कालीन समाज में "क्षत्रिय समाज" का स्थान ब्राह्मणों के बाद आता था। यह ब्राह्मणों के तरह विद्वान् नहीं होते थे परंतु राजकाज की व्यवस्था के अनुरूप शासन–प्रशासन के लिए उपयुक्त होते थे। इनके राज–व्यवस्थाओं में ब्राह्मणों का स्थान उच्च दिया जाता था क्योंकि ये उन्हें बहुत विद्वान एवं देवदूत समझते थे। इनका मुख्य कार्य शासन–प्रशासन का देख–भाल करना। इन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था।

**वैश्य :-**

इस समाज का मुख्य कार्य वैदिक समाज में "व्यापार" करना। जिसमें खेती करना, कपड़ा–वस्त्र, गुड़–शक्कर, हाथ से बना समान, हाथ से कढ़ाई की गई वस्तुएँ का इधर से उधर करना, दैनिक जीवन उपयोग के वस्तुएँ को देना और इसके बदले स्वर्ण मुद्राएँ लेना। ये राज्य के प्रत्येक हिस्से में घूम–घूम कर व्यापार किया करते थे। इन्हें भी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था।

**शूद्र :-**

वैदिक काल में इनकी जनसंख्या बहुत अधिक था परंतु ये अज्ञानी थे। इन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। ये वैदिक काल में बनाए कर्म–कांडी के गुलाम थे। ये सेवक रूप में देखे जाते थे। ये प्रायः

इन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों का सेवा किया करते थे।

**2. जाति–प्रथा व्यवस्था :–**

ये वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली का प्रमुख्य बाधक में एक था। पूरे समाज को जाति–प्रथा की व्यवस्थाओं में बाँट दी गई थी। जिसमें रूढ़िवादिता जकड़ी हुई थी। रूढ का जड़ बहुत मजबूत था जिसे उखाड़ पाना मुश्किल था। इन जतियों में कई उपजातियाँ होती थी। इन उपजातियों में कई गौत्र होते थे। इन जातियों के आधार पर शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। ये प्रायः वैदिक समाज का जटिल कारक था।

**3. गौत्र–व्यवस्था :–**

वैदिक काल ये कारक जाति के अंतर्गत रखा गया था। जाति में भी आसमनताएँ थी, जाति समान होते हुए भी उसे गौत्र में बाँट दी जाती थी। एक जाति में भी कई गौत्र व्यवस्था होती थी एवं कुछ अंशों में आज भी देखा जा रहा है। इस कारण से इस नीच गौत्र वाले शिक्षा प्राप्त नही कर पते थे। जो सामाजिक परिवर्तन का बाधक था और अब भी बना हुआ है।

**4. रूढ़िवादी–व्यवस्था :–**

रूढ़िवादी एक ऐसी विचारधारा है जिसमे व्यक्ति बिना तार्किकता और वैज्ञानिकता के केवल आस्था का अनुकरण करता है। पीढ़ी दर पीढ़ी सामाजिक और वैज्ञानिकता परंपरा का अनुसरण करता रहता है। वैदिक संस्कृति में रूढ़िवादी व्यवस्था अपने चरम सीमा पर थी। ये व्यवस्था समाज को पंगु बना दिया था। समाज में कोई कार्यक्रम का आयोजन वैदिक रूढ़ के अनुसार होता था। जिससे कई तरहों की कठिनाईयां उत्पन्न हो गया, जो समाज के लिए बहुत दुर्भाग्य रहा होगा। समाज की सामाजिक व्यवस्था रूढ़ की जकड़ में थी।

**5. छूआछूत व्यवस्था :–**

हमारी वर्ण व्यवस्था मानुवादी व्यवस्था है। अर्थात इसे मनु महाराज ने व्यवस्थित किया था। उनकी व्यवस्था के अनुसार हमारा सम्पूर्ण समाज चार वर्णो में विभाजित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। छुआछूत के प्रति हमारा समाज सदियों से अब तक अमानवीय कदम उठता रहा है। हमारे समाज में छुआछूत के लिए कोई सहानुभूति और सहृदयता का भाव नही था। उनके प्रति तो पशुता पूर्ण व्यवहार किया जाता था। भारतीय वैदिककालीन समाज में ऐसी व्यवस्था रही होगी तो सामाजिक उत्थान की बात बहुत दूर हो जाती है तो प्राथमिक शिक्षा कितना गौरवपूर्ण रहा होगा?

**6. भाषा–उपभाषा :–**

वैदिक काल में समाज को भाषा के आधार पर बाँट दिया गया था। वैदिक मंत्रों उच्चारण करने वाला का अलग निवास स्थान हुआ करता था। समाज में शासन–प्रशासन संचालन करने वाले का अलग अधिकारी भाषा हुआ करता था। इसी तरह व्यापार करने वाले का भी अपनी भाषा होती थी। उसी समाज रहने वाले भिविन्न कामकारों की अलग भाषा के साथ उनकी अलग निवास स्थान भी हुआ करता था। ये प्राय भाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं पते थे। ये लोग अपने लोगों के साथ उपभाषा में बात किया करते थे। जब की उपभाषा बोलने वाले की संख्या बहुत अधिक होता था परंतु उनके साथ भाषों के साथ भी अधिक प्रतारित किया जाता था। भाषा से भी उन्हे अलग रखा जाता था जिससे वह विद्या प्राप्त नहीं कर सके।

**7. काम-करी व्यवस्था :-**

यदि इस व्यवस्था की चर्चा किया जाए तो उस समय समाज में कामकारी करने वाले लोगों की व्यवस्था बहुत ही वद से वेत्तर था क्योंकि ये सेवादार होते थे। ये सिर्फ सेवा करने करने के लिए जन्म लेते थे। इन्हें वैदिक विद्या को प्राप्त करने का अधिकार नही दिया जाता था। ये लोग जन्मजात के आधार पर जाति कार्य में लग जाते थे। ये प्रायः अशिक्षित होते थे। इनके काम करने की जगह भी उनके अपने निवास पर करना पड़ता था जो लोग इतने छुआछूत से ग्रसित थे वो प्रथिमिक शिक्षा कैसे प्राप्त कर सकते थे स इनमें समझ की बहुत कमी होता था।

**8. कर्म-कांडी व्यवस्था :-**

वैदिककालीन समाज में कर्मकांडी व्यवस्था अपने चरम सीमा पर व्याप्त थी। इस कर्मकांड की व्यवस्था से समाज में छुआछूत उत्पन्न हो चुका था। वैदिक संस्कृति में किसी भी कार्य की श्री गणेश या अति श्री भी वैदिक कर्मकांड के अनुसार होता था। यही वैदिक कर्मकांड, पाखंड, रुढ़ीवादिता समाज में विषमता उत्पन्न करने का मुख्य कारण रहा होगा। जिस समाज में इस प्रकार का अव्यावस्था हो उस में समतामुलक शिक्षा की कल्पना संभव नहीं है।

**संदर्भ ग्रंथ :-**


1. त्रिपाठी, कुसुम – महिलाएँ दशा और दिशा – कुरूक्षेत्र अंक, मार्च 2007
2. महला, अरविन्द और सुरेन्द्र कटारिया – सं. भारत में महिला सशक्तीकरण : प्रयास और बाधाए – मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर– 2013. पृ. 262.
3. दिनकर, रामधारी सिंह – संस्कृति के चार अध्याय।
4. विमल, कुमार – रामधारी सिंह दिनकर रचना–संचयन।
5. द्विवेदी, कपिलदेव – वैदिक साहित्य एवं संस्कृति।
6. गोयल, प्रीतिप्रभा – भारतीय संस्कृति वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृ. 257–58
7. Amartya Sen, The Argumentative Indian, Farrar, Straus and Giroux, New York, 2005, P. 7
8. कुमार, कमलेश – भारत की जनजाति महिलाएँ – कुरूक्षेत्र अंक, मार्च 2007, पृ. 23.
9. पाण्डेय, मैनेजर – भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा – नई दिल्ली, 2013. पृ. 9
10. टॉमस, मूर. यूटोपिया।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 166-173

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में 'नारी शिक्षा' का सामाजिक, धार्मिक और राजनितिक स्वरूप

**सज्जन कुमार**

शोधार्थी (शिक्षा शास्त्र), सनराइज विश्वविधालय, अलवर, (राज्यस्थान)

**प्रस्तावना :–**

भारत अपनी कला, संस्कृति तथा दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता रहा है परन्तु आज अनास्था तथा पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परागत एवं मूल्य धूमिल हो गये हैं। आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा, अस्तित्ववादी जीवन, अनात्मपरक नास्तिकता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण तथा कुतर्क प्रधान चिन्तन आदि के कारण अतीत में अविश्वास एवं स्व में अनास्था आदि कारणों से हमारे पुराने मूल्य प्रदूषित हो गये हैं। स्वयं पर अनास्था का परिणाम है– आत्मनाश अर्थात् अपने आदर्शों एवं मूल्यों, अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपनी चिन्तन प्रणाली का परित्याग कर उसके स्थान पर बाहरी या विदेशी चिन्तन प्रणाली को सम्मिलित करना। इसके फलस्वरूप हमारे मूल्य दब से गये हैं। वस्तुतरू वे पूर्णतरू नष्ट नहीं हुए हैं वरन् विघटित हो गये हैं। मानव नारी का सम्मान करना चाहता है परन्तु कर नहीं पाता। वह झूठ, चोरी, डकैती आदि को गलत मानता है परन्तु मन में उतार नहीं पाता। वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश प्रकट करता है परन्तु भ्रष्टाचार का उन्मूलन नहीं कर पाता।

इस प्रकार आज का प्रत्येक भारतीय संक्रान्ति काल से होकर गुजर रहा है। दूसरे शब्दों में, कभी वह पुरातन मूल्यों की ओर झुकता है तो कभी आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा की ओर जाता है फिर रुककर आत्म चिन्तन करता है। उक्त वातावरण ने मानवीय मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता की ओर सभी का ध्यान आकृष्ट कर लिया है। हमने संक्रमण काल में कर्त्तव्य या कार्य संस्कृति के स्थान पर उपभोक्ता संस्कृति को अपना लिया है। इस उपभोक्ता संस्कृति (ब्वदेनउमत बनसजनतम) ने मानवीय मूल्यों की शिक्षा की आवश्यकता को और भी प्रबल बना दिया है। वर्तमान समय की स्थिति को देखते हुए मानवीय मूल्यों की शिक्षा एवं आवश्यकता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये। शिक्षित व्यक्ति से समाज एवं राष्ट्र द्वारा बहुत अपेक्षाएँ की जाती हैं। इन अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए मानवीय मूल्यों की शिक्षा प्रदान करनी चाहिये। मानवीय मूल्यों के विकास की आवश्यकता एवं महत्त्व को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है–

वर्तमान समय में समाज में फैले द्वेष एवं राजनीतिक दुष्प्रभाव को दूर करने के लिये मानवीय मूल्यों का विकास प्राथमिक स्तर से ही करना आवश्यक है, जिससे कि स्वस्थ समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। सार्वजनिक हित की भावना का विकास करने के लिये तथा स्वार्थ की भावना की समाप्ति के लिये मानवीय मूल्यों

का विकास प्राथमिक स्तर से ही करना आवश्यक है, जिससे परिपक्वावस्था तक छात्रों द्वारा मानवीय मूल्यों को आत्मसात् किया जा सके तथा अपने कार्य एवं व्यवहार में मूल्यों का प्रयोग किया जा सके। विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करने के लिये भी मानवीय मूल्यों की आवश्यकता है। आज के वैश्विक समाज में इस प्रकार की द्वेष भावना पायी जाती है कि यह अमेरिका का नागरिक है या प्राथमिक स्तर ये भारत का नागरिक है। इस भेदभाव को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि छात्रों को यह बताया जाय कि वे सबसे पहले मानव हैं इसके बाद किसी देश के नागरिक हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास के लिये भी मानवीय मूल्यों की आवश्यकता है क्योंकि जब हम मानवीय मूल्यों को स्वीकार करते हैं तभी हम क्षेत्रवाद एवं जातिवाद को छोड़कर अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की ओर अग्रसर होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं वैश्विक विकास के लिये भी मानवीय मूल्यों के विकास की आवश्यकता होती है। आज विश्व स्तर पर विकास की भावना का जाग्रत होना तथा समस्याओं के समाधान को बातचीत के आधार पर हल करने की पहल मानवीय मूल्यों के विकास का ही परिणाम है।

मानव अपनी अभिव्यक्ति की आजदी हमेशा चाहता है। इसी संदर्भ में बात की जाय तो किसी भी सामाज कि पहचान वहा की शिक्षा व्यसवथा तथा वहा की नारी शक्ती होती है। हमारी भारतीय संस्कृति अति ही प्राचीन रहा है। जिसमे से वैदिक कालीन, उत्तर वैदिक कालीन एवम बौध्द कालीन तथा जैन कालीन नारी शक्ति का स्थान हर काल में बहुत ही साम्मानीय रहा है। नारी शक्ति अलग–अलग रूपो में अवतरित ले कर सामाज का उद्धार करने के लिए अपने आप को हमेशा सबसे से आगे रखी है। वैदिक काल से आज तक स्त्री कि दशा एव्म दिशा दोनो ही कही न कही विसन्गतीयाँ से भरी पड़ी थी और आज भी देखी जा रही है। बौद्ध शिक्षा एवम् दर्शन के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध ने स्त्री को सांसारिक मोह और माया की संज्ञा का दर्जा दिया था। यही कारण है कि नारी अपनी विद्या में अवल रही है। नारी सिर्फ घर की शोभा मात्र नही रही। प्राचीन भारत की सम्पन्नता की मुख्य वजह जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में नारियों का अभूतपूर्व योगदान है। प्राचीन भारत को आमूल्य सम्पदा के रुप में सजाने के लिए नारी की भूमिका बहुत ही अहम रही है। नारी ने अपनी अद्भूत पराक्रम, ऋग्वेद में सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय की नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है।

अर्द्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरूष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित संबंधों का परिचायक है। वैदिक काल में परिवार के सभी कार्यों और भूमिकाओं में पत्नी को पति के समान अधिकार प्राप्त थे। भारतीय संस्कृति में प्राचीन वैदिक काल से ही नारी का स्थान सम्माननीय रहा है और कहा गया है कि यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः। अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है, उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा, वस्त्र, भूषण तथा मधुर वचनादि द्वारा सत्कार नहीं होता है, उस कुल में सब कर्म निष्फल होते हैं। उन दिनों परिवार मातृसत्तात्मक था। खेती की शुरूआत तथा एक जगह बस्ती बनाकर रहने की शुरूआत नारी ने ही की थी, इसलिए सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भ में नारी है किन्तु कालान्तर में धीरे–धीरे सभी समाजों में सामाजिक व्यवस्था मातृ–सत्तात्मक से पितृसत्तात्मक होती गई और नारी समाज के हाशिए पर चली गई। आर्यों की सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भिक काल में महिलाओं की स्थिति बहुत सुदृढ़ थी।

ऋग्वेद काल में स्त्रियां उस समय की सर्वोच्च शिक्षा अर्थात् बृह्मज्ञान प्राप्त कर सकतीं थीं। ऋग्वेद में

सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय की नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना स्त्री और पुरूष के समान अधिकारों तथा उनके संतुलित संबंधों का परिचायक है। वैदिक काल में परिवार के सभी कार्यों और भूमिकाओं में पत्नी को पति के समान अधिकार प्राप्त थे। नारियां शिक्षा ग्रहण करने के अलावा पति के साथ यज्ञ का सम्पादन भी करतीं थीं। वेदों में अनेक स्थलों पर रोमाला, घोषाल, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, यमी, श्रद्धा, कामायनी, विश्वम्भरा, देवयानी आदि विदुषियों के नाम प्राप्त होते हैं।

बौद्ध शिक्षा एवं दर्शन के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध ने स्त्री को सांसारिक माया एवं मोह का कारण माना था यही कारण था कि प्रारम्भ में बौद्ध संघों में स्त्रियों का कोई स्थान न था किन्तु कालान्तर में महात्मा बुद्ध ने अपनी विमाता तथा अन्य स्त्रियों को संघ में प्रवेश दे दिया था। किन्तु स्त्रियों के लिए पृथक् विहारों की व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार स्त्री शिक्षा का श्री गणेश हुआ। स्त्रियाँ भी विहारों में भिक्षुणियों के रूप में प्रवेश लेती थीं। आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत के पालन के साथ–साथ संघ के सभी नियमों का कठोरता से पालन करती थीं। इन महिला विहारों में शिक्षिकाएँ भी महिलाएँ ही होती थीं जिन्हें उपा इन्याया अर्थात् उपाध्याया कहा जाता था। समय–समय पर यहाँ विद्वान भिक्षुक भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आया करते थे किन्तु इन भिक्षुकों को अकेले आना वर्जित था।इन विहारों में स्त्रियों का पाठ्यक्रम भी पुरुषों के समान होता था वे किसी भी विषय में उच्चतम ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र होती थी। इन विहारों ने अनेक विदुषी महिलाओं–शील भट्टारिका विजयांका और प्रभु देवी (कवित्री), रानी नयनिका और रानी प्रभावती गुप्त (राजनीतिज्ञ), सम्राट अशोक की संघमित्रा (धर्म विशेषज्ञ), सम्राट हर्षवर्धन की बहिन (शास्त्रार्थ में निपुण) इत्यादि को जन्म दिया है। वे धर्म–प्रचार हेतु विदेशों में जाकर बौद्ध धर्म तथा दर्शन का प्रचार–प्रसार किया। यहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाली कुछ महिलाओं ने तो शासन सत्ता का दायित्व भी निभाया है।किन्तु इस सबके बाद भी इस काल में स्त्रियों की शिक्षा उपेक्षित ही रही है। उपनयन संस्कार की अनिवार्यता समाप्त हो जाने के कारण बाल विवाह का प्रचलन हो गया था तथा समाज में स्त्री का सम्मान भी कम हो गया था।भारत में वैदिक काल से ही स्त्रियों के लिए शिक्षा का व्यापक प्रचार था। मुगल काल में भी अनेक महिला विदुषियों का उल्लेख मिलता है।

पुनर्जागरण के दौर में भारत में स्त्री शिक्षा को नए सिरे से महत्व मिलने लगा। ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वार सन 1854 में स्त्री शिक्षा को स्वीकार किया गया था। विभिन्न सरकारी और गैर सरकारी प्रयासों के कारण साक्षरता के दर 0.2 प्रतिशत से बदकर 6 प्रतिशत तक पहुँच गया था। कोलकाता विश्वविद्यालय महिलाओं को शिक्षा के लिए स्वीकार करने वाला पहला विश्वविद्यालय था। 1986 में शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीति प्रत्येक राज्य को सामाजिक रूपरेखा के साथ शिक्षा का पुनर्गठन करने का निर्णय लिया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सन 1947 से लेकर भारत सरकार पाठशाला में अधिक लड़कियों को पढ़ने का मौका देने के लिये, अधिक लड़कियों को पाठशाला में दाखिला करने के लिये और उनकी स्कूल में उपस्थिति बढ़ाने की कोशिश में अनेक योजनाएँ बनाए हैं जैसे कि निःशुल्क पुस्तकें, दोपहर की भोजन आदि। जोन इलियोट ने पहला महिला विश्वविद्यालय खोला था। सन् 1849 में और उस विश्वविद्यालय क नाम बीथुने कालेज था। सन् 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को पुनर्गठन देने को सरकार ने फैसला किया। सरकार ने राज्य कि उन्नति के लिये, लोकतंत्र के लिये और महिलाओं का स्थिति को सुधारने के लिये महिलाओं को शिक्षा देना जरूरी समझा था।

भारत की स्वतंत्रता के बाद सन् 1947 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग को बनाया गया। आयोग ने सिफारिश किया कि महिलाओं कि शिक्षा में गुणवता में सुधार लिया जाए। भारत सरकार ने तुरन्त ही महिला साक्षारता की लिये साक्षर भारत मिशन की शुरूआत किया था।इस मिशन में महिलाओं की अशिक्षा की दर को नीचे लाने की कोशिश की गई है। बुनियादी शिक्षा उन्हें अनिवार्य है और अपने स्वयं के जीवन और शरीर पर फैसला करने का अधिकार देने, बुनियादी स्वास्थ्य, पोषण और परिवार नियोजन की समझ के साथ लड़कियों और महिलाओं को शिक्षा प्रदान हो रही है। बौद्धकाल में स्त्रियों अर्थात् बालिकाओं को शिक्षा दिए जाने की सुचारु व्यवस्था थी। इसका प्रमाण है कि इस काल में अनेक विदुषी स्त्रियों का उल्लेख हुआ है, जैसे– अनुपमा, सुमेधा, विजयंका तथा शुभा। बौद्धकाल में अनेक स्त्रियों ने बौद्ध–धर्म के प्रचार एवं प्रसार में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा गरीबी पर काबू पाने में एक महत्वपूर्ण कदम है। कुछ परिवारों का काम कर रहे पुरुष दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटनाओं में विकलांग हो जाते हैं।

उस स्थिति में, परिवार का पूरा बोझ परिवारों की महिलाओं पर टिका रहता है। महिलाओं की ऐसी जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हे शिक्षित किया जाना चाहिए। वे विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश कर सकती हैं। महिलाएँ शिक्षकों, डॉक्टरों, वकीलों और प्रशासक के रूप में काम कर रही हैं। शिक्षित महिलाएँ अच्छी माँ बन सकती हैं। महिलाओं की शिक्षा से दहेज समस्या, बेरोजगारी की समस्या, आदि सामाजिक शांति से जुड़े मामलों को आसानी से हल किया जा सकता है। संस्कृत में यह उक्ति प्रसिद्ध है– 'नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति मातृ समोगुरुः'. इसका मतलब यह है कि इस दुनिया में विद्या के समान नेत्र नहीं है और माता के समान गुरु नहीं है।' यह बात पूरी तरह सच है। बालक के विकास पर प्रथम और सबसे अधिक प्रभाव उसकी माता का ही पड़ता है। माता ही अपने बच्चे को पाठ पढ़ाती है। बालक का यह प्रारंभिक ज्ञान पत्थर पर बनी अमिट लकीर के समान जीवन का स्थायी आधार बन जाता है। लेकिन आज पूरे भारतवर्ष में इतने असामाजिक तत्व उभर आए हैं, जिन्होंने मां–बहनों का रिश्ता खत्म कर दिया है और जो भोग–विलास की जिंदगी जीना अधिक उपयोगी समझने लगे हैं। यही कारण है कि कस्बों से लेकर शहरों की मां–बहनें असुरक्षित हैं। असुरक्षा के कारण ही बलात्कार और सामूहिक बलात्कार जैसी अनेक घटनाओं के जाल में फँसकर महिलाओं का जीवन नर्क बन चुका है।

वास्तव में कहा जाता है कि महिलाओं की शिक्षा, किसी भी पुरुष की शिक्षा से कम महत्वपूर्ण नहीं है। समाज की नई रूपरेखा तैयार करने में महिलाओं की शिक्षा पुरुषों से सौ गुना अधिक उपयोगी है। इसलिए स्त्री शिक्षा के लिए सरकार को प्रयासरत होना चाहिए। तभी अत्याचार जैसी घटनाओं पर काबू पाया जा सकता है। शिक्षा प्राप्त करके आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का अर्थ यह नहीं है कि नारी शिक्षित होकर पुरुष को अपना प्रतिद्वन्द्वी मानते हुए उसके सामने ही मोर्चा लेकर खड़ी हो जाए। बल्कि वह आर्थिक क्षेत्र में भी पुरुष के बराबर समानता का अधिकार प्राप्त करके उसके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध के समीकरण बनाने में सक्षम बने। जिस प्रकार शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानसिक विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है। अगर नारी ही शिक्षित नहीं होगी तो वह न तो सफल गृहिणी बन सकेगी और न कुशल माता। समाज में बाल–अपराध बढ़ने का कारण बालक का मानसिक रूप से विकसित न होना है। अगर एक माँ ही अशिक्षित होगी तो वह अपने बच्चों का सही मार्गदर्शन करके उनका मानसिक विकास कैसे कर पाएगी और एक स्वस्थ समाज का निर्माण एवं विकास सम्भव नहीं हो सकेगा।

अतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षित नारी ही भविष्य में निराशा एवं शोषण के अन्धकार से निकलकर परिवार को सही राह दिखा सकती है। इसका एक रूप शिक्षा में स्त्रियों को पुरुषों की ही तरह शामिल करने से संबंधित है। दूसरे रूप में यह स्त्रियों के लिए बनाई गई विशेष शिक्षा पद्धति को संदर्भित करता है। भारत में मध्य और पुनर्जागरण काल के दौरान स्त्रियों को पुरुषों से अलग तरह की शिक्षा देने की धारणा विकसित हुई थी। वर्तमान दौर में यह बात सर्व मान्य है कि स्त्री को भी उतना शिक्षित होना चाहिये जितना कि पुरुष हो। यह सिद्ध सत्य है कि यदि माता शिक्षित न होगी तो देश की सन्तानों का कदापि कल्याण नहीं हो सकता।

**बौद्ध कालीन शासन प्रणाली में नारी की सामाजिक स्तिथि :-**

गौतम बुद्ध के समय नारी की स्थिति अति हेय एवं दयनीय हो उठी थी। बुद्ध के उपदेशों में स्त्रियों पर प्रचुर रूप से आक्रोश की वर्षा हुई है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों की दशा उतनी हीन न थी, जितनी तत्कालीन साहित्य में वर्णित है। गौतम बुद्ध ने युवा वर्ग को भिक्षु जीवन की ओर आर्किर्षत करने की दृष्टि से एवं माया केन्द्र नारी से विरक्त करने का यही उपाय निकाला था कि नारी का अतिनारकीय स्वरूप ही समाज के सम्मुख रखा जाये, ताकि पुरूष वर्ग स्वयं ही नारी से घृणा करने लगे। जो नारी वैदिक युग में लक्ष्मी मानी जाती थी एवं घर की रानी समझी जाती थी, बौद्ध युग में मात्र 'वासना की पुतली' के रूप में प्रस्तुत की गई थी। गौतम बुद्ध ने स्वयं कहा, जैसे नदी, पथ, शराब खाने, धर्मशालाएँ, प्याऊ आदि सबके लिए होते है, वैसे ही लोक स्त्रियाँ भी सबके लिए होती है। पालि साहित्य में स्त्री का मात्र कुल्टा रूप ही प्रतिबिम्बित होता है। जातक में ऐसी स्त्रियों के 25 लक्षण बताए गए है।

गौतम बुद्ध नारी–समाज को भिक्षु धर्म में दीक्षित करने के पक्ष में नही थे किन्तु अपने प्रिय आनन्द के अनुरोध पर नारी प्रव्रज्या की अनुमति दी थी लेकिन इसके साथ आठ शर्तें भी लगा दी। प्रतिबन्ध लगाते हुए तथागत ने आनन्द से कहा हे आनन्द! यदि स्त्रियों को गृहस्थ जीवन का परित्याग कर तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म तथा चिर–स्थायी होता है। हे आनन्द! अब स्त्रियों को वह अधिकार प्रदान कर दिया गया। अतः यह विशुद्ध धर्म, आनन्द अब मात्र पाँच सौ वर्षो तक स्थिर रह पाऐगा। यद्यपि गौतम बुद्ध स्त्री प्रव्रज्या से खुश नही थे तथापि बौद्ध ग्रन्थों में अनेक ऐसे उद्धरण मिलते हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ प्रायः शिक्षित और विद्वान हुआ करती थी। विद्या, धर्म और दर्शन के प्रति उनकी अगाध रूचि होती थी। बौद्ध आगमों की शिक्षिकाओं के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी। थेरीगाथा की कवियित्रियों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी और विवाहित भिक्षुणियाँ थी। पुराणों से विदित होता है कि नारी शिक्षा के दो रूप थे, एक आध्यात्मिक और दूसरा व्यवहारिक। आध्यात्मिक ज्ञान में बृहस्पति–भगिनी भुवना, अपर्णा, एकपर्णा एकपाप्ला, मेना, धारिणी, संनति, शरूपा आदि कन्याओं के नामों का उल्लेख है, जो ब्रह्मवादिनी थी। आध्यात्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि योग और तप पर निर्भर करती थी जिसमें स्त्री ब्रह्मचर्य, सदाचरण, गृहस्थिक शिक्षा से भी अवगत हुआ करती थी। ललित कलाओं में भी वे निपुण होती थी। कौशलपूर्वक नृत्य करती थी तथा ऋग्वेद की ऋचाओं का गान करती थी।

उत्तर वैदिक कालीन व्यवहारिक शिक्षा में वे नृत्य, संगीत, चित्रकला आदि की भी शिक्षा ग्रहण करती थी। प्रमदाओं की कमनीय भाव–भंगिमा और आकर्षक नृत्यकला शोभा और सुन्दरता का केन्द्र बिन्दु थी। चित्रकला का समुचित विकास हो चुका था। स्वच्छ रेखांकन रंगों का अपेक्षित प्रयोग तथा आकृति का अभिव्यक्तिकरण चित्रकला के प्रधान आधार थे। इस सम्बन्ध में अनेक पौराणिक संदर्भ मिलते है। वाणासुर के मंत्री कुष्माण्ड की

कन्या की सखी चित्रलेखा ने चित्रपट पर अनेक देवों, गंधवों और मनुष्यों की आकृतियों का आंकलन किया था, जिसमें अनिरूद्ध का भी चिन्ताकर्षक चित्र था।

**बौद्ध कालीन शासन प्रणाली में नारी की धार्मिक स्थिति :-**

बुद्ध काल में अनेक दार्शनिक वादों का प्रादुर्भाव हुआ। ब्राह्मण धर्म लोक धर्म बन चुका था और बौद्ध धर्म के प्रचार होने पर भी इसकी लोकप्रियता में कोई अंतर नहीं आया। बुद्ध का ध्येय बौद्ध दर्शन को लोकप्रिय बनाना था। अतः उन्होंने लोकमत को समुचित आदर प्रदान करते हुए अपने विचारों का प्रचार किया। लोक साहित्य पर भी गौतम बुद्ध के गंभीर व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव पड़ा। वैदिक ऋचाओं का विषय देवस्तुति मात्र था एवं परवर्ती या उत्तर वैदिक साहित्य यज्ञ एवं कर्मकाण्ड से भरा पड़ा था। पर गौतम बुद्ध ने गाथाओं, जातक कथाओं और पिटकों के माध्यम से विषयो को अपनी वार्ता का विषय बनाया। शिक्षा के सिद्धांतों और प्रयोगों के संबंध में बौद्धों और हिंदुओं के दृष्टिकोण में कोई मौलिक अंतर नहीं था। बौद्ध धर्म का मूल मत था कि संसार दुःख से परिपूर्ण है। संसार का परित्याग करने से ही मोक्ष मिलेगा। अतः प्रारंभ में बौद्धों ने भिक्षुओं और भिक्षुणियों की शिक्षा पर ही ध्यान दिया तो उचित ही था। किन्तु कालान्तर में जब इन्होंने जन साधारण को शिक्षा देना स्वीकार कर लिया तो इनकी शिक्षा प्रणाली में हिंदूओं की शिक्षा प्रणाली में कोई अंतर नहीं था।

दोनों पद्धतियों के आदर्श और ढंग समान थे। बुद्ध का यह अत्यन्त विवेक पूर्ण आदेश था कि प्रत्येक उपासक को विनय और धर्म की सम्यक् शिक्षा देनी चाहिए। बुद्ध के इस वचन के कारण ही बौद्ध विहारों ने शिक्षा कार्य अपने हाथ में लिया और उसका विकास किया। बौद्ध संघ में सम्मिलित होने के लिए दो संस्कार आवश्यक थे। प्रथम था प्रब्बज्जा तथा दूसरा उपसम्पदा। प्रब्बज्जा से उपासकत्व का प्रारंभ होता था। प्रब्बज्जा 8 साल से अधिक उम्र के किसी भी व्यक्ति को दी जा सकती थी। संरक्षक की अनुज्ञा आवश्यक थी। बौद्ध धर्म में महिलाओं को लेकर दो स्तरों पर सहभागिता सुनिश्चित की प्रथम महिलाएँ भी निर्वाण प्राप्ति के लिए प्रयास कर सकती है द्वितीय ऐसी बौद्ध महिलाएँ जो बौद्ध धर्म की दीक्षा लेना चाहती थी उनके लिए अलग से बौद्ध संघ बनाए गये। शुरूआती बौद्ध काल में या बौद्ध धर्म के आगमन से कुछ दशकों पूर्व महिलाएँ प्रथम काल में पिता के अधीन रहती अर्थात् वाल्यकाल में पिता पर आश्रित, दूसरे अर्थात् यौवन काल में पति पर आश्रित पति की आज्ञाकारिणी बनकर, तृतीय काल अर्थात् वृद्धावस्था में पुत्र पर आश्रित या अधीन रहती थी। पिता, पति, पुत्र, ये स्त्री के संरक्षक थे।

पर यह भी सत्य है कि बौद्ध धर्म में आज्ञाकारिणी महिला की स्थिति को स्वीकार किया गया है महिलाएँ वासना अर्थात् सेक्स की एक वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं थी जो पुरुष की भक्ति मे व्यवधान डालने वाली अर्थात् बाधाएँ उत्पन्न करने वाली एक काया मानी जाती रही। जो सांप की तरह डसने वाली और तपती, धधकती अग्नि की भांति थी। ये महिलाएँ ब्रह्मचर्य जीवन को भंग करने वाली होती थी। शायद इन सांकेतिक रूपों द्वारा ब्रह्मचर्य जीवन को बचाने के लिए प्रयास किया गया होगा और ब्रह्मचर्य जीवन भंग होने का खतरा नारी से था। बौद्ध भिक्षु महिलाओं से दूर रहते ठीक उसी तरह बौद्ध भिक्षुणियाँ भी अपने नियम कायदों से बंधी रहती और पुरुषों से दूरियाँ बनाकर रखती थी। ऐसे आचरण बौद्ध भिक्षु–भिक्षुणियों पर समान रूप से लागू होते थे और इनका पालन होता भी था। ये नियम आचरण की पवित्रता अर्थात् ब्रह्मचर्य को कठोरता से निभाने के लिए थे। बौद्ध ग्रन्थ विनयपिटक भगवान बुद्ध की महिलाओं के बौद्ध संघ में प्रवेश की अनुमति को भगवान बुद्ध की अनिच्छा

पूर्वक दी गई अनुमति मानता है बौद्ध ग्रन्थ विनयपिटक में लिखा है कि भगवान बुद्ध बौद्ध संघ में महिलाओं के प्रवेश दे देने पर शिष्य आनंद को बुलाकर कहते हैं कि अब जब बौद्ध संघ में स्त्रियों को प्रवेश मिल गया है तब ये धर्म 500 वर्ष ही चलेगा, यदि बौद्ध संघ में महिलाओं को प्रवेश नहीं दिया जाता तो यह धर्म 1000 (एक हजार) वर्ष से अधिक चलता। पर अब स्त्रियों के संघ प्रवेश से बौद्ध धर्म पाँच सौ वर्षों में ही पतन के कगार पर पहुँच जायेगा। महिलाओं के बौद्ध संघ में प्रवेश से पहले वे गर्भवती (प्रेग्नेंट) नहीं होनी चाहिए क्योंकि ऐसी महिलाओं को घर से भाग कर आयी महिला माना जाता था जो संघ पर भी कलंक का कारण बन सकती थी। आने वाली महिलाओं को अपने माता–पिता, पति, पुत्र की आज्ञा लेकर जाना जरूरी समझा जाता था।

बौद्ध संघ में महिला भक्तों अर्थात् भिक्षुणियों को संघ के नियम, कानून, कायदों को मानना अनिवार्य था महिला भक्तों अर्थात् बौद्ध भिक्षुणियों को भिक्षुणियों के नियम कायदे मानने के साथ–साथ बौद्ध भिक्षुओं के नियम भी मानने पड़ते थे। इस तरह से बौद्ध महिला भक्तों को दोहरे नियमों का पालन करना पड़ता था।

**बौद्ध कालीन शासन प्रणाली में नारी की राजनीतिक स्थिति :–**

भारतीय समाज में स्त्री का स्थान अति महत्वपूर्ण हमेशा से ही रहा है स्त्रियों ने सदैव अपना योगदान समाज के पुर्नगठन व रचनात्मकता के लिए दिया है उनकी सही श्क्ति का प्रयोग करके समाज को अति संस्कारित व विकसित बनाया जा सकता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते है। मनुस्मृति में ही एक अन्य स्थान पर लिखा गया है कि राजा का कर्तव्य है कि सब लड़कियों और लड़कों के लिए नियत समय तक बह्मचर्य आश्रम में रहने की व्यवस्था करे। वैदिक काल में स्त्रियों को वर्णानुसार कर्म की शिक्षा दी जाती थी अथर्ववेद में इसके प्रमाण प्राप्त हुए है। शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम भाग में एक स्थान पर आया है कि प्राचीन ऋषि जहां लड़कों को विद्वान बनाने के यत्न करते थे वहां लड़कियों को भी विदुषी बनाते थे। शुद्र वर्ण की स्त्रियों को तो इस काल में शिक्षा के अधिकार से ही वंचित कर दिया गया था।

मनुस्मृति में कहा गया है कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते है। स्त्रियों की शिक्षा के बारे में गौतम बुद्व के विचार वैदिक काल से अलग थे। बौद्धकाल में बौद्ध मठों एवं बिहारो में सभी स्त्री व पुरूषों को बिना किसी भेदभाव के योग्यता के आधार पर प्रवेश की अनुमति प्रदान की गई, इस काल में स्त्रियां पुरूषों की भांति किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। जनविदित है कि कवि कालिदास की पत्नी विद्योतमा विदुशी महिला थी उसने अनेक पण्डितों को शास्त्रार्थ में हराया। बाणभट्ट ने कादम्बरी की नायिका महाश्वेता को यज्ञोपवीत धारण करने पवित्र शरीर वाली बताया है। बौद्धकाल में भाषा साहित्य, धर्म व दर्शन की शिक्षा स्त्रियां प्राप्त करती थी। अतः हम कह सकते है कि बौद्धकाल में स्त्रियों की शिक्षा में कुछ प्रगति देखने को मिली। शिक्षा जगत की एक प्रमुख समस्या अपव्यय व अवरोधन की समस्या है–जिसके प्रमुख कारण विद्यालयो की अनुप्लब्धता विद्यालयों की दुर्दशा, निर्धनता व कुछ सामाजिक कारण है– इसका समाधान विद्यालयों की दशा सुधारकर शिक्षको की जवाबदेही तय करके विकलागों के लिए विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना की जाए उनकी सुविधायें बाई जाये कस्तूरबा विद्यालयों की दषा में सुधार किया जाये। स्त्री समाज का आधार है। इस कारण वह इस समाज का महत्वपूर्ण अंग है। स्त्री के ऊपर ही समाज की सम्पूर्ण उन्नति और विकास आधारित होता है।

स्त्री की वर्तमान सामाजिक स्थिति समाज में आध्यात्मिकता, सामाजिकता, धार्मिकता एवं भौतिक की

उन्नति का दपर्ण है। किसी भी समाज का आंकलन एवं मूल्यांकन उसकी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति पर आधारित होता है। स्त्रियों के लिए अलग स्थान की इच्छा रखने वाले स्वामी विवेकानन्द समाज की उन्नति का हकदार उस समाज की स्त्रियों की स्थिति के आंकलन से होता है। समाज में स्त्रियों की स्थिति जैसी होगी उसी आधार पर समाज के विकास एवं उन्नति का आंकलन किया जा सकता है कि समाज कितना विकसित है अथवा विकासशील अथवा पिछड़े समाज के अन्तर्गत लाया जा सकता है। यदि भारतीय इतिहास के पन्नों को देखा जाये तो भारतीय इतिहास में स्त्री के विकास के अनेक पर्दे दिखाई पड़ते हैं। यहां नारी महिमामयी देवी दुर्गा है, काली है, तो दूसरी ओर पुरूष प्रधान समाज के द्वारा सताई एवं कुचली गयी अबला है। भारतीय समाज के क्रमागत विकास के अध्ययन द्वारा समाज में नारी की स्थिति से जुड़े कई प्रश्नों के उत्तर ढूढने का प्रयास किया जा सकता है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :-**


1. सिंह, डॉ0 अनिल कुमार, बौद्धकालीन शिक्षा पद्धति 2008, कला प्रकाशन, बी.एच.यू. वाराणसी।
2. टी. डब्ल्यू. रिजडेविड्स, बुद्धिष्ट इंडिया, कलकत्ता 1950।
3. शर्मा, आर.एस., मैटेरियल बैकमाउन्ड ऑफ ओरिजिन ऑफ बुद्धिष्ट, सेन एण्ड राव (संस्करण) नई दिल्ली, 1998।
4. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1963।
5. झा द्विजेन्द्र नारायण, श्रीमाली कृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय।
6. मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक ५६

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 174-176

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# मन्नू भण्डारी के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन

**Dr. Sreeja. G.R**

Assistant Professor, Dept. of Hindi, Nirmala College,
Muvattupuzha, Ernakulam District, Kerala, PIN 686661

हिन्दी साहित्य की सबसे अधिक स्मृद्ध और लोक प्रिय विधा है– उपन्यास। उपन्यास के उद्‌भव के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान उपन्यास का सम्बन्ध प्राचीन आख्यानों से मानते है, तो कुछ विद्वान इसे नवीन साहित्यिक विधा मानते है। सामाजिक उपन्यास समाज के गठन के अतिरिक्त, सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक समस्याओं की पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया का चित्रण करता है। हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में मन्नू भण्डारी का उल्लेखनीय स्थान है। उनके उपन्यास सामाजिक उपन्यासों की कोटि में आने वाले है। मन्नू जी द्वारा रचित उपन्यासों की संख्या कम है तो भी उसके भाव गंभीर और तीक्ष्ण है। मन्नू जी के उपन्यासों में नारी जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण हुआ है। इसमें पहला है– पुरुष केन्द्रित समाज। भारतीय समाज में नारी के बिना उसका जीवन अधूरा है।

मन्नू जी के 'आपकाबंटी' तथा 'स्वामी' में पुरुष प्रधान समाज का चित्र हम देख सकते है। जैसे 'आपका बंटी' के अजय और शकुन में मनमुटाव होने पर दोनों एक दूसरे से अजनबी होते जा रहे हैं। अजय शकुन से इतनी दूरी पर जाता है कि वह अपने मानसिक एवं शारीरिक जरूरत की पूर्ति के लिए दूसरी नारी की खोज कर लेता है। उसी प्रकार 'स्वामी' की मिनी अन्य लड़कियों से ज्यादा स्वतंत्र थी। पड़ोसी नरेन्द्र के साथ मिनी के बहस करने में और सारी बातों में पूरी आजादी देने वाली मिनी की मामा जी ने आखिर अपनी इच्छा से उस की शादी घनश्याम से तय कर लेता है। इस तरह मन्नू जी एक ओर रूढिग्रस्त नैतिक मानव मूल्यों की आग्रह मूलता पर प्रहार करती है तो भी दूसरी ओर वह कुछ मानव मूल्यों की रक्षा भी करना चाहती है, जिनके बिना भारत जैसे पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में नारी का अस्तित्व सुरक्षित नहीं हो सकता। पुरुषसत्तात्मक समाज व्यवस्था के भार से दबी भारतीय नारी, हर अर्थ में स्वतंत्र मुक्त जीवन की कल्पना करती है। मन्नू जी के कथा पात्र अमला, शकुन, मिनी आदि इसके लिए उदाहरण है।

मन्नू जी के उपन्यासों में चित्रित नारी के विविध रूप है। जैसे कि परिवार के परिप्रेक्ष्य में नारी की स्थिति, आधुनिक और परंपरा के बीच में पड़ी नारी की हालत, मूल्यों के सन्दर्भ में नारी, स्वतंत्र व्यक्तित्व वाली नारी, और जीवन के रहस्यों की खोज में लीन नारी की स्थिति। भारतीय समाज का मूल आधार है– संयुक्त परिवार। आज विवाह के सन्दर्भ में नारी अपने परिवार, समाज जाति–वर्ग और आयु के बन्धनों में बाँध ने को तैयार नहीं। उदाहरण के लिए 'एक इंच मुस्कान' की रंज ना एक सरल एवं सहज नारी है, और वह अमर की संपूर्ण

विशिष्टताओं और दुर्बलताओं को जानते हुए भी उससे प्रेम करती है।

मन्नू जी के 'आपका बंटी' की शकुन अंतर जातीय विवाह करती है। समाज के बन्धनों को तोड़ने की मानसिक स्थिति मन्नू जी के क्या पात्रों की विशेषता है। मन्नू जी के उपन्यास की नारियाँ नैतिकता के पारंपरिक घेरे में अपने को नहीं बाँधती है। 'एक इंच मुस्कान' की अमला तो अकारण पति द्वारा परित्यक्ता होने पर कई पुरुषों से मेल बढ़ाती है। शकुन उच्च शिक्षित और काम का जी नारी है। वह एक कॉलेज का प्रिंसिपल है। उस का पति अजय दूसरे शहर में रहता है। शिक्षा के प्रभाव में पारंपरिकता का विरोध करने का साहस उत्पन्न होता है। क्योंकि उसमें एक अच्छी माँ न बनने का दुःख जरा भी नहीं, इसके विपरीत प्रिंसिपल होने का गर्व ही उसमें अधिक है। अपने पति अजय की सामाजिक स्थिति से स्वयं ऊँचा बन जाने की खुशी उसे ज्यादा है। यहाँ मन्नू जी ने शकुन के माध्यम से यह समझाने की कोशिश करती है कि नारी पहले केवल शरीर थी, पर अब तो वह अर्थ भी है। इस तरह 'एक इंच मुस्कान' की अमला को प्रति क्रिया वादी नारी के रूप में चित्रित किया है।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री और पुरुष सैद्धान्तिक रुप से आधुनिकता के पोषक दिखाई देते है, किन्तु व्यावहारिक रूप में वे परंपराओं से ही जुड़े हुए पाए जाते है। आधुनिक जीवन की आर्थिक समस्या के कारण पुरुष के साथ–साथ नारी को भी आर्थिक उपार्जन में सहयोग देने के लिए घर से बाहर या घर में ही व्यस्त रहना पड़ता है। लेकिन परंपरागत रूप में एक माँ, पत्नी, बहु, बेटी आदि का दायित्व निभाने की आशा भी रखते है। 'एक इंच मुस्कान' की अमला स्वतंत्र जीवन बिताने के लिए कई पुरुषों से प्रेम सम्बन्ध बनाती है। वह परित्यक्ता होने के कारण पुरुषों से प्रति शोध लेना चाहती है। उसकी दृष्टि में विवाह एक समझौता है। वास्तव में आज की शिक्षित नारी अपने अस्तित्व के प्रति कुछ अधिक जागरूक है। वर्तमान समाज में इतना बदलाव आया है किनर–नारी के सोचने–समझने का ढंग और विचार भी बदल गए है।

आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र नारी को अपनी आत्मनिर्भरता और अस्मिता का गहरा बोध प्रदान किया है। पुरुष नारी का अनेक प्रकारों से शोषण करता आया है। पति–पत्नी के सम्बन्धों में पति द्वारा पत्नी को अनेक प्रकारों से प्रताड़ित किया जाता है। मन्नू जी न अपने कथा साहित्य में इस समस्या का चित्रण किया है। 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में अमर और रंजना प्रेम करने के बाद शादी कर लेते हैं। रंजना ने अपने प्रेमी अमर के कारण माता–पिता का विरोध सहन कर पितृ गृह को छोड़ दिया। लेकिन अमर कुछ ही समय में धनाढ्य घर की लड़की अमला के प्रेम में पड़घ्ता है।

विधवा समस्या तो भारतीय समाज में आज भी विद्यमान है। मन्नू जी ने अपने ''स्वामी'' उपन्यास में इस समस्या का संकेत किया है। 'स्वामी' उपन्यास के 'गिरी' की स्थिति विधवा जीवन के लिए उदाहरण है। आगे तलाक की समस्या आज के युग की प्रमुख समस्या बन गयी है। मन्नू जी का 'आपका बंटी' इसके लिए उत्तम उदाहरण है। इस उपन्यास में शकुन शिक्षित नारी है। अजय और शकुन दोनों पति–पत्नी है, शिक्षित है, एक बच्चे के माता–पिता है। अजय और शकुन के बीच का सेतु बंटी भी न बन सका। अंत में दोनों अलग हो जाते हैं, और दोनों ने अपनी अलग–अलग जगह शादी भी कर लेते हैं, और बंटू को होस्टल में जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में मन्नू जी ने दहेज प्रथा का संकेत किया है। प्रेमचन्द से लेकर अनेक साहित्यकारों ने इस समस्या का चित्रण अपने कथा साहित्य में अवश्य किया है। मन्नू जी ने अपने कथा साहित्य

में इस समस्या का वर्णन किया है। दहेज के कारण आज के समाज में विवाह नहीं, किन्तु सौदा होता है। 'स्वामी' उपन्यास की टुकी नामक लड़की जो थोड़ी मोटी है। इस कारण लड़के वाले दहेज की माँग करते है।

वर्तमान शिक्षा की बहुत बड़ी उपलब्धि है कि हर क्षेत्र में नौकरी कर के नारी अपने परिवार का भरण–पोषण करने लगी, लेकिन हमारा पुरुष वर्चस्व समाज व्यवस्था नारी के इस सराहनीय रूप की ओर शंका की नजरों से देखने लगा। मन्नू जी नारी जीवन का कलाकार मानी जाती है तो भी अपने साहित्य में उन्होंने जिन पुरुष पात्रों का चित्रण किया है वे भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। समाज के हर एक कोने से चुनकर उन्होंने कुछ ऐसे कथापात्रों को प्रस्तुत किया है, जो भारतीय सामाजिक व्यवस्था के प्रधिनिधियों के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनका उल्लेख किए बिना उनके उपन्यास का अध्ययन अपूर्ण ही रह जाएगा।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मन्नू जी के उपन्यासों में नारी जीवन की अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। नारी जीवन की पीड़ा, उदासीनता, अकेलापन, घुटन आदि का बड़ा ही सटीक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–**


1. आपका बंटी–मन्नू भण्डारी।
2. एक इंच मुस्कान–मन्नू भण्डारी एवं राजेन्द्र यादव।
3. स्वामी–मन्नू भण्डारी।



Phone- 9746101095

Email- sreeja@nirmalacollege.ac.in, sreejagr@yahoo.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 177-182

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# महिला सशक्तिकरण और डॉ. अम्बेडकर का योगदान

**डॉ. विजयश्री**

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, जयनारायण व्यास वि.वि. जोधपुर।

**शोध सार :-**

महिलाओं के प्रति आदर और गौरवपूर्ण व्यवहार हमारे देश के चिंतन का मूलभूत सिद्धांत रहा है। महिलाओं ने समाज के आधे हिस्से के रूप में आदिकाल से लेकर आज तक, हर क्षेत्र में अपनी प्रमाणिकताएं, प्रासंगिकताएं, क्षमता और सामर्थ्य का भरपूर परिचय दिया है। एक महिला सशक्त होती है, तो वह दो परिवारों को सशक्त बनाती है। प्राचीनकाल में भी महिलाएं शक्ति का उदाहरण थी। वे ज्ञान का भंडार थी, किन्तु एक समय ऐसा आया कि जब महिलाओं को घर की चारदिवारी तक सीमित कर दिया गया। तत्पश्चात् अनेक समाज सुधारकों के प्रयासों से पुनः महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास किया गया। इन्हीं सुधारकों में एक नाम है डॉ. बी. आर. अम्बेडकर। डॉ. अम्बेडकर के द्वारा किए गए प्रयास चाहे वह हिन्दू कोड बिल हो या बालिका विवाह का विरोध, विधवा विवाह या अंतर्जातिय विवाह का समर्थन, इसी कड़ी का उदाहरण है। अम्बेडकर महिला अधिकारों और सशक्तिकरण के पुरोधा रहे। उन्होंने सदैव ही महिलाओं को सशक्त बनाने का प्रयास किया। प्रस्तुत आलेख में डॉ. अम्बेडकर द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए किए गए विभिन्न प्रयासों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

**बीज शब्द :** महिला सशक्तिकरण, हिन्दू कोड बिल, पितृ सत्तात्मक व्यवस्था, प्रसूति लाभ।

**मूल आलेख :-**

महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय महिलाओं को पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक क्षैत्रों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता से है। उनमें इस प्रकार की क्षमता का विकास करना जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह इच्छानुसार कर सकें एवं उनके अंदर आत्मविश्वास और स्वाभिमान जागृत हो। आधुनिक समय में महिला सशक्तिकरण का समर्थन अम्बेडकर द्वारा किए गए विभिन्न प्रयासों के माध्यम से परिलक्षित होता है। विभिन्न युगों में भारत में नारी को प्राप्त अधिकारों की मीमांसा के आधार पर अम्बेडकर यह स्पष्ट करते हैं कि जब समाज में नारी को स्वतंत्रता थी और उसे पुरुषों के समान आत्मविकास के अवसर प्राप्त थे तब भारतीय समाज प्रगति पर था, किंतु जब नारी के अधिकारों की उपेक्षा हुई, तब समाज की प्रगति अवरूद्ध हो गई।

स्मृतिकाल विशेष रूप से मनु के पूर्व तक भारतीय समाज में नारी की स्थिति अच्छी थी। स्त्रियों को वेद की शिक्षा प्रदान की जाती थी, उन्हें गुरुकुलों में प्रवेश मिलता था। स्त्रियां न केवल वेद मंत्रों का उच्चारण करती

थी बल्कि वेद की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन में पारंगत एवं उनकी मीमांसा में पटु भी थी। वे शिक्षक थीं एवं कन्याओं को पढ़ाती थी। विशेष रूप से धर्म, दर्शन एवं आध्यात्म के ज्ञान में बहुत निपुण थी। जनक, सुलभा याज्ञवल्क्य एवं गार्गी आदि के मध्य संवादों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में अनेक ऐसे अवसर आये जब स्त्रियों ने पुरुषों के साथ खुली बहस में भाग लिया। यह कहना कठिन है कि प्राचीन राज्य प्रशासन तंत्र में उनकी क्या भागीदारी थी, परन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि प्राचीनकाल में देश के बौद्धिक एवं सामाजिक जीवन में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी थी। अथर्ववेद के उदाहरण से स्पष्ट होता है कि स्त्रियां भी पुरुषों की भांति उपनयन की अधिकारी थी और सामान्यतया उनका विवाह ब्रह्मचर्य की समाप्ति के पश्चात् ही होता था।

प्राचीनकाल में अनेक स्त्रियों का उदाहरण मिलता है, जो विदुषी थी तथा उन्होंने वेदों और ऋचाओं की रचना भी की। उन्हें तलाक के भी अधिकार प्राप्त थे। पति को सामान्य स्थिति में अपनी पत्नी को तलाक देने तथा दूसरी पत्नी से विवाह करने का अधिकार नहीं था।[1] कौटिल्य ने पुरुषों की भांति स्त्री को भी तलाक का अधिकार प्रदान किया तथा तलाकशुदा स्त्री अपने पति से भरण–पोषण प्राप्त करने की पात्रता रखती थी। वे (तलाकशुदा व विधवा स्त्री) पुनर्विवाह भी कर सकती थी। कौटिल्य ने विवाहित स्त्री को आर्थिक भरण पोषण के लिए अपने पति की संपत्ति में पर्याप्त अधिकार भी दिया।[2]

संक्षेप में मनु के पूर्व भारतीय समाज में स्त्री स्वतंत्र थी। वह पुरुष की दासी न होकर सहभागी थी। परन्तु धीरे–धीरे स्त्री की दशा खराब होती चली गई और वह जीवन संगिनी न होकर दासी बन गई। डॉ. अम्बेडकर ने इस दशा के लिए मनु को उत्तरदायी माना। उन्होंने ऐसे कई उदाहरण (मनुस्मृति) दिए जिनसे यह सिद्ध होता है कि महिलाओं के अधिकारों को छीन कर उनके योगदान को नगण्य कर दिया गया। अम्बेडकर का मानना था कि नारी का पतन ब्राह्मणवाद के उत्थान से शुरु होता है। मनु तो ब्राह्मणवाद की उपज थे। उन्होंने केवल प्रचलित सामाजिक धारणा को कानूनी स्वरूप प्रदान किया।[3]

**अम्बेडकर द्वारा महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए प्रयास :–**

डॉ. अम्बेडकर भारत में एक ऐसे वर्गविहीन समाज की संरचना चाहते थे जिसमें जातिवाद, वर्गवाद, संप्रदायवाद तथा ऊँच नीच का भेद न हो तथा प्रत्येक मनुष्य अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए स्वाभिमान और सम्मान पूर्वक जीवन जी सके। उनके चिंतन का केन्द्र महिलाएं भी थी क्योंकि भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति चिंतनीय थी। पुरुष वर्चस्व की निरंतरता को कायम रखने के लिए महिलाओं का धार्मिक और सांस्कृतिक आंडबरों के आधार पर शोषण किया जा रहा था। हालांकि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में अनेक समाज सुधार आंदोलन हुए जिनका मुख्य उद्देश्य महिलाओं से जुड़ी तमाम सामाजिक कुरूतियों को दूर करना था जैसे– बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, देवदासी प्रथा आदि मुद्दे शामिल थे। इन्हीं परिस्थितियों और मुद्दों ने अम्बेडकर को स्त्री चिंतन हेतु विवश किया और उन्होंने नारी के उत्थान हेतु समानता, विवाह, शिक्षा, परिवार नियोजन, प्रसूति अवकाश और हिन्दू कोड बिल आदि क्षेत्रों में अथक प्रयास दिया जिनका वर्णन इस प्रकार है–

**1. समानता :–**

अन्य समाज सुधारक जहां महिला शिक्षा को परिवार की उन्नति व आदर्श मातृत्व को संभालने अथवा उसके स्त्रियोचित्त गुणों के कारण ही उसकी महत्ता पर बल देते थे परन्तु स्त्री भी मनुष्य है, उसके भी अन्य मनुष्यों

के समान अधिकार हैं, इसे स्वीकार करने में हिचकिचाते थे। लेकिन अंबेडकर स्त्री पुरुष के समानता के समर्थक थे। वे महिलाओं को किसी भी रूप में पुरुषों से कमतर नहीं मानते थे।

अखिल भारतीय दलित वर्ग महिला सम्मेलन 20 जुलाई, 1942 को नागपुर में संपन्न हुआ। महिलाओं के सम्मेलन को संबोधित करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि ''मैं महिलाओं के संगठन में विश्वास करता हूँ। मैं जानता हूँ कि यदि उनकी समझ में आ जाए तो वे समाज की स्थिति को सुधारने के लिए बहुत कुछ कर सकती है। सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए उन्होंने महान सेवाएं प्रस्तुत की हैं। मैं इसको अपने अनुभवों के आधार पर परखता हूँ। जब से मैंने दलित वर्गों के बीच में कार्य करना प्रारंभ किया है मैंने इसको हमेशा एक मुद्दा बनाया है कि पुरुषों के साथ महिलाएं भी कार्य करें। इसलिए आप देखते होंगें कि हमारे सम्मेलन हमेशा से मिश्रित सम्मेलन होते हैं। मैं किसी समुदाय की प्रगति का मूल्यांकन महिलाओं द्वारा की गई प्रगति से करता हूँ।[4]

2. **विवाह** :–

नागपुर सम्मेलन में भाषण में उन्होंने महिलाओं को कई प्रकार की सलाह दी जिसकी उम्मीद वे उनसे करते थे। उन्होंने कहा कि सभी साथ रहना सीखें, सभी बुराइयों से दूर रहें। बच्चों को शिक्षित तथा उनमें महत्वाकांक्षा पैदा करे। उनके मस्तिष्क में यह बात भरें कि उन्हें महान् बनना है तथा मन से सभी प्रकार की हीन भावनाओं को निकाल दें। उन्होंने विवाह को जिम्मेदारी मानते हुए विवाह कम आयु में न करने की भी बात कही। उनका कहना था कि जब तक बच्चे विवाह से उत्पन्न होने वाले दायित्वों को पूरा करने में वित्तीय रूप से सक्षम न हो जाए विवाह की जल्दबाजी न की जाए। जो विवाह करेंगे उन्हें यह समझना चाहिए कि अधिक बच्चें उत्पन्न करना भी एक अपराध है। उन्होंने अभिभावकों का सबसे बड़ा कर्तव्य प्रत्येक बच्चे की बेहतर शुरुआत देने से माना।[5] विवाह जैसे मुद्दों पर भावी जीवन साथी के चयन में लैंगिक असमानता को दूर करते हुए पुरुषों के समान महिलाओं के समान अधिकारों की वकालत की। उन्होंने कहा ''पत्नी कैसी होनी चाहिए इस बारे में पुरुषों का विचार जाना जाता हैं वैसे ही पति कैसा हो इस बारे में पत्नी का मत लेना भी जरूरी है। स्त्री भी व्यक्ति है और उसे भी व्यक्तिक स्वतंत्रता होनी चाहिए।[6]

3. **परिवार नियोजन** :–

परिवार नियोजन के महत्व को डॉ. अम्बेडकर ने पहले ही भांप लिया था। काफी हद तक यह उनके जीवन के अनुभवों पर आधारित था। उन्होंने स्त्रियों को परिवार नियोजन के महत्व से अवगत कराते हुए तर्क दिया कि अनेक बच्चों को जन्म देकर स्त्री रोगग्रस्त हो जाती है, उसकी आयु में कमी आती है। उनका मानना था कि परिवार में पारिवारिक आय और व्यय में बेहतर तालमेल होना चाहिए। बच्चे ज्यादा और आय कम संयुक्त रूप से संपूर्ण परिवार के दुख तथा दर्द का कारण बनता है। इसलिए उन्होंने 'बच्चे दो ही अच्छे' का सुझाव दिया।[7] इसके अतिरिक्त अम्बेडकर ने स्त्री को संतानोत्पत्ति का अधिकार, बच्चा पैदा करने के पुरुषों के एकमात्र वर्चस्व पर प्रहार करते हुए परिवार नियोजन के बेहतर क्रियान्वयन में महिलाओं को उनकी भागीदारी से अवगत कराया ताकि वे पारिवारिक दायित्वों का निर्वाहन बेहतर ढंग से कर पाए।

4. **शिक्षा** :–

डॉ. अम्बेडकर बालिका शिक्षा का भी समर्थन करते हैं। महिलाओं से उन्होंने कहा कि ज्ञान और विद्या केवल पुरुषों के लिए ही नहीं है अपितु महिलाओं के लिए भी जरूरी है। जो बोओगे वही पाओगे इस बात को

ध्यान में रखते हुए आप अगर अपनी अगली पीढ़ी में सुधार लाना चाहते है तो लड़कियों को शिक्षा से वंचित न रखें।[8] उनका मानना था कि शिक्षा ही वह ताकत है जिससे सभी बेड़ियों को काटा जा सकता है। किसी भी देश अथवा समुदाय की वास्तविक प्रगति के लिए आवश्यक है कि उनके सभी नागरिक शिक्षित हों। नारी मुक्ति के वाहक डॉ. अम्बेडकर ने स्वतंत्रता, समानता तथा स्वाभिमान से जीवन जीने की शिक्षा देते हुए दो मूलमंत्र दिए– प्रथम शिक्षित बनो, संगठित रहो, और संघर्ष करो तथा द्वितीय 'अप्प दीपो भव' अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो। उन्होंने प्रश्न उठाया कि ज्ञान और विद्या पर केवल पुरुषों का एकाधिकार क्यों? जबकि घर में एक पुरुष पढ़ता है तो केवल वही पढ़ता है और यदि घर में स्त्री पढ़ती है तो पूरा परिवार पढ़ता है। उनका मानना था कि शिक्षा ब्राह्मणवादी, पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति प्राप्त करने का अहम साधन है। उन्होंने नारी को विकास रूपी रथ का पहिया करार देते हुए राष्ट्र की उन्नति में उनकी सहभागिता का समर्थन किया। उन्होंने नारी को राष्ट्र निर्मात्री मानते हुए कहा कि राष्ट्र का हर नागरिक उसकी गोद में पलता है तथा नारी को जाग्रत किए बिना राष्ट्र का विकास असंभव है। इसलिए नारी को शिक्षित होकर राष्ट्रीय उन्नति में सहयोग करना चाहिए।[9]

5. **हिन्दू कोड बिल :–**

पारिभाषिक रूप से कोड शब्द का अर्थ है कानून या विधि का एकीकरण। संक्षेप में कहा जाए तो हिन्दू कोड बिल सदियों से हिन्दुओं के पवित्र समझे जाने वाले विधि विधानों और रूढ़ियों का अंत कर उनके स्थान पर ऐसे समान नियमों का निर्माण करना है जो हिन्दू समाज में आमूलचूल परिवर्तन कर भारत को सामाजिक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर कर सके। हिन्दू कोड बिल के तहत पांच सुधार किए जाने थे। पहला विवाह, दूसरा दत्तकग्रहण (गोद लेना), तीसरा विवाह विच्छेद या तलाक, चौथा भरणपोषण एवं पांचवा महिलाओं को उत्तराधिकार में मिलने वाली संपत्ति पर अधिकार से संबंधित था। अम्बेडकर का मानना था कि धर्म और भौतिक अधिकारों के हकों के बीच कोई संबंध नहीं होना चाहिए। उनका मानना था कि पूरे देश के लिए एक समान कानून हो, एक सिविल कोड हो।[10] इस बिल में एक पत्नी और एक ही पति एक समय विवाह कर सकते थे। पति अपनी पहली पत्नी के जीवित रहते और पत्नी पहले पति के जीवित रहते विवाह करने पर कानूनी दण्ड का प्रावधान किया गया। इससे पहले हिन्दू शास्त्रों में पुरुषों को एक ही समय में अनेक पत्नियां रखने की छूट थी।

वर्तमान हिन्दू कोड बिल में पहली पत्नी को या पत्नी पहले पति को तलाक देकर ही दूसरी शादी कर सकते हैं, का प्रावधान शामिल था। मुख्य बात यह थी कि विवाह विच्छेद या तलाक देने का पति पत्नी को समान अधिकार दिया गया। साथ ही पति के मरने के बाद हिन्दू स्त्री को पति की संपत्ति में उसकी संतान के बराबर हिस्सा या अंश देने का भी नियम बनाया गया। हिन्दू धर्मशास्त्रों में विधवा के लिए न तो दूसरी शादी का विधान था और न ही जायदाद में हिस्सा या अंश का। बिल के माध्यम से पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्री को भी भाईयों के बराबर जायदाद का वारिस बनाया गया। इसी प्रकार दत्तक या गोद लेने का अधिकार अपने कुल में से पैदा हुए को ही प्राप्त था किन्तु बिल में किसी भी हिन्दू परिवार में जन्मी लड़की या लड़के को गोद लिया जाना शामिल किया गया और वह लड़का–लड़की चाहे वह किसी भी हिन्दू जाति के हो, गोद लिए जाने वाले की जायदाद के वारिस बन सकते थे।[11]

बाबा साहेब ने हिन्दू सम्प्रदाय में समान पर्सनल लॉ बनाकर महिलाओं की मुक्ति और समानता का मार्ग प्रशस्त किया। एक समय में एक पति या पत्नी रखना, मृत पति की संपत्ति में विधवा पत्नी या पुत्रों के समान

पुत्रियों को भी बराबर हिस्सेदार बनाया जाना, तलाक के लिए पति–पत्नी दोनों को समान अधिकार दिलवाना और तलाक के लिए पीड़ित पक्ष पर पांच–छः कड़े प्रतिबंध लगाना (नपुंसक, धर्मपरिवर्तन, असाध्य रोग कुष्ठ, पागल आदि) ताकि तलाक एक सस्ती वस्तु और मजाक न रह जाए, किसी भी वर्ण जात पांत में प्रतिलोम अनुलोम विवाहों के आदेशों का पालन समाप्त करके विवाह को वैध और उनसे उत्पन्न संतानों को जायज या वैध ठहराना ये ऐसे प्रावधान थे जिनसे महिला के अधिकारों का मार्ग प्रशस्त हुआ।[12]

हिन्दू कोड बिल का उद्देश्य एक साझा व्यक्तिक कानून प्रदान करना था परन्तु विवाह, तलाक, गोद लेना तथा पिता की संपत्ति में पुत्रों का भागीदार होना कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पक्ष थे जिससे सामाजिक दृष्टि से भारतीय महिलाओं की स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन आ सकता था जिसे समाज के शोषक तथा कट्टरपंथी महिलाओं को देना नहीं चाहते थे। यही कारण है कि भारतीय सामाजिक जीवन में सदियों से कायम रूग्ण परम्परा के नाम पर कायम जड़ता, शास्त्रीय विधान के नाम पर जारी आकाशी–पाताली भिन्नता तथा नारी उत्पीड़न एवं वार्गिक–वार्णिक असमानता को समाप्त करने के लिए जब से अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल का मसविदा तैयार किया तब से पूरे देश में उनके विरूद्ध विरोध प्रदर्शन शुरू हुए और लगने लगा कि इसके अलावा देश के सामने अन्य मुद्दा ही नहीं है। अंततः यह मसविदा संसद सदस्यों के विरोध के कारण पास ही नहीं हुआ।[13]

हिन्दू कोड बिल मुख्यतया महिला अधिकारों का समर्थक था परन्तु सभी तरह से महिलाओं के हित में जाने वाले इस बिल को मंजूर करवाने के लिए महिलाओं ने कोई कोशिश नहीं कि इसका अम्बेडकर को खेद था। वे कहते थे कि पुरुष होने के बावजूद मैं महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ा। लेकिन महिलाओं ने इस बिल को लेकर थोड़ी बहुत भी उत्सुकता नहीं दिखाई।[14]

6. **प्रसूति लाभ :–**

गर्भावस्था के दौरान महिला श्रमिकों का अपने श्रम से वंचित होना अम्बेडकर के लिए एक अन्य बेहद चिंतनीय समस्या थी। उनका कहना था कि विकास के रथ का दूसरा पहिया होने के नाते यह आवश्यक था कि महिलायें श्रम खोने के भय से मुक्त होकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोग दें। चूंकि बच्चे भावी राष्ट्र का एक अच्छे संसाधन होते हैं इसलिए आवश्यक है कि प्रसवपूर्व एवं प्रसवोपरांत उनकी बेहतर परवरिश हेतु माँ को भी सहयोगी स्थितियां प्रदान की जाए। 1928 में महिलाओं के प्रसूति लाभ विधेयक पर समर्थन करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि यह राष्ट्रीय हित में होगा कि जच्चा को कुछ समय के लिए प्रसव के पूर्व और कुछ समय के लिए प्रसव के पश्चात् विश्राम दिया जाए। विधेयक के सिद्धान्त पूर्णतया इसी तथ्य पर आधारित थे। उन्होंने इसकी जिम्मेदारी सरकार की बताते हुए यह भी माना कि प्रसूति लाभ के साथ सरकार कुछ राशि भी व्यय करे। वे यह कतई मानने को तैयार नहीं थे कि किसी महिला का कोई नियोक्ता प्रसूति की अवस्था में महिला के हितों की रक्षा के लिए अपनी जिम्मेदारी से पूरी तरह मुक्त होता है।[15]

**निष्कर्ष :**

संक्षेप में डॉ. अम्बेडकर महिला सशक्तिकरण के प्रति ऐसे संवेदनशील योद्धा एवं पुरोधा थे जिन्होंने महिलाओं से जुडे लगभग सभी क्षैत्रों– शिक्षा, विवाह, पुनर्विवाह, परिवार नियोजन, संपत्ति आदि को अपने चिंतन का हिस्सा बनाकर उसे सशक्त बनाने का प्रयास भी किया। महिला प्रसूति लाभ या अवकाश की बात हो या संपत्ति के अधिकार में महिलाओं की हिस्सेदारी या शिक्षा, विवाह, परिवार नियोजन का अधिकार या हिन्दू कोड

बिल ऐसे तमाम उदाहरण है, जिससे उनकी दूरदर्शिता का परिचय मिलता है। उनके अथक प्रयास के परिणामस्वरूप ही बाद के वर्षों में महिलाओं के अधिकारों संबंधी कानूनी प्रावधान संविधान में किए गए। हिन्दू विवाह अधिनियम (1955), हिन्दू उत्तराधिकार, अल्पसंख्यक और अभिभावक दत्तक संतान और देखभाल अधिनियम (1956) प्रसव प्रसुविधा अधिनियम (1961), संपत्ति विधेयक (2005), शिक्षा का अधिकार (2009) आदि इन सभी प्रावधानों का बीजारोपण अम्बेडकर द्वारा पूर्व ही कर दिया गया था। निःसंदेह नारी सशक्तिकरण का जो वर्तमान में स्वरूप दिखाई दे रहा है या भविष्य में जो स्वरूप होगा, उसकी नींव की ईंट तो अम्बेडकर द्वारा ही रखी गई है।

**संदर्भ :-**


1. राम गोपाल सिंह ''डॉ. अम्बेडकर का विचार–दर्शन'' मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 2002, पृ. 143–146
2. वाचस्पति गैरोला ''कौटिलीय अर्थशास्त्रम्'' चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2015, पृ. सं. 262
3. राम गोपाल सिंह ''डॉ. अम्बेडकर का विचार–दर्शन'' मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 2002, पृ. 143–146
4. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खंड 37, भारत सरकार, 2019, पृ. 271–272
5. वही, पृ. 272
6. प्रो. विवेक कुमार, डॉ. कुमार प्रवेश ''डॉ. भीमराव अम्बेडकर समग्र अध्ययन'' मानक पब्लिकेशन दिल्ली, 2019, पृ. 72
7. एस. विक्रम ''दलित महिलाएं : इतिहास वर्तमान और भविष्य'' (संपा.) में मंजू चंद्रिका पुरे ''स्त्रियों के उत्थान में अम्बेडकर का योगदान, नटराज प्रकाशन दिल्ली 2010, पृ. 142
8. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खंड 38, भारत सरकार, 2019, पृ. 271–272
9. एस, विक्रम ''दलित महिलाएंः इतिहास वर्तमान और भविष्य (संपा.) में आभालता चौधरी, नारी स्वतंत्रता और डॉ. अम्बेडकर, नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 167–168
10. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खंड 40, भारत सरकार, 2019, पृ. 15 149–152
11. सोहनलाल शास्त्री विधावाचस्पति 'हिन्दू कोड बिल और डॉ. अम्बेडकर', सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ. 47–53
12. वहीं, पृ. सं. 45
13. डॉ. सुकन पासवान प्रज्ञाचक्षु 'केवल दलितों के मसीहा नहीं है अम्बेडकर' राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 2012, पृ. 153–154
14. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खंड 40, भारत सरकार, 2019, पृ. 298–300
15. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खंड 3, भारत सरकार, 2019, पृ. 176–177



ई–मेल : vijayshree298@gmail.com

मो. 9413345568

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 183-186

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# शेषयात्रा : टूटे हुए सपनों के साथ अपने अस्तित्व की पुर्ननिर्माण करती स्त्री

**गीतिका सैकिया**

पी एच.डी शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय, सिलचर।

शेषयात्रा उषा प्रियंवदा जी का तीसरा उपन्यास है जो मूलतः प्रवासी जीवन पर आधारित है। किम के साथ विवाह के पश्चात उषा जी अमेरिका चली गयी थी। यह उपन्यास उनके अमरीका प्रवास के लगभग बाईस वर्ष बाद 1984 में प्रकाशित हुआ। इस बीच भारत से इनका संबंध लगातार बना रहा। उषा जी इस बीच भारत आती जाती रहीं। समय की इस दौर में पूरे विश्व के लोग अमेरिका की ओर संभावनाओं के देश के रूप में देख रहे थे और उस ओर जाने लगे थे। भारत की युवा पीढ़ी अपने भविष्य के निर्माण के लिए जैसे–तैसे उस धरती पर पैर रखने की जुगत में लगी थी। जो एक बार की वहां पहुंच जाता वह वापिस अपने देश आने पर सच्ची, झूठी दास्तानों से उन्हें प्रभावित करता है इस तरह बहुत लोगों का ध्यान अमेरिका की ओर आकर्षित हो रहा था। बाहर जाने वाले दो तरह के लोग थे। उच्च शिक्षा के लिए और काम की तलाश के लिए। पढ़े लिखे लोगों में वहाँ ज्यादातर संख्या डॉक्टरी और इंजीनियरों की थी। अमेरिकी युवा वर्ग के पास तब भी और अब भी इन पैसों के लिए पढ़ाई करने का न धैर्य है और न वित्तीय साधन। बाहर से जाने वाले लोगों के लिए भी वहाँ नौकरी या काम पाने के लिए अपनी डिग्रियों की वैधता अतिरिक्त पढ़ाई करके साबित करना पड़ता था। और जिनको काम मिल जाता वे अपने हीन ग्रंथि के कारण वहाँ की जीवन शैली में दीक्षित होने और उसका प्रदर्शन करने के लिए आतुर रहते है। वे अपने देशवासियों को यह दिखाना चाहते है कि अमेरिका में रहकर वह बहुत खुश हैं, चाहे जो भी काम मिला हो, देश के बाहर रहना मतलब बहुत ही गर्व की बात है। हर किसी को ऐसा मौका नहीं मिलता। उस समय और एक बात आँखों से ओझल हो गयी थी कि अमेरिका जाने वालों में एक बड़ी संख्या ऐसे लोगों की थी जिनका भविष्य भारत में या तो अनिश्चित था, या उसे बनाने के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ता था।

इन परिस्थितियों ने भारत के मध्यवर्गीय परिवारों में एक विशेष स्थिति पैदा कर दी थी। भारतीय परिवारों में विवाह के लिए अमेरिका से लौटे नौजवानों का भाव इस कदर बढ़ गया था, कि विवाह योग्य कन्याओं के लिए अधिकांश लोग उनकी राह देखते थे। लड़को के माता–पिता भी विदेशी बहुओं की जगह यह चाहते थे कि लड़का

काम अमेरिका में करें पर बहू भारतीय ही लाए। यह विवाह की प्रक्रिया उस समय चल रही थी कि सहज विश्वासी परिवार विदेश से आने वाले के अमेरिका प्रवास के बारे में तहकीकात या छानबीन करना भी जरूरी नहीं समझते थे। बाद के समय में ऐसे जल्दबाजी में सम्पन्न विवाहों में धोखाधड़ी के मामले बड़ी संख्या में सामने आने लगे और भारतीय समाज को धीरे–धीरे यह समझ आने लगी तथा लोग इस मामले में सतर्क और संवेदनशील हो गए। अमेरिका निवासी भारतीय जो पहले अमेरिका पहुँच चुके थे वे नवागत जो लोग अमेरिका गए थे उनसे कुछ इस तरह से वहाँ का बखान करते– "मुझे यहाँ रहते हुए बाईस साल हो गए हैं, बाईस साल और मुझे यहाँ अच्छा लगता है मेरा तो सभी परिवार यहां है भाई–बहन, मौसी–चाची, सभी ने एक–दूसरे के साथ अच्छे से रहते हैं अर्थात् स्थिति का सच वही है जो शेष यात्रा उपन्यास की कथानक है और यह कथानक आज भी आंशिक रूप से सही है। वह पहलू तथा समस्याएँ जो उस समय दिखाई दे रहा था वह आज भी प्रासंगिक है। भारतीय परिवार में प्यार से पली बड़ी 'अनुका' एक संस्कारी लड़की जो विदेश जाकर 'अनु' बन जाती है और जो माहौल उसे मिलती है वह उसके कल्पना से बिलकुल ही विपरीत होती जाती है।

'अनु' वह लड़की है जो मन में हजार सपने लिए विदेश जाती है पर वह जिस सपने का भ्रम पालती है वह बहुत जल्द टूट जाता है। अनु को विवाह के पश्चात कुछ दिन तक अपने पति से भरपूर प्यार मिलता है। पर क्योंकि वह विदेश है इसलिए उस अनजान देश में उसे और अपनेपन की कमी महसूस होती है। अनु की जो आकांक्षाएँ थी अपनी पति से की वह उससे प्यार करेगा, ध्यान से रखेगा, वो पूरे होते देख वो खुश थी। पर उसके लिए यह बात बिलकुल ही अज्ञात था कि जिस प्यार की वह भूखी है वह थोड़े समय तक ही कायम रह सकता है। अनु के नजरिए से उसका पति सिर्फ उसी से प्यार करती है और घर गृहस्थी की सारी जिम्मेदारियां निभाने के लिए भी वह सक्षम है तो वह एक उत्तम पुरुष है। पर उसका यह भ्रम धीरे धीरे टूटना शुरू होता है जब अनु विदेशी परिवेश की पार्टियों में जाती है तो उसे महसूस होता है कि यह समाज उसके भारतीय समाज जैसा बिलकुल नहीं है और बहुत ही अलग है।

शादी के एक महीने बाद ही प्रणव के व्यवहार में अनु को परिवर्तन दिखाई देने लगता है। अनु प्रणव से पूछती है तो उसे पता चलता है कि वह डाक्टरी छोड़कर फिल्म डायरेक्टर बनने में इच्छुक है। अनु को अंधेरे में रखकर प्रणव किसी और औरत के संगत में आता है जिससे अनु बिल्कुल अज्ञात थी। अनु का जब प्रणव के दोस्त के पार्टियों में जाना हुआ तब उसे एक दोस्त से पता चलता है कि प्रणव का कई सारी विदेशी औरतों के साथ संबंध था और अब तो वह चंद्रिका नाम की एक औरत के साथ संबंध में है और जिससे वो शादी करने वाला है। अनु के पैरों तले जैसे जमीन खिसक जाती है। अनु के लिए यह अकल्पनीय था की : ''शादियों की भी मौत होती है'' या फिर तलाक जैसे चीज की वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी। अनु खुद को संभाल नहीं पाती और अपना संतुलन खो बैठती है। वह टूटकर बिखर जाती है। प्रणव अपनी पत्नी से मिलने आता तो है अस्पताल पर उसका हाल पूछने नहीं बल्कि यह कहने की वह उसे छोड़ रहा है और अनु की बाकि बची जिंदगी के लिए खर्चे का सारा इंतजाम हो चुका है। प्रणव की सोच से यह पता चलता है कि उसमें अमरीकी रहन सहन

तथा जीवन शैली का प्रभाव पड़ा है और अब वह इससे निकल नहीं सकता।

एक अनजान विदेशी परिवेश में नई–नवेली दुल्हन को अकेली बेबस छोड़ देना एक औरत को बहुत आघात पहुँचाती है। अनु अपनी ओर से हरसंभव कोशिश करती है, कि वह प्रणव को रोक ले, वापिस से सब कुछ ठीक हो जाए, इस आस में अनु प्रणव के पैरों पर गिर जाती है। पर प्रणव उसे ऐसे ही परिस्थिति में छोड़कर चला जाता है। प्रणव का अनु के लिए इस तरह का व्यवहार बिल्कूल ही उचित नहीं था। अनु का पति के सामने गिड़गिड़ाकर यह कहना : 'मैं कुछ नहीं मांगूँगी। सच, मैं बिल्कूल दिक्कत दिये बिना रह लूँगी। मोटर बंगला मुझे कुछ नहीं चाहिए। जो आप देंगे, वह सिर–माथे पर। बस आप मुझे अपने साथ रख लें, मुझे अलग न करे। यह एक स्त्री की दर्दनाक विवशतापूर्ण स्थिति है जो एक आवारा पति को प्रभावित नहीं कर पाती है। विदेश में अकेली बेसहारा हो जाने पर अब अनु एक अनजान देश में आगे क्या करेगी कुछ निर्णय ले पाती। बड़ी कोशिश के बाद अनु आत्मबल जुटाकर अपनी दोस्त के पास भारत चली आती है। अनु के मन में प्रणव से बिछड़ने का दुःख तो था पर वह धीरे–धीरे अपने मन को जीतकर केवल अपने लिए जीने की कोशिश करती है और सफल होती है। अनु अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी कर ''दीपांकर'' के साथ एक नई जिंदगी की शुरुआत करती है।

दीपांकर अनु की दोस्त दिया का भाई है जो कॉलेज के दिनों से अनु को चाहता था पर कभी व्यक्त नहीं कर पाया। अनु का यह दूसरा विवाह करने का निर्णय निःसंदेह सही प्रतीत होता है। अनु प्रणव की यादों को भूलकर आगे बढ़ती है और सुखी रहने की वजह को चुनती है। दूसरी ओर प्रणव अपना चुना हुआ जीवन जीता है। जब जो स्त्री उसके उसके संपर्क में आयी उसके साथ अपनी स्थिति के अनुरूप स्वइच्छा से संबंध बनाया। अपनी पत्नी को जीवन के बीच रास्तें में छोड़ देने का एहसास उसे उस समय नहीं था परंतु समय हर व्यक्ति को आईना दिखाता है। अपनी आवारा जिंदगी से तंग आकार प्रणव की जिंदगी में एक दौर ऐसा आता है जब उसे अकेले रहना अच्छा लगता है। प्रणव के जीवन में स्त्रियों की कमी नहीं हुयी पर कितना भी अस्थायी हो, एक समय ऐसा भी आता है जब व्यक्ति किसी भी संबंध के लिए खुद को अनुत्सुक पा रहा होता है। काफी समय बाद इत्तफाक से एक अस्पताल में जब प्रणव की अनु से मुलाकात होती है।

इस दौरान प्रणव को महसूस होता है कि यह पहली वाली अनु बिल्कूल नहीं है। आंतरिक और बाहरी दृष्टि से यह अनु आज आत्मविश्वासी, प्रखर, मौन और स्थिर है। अनु ने कभी सोचा नहीं था की जिस इंसान की वजह से उसकी पूरी जिंदगी बदल गयी उससे कभी मुलाकात भी होगी। पर वह अपने अतीत से मिली और बहुत ही सहज रूप से। उसके मन में प्रणव के लिए न कोई प्रतिशोध की भावना थी और न ही नफरत, किन्तु उसके जगह प्यार तथा विश्वास भी नहीं था। मात्र था तो एक शांत दृढ़–संकल्प की जीवन की परिस्थितियों ने जिस नई अनु को पैदा किया है वह अब किसी के लिए क्षण भर भी विचलित नहीं होगी।

उपन्यास के अंत में प्रणव है, जो जिंदगी के प्रति अपने दृष्टिकोण और आचरण नकारात्मकता के साथ, खुद से अनेक झूठ बोलता है : "किसी को किसी की जरूरत नहीं होती है। अंततः हमें अपने साथ ही रहना होता

है, अपने स्व से ही जूझना होता है। हम सब अपने को अकेला पाते हैं। शादी, ब्याह, गिरस्ती, रिश्ते–जब तक चलते है तभी तक रहते हैं। किसमें इतनी ताकत है कि अपने साथ–साथ दूसरे प्राणी की जिम्मेदारी ढोता रहे।" प्रणव की इस सोच में अस्थिरता का भाव दिखाई पड़ता है जो सही जीवन जीने के लिए बिल्कुल ही उचित नहीं है। दूसरी ओर अनु है जो सही मुकाम पर अपने परिस्थितियों से लड़ाई लड़कर बहुत संघर्ष करते हुए अपने अतीत से मुक्त होती है। अनु का यह कहना ''खालीपन अब नेगेटिव नहीं लगता। किसी के प्यार में न होना, किसी में अपने को समाहित न करना। इसका भी एक पॉजिटिव पक्ष है। मैं हुं अनु, अपने में तुष्ट, अपने स्वत्व बोध में सुखी, अपने सुख–दुःख में अकेली, अपने में स्वाधीन''। यह एक आधुनिक आत्मविश्वासी सशक्त नारी की आवाज है। स्वयं को स्वतन्त्रता देकर और पाकर जैसे उसकी सारी करवाहट धूल गयी।

अनु की यह सु–स्थिर आत्मविश्वास पूर्ण दृष्टि हर स्त्री के लिए प्रेरणादायक है, सही है और आदर्शशील है। यह उपन्यास हर स्त्री के लिए इसी आत्मबोध की हिमायत करता है।

**सहायक ग्रंथ :–**


1. शेष यात्रा, उषा प्रियवंदा, राजकमल प्रकाशन।
2. कथाकार उषा प्रियंवदा, सुभाष पंवार, विद्या प्रकाशन।
3. कथा समय में तीन हमसफर, निर्मला जैन, राजकमल प्रकाशन।
4. स्त्री विमर्श और उषा प्रियवंदा का कथा साहित्य, डॉ. लबीना निनामा, चिंतन प्रकाशन।
5. उषा प्रियवंदा के कथासाहित्य में आधुनिकता बोध, डॉ नीता द. भोसले, चिंतन प्रकाशन।



मोबाइल नंबर : 9101134300

gtika094@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 187-188

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# प्रदूषित होती नदियाँ एवं नष्ट होते द्वीप : चुने हुए हिन्दी और मलयालम कहानी के संदर्भ में

**डॉ. अजिता कुमारी जे**

Asstt. Professor, Dept. of Hindi Nirmala College, Muvattuppuzha

नदी मनुष्य के लिए प्रकृति का वरदान है। इसमें आवास करने वाली मछलियाँ, अन्य प्राणियों के साथ–साथ, यह मनुष्य को भी पीने के लिए, खेती–बाड़ी के लिए पानी प्रदान करती है। यह अपने चारों ओर के पर्यावरण को भी हमेशा समृद्ध रखती है। अगर मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए इसका शोषण करना शुरू करे, तो यह मनुष्य के लिए अभिशाप बन जाती है। इस स्थिति को 'सेतु' ने 'दाहिक्कुन्न भूमियिल' में और 'संजीव' ने 'हत्यारे' में रेखांकित किया है। 'दाहिक्कुन्न भूमियिल' में बरसात नहीं होती। 'धरती ऐसी बंजर बनके रह जायेगी। वृक्ष, पेड़–पौधे सब मुरझा जायेंगे। जीव–जंतु पतले होते–होते हड्डियाँ मात्र हो जायेंगे ज्यादा बलवान अन्य प्राणियों को खा जायेगा। शक्तिहीन मर जायेगा। यह सब कुछ होकर ही रहेगा।'

प्रस्तुत कहानी में गंगा नदी प्रदूषित हो गई है जिसके फलस्वरूप वह बंजर जमीन बन गई है। पानी के बगैर मनुष्य की हालत बदतर होती जाती है। वहाँ पर लोग बारिश के लिए यज्ञ भी करते हैं पर फायदा नहीं होता। पंडित कहता है कि पूजाओं की शक्ति अब निष्फल हो गई है। पीने केलिए भी पानी खरीदने की नौबत आ जाती है। आने वाली दुर्घटनाओं का पता 'बूढ़ा' नामक पात्र से कहानी के पहले में ही किया जाता है। कलियुग जन्मा है। भूमी देवी का बोझ बढ़ गया है। इस बोज को कम करने के उपाय उसके पास हैं। अकाल, महामारी, भूकंभ, ऐसी कई अवस्थाओं से वह सबकी परीक्षा कर रही है। इस अवस्था का कारण भगवान के कोप को भी मानते हैं। अंत में एक दिन इतनी ज्यादा मूसलधार वर्षा होती है कि पूरा गाँव उसमें नाचने–झूमने लगता है, पर इससे खेतों में पानी भर जाता है और फसल नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में लोग भूख से तड़पने लगे। यहीं पर कहानी खत्म हो जाती है।

'संजीव' की 'हत्यारे' में भी ऐसे ही नष्ट हो जाते द्वीप का चित्रण हुआ है। दो पूँजीपति कंपनियों की नजर एक समृद्ध द्वीप पर पड़ती है और वे द्वीप से तेल कूप निकालकर अपने–अपने व्यवसाय को बड़ा करना चाहते हैं। दोनों कंपनियों में तेल के लिए जंग छिड़ जाती है। वे अपना अधिकार स्थापित करने के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस जंग में पूरा द्वीप, मनुष्य एवं सभी अन्य प्राणी मर जाते हैं। पर्यावरण भी पूरी तरह तहस–नहस हो जाता है। कंपनियों को पहले से ही पता है कि तेल कूप से मनुष्य का, पर्यावरण का कितना ज्यादा घाटा होगा, पर वे इसकी बिल्कुल भी परवाह नहीं करते हैं। अग्रवाल के मुताबिक, 'तीन हजार

करोड़ टन कोकिंग कोल का सवाल है।'

इस तरह पूँजीपति वर्ग पहले अपने लाभ के लिए प्रकृति का भरपूर शोषण करता है, जिसका कड़वा फल मनुष्य एवं जीव–जंतुओं को भुगतना पड़ता है। कंपनियाँ रत्ना नदी की गति को बदलने में रठ है। इसका बुरा असर खेती पर भी पड़ता है।

सिन्हा जी कहते हैं, 'इधर से हजारों एकड़ के उपजाऊ खेत नदी के पेट में समा जायेंगे।' गाँव वालों के पास आजीविका का और कोई मार्ग भी नहीं है। अंत में बूढे क्रू की यह विडंबना है कि 'उस द्वीप के लोगों ने हम हत्यारों का विश्वास क्यों किया, क्यों? इस हरे भरे द्वीप को कब्र में बदलकर दोनों कंपनियाँ लौट आई। द्वीप न अब पानी पर तैरता है, न तेल पर, बल्कि खून पर तैरता है, खून पर।'

इन दोनों कहानियों में हम प्रकृति के ऐश्वर्यपूर्ण रूप एवं विनाशकारी रूपों से अभिहित होते हैं। मनष्य प्रकृति को जो देता है, या जिस तरह का व्यवहार प्रकृति से करता है, वही कर्ज प्रकृति भी वापस लौटाती है। दोनों ही कहानियों में मनुष्य के स्वार्थ से तंग आकर प्रकृति अपना विनाशकारी रूप धारण करती है, जिससे मनुष्य चकनाचूर हो जाता है। वह पानी को, नदी को, प्रकृति को बदलने की होड़ में पूरी तरह बर्बाद हो जाता है।

शुकदेव प्रसाद के मत में 'यह धरती अपने प्रत्येक निवासी की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए यथेष्ट साधन उपलब्ध कराती है। लेकिन हर व्यक्ति की लालच की पूर्ति नहीं कर सकती।' मनुष्य का विवेक शून्य एवं संवेदनहीन बर्ताव उसके साथ–साथ परिस्थिति को भी असंतुलितावस्था में ले जाता है।

**संदर्भ :–**


1. सेतू दहिनकुन्जभूमिलिल सेतु विन्डे कदक, पृष्ठ 9
2. संजीव हजारे, संजीव की कथायात्रा : लोसरा पड़ाव, पृष्ठ 53
3. शुकदेव प्रसाद, पर्यावरण और हम, पृष्ठ 41

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 189-193

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# भारतीय अर्थव्यवस्था में सतत् विकास और पर्यावरण चुनौतियाँ

**डॉ० प्रमोद कुमार श्रीवास्तव**

असिस्टेन्ट प्रोफेसर–अर्थशास्त्र विभाग, जगतपुर पी० जी० कालेज, जगतपुर, वाराणसी।

कोरोना महामारी काल में भारत के लोगों ने विश्व को दिखा दिया कि भारत अपने सीमित संसाधनों पर आत्मनिर्भर रहकर आने वाली पर्यावरणीय समस्याओं की चुनौतियों का किस तरह से सामना करने में सक्षम है साथ ही साथ सतत् विकास में जो महामारी काल में भी अपने आर्थिक विकास को कम नहीं होने दिया, और समस्त विश्व को स्वास्थ्य से सम्बन्धित टीके व दवाइयां उपलब्ध कराने में अग्रणी रहा है। भारत प्राचीनकाल से ही आत्मनिर्भर रहा है। भारत में संस्कृति, कला, संगीत, वास्तुकला, धर्म, दर्शन, रीति–रिवाज, शिक्षा, अर्थ, ज्ञान–विज्ञान आदि वैदिक काल से ही समृद्धिशाली और आत्मनिर्भरता के साथ पर्यावरण का भी विशेष ध्यान दिया गया है। प्रकृति को देवता समान मानकर इसका संरक्षण करना सभी भारतीयों का धर्म रहा हैं।

वर्तमान समय के भारत में सतत् विकास के साथ आने वाली पर्यावरणीय चुनौतियों का अध्ययन करना इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है कि हम आत्मनिर्भर रहकर पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना किस तरह से करे की सतत् विकास भी होता रहे, पर्यावरण भी सुरक्षित रहे और हम भारतीय आत्मनिर्भर भी बने रहे। भारत में पर्यावरणीय मुद्दों में वन और कृशि, भूमि, क्षरण, संसाधन रिक्तीकरण, पर्यावरण क्षरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य जैव विविधता में कमी, गरीबों के आजीविका, सुरक्षा आदि प्रमुख है।

**अवधारणा :–**

**सतत्–विकास** (Sustainable Development) :–

विकास मानव के संदर्भ में परिवर्तन की प्रक्रिया को कहते हैं। विकास धनात्मक, ऋणात्मक तथा स्थिर, तीन तरह से हो सकता है। मानव को प्रमुख मानकर अर्थशास्त्र के अनुसार, मानव को केन्द्र मानते हुए विकास का अध्ययन किया जाता है। मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करना प्रथम उद्देश्य होता है जबकि मानव द्वारा अर्थ प्राप्ति के लिए किये विकास से अनेको पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न होती है।

पर्यावरण को ध्यान में रखते हुये, विकास–पर्यावरण की गुणवत्ता, परिस्थितिकीय संतुलन के रक्षण एवं मानव की रहन–सहन में सुधार तथा उसकी आर्थिक वृद्धि को एक जैसा महत्व प्रदान करता है। पर्यावरण में विलुप्त पर्यावरणीय एवं पर्यावरणीय प्रक्रमों की रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता हैं अर्थात् विकास का परिस्थितिकी केन्द्रित दृष्टिकोण किया, एक कल्पना पर आधारित है। ब्रिटिश जीव विज्ञानी जेम्स लवलॉक ने यूनानी देवी गेया के नाम पर 1970 के दशक के प्रारम्भ गेया परिकल्पनानुसार मान की आवश्यकताओं को कमजोर प्राकृतिक

प्रक्रमों के अनुरक्षण के संदर्भ में देखना चाहिये। यह परिकल्पना एक तरफ तो मानव की आवश्यकताओं एवं विकास के बीच सन्तुलन को महत्व प्रदान करती है तो दूसरी पर्यावरण की गुणवत्ता के अनुरक्षण पर बल देती हैं। ''पोषणीयता एक संकल्पना है जो परिस्थितकीय कार्यो एवं परिस्थितिकीय संसाधानों की स्थिर मांग को प्रकट करती है, ताकि एक तरफ तो विकास प्रबन्धन के लिये परिस्थितिकीय संसाधनों की सतत् आपूर्ति होती रहे।

**पोषणीय विकास :–**

''पोषणीय विकास मानव कल्याण में प्रगति को दर्शाता है। जिसे हम मात्र कुछ वर्षो के बजाय दीर्घकाल तक कायम रख सके। पोषणीय विकास का फल सम्पूर्ण मानव समाज को मिलना चाहिये न कि किसी खास वर्ग के लोगो को''।

**डब्लू०पी० कन्निर्धम एम०ए० कन्निर्धम (2002)** ''पोषणीय विकास एक उपागम है जो भविष्य में व्यक्तियों की मांग पूर्ति करने की पर्यावरण की क्षमता के साथ बिना किसी तरह का समझौता किये वर्तमान समाज की इच्छाओं एवं मांगों की पूर्ति करने का प्रतीक है।''

**जी०एल० हर्लेम (1987)** ''सतत् पोषणीयता की संकल्पना से अभिप्राय यह सुनिश्चित करने से है कि वर्तमान पीढ़ी की भांति भावी पीढ़ी भी सम्पन्न हो और यह सम्पन्नता समय के साथ–साथ निरन्तर जारी रहे''–रॉबर्ट सोलो।

सतत् विकास के लिए मुख्य रूप से दो महत्वपूर्ण तत्व है–

1. यह भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की बात करता है।
2. यह वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं का पूरा करता है।

**स्तत् पोषणीय–विकास की मुख्य विशेषताएँ :–**

1. संकल्पना संसाधनों के वितरण सम्बन्धी सभ्यता पर बल देना।
2. प्राकृतिक संसाधनों का कुशलता से प्रयोग किया जाना।
3. पर्यावरणीय प्रदूषण में विकास के द्वारा वृद्धि न होने पाये।
4. भावी पीढ़ी के जीवन की गुणवत्ता में कमी न होने पाये।
5. आर्थिक–विकास को सीमित नहीं करती है।

**सतत् पोषणीय–विकास महत्व :–**

1. **क्षेत्रीय असमानता :–** भारत के आत्मनिर्भर बनने से क्षेत्रीय विषमताओं को दीर्घकाल में दूर करने में सतत् पोषणीय विकास महत्वपूर्ण हो सकता है।
2. **निर्धनता :–** भारत के आत्मनिर्भर बनने से निर्धनता (गरीबी) से मुकाबला किया जा सकता है।
3. **प्रदूषण :–** भारत के आत्मनिर्भर बनने से पर्यावरणीय प्रदूषण की स्थिति में सुधार हो सकता है।
4. **वर्ग–संघर्ष :–** गरीबी के कारण अशिक्षित व पिछड़े एवं कमजोर राज्यों में वर्ग संघर्श की स्थिति से बचा जा सकता है।
5. **जैव–विविधता :–** आत्मनिर्भर भार जैव–विविधता को प्रभावित करेगा।

**उद्देश्य :–**

भारतीय अर्थव्यवस्था में पर्यावरणीय चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुये सतत् विकास कैसे प्राप्त किया जाये

इस शोध का मुख्य उद्देश्य है। भारत जब आत्मनिर्भर बनेगा तो पर्यावरण में होने वाले अवनयन को ध्यान में रखकर विकास कार्य की योजनायें क्रियान्वित करेगा। शोधपत्र के विषय को ध्यान में रखते हुये कुछ व्यावहारिक शोध उद्देश्य निर्धारित किये गये है।

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में पर्यावरणीय चुनौतियों की समीक्षा।
2. पर्यावरणीय प्रदूषणों के कारणों का अध्ययन।
3. सतत् विकास से पर्यावरण प्रदूषण से पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन।
4. भारत में सतत् विकास का अध्ययन।

**शोध विधि :-**

शोध–पत्र में शोध–विधियाँ विशेष स्थान रखती है। इसमें मुख्य रूप से उन तकनीकी पक्षों पर चर्चा की गई है। जिसको शोध अध्ययन में प्रयुक्त किया गया है। शोध–विधि का अध्ययन जिन शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है, उनके परिकल्पनाओं का निर्माण, नमूना चयन विधि, आंकड़ें, संकलन विधि, प्राथमिक तथा द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग तथा आंकड़ों की व्याख्या और विश्लेषण तथा कम्पयूटर एवं इण्टरनेट, विभिन्न पत्र–पत्रिकायें पुस्तकों आदि प्रमुख है। यह अध्ययन अनुभाविक, अन्वेषणात्मक मूल्यपरक शोध–विधि पर आधारित है।

**भारत में सतत् विकास :-**

ऐसा विकास जो वर्तमान की पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में किसी भी प्रकार का समझौता न करना पड़े तथा भविष्य की आने वाली पीढ़ी को किसी भी प्रकार से कमी न हो ''अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलनों के माध्यम से की गई पर्यावरणीय चुनौतियों की चिन्ताओं को ध्यान में रखते हुए भारत में परिस्थितिकी की भौतिक संकल्पनाये कुछ समझौते सभी जीव एवं पर्यावणीय आपसी सामंजस्य एवं क्रियाशील सम्बन्धों से अन्तर सम्बन्धित है।

भारत में प्राचीनकाल से ही सतत् पोषणीय पर्यावरण की परम्परा रही है। वैदिक युग से ही पर्यावरण को धर्म व विज्ञान से जोड़ दिया गया था। वनों को संरक्षित करने के लिये वृक्षों को देवता समान पूजा जाता था, तीन प्रकार के वनों यथा–महावन, तपोवन, और श्रीवन इसके अतिरिक्त जल का प्रबन्धन करने के लिये नदियों को माँ का स्थान दिया गया था।

**भारत में सतत-विकास से होने वाली चुनौतियाँ :-**

1. **संकेतको को परिभाषित करना :-** भारत नीति निर्धारकों ने सतत् विकास से जुड़े परिणामों के मूल्यांकन के लिये सही संकेतको को सही प्रकार से परिभाषित नहीं किया है।
2. **धन उपलब्ध कराना :-** केन्द्र सरकार ने समाज कल्याण के लिए वित्त में कटौती कर दी जिससे राज्य सरकारों पर अतिरिक्त व्यय आ गया, जिसे लक्ष्य की प्राप्ति में चुनौतियाँ आ गई और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला।
3. **निगरानी और जिम्मेदारी :-** इसकी जिम्मेदारी नीति आयोग की होती है लेकिन नीति आयोग उचित संरचनात्मक तंत्र को विकास नहीं कर पाया।
4. **प्रगति का मूल्यांकन :-** लक्ष्यों की क्या प्रगति हो रही है इसका मूल्यांकन, आँकड़ों एवं सूचना की अपर्याप्त उपलब्धता, प्रशासनिक शिथिलता व राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी के कारण नहीं हो पाता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में पर्यावरण और ससत् विकास के संदर्भ में गाँधी जी के विचार ''आधुनिक शहरी

औद्योगिक सभ्यता में ही उनके विनाश के बीच निहित है।'' गाँधी जी की पुस्तक दि हिन्द स्वराज में उन्होंने लगातार हो रही खोजो के कारण पैदा हो रहे उत्पादों और सेवाओं की मानवता के लिए खतरा बताया था। उन्होंने वर्तमान सभ्यता का अन्तहीन इच्छाओं और सैद्धान्तिक सोच से प्रेरित बताया था। गाँधी जी के अनुसार सभ्यता अपने कर्तव्यों का पालन करना और नैतिक और संयमित आचरण करना है। उनका मानना था कि लालच और जुनून पर अंकुश होना चाहिए। सतत् विकास का केन्द्र बिन्दु समाज की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करना है।

**सतत् विकास की प्रमुख चुनौतियाँ :-**

1. **गरीबी :-** वर्ष 2005 के अनुसार राष्ट्रीय गरीबी रेखा पर हैण्ड काउण्ट अनुपात (आबादी का प्रतिशत) 37.2 प्रतिशत था जो 2012 में घटकर 21.9 प्रतिशत हो गया। 2009–10 के अनुसार 6.53 प्रतिशत बेरोजगारी दर है। 50 प्रतिशत भारतीयों के पास उपयुक्त आवास नहीं है। 70 प्रतिशत को स्वच्छ शौचालय उपलब्ध नहीं है। 36 प्रतिशत परिवारों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध नहीं है। 85 प्रतिशत गांवो में माध्यमिक शिक्षा नहीं है। 40 प्रतिशत गांवों में उपयुक्त सड़के नहीं है।
2. शहरीकरण और औद्योगीकरण का प्रबन्धन।
3. बुनियादी–सेवाओं (ऊर्जा, भोजन, पेयजल) में कमी
4. परिस्थितिक ह्रास और जैव विविधता की हाँनि।
5. जलवायु परिवर्तन प्रभाव प्राकृतिक आपदाओं और जोखिमो से असुरक्षा।

**पर्यावरण की महत्वपूर्ण चुनौतियाँ :-**

1) **वनों की कटाई :-** वनों में वृक्षों और जीव जन्तुओं को आश्रय प्रदान करने वाले वनों की भारत में खासकर वर्षा वनों पूर्वी भारत पश्चिम घाट, मध्य भारत में पतक्षड़ वाले वन क्षेत्रों हिमालय की शिवालिक श्रेणी को वनों की कटाई बहुत तेजी से हो रही है। वनों को काटकर सोयाबीन ताड़ और अनुपयोगी किस्म की कृषि की जाने लगी हैं। वर्तमान समय में विश्व का 30 प्रतिशत भूभाग वनों से आच्छादित है किन्तु प्रति वर्ष 73 लाख हेक्टेयर वन काटे जा रहे है।

2) **वायु प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन :-** वातावरण और समुद्री जल में कार्बन का प्रतिशत दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण में पायी जाने वाली $Co_2$ कार्बन डाई आक्साइड, पराबैगनी विकिरण को ग्रहण तथा मुक्त करती रहती है। इससे वायु, स्थल और सागरीय भाग गर्म होने लगते है लेकिन अति मात्रा में कार्बनडाई ऑक्साइड मानव के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। तापमान वृद्धि से पृथ्वी पर जलवायु परिवर्तन का सामना करना पड़ रहा है।

3) **भूमि अपरदन (क्षरण) :-** विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या ने खाद्य समस्या पैदा की है। बढ़ती हुई जनसंख्या के भोजन के लिए अत्यधिक उत्पादन करके उनके लिए भोजन उपलब्ध कराना विश्व के लिए एक संकट की स्थिति हो गयी हैं अत्याधिक उत्पादन के लिए अत्यधिक मात्रा में उर्वरकों का उपयोग करने में, एक जैसी कृषि करने से अत्यधिक मात्रा में चारागाहों के नष्ट हो जान से मृदा की उपजाऊपन समाप्त हो रही हैं प्रतिवर्ष विश्वभर में 1.2 करोड़ हेक्टेयर भूमि नष्ट हो या खराब हो रही है।

4) **विलुप्त प्रजातियाँ :-** पृथ्वी पर निवास करने वाले विभिन्न दुर्लभ प्रजातियों के शिकार, दाँत (हाथी) खाल,

हड्डी तथा दूसरी अन्य चीजों के लिए हो रहे है, जिससे जीव–जन्तुओं का जीवन संकटग्रस्त हो रहा है। पृथ्वी पर हर जीव व पादप एक दूसरे से किसी न किसी रूप से जुड़े है अगर इस श्रृंखला में परिवर्तन होगा तो मानव तथा वन्य जीव जन्तुओं को बहुत हानि उठानी पड़ेगी।

5) **जनसख्याँ वृद्धि :–** विश्व में पर्यावरण की प्रमुख चुनौतियाँ में जनसंख्या वृद्धि एक प्रमुख है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व की जनसंख्या 1.6 अरब थी, जबकि वर्तमान समय में 8 अरब से अधिक हो गई है। 2050 तक 10 अरब हो जायेगी। जिससे प्राकृतिक संसाधनों पर बहुत अधिक भार पड़ेगा। संसाधन कम होंगे, उपयोग करने वाले अधिक जिससे विभिन्न प्रकार की मानवीय समस्यायें विश्व के सामने आयेगी।

**निष्कर्ष :–**

सतत् विकास में सम्बन्धित मुख्य पर्यावरणीय चुनौतियां तथा चुनौतियों के समाधान करने के लिए कुछ प्रयास किये जाने चाहिये।

1) खाद्यान्य उत्पादन तथा जैविक कृशि को बढ़ावा देकर आत्मनिर्भर बना जा सकता है।
2) परिस्थितिकी तंत्र को सतत् विकास के द्वारा संरक्षित किया जाये।
3) ऊर्जा संकट स्वच्छ ऊर्जा द्वारा ऊर्जा संकट का समाधान निकाल कर पर्यावरण को समृद्धिशाली बनाया जा सकता है।
4) ठोस अपशिष्ट पदार्थो के तथा प्रबन्धन की समस्या आत्मनिर्भर भारत के लिए बहुत ही गम्भीर है इससे पर्यावरण तथा परिस्थितिकी तन्त्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते है इनका निस्तारण तथा उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए।
5) प्रदूषण और पर्यावरणीय अवनयन, अधिकांशतः मानवीय क्रियाकलापों से होता है जिसमें औद्योगिकरण तथा नगरीकरण सबसे अधिक जिम्मेदार होते है। परिस्थितिकी के अनुकूल प्रौद्योगिकी के विकास के प्रदूषण की समस्या का समाधान निकाल कर भारत आत्मनिर्भर बन सकता है।

**सन्दर्भ सूची :–**


1. कुमार, संजीव, ''सामान्य अध्ययन, परिस्थितिकी एवं पर्यावरण,'' प्रकाशक लूसेण्ट पब्लिकेशन, पटना, बिहार, (भारत), द्वितीय संस्करण।
2. इण्टरनेट
3. सिंह भोपाल ''पर्यावरण शिक्षा'' प्रकाश––ईगल बुक्स इण्टर नेशनल, मेरठ–1977
4. सिंह, सविन्द्र (2018), पर्यावरण भूगोल का स्वरूप, प्रकाशक–प्रवालिका पब्लिकेशन, इलाहाबाद, ISSN 9789384292-32.4, पृष्ठ संख्या 727–728
5. सक्सेना, हरिमोहन, 'पर्यावरण शिक्षा'' प्रकाशक–हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर–1994 ग्लान, एल०के० इकोलॉजिकल प्राइसिस टीडिंग फार सरवाइकल, हाइकोर्ट ग्रास जोवेनाविच न्यूर्याक–1970

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 194-197

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा

**डॉ. के. संगीता**

सहायक प्राध्यापिका, पाठयक्रम समिति अध्यक्ष [BOS]

हिंदी विभाग आट्र्स कालेज, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना

'एक भारतीय आत्मा' पं. माखनलाल चतुर्वेदी जी ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का अभिन्दन करते हुए लिखा था – "वरद लेखनी के धनी! जब–जब आपकी लेखनी चलती है, भूतकाल में से संस्कृति के अमर तंतुओं को एकत्रित कर भविष्य की पीढियों के लिए भारतीयता को एक सामंजस्यपूर्ण स्नेह–बंधन प्रदान करती है। इतिहास और बीता युग किस सज–धज से संस्कृति को नया रुप देते हुए नई कला और नई पीढी के लिए पुकारते ही आपकी लेखनी पर उतर आये है! अपनी संस्कृति के प्रति यह आसक्ति, यह मूल्यांकन और नादब्रम्ह से संस्कृति के स्वर झंकृत कर देने के लिए यह तन्मयता इस युग में केवल आपकी अपनी वस्तु है।"

राष्ट्रीय भावों से युक्त एवं उपदेशपरक काव्य के लिए ही याद किये जाने वाले कवि गुप्तजी के लिए न केवल एक भावुक कवि वरन पत्रकार होने के नाते एक प्रखर वैचारिकता सम्पन्न रचनाकार की भावांजलि निश्चय ही उनके कवित्व के अन्य महत्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित करती है। आधुनिक युग के प्रसिध्द कवि श्री मैथिलीशरण गुप्तका जन्म 1886 ई. को झाँसी के चिंरगाँव के वैश्य परिवार में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। गुप्त जी का परिवार समृद्ध, गुणज्ञ, विधा व्यसनी और भगवदभक्त था। इन सबने उनके बालकवि पर यथेष्ट प्रभाव डाला। काव्य संस्कारों को उदभूत करने में गुप्त जी के पिताजी का विशेष हाथ था। गुप्त जी के कवि को प्रेरित करने में स्वाध्याय के प्रति लगाव एवं मुंशी अजमेरी जी का सत्संग भी विशेष सहायक सिद्ध हुए।

कवि के कवित्व का आधार उसकी कृतियाँ होती हैं, जिनके माध्यम से वह अपने आदर्शों और मनःस्वप्नों को मूर्त करता है। वह मन से कल्पना–जगत और तन से यथार्थ जगत का प्राणी होता है। दोनों ही अनुभूतियों को वह रुपायित करता है और वहीं भाव कृतियों के रुप में साहित्य जगत में विज्ञप्त होते है। गुप्त जी ने जीवन के राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सभी पहलुओं का काव्य में विस्तार से चित्रण है।

राष्ट्रीयता से आशय राष्ट्रीय जीवन की अभिव्यक्ति तथा राष्ट्रहित की चिंता है, जिसमें स्वयमेव राष्ट्र के सभी जन, उनका जीवन, उनके सुख व दुःख और उनकी सभ्यता–संस्कृति समाहित हो जाती है। गुप्त जी का काव्य राष्ट्रीयता की इस कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरता है? उनकी रचनाओं में सम्पूर्ण भारतीय जीवन मुखरित हुआ है। साथ ही भारत का अतीत वर्तमान के अनुरुप ढलकर प्रत्यक्ष हुआ है। वे पुरातनता के समर्थक तो रहे हैं, पर वहीं तक, जहाँ तक वह जनहित में सहायक रही है। नवीनता और आधुनिकता के प्रति अन्ध आकर्षण उनके चिन्तन में कहीं नहीं दिखता। गुप्त जी की रचनाओं में प्रबंध के दोनों भेद महाकाव्य और खंड काव्य सहज

ही उपलब्ध हो जाते है। महाकाव्य अपने व्यापक आधार–क्षेत्र, महान उद्देश्य, युगानुरुप संपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति गरिमामय काव्य शैली और सशक्त प्राणवत्ता के कारण महाकाव्य देश–विशेष या युग–विशेष के निर्दिष्ट लक्षणों का अतिक्रमण करता हुआ विश्वजनीन भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित होता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की काव्य यात्रा में आधुनिक युग के श्रेष्ठ महाकाव्य साकेत और जय भारत प्रमुख स्थान रखते है। 'साकेत' की कथा त्रेता–युग के युग–पुरुष श्रीराम की कथा है जो भारतीय इतिहास एवं समाज की चिर–पुरातन कथा है। साकेत में श्रीराम के प्रति अनन्य भक्तिभाव प्रदर्शित करने के साथ–साथ उपेक्षिता उर्मिला और कैकेयी के चरित्रों के प्रति न्याय करना ही कवि का इष्ट रहा है। अनेक मौलिक एवं मार्मिक प्रसंगो की अवतारणा करके कवि ने काव्य को सरस और प्रभावपूर्ण बना दिया है। कवि ने प्रेमकथात्मक और पारिवारिक जीवन को काव्य–स्वरुप देकर भी उसे जीवन काव्य के स्तर पर अधिष्ठित रखा तथा नारी के उच्चत्व को चित्रित करते हुए भी राम के मानवतादर्श को अपदस्थ न होने दिया, यह 'साकेत' का गौरव है।

काव्ययात्रा में गुप्त जी का 'जयभारत' महाभारत पर आधारित सैंतालीस सर्गो में विभक्त एक बृहत्ताकार रचना है। इसमें महाभारत के नहुष आख्यान से लेकर पांडवों के स्वर्गारोहण तक की घटनाओं का वर्णन है। इसमें कथा के सूत्रधार कृष्ण हैं परंतु कवि का प्रतिपाध युधिष्ठिर के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करना रहा है। काव्य यात्रा में आगे गुप्त जी के खंडकाव्य की श्रृंखला में गुप्त जी के रंग में भंग, जयद्रथ वध, शकुंतला, किसान, पंचवटी, शक्ति, सैरंध्री, वक्त–संहार, वन–वैभव, हिडिंबा, युद्ध, विकट–भट, गुरुकुल, यशोधरा, सिद्धराज, नहुष, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला, गुरु तेग बहादुर, अर्जित तथा विष्णु प्रिया का नाम लिया जा सकता है।

हिंदी साहित्य में गीतिकाव्य की दो पद्धतियाँ दृष्टिगत होती हैं। एक पद पद्धति तथा दूसरी प्रगति पद्धति। गुप्त जी ने प्रगीति पद्धति को स्वीकार किया है। गुप्त जी द्वारा रचित गीतिकाव्य का संक्षिप्त काव्यानुशीलन इस प्रकार है। पत्रावली सात पधात्मक पत्रों का संग्रह है, जिसका आधार ऐतिहासिक है। वैतालिक के उद्‌बोधन–गीत के माध्यम से कवि ने देशवासियों को जागरण का संदेश दिया। स्वदेश संगीत में कवि ने राष्ट्रीय चेतना के पैंसठ गीतों को संग्रहीत किया है। इसमें कवि का आदर्शवादी स्वरुप प्रकट हुआ है।

आध्यात्मिक गीतों के संग्रह 'झंकार'में कवि ने छायावादी शैली को अपनाया है। इसके अधिकांश गीत भक्तिपरक है कुछ रहस्यवादी और नीतिपरक भी है। 'मंगलघट' में मांगलिक स्वर की प्रधानता है। द्वापर की कथा का आधार श्रीमदभागवत है। इसमें 16 खण्ड है। प्रमुखपात्रों के आत्मकथनों द्वारा उनकी मनःस्थिति का चित्रण है। पात्रों के कथनों व्दारा तत्कालीन युग की राजनीतिक, धार्मिक व सामाजिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश पडता है।

बुद्धकालीन गीतिकाव्य कुणालगीत की सामग्री अशोककालीन इतिहास से ली गई है। विश्व वेदना में महायुद्ध से प्रेरित सांस्कृतिक गीत युद्ध विरोधी भावनाओं से ओत–प्रोत है। मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते हुए कवि ने मनुष्य के नैतिक पतन पर शोक प्रकट किया है और विश्व राज्य की कल्पना की है। अंजलि और अर्ध्य में कवि ने गांधी जी के निधन पर शोकग्रस्त हृदय के उद्‌गार व्यक्त किए है। पध प्रबंध में विषयों की विविधता है। आस्वाद में भी विविध विषयों की कविताओं का संग्रह है। भूमि भाग में सामयिक गीति संग्रह में भूदान विषयक इक्कीस प्रगीत संग्रहित है। इसमें कवि का दृष्टिकोण मानवतावादी है। उच्छवास एक आत्मनिष्ठ कृति है जिसमें कवि ने अपने शोक विह्वल हार्दिक भावों की अभिव्यक्ति की है।

कवि की अन्य कृतियो में भारत–भारती, हिंदू, प्रदक्षिणा, युद्ध, रत्नावली, राजा–प्रजा तथा कवि–श्री की गणना की जा सकती है। भारत–भारती व्दिवेदीयुग का गौरव–स्तम्भ है। भारत–भारती के तीन खंडो में से 'अतीत खंड' में आचार–विचार व श्रेष्ठ परंपराओं का वर्णन है। वर्तमान खंड में आपसी फूट व स्वार्थो का वर्णन है। भविष्य खंड में स्वाधीन भारत की परिकल्पना करते हुए जाग्रति का संदेश दिया गया है। पाश्चात्य प्रभाव को गुप्त जी ने उस काल में ही जान लिया था और स्पष्ट शब्दों में कहते है–

'कुल–नारियाँ जिनको हमारी है करों में धारती,
सौभाग्य का शुभ चिन्ह, जिनको हैं सदैव विचारती,
वे चूडियाँ तक है विदेशी, देख लो, बस हो चुका,
भारत स्वकीय भी, परकीय करके खो चुका।

आज हमारी नयी पीढी के प्रतिनिधि युवा डाक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि की उपाधियाँ प्राप्त कर विदेशों में बस रहे है। उनकी शिक्षा का लाभ देश–समाज को नहीं मिल पा रहा है, जबकि उनके निर्माण में देश के जन–धन और देश के परिवेश की मुख्य भूमिका है किंतु वे देश के प्रति, देश के जन के प्रति अपना कोई कर्तव्य नहीं समझते। गुप्त जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था–

'वह साम्प्रतिक शिक्षा हमारे सर्वथा प्रतिकूल है,
हममें विदेशी भाव भरके वह भुलाती है हमें,
सब स्वास्थ का संहार करके वह रुलाती है हमें।'

गुप्त जी ने 'भारत–भारती' में ऐसी स्थिति को देखते हुए यह उद्‌गार व्यक्त किये थे :–

'हा! जो कलाएँ थी कभी, अत्युच्च भावोद्‌गारिणी।
विपरीतता देखो कि अब वे है अधोगतिकारिणी।।'

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का निम्नलिखित कथन विशेष रुप से उल्लेखनीय है–

"भारत–भारती का रचयिता विश्व भारती का उपासक बन सका है। इस कृति में कवि ने भारतीयों में स्वाभिमान जाग्रत किया और अतीत की गौरवमयी संस्कृति से प्रेरणा लेकर वर्तमान के प्रति निष्ठावन होने को कहा।"

केवल भारत–भारती ही नहीं, उनकी कृतियों में भी यहीं विशेषताएं विधमान है। जय भारत खण्डकाव्य के 'युध्द' संज्ञक अध्याय में महाभारत के दुष्परिणामों को रेखांकित करते हुए बलराम ने ये उद्‌गार व्यक्त किये है, उनसे बचने के संकेत भी उनमें निहित है :–

'युद्ध के भी लाभ होंगे, सर्वनाश यह तो, सिहर उठा मैं यहाँ, सुनकर ही जिसे,
चोट कर अपने चरित्र पर आप ही, अनुचित उचित प्रतिकार नहीं देखता'

'वक्त–संहार' के अन्तर्गत अनेकों की रक्षा हेतु ब्राम्हण परिवार के सदस्यों की त्याग भावना आज के स्वार्थ लिप्त समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करती है। 'जयद्रथ वध' में अन्यायी को दण्ड दिया जाये तथा अन्याय का प्रतिकार किया जाये, यह बात अभिमन्यु द्वारा कही गयी है।

भारतेन्दु तक हिंदी कविता का मूल चरित्र था, भक्ति–प्रेम और हास का उससे गुप्त जी ने अपनी कविता को अलग रखा और समग्र जन समाज की भावनाओं को अपनी रचनाओं में मुखरित किया। परम्परा और

आधुनिकता का समुचित सामंजस्य करने का प्रयत्न उन्होंने निरंतर किया। गुप्त जी ने जिस समय हिंदी काव्य जगत में पर्दापण किया था, हिंदी की कविता मुख्यतः ब्रजभाषा में लिखी जाती थी, खडी बोली हिंदी में कविता करना आश्चर्य का विषय था। गुप्त जी ने खड़ी बोली को संस्कारित ही नहीं किया, युगानुरुप विविध विषयों से सम्पन्न भी बनाया।

हमारी काव्य परम्परा का स्वरुप वेदों के समय से वाचिक रहा है। यह मूल विशेषता रही है। इसी तरह कीए छंद योजना की जाती रही है और इसका निर्वहन हम भारतेंदु व व्दिवेदी युग तक देखते है। गुप्तजी उस परम्परा के अंतिम समर्थ रचनाकार कहे जाते है, उन्हीं के बाद बदलाव शुरु हुए। मुक्त छंद की परम्परा से वाचिक गुणों की कमी हुई। इस दृष्टि से भी गुप्त जी के वैशिष्ट्य को भुलाया नहीं जा सकता। कवि अज्ञेय के शब्दों में :–

"वास्तव में यहीं कहना है कि परिवर्तन की एक भारी खाई के पार हमें खेले जाने वाले कर्णधार वही थे। उन्हीं को समझकर हम अपनी काव्य–परम्परा के साथ जुड सकते थे। नहीं तो हमारा आधुनिकता का दावा भी परिदृश्यता के कारण निरर्थक हो जाता।"

महादेवी वर्मा ने राष्ट्र के जन–जन की कल्याण कामना में प्रयत्नशील कवि मैथिलीशरण गुप्त की काव्यगत गहराई पर नितांत सटीक टिप्पणी की थी–

"गुप्त जी स्वभाव से लोक संग्रही कवि हैं, अतरू उनके स्वभाव के तल में ऐसी गम्भीर स्थिरता आवश्यक है, जिस पर हास और विनोद की सौ–सौ चंचल लहरें बनने के लिए मिट सके और मिटने के लिए बन सकें।"

उपर्युक्त उद्धहरणों के आलोक में यह मानना गलत न होगा कि गुप्त जी अपनी कविता में न केवल भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ मूल्यों के प्रवक्ता हैं, बल्कि हिंदी कविता में सभी आधुनिक मूल्यों के प्रथम संवाहक भी।

**संदर्भ :–**


1. हिंदी साहित्य का इतिहास – डा. नगेंद्र।
2. मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ – कविता कोश।
3. मैथिलीशरण गुप्त और भारत–भारती सृजनगाथा – एस. तिवारी, अवनीश।
4. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मेंरू पतिवियुक्ता नारी – 'फरहद', दादूलाल जोशी।
5. राष्ट्रप्रेम की भावना हिंदी साहित्य मंच – तिवारी, नीशू।



मो. न. 9392428593

ईमेल : sangeetagvyas@rediffmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 198-202

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# संत काव्य में व्यक्त सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना

**डॉ. आशा हर्बोला**

असि0 प्रो0, हिन्दी, एम. बी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल।

**सार :-**

संत काव्य काव्यधारा पन्द्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक अविरल रूप से प्रवाहित हो रही है। कबीरदास, रैदास, मलूकदास, सहजोबाई, रज्जब जैसे संत कवियों ने हिन्दी साहित्य की इस भक्तिधारा में अपना अपूर्व सहयोग दिया।

अपनी वाणियों के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न विकृतियों को दूर करने का सफल प्रयास किया। इन सभी संतों के मतानुसार साधना का यह द्वार सबके लिए खुला है और इन सबका आधार है–हृदय की पवित्रता, एक ऐसा हृदय जो समस्त वासनाओं, इच्छा ओं और द्वेषों से रहित है और जिसके लिए सभी अपने हों। यह है संतकाव्य में व्यक्त वास्तविक सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना।

**शब्द संकेत :-**

कथनी–करनी, स्वानुभूति, रहस्यवाद, मादकता, मूलाधार, आनन्दोद्रेक, रूपकात्माक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, आत्म विश्वास, आशावाद।

हिन्दी साहित्य में भक्ति से सम्बंध रखने वाली भावधारा के अन्तर्गत संतकाव्य का विशेष महत्व, है। यह धारा पन्द्रहवीं शताब्दि से उन्नीसवीं शताब्दी तक अविरल रूप से प्रवाहित हो रही है। कबीर, रैदास, मलूकदास, सहजोबाई, रज्जब आदि संतों ने इसे काव्य रूप प्रदान कर सामान्य जनता के निकट लाने का प्रयत्नन किया।

यह संत काव्य विचारधारा में बौद्ध धर्म से विशेष साम्य रखता है। इन संतों ने अपने विचारों में जो भावधारा अपनाई है, उसमें विठ्ठल सम्प्रदाय, रामानन्द सम्प्रदाय और सूफीमत का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उत्तर भारत में संत सम्प्रदाय की भूमि तैयार करने के लिए निम्नलिखित धार्मिक प्रभाव देखे जा सकते हैं–

1. बौद्ध धर्म से विकसित हुई कर्मकाण्डों के निषेध की प्रकृति के लिए वज्रयान की प्रतिक्रिया में उत्पन्न–नाथ सम्प्रदाय की आत्मानुभव और योग की परम्परा।
2. विठ्ठल सम्प्रदाय की प्रेमाभक्ति।
3. रामानन्द के प्रभाव से उत्पन्न अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत की सम्मिलित विचारधारा में भक्ति साधना।
4. सूफीमत की रूपकों से सम्पन्न रहस्यवादी मादकता और माया के नवीनीकरण की एक नई प्रवृत्ति।[1]

जहां तक आत्मज्ञान स्वानुभूति, निर्गुण ब्रह्म कथनी–करनी में सामंजस्य, पाखंड खंडन, मूर्तिपूजा विरोध, जातिगत भेदभाव की आलोचना, तीर्थयात्रा का निषेध भक्ति–भजन का समर्थन आदि का प्रश्न है, ये कवि नाथ

सिद्धों के अनुयायी हैं। इन का लक्ष्य था सामान्य अशिक्षित जनता में सत्य का निरूपण करना, करनी–कथनी में सामंजस्य पर बल देना तथा 'नाम' के माधुर्य को जनता तक पहुँचाना। इनके द्वारा समाज में व्याप्त समस्त रूढ़ियों, अंधपरम्पराओं का विरोध किया गया। 'प्रेम' इन संतों का मूल मंत्र है, जिसके आदर्श चातक, मीन आदि हैं। डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने ठीक ही लिखा है– ''निर्गुण भक्ति का मूल तत्व है–निर्गुण–सगुण से परे आदि, अनन्त, अनाम, अज्ञात ब्रह्म का नाम जप। संतों ने नाम जप को साधना का आधार माना है। नाम समस्त संशयों और बंधनों को विछिन्न कर देता हैं। नाम की भक्ति और मुक्ति का दाता है।''[2]

संत कवियों ने अपने समय में प्रचलित विभिन्न धर्म सम्प्रदायों से सभी उपयोगी तत्वों को ग्रहण करते हुए जनमानस को एक सामान्य धर्म मार्ग की ओर अग्रसर किया। इनकी अपनी एक प्रमुख विशेषता है– नीर–क्षीर–विवेक, निर्गुण ब्रह्म की उपासना, गुरू की महत्ता नाम की महत्ता, रूढ़ियों और मिथ्याचार का विरोध, रहस्यवाद की भावना तथा प्रेम की उत्कृष्ट व्यंजना। ये सभी कवि संत होते हुए भी वैरागी नहीं हैं। इन्होंने गृहस्थ, धर्म का निर्वहन करते हुए लोक धर्म का पालन तथा सामाजिक अन्याय का प्रतिकार किया। संत कवियों की प्रेमपंथी साधना एवं अभिव्यक्ति पर सूफी सम्प्रदाय का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। सूफी कवि एकेश्वरवादी होने के साथ ही प्रेम तत्व को ही सर्वस्व मानते हैं। उनका मत है कि प्रेम जाति–पाति के बंधनों से ऊपर हैं। प्रेम से आत्मा पवित्र होती है और प्रेम से ही ब्रह्म प्राप्ति संभव है। संत परम्परा के प्रतिनिधि कबीरदास प्रेम में बाह्य आडम्बर और बनावटीपन अर्थात दिखावे को सच्चे प्रेम का बाधक मानते हुए कहते हैं :–

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

संत कवियों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर से समय–समय पर करारा प्रहार किया, चाहे वह वर्ण व्यवस्था या जाति प्रथा का प्रश्न हो या हिन्दू मुस्लिम एकता का, वे मानव–कल्याण हेतु सत्कर्मों पर बल देते हैं :–

जाति से कर्म की श्रेष्ठता को स्वीकारते हैं–

ऊँचे कुल जनमियां, करनी ऊँच न होय।
सोवन क्लश सुरे भ़रया, साधू निंदा सोय।। – कबीर

इन सभी संतों ने समाज में व्याप्ता बाह्याडम्बरों पर तीखा प्रहार किया :–

माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर।
कर का माला छाड़ि कै, मन का माला फेर।।

मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कबीरदास कहते हैं :–

पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पुजूँ पहार।
तातैं यो चाकी भली, पीस खाय संसार।।

संत परम्पचरा के सभी कवि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को लेकर चिंतित हैं। वे सांमती परम्पराओं के युग में ये प्रमाणित करना चाहते हैं कि मंदिर, मस्जिद, राजदरबार, जातीय श्रेष्ठता, पांडित्य, पूजा–उपासना ये सब व्यर्थ हैं। उन्होंने ज्ञान के स्थान पर कर्म पर बल दिया। अपने समय की जटिल सामाजिक व्यरवस्था पर और गलित सोच पर करारा प्रहार किया। इनको समाज में जो विकृतियां दिखी, उनका इन्होंने निडरता पूर्वक

खण्डन किया और समस्त प्राणी मात्र के लिए मानवता के बीजमंत्र की उद्घोषणा की। संत अर्थात् 'साधु' शब्द को सच्चे अर्थ में परिभाषित करते हुए संत कबीर कहते हैं कि वृक्ष अपना फल स्वयं नहीं चखते, नदी अपना जल पीने के लिए संचित नहीं करती, इसी प्रकार साधुजन भी परमार्थ के लिए अपना शरीर धारण करते हैं–

वृच्छ न कबहूँ फल चखै, नदी न संचौ नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर।।

गुरू और संत को इस मत में सर्वोपरी माना गया है। बिना इनके उपदेश, सत्संग और आशीर्वाद के कोई ज्ञान नहीं हो सकता। पोथी ज्ञान से लदा हुआ व्यक्ति भार ढोने वाले उस गधे के समान है जो चन्दन ढोता हुआ भी उसकी सुगन्ध नहीं जान पाता।

वस्तुतः इन सभी संतों का धर्म एक ऐसा मानव धर्म अथवा विश्व धर्म है जिसमें जाति धर्म और वर्ण की कोई भिन्नता नहीं है। इसी बात को अभिव्यजिंत करते हुए कबीर कहते हैं–

जाति न पूछो साधु की, जब पूछो तब ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।

साधना का यह द्वार सबके लिए खुला है और इन सबका मूलाधार है– हृदय की पवित्रता। एक ऐसा हृदय जो समस्त वासनाओं, इच्छाओं और द्वेषों से रहित है और जिसके लिए सभी अपने हों। यह है संतकाव्य में व्यक्तम वास्तविक सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना। संतकाव्य परम्पराओं में यह सद्गुरू की अनन्त कृपा से ही सम्भव है, इसी से व्यक्ति भक्ति और मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। जहाँ पर किसी बाह्याडम्बर के लिए कोई स्थान नहीं है। इनकी रचनाओं में प्रेम, विश्वास, ज्ञान और भक्ति में अद्भुत सामंजस्य देखने को मिलता है।

इन संतों ने सैकड़ों छंदों में प्रेम का बखान किया है और ऐसा रसपान किया है जिसका खुमार कभी जाता नहीं।

कबीरदास जी कहते हैं–

हरि रस पीया जानिए, ये कबहुँ न जाय सुमार।
मैं मता घूमत रहै, नाही तन की सार।।[3]
तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिण्ड परान।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यह दादू का ज्ञान।।[4]

प्रेम में पूर्ण समर्पण भाव की अभिव्ययक्ति –

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझको सौंपने, क्या लागै है मेरा।। – संत कबीर

कबीर समस्त प्राणिमात्र को एक ही परमपिता की संतान बताते हुए कहते हैं :–

हिन्दू कहैं मोइ राम प्यारा, तुरक कहै रहमाना।
आपसे में दोउ लड़ि–लड़ि मुए, मरम कोई न जाना।।

संत कवियों का ध्येय समाज में समता और सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा करना है। सूफी कवियों से एकेश्वरवादी चिंतन को लेकर कबीर कहते हैं–

इक साधै सब साधत हैं, सब साधै सब जाय।

माली सींचैं मूल को, फूलै, फलै अघाय।।[5]

वे कहते हैं कि परमात्मा की साधना से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। बहुत से देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना से कुछ हाथ नहीं लगता।

इन सभी संत कवियों ने मानवीय गुणों का प्रचार–प्रसार किया है, उदारता, शील, क्षमा, संतोष, दीनता, दया, विचार, विवेक आदि को ग्रहण करने योग्य एवं क्रोध लोभ, तृष्णा, कनक–कामिनी आदि की निंदा की है। तत्वभ चिंतन की अगर बात की जाये तो इन्होंने ब्रह्म, जीव, जगत, माया, अवतार, मोक्ष–पुर्नजन्म आदि विषयों पर पर्याप्त विचार किया है। यद्यपि ये दार्शनिक नहीं थे तथापि उनमें पर्याप्त दार्शनिक अवधारणाएं मिलती हैं।

डॉ. बर्थवाल का मत है कि संत कवियों का ब्रह्म एकेश्वशरवादी विचारधारा से पुष्ट अद्वैतवाद के निकट है किंतु उपनिषद, नाथ पंथ, इस्ल्ाम एवं सूफी मान्यताएं घुली–मिली मिलती हैं। इनका ब्रह्म त्रिगुणातीत द्वैताद्वैत विलक्षण अलख, अगोचर, सगुण–निर्गुण से परे प्रेम परावार और तर्कों से ऊपर है।[6]

संत कवियों ने मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, मठ मंदिरों, देवी–देवताओं, मेलों, अखाड़ों आदि का कड़ा विरोध किया क्योंकि ये सभी अहंकार के पोषक और बाह्याडम्बरों के मूल है। इन्हों ने 'काया साधना' पर बल दिया। काया साधना उनकी सहज साधना का ही अंग है जो समाधि तक ही सीमित है। साधना के समस्तर उपकरण इसी काया के निहित हैं–

काया देबल काया देव, काया पूजा पानी।
काया माहि अरसठ तीरथ, काया माहे काशी।

इन सबका एक ही आचरण था–भक्ति, एक ही धर्म था–प्रेम, एक ही विश्वास था– मानवता, एक ही भाव था समर्पण–

संतों का मार्ग ज्ञान का मार्ग है, इसमें गुरू संत, सत्य संगति, विवेक, वैराग्य, आत्म निरीक्षण, और परमात्मा की कृपा पर बल दिया गया है। संत कर्म को भक्ति के एक साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। वे अहंकार का पोषण करने वाले सभी धार्मिक, सामाजिक और व्यैक्तिक कर्मों का विरोध करते हैं। जहाँ तक शैली का प्रश्न है वहां संतों ने किसी शास्त्र–सम्मत शैली का अनुसरण नहीं किया। पद, दोहा, रमैनी, चौपाई, सवैया आदि छंदों में अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त की, दोहा इन सबका प्रिय छंद रहा है। जो सहज ही गेय और कंठस्थ करने योग्य है, दार्शनिक तथ्यों के लिए इन्होंने प्रतीक, उलट बांसी रूपक आदि विधियों को अपनाया है जो इनके स्वभाव के अनुकूल और जनता को चमत्कृत करने वाली थी। उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अर्थातरन्यास आदि अलंकारों का सहज प्रयोग मिलता है।

संत काव्य की भाषा जनता की भाषा है। ये सभी संत भिन्न–भिन्न स्थानों पर रहते थे, पर्यटन करते थे, फलतः उनकी भाषा में अनेक प्रांतीय और आंचलिक शब्दों का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि काल और स्थान की दूरी इनके बीच बाधक नहीं बनी, उसी प्रकार जातिगत भेदभाव से भी इनमें कोई अन्तंर नहीं था।

डॉ. वर्थवाल ने इनकी कवि भावना का समर्थन करते हुए बड़ी महत्वतपूर्ण बात कही है– ''इनकी काव्य रचना सम्बन्धी सफलता इनके रूपकात्मक प्रेम, संगीत, विनय तथा आनन्दोदेशक में देखी जा सकती है क्योंकि उन्हीं में उनकी आन्तरिक अनुभूति का पता चलता है। सौन्दर्य, प्रेम एवं सत्य की त्रयी की अभिव्यक्ति भी इन्हीं

रचनाओं में मिलती है।''[7]

संत कवि निर्गुण ब्रह्म के उपासक होने के साथ ही तत्कालीन समाज में व्याप्त समस्त वादों को मिटा देना चाहते हैं, उनका काव्य इन समस्त वादों को जड़ से मिटाने की क्षमता संजोए हुए हैं जो जातिवाद, वर्गवाद, सम्प्रदायवाद की भावनाओं से ऊपर उठकर विश्व भर में बंधुत्व और मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित करते हुए, इन सब वर्गों के कारण समाज के लोगों के दिलों में जो खाईयां बनी हुई हैं, उन सबको पाट देना चाहते हैं। इस प्रकार हिन्दी काव्य में संतकाव्य अपनी दार्शनिक चेतना सहज अभिव्यक्ति एवं जनमानस से सीधे साक्षात्कार के कारण अपूर्व महत्व रखता है। मानवता का जो अमर संदेश वे देते हैं, वह हिन्दी कविता की अमूल्य निधि है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने संत काव्य का मूल्यांकन करते हुए सटीक टिप्पणी की है– ''उनमें जीवन का संदेश है। अनुभूति की तन्मयता है, जीवन के विश्लेषण में एक–एक अंग की सूक्ष्मति–सूक्ष्म परख है, उनमें निहित रहस्य की सूचना है। आत्मविश्वास, आशावाद और आत्माविभक्ति की जीवन्त शक्तियाँ संतों की वाणी में हैं। इसलिए सौन्दर्य के साथ सत्य को लेकर संत कवियों ने हिन्दी काव्य को सम्पन्न किया है।''[8]

**संदर्भ ग्रंथ सूची :-**


1. हिन्दी साहित्य–द्वितीय खण्ड, सं. धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, पृष्ठ–195
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. नागेन्द्र, पृष्ठ–149
3. संत बानी संग्रह, भाग–1, पृष्ठ–91
4. संत बानी संग्रह, भाग–1, पृष्ठ–91
5. संत मिया जी की बानी, पृष्ठ–262
6. हिंन्दी काव्य, में निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ–147
7. हिन्दी काव्य, में निर्गुण सम्प्रदाय–अनु. परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ –348
8. हिन्दी साहित्य, सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ–239–40

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 203-204

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# मनुष्य का तिरस्कार और मशीनों से प्यार : चुने हुए हिन्दी और मलयालम कहानी के संदर्भ में

**डॉ. अजिता कुमारी, जे.**

Asstt. Professor, Dept. of Hindi Nirmala College, Muvattuppuzha

आज मनुष्य खुद से ज्यादा, अपनों से ज्यादा, मशीनों पर विश्वास रखता है, उनके साथ ज्यादा समय बिताता है, और उनसे ही सबसे ज्यादा प्यार भी करता है। आज मनुष्य खुद में इतना उलझा हुआ है कि उसके पास साथ जीने वालों, परिवार वालों को देने केलिए वक्त नहीं है। इस बनावटी, मशीनी दुनिया में एक नशा सा रहता है, जिसमें मनुष्य खो सा गया है। प्रस्तुत अवस्था को 'सितारा' जी की कहानी 'कलि' और 'आकांक्षा पारे काशिव' ने 'शिफ्ट, कंट्रोल, ऑल्ट = डिलीट' के जरिये व्यक्त किया है। शिफ्ट, कंट्रोल, ऑल्ट = डिलीट' में नायक और खलनायक एक ही व्यक्ति है, सोफ्टवेयर इंजिनीयर सुदीप कॉलेज के समय से ही काफी होशियार छात्र था पर वह किसी से ज्यादा बात नहीं करता था। कम्प्यूटर स्क्रीन के जरिये ही वह दुनिया को देखता है। उसमें सुख, दुःख, अपनापन, प्यार, आदि भाव बिल्कुल भी नहीं है। ऑफिस में भी वह या तो पूरा वक्त काम करता है। या कंप्यूटर गेम खेलता रहता है उसकी बीवी अनुप्रिया हँसती–बोलती, खिलखिलाती, सुदीप से एकदम अलग थी। शादी के कई साल बाद भी उनके बच्चे भी नहीं थे।

एक दिन अनुप्रिया को इतना गुस्सा आता है कि छह घंटे लगातार वीडियोगेम खेलने वाले सुदीप का कंप्यूटर शटडाउन करती है, जिससे सुदीप को इतना गुस्सा आता है कि वह बेसबॉल की बेट से अनुप्रिया का सिर फोड़के उसे मार देता है, उसके टुकड़े–टुकड़े कर फ्रीजर में बंद कर देता है, फिर फेसबुक पर मैसेज एवं ट्वीट वरता है। सुदीप के लिए कंप्यूटर और वीडियोगेम उसकी जिंदगी बन गए हैं। पुलिस द्वारा गिरफ्तार किये जाने पर या फाँसी की सजा मिलने पर भी वह चिंतित नहीं होता। सुदीप को तो अपने फाँसी की सजा कंप्यूटर के बजाये टाइपराइटर पर टाइप करने से घिन आती है उसे जनता एवं मीडिया।[1] 'मशीनी मानव' नाम से प्रसिद्ध कर देती है। सुदीप जैसे लोग आज कई सारे हैं जो सिर्फ और सिर्फ कम्प्यूटर स्क्रीन में हो अपनी दुनिया बसाये हुए हैं। इन्सानों से मिलना, बात करना, साथ बैठकर खाना–खाना वक्त गुजारना, ये सब उनकेलिए नामुमकिन सी बात है। जिस चीज का उपयोग करना चाहिए, उससे वह प्यार कर बैठता है, और जिसे प्यार देना चाहिए, उसे नजरंदाज कर देता है। प्रस्तुत कहानी मनुष्य की इसी बदलती हुई मानसिक स्थिति को द्योतक है। इस कहानी में जहाँ पति, कम्प्यूटर और वीडियोगेम के चंगुल में फँस गया है, वहीं 'सितारा' की 'कलि' में पत्नी वीडियोगेम के चंगुल में फर्सी हुई है। नायिका कहती है कि सोते समय और गेम खेलते समय उसे कोई परेशान करे, तो उसे बहुत गुस्सा आता है। नायिका अपने पति और सात साल की बेटी के साथ नगर के एक छोटे

से फ्लाट में रहती है। यहाँ पति अपनी पत्नी को उसके अकेलेपन को समझता है, इसलिए ऑफिस से मिले वीडियोगेम को घर ले आता है। आठ महीने में बीवी को इसकी लत लग जाती है। बेटी को स्कूल और पति को ऑफिस भेजकर वह बाकी सारा वक्त वीडियोगेम खेलती रहती है। घर के सारे काम, एक पत्नी और माँ के सारे कर्तव्यों को वह नजरंदाज करती है।

पति के ऊपर घर बनाने की, लोन चुकाने की काफी जिम्मेदारियाँ थीं, पर वह कभी भी पति का सहारा नहीं बन पायी। नायिका को गाड़ी चलाना नहीं आता। पर कार रेस में वह जीतने लगी। उसके मन के सारे कांप्लेक्स मिटने लगे। अपनी बेटी को एक बार भी वीडियोगेम खेलने देना उसे गंवारा नहीं था वीडियोगेम में उसे सबसे ज्यादा पसंद हेरकुलीस का गेम था। उसने हेरकुलीस को प्यार करना शुरु किया, उसे सारी मुसीबतों से बचाया, पर अचानक एक दिन हेरकुलीस उसकी पकड़ से बाहर आने लगा। हेरुकुलीस को बचाने का सारा पैंतरा असफल हो गया। पति और बेटी ने अपनी नाराजगी साफ बयान की। हेरकुलीस को बचाने की रठ ने नायिका की नींद को भी नहीं बक्शा एक पूरी रात वह हेरकुलीस को बचाने की चाह में सोफे में बैठकर वीडियोगेम खेलती रही। पति दो–तीन बार आके देखकर वापस कमरे में चले गए, तो मेरी खुशी खो गई क्योंकि हेरकुलीस फिर से सेनानियों के बीच फँस गया था।' पति पत्नि के हाथ से कंट्रोलर छीन लेता है और उसे तोड़ देता है। महीनों बाद दुख में ही सही पत्नी सुबह अपने बिस्तर पर लेटती है, और खिड़कियों से बाहर आसमान को देखती है। घर पूरी तरह बिगड़ चुका था।

प्रियन और बेटी ऑफिस और स्कूल जा चुके थे कि तभी स्कूल से फोन आता है कि बच्चों की स्कूल वेन का आक्सिडेंट हुआ है, पर वेन के बच्चे मामूली खरोंचों से बच गये हैं। बेटी पिता को बुलाने के लिए कहती है, और स्कूल वाले पिता के कहने पर माँ को भी बेटी के अस्पताल भर्ती होने की खबर देते हैं। पत्नी को अपनी गलती का एहसास होता है, और वह फिर कभी भी वीडियोगेम न खेलने का फैसला करती है। 'पर बेचारे हेरकुलीस को... खेल पुरी तरह छोड़ने से पहले सेनानियों के चंगुल से बचाना होगा ऐसा सोचकर वह फिर से टूटे हुए कनेक्शन्स वापस जोड़ती है। पर इस खेल में ही नहीं, जिंदगी में भी वह बुरी तरह हार जाती है। यहाँ दोनों ही कहानियों में मूलपात्र अपनी जिंदगी खो बैठते हैं। रियल और रील जिंदगी में फर्क करने में वे दोनों असफल हो जाते हैं। पहली कहानी का नायक हँसते–हँसते मौत को गले लगाने के लिए तैयार है क्योंकि उसे जिंदगी की बिल्कुल कद्र नहीं।

दूसरी कहानी में नायिका से उसका पूरा परिवार पूरी तरह छूटा नहीं है, पर महज वीडियोगेम की हार उसके दिमागी संतुलन को तोड़ने में सक्षम साबित होती है। पहले इन्सान एक दूसरे से बात करता था, अपने कॉप्लेक्स, अकेलेपन का दूर करता था, पर आज वीडियोगेम के माध्यम से लोग असल जिंदगी में हुई नाकामियों और असफलता को जीतने का प्रयास करते हैं।

**संदर्भ :–**

1. सितारा एस. कलि, बेशक, पृष्ठ 61–62

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 205-207

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# आधुनिक युग में मीरा के पदों का प्रभाव

**विनीत शर्मा**

प्राथमिक संगीत शिक्षक, केंद्रीय विद्यालय, समालखा।

**भूमिका :–**

मीरा एक रचनाकार होने के साथ–साथ श्रेष्ठ संगीतकार भी थी। उनकी भक्ति भावना और संगीत के समन्वय ने उन्हें सदा के लिये अमर बना दिया। मीरा आज के युग में भी उतनी ही प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं, जितनी वह अपने समकालीन युग में थी, अपितु आज और अधिक प्रासंगिक बनकर संस्पर्श करने लगी हैं। चाहे यजुर्वेद का भद्रभाव हो या सामवेद की सांगीतिक परम्परा का विविध राग रागिनियों में विकास करना हो, या गीता के निष्काम भाव का पल्लवन हो, सबकी भूमिका का संदर्भ भक्त मीरा के पदों तथा भजनों से सम्बंधित है।

**भारतीय संगीत पर मीराबाई का प्रभाव :–**

मीरा की आत्मा अपने प्रभु के दर्शन के लिये इतनी व्याकुल थी कि उससे मिलने के लिये उन्होंने सब साधन खोज निकाले, परन्तु मीरा को कहीं भी प्रभु मिलन की आस दिखाई न दी, तब उन्होंने हाथ में इकतारा लेकर संगीत के सुरों से अपनी भक्ति भावना को प्रकट किया। संगीत के इसी गेयत्व ने उन्हें अमरत्व प्रदान किया। उनका गान उनकी आह से निकलकर सीधे कृष्ण भगवान के हृदय में पहुंच कर अनाहत नाद बन गया था, इसलिये मीरा के पदों में आज भी संगीत की अविरल धारा प्रवाहित हो रही है। गीति काव्य की इस गायिका को देखकर महाकवि निराला जी ने सही कहा है कि 'मीरा संगीत की देवी थी'। संगीत साधना का उद्देश्य मुलतः मोक्ष साधन है, इसका प्रमाण मीराबाई के संगीत में मिलता है। जिस प्रकार उच्च काव्य का जन्म अनुभव से होता है, उसी प्रकार संगीत साधना जब आत्मानंद के समय की जाती है, तब दिव्य आनंद मिलता है। मीरा बचपन से ही भक्ति तथा संगीत में डूबी हुई थी। मीरा के पदों में प्रेम तथा विरह का गुंफन दिखाई देता है।

इन पदों को नृत्य करते–करते गायन का रूप देकर अपने ईष्ट देवता को प्रसन्न करना मीरा का लक्ष्य रहा। मीरा के पदों में गेयत्व अधिक है, इसलिये मीरा की अधिकतर पद रचनाएं गायन में मिलती हैं। मीरा ने भक्ति गीतों की सराय गायक पथियों के लिये खुली रखी है। निश्चित रूप से संगीत रचनाकारों में मीरा का स्थान अलग तथा महत्वपूर्ण था। मीरा की संगीत निपुणता उनके काव्य को लय, कोमलता तथा मिठास देती है। मीरा के पदों में एक नर्तक का ताल ज्ञान है, जिसकी टेक गिरधर का रमण है।

रंग भरी राग भरी राग सूं भरी री।
होली खेल्यां स्याम संग, रंग सूं भरी री।

मीरा के पद गेय तत्व से युक्त होकर छंदबद्ध अवस्थ हैं परन्तु आवेग नियमों के तट बंध छित्र भित्र कर

देती है। अन्य संत कवियों की भान्ति मीरा के गीतों की अद्‌भुत गीतात्मकता ने भारत में इनकी पदावली को निरविधी काल में अधिष्टित किया।

**भारतीय समाज पर मीराबाई का प्रभाव :–**

मीरा के जीवनकाल से लेकर आज तक उनके पदों का भक्ति तथा संगीत का सीधा सम्बंध रहा है। जनमानस पर मीरा का इतना प्रभाव पड़ा कि हिन्दी, गुजराती तथा बांगला भाषाओं में ही नहीं अंग्रेजी में भी मीरा के पदों का भाषानुवाद हुआ है। पूना के हरिकृष्ण मठ में श्रीमती इन्दिरा देवी ने मीरा के नाम से श्रद्धांजलि में 136 पुष्पांजलि में 95 सुधांजलि में 185 तथा दीपांजलि में 167 भजन लिखे हैं। उनकी यह श्रद्धा रही है कि ये भजन स्वयं मीरा ने उन्हें डिक्टेट किये हैं। भक्ति भागिरथी राजरानी मीरा सृजिक साहित्य भारतीय समाज की संपदा है। मीरा की भक्ति रस पूर्ण वाणी ने भारतीय जनमन को ही नहीं विश्व के भक्त हृदयों तक को विमोहित किया है। मीरा के साहित्य ने पूरे देश को प्रभावित किया है। यह समाज पहले उनकी रचनाओं को पढ़ कर तथा सुन कर उसके साथ अपने हृदय के भावों का जब तारतम्य जुड़ा पाता है, तब वह जिज्ञासु भी हो उठता है कि ऐसी रचना वाला कौन था और तब मीराबाई के जीवन के ऐतिहासिक एवं जनश्रुति आधारित तथ्यों को जानकर उसका मानस रचनाकार के प्रति और भी जुड़ जाता है।

मीरा की रचनाओं में वेदना अपनी मौलिकता में और पूरी सहजता में प्रकट होती है। वेदना और प्रेमाभिव्यक्ति जब सुरों में ढ़लने योग्य हो जाएं तब जनमानस के कंठ में बस जाती हैं। श्रोता की वेदना को साम्य मिल जाता है। मीरा की रचनाएं आज भी भारतीय समाज के हृदय में बसी है, आज भी भक्ति संगीत के कार्यक्रमों में मीरा के भजन आवश्यक अंग रहते हैं। समाज पर मीरा के प्रभाव को बढ़ाने में उनसे सम्बन्धित जनश्रुतियों का भी हाथ रहा है।

मीरा को ज़हर का प्याला दिया जाना, साँप का पिटारा भेजा जाना, शूलों की सेज पर सुलाना तथा अंत में द्वारिका के रणछोड़ मंदिर में उनकी मूर्ती में ही समा जाना, ये जनश्रुतियां भले ही ऐतिहासिक रूप से असत्य ही हों, परन्तु मीरा के प्रभाव को जनमानस में दुगुना तिगुना कर देती हैं। मीरा के पदों से लोक हृदय का स्पंदन जुड़ा है। ऐसा मर्मस्पर्शी तथा अद्‌भुत काव्य पाँच सौ वर्षों के पश्चात भी पूरे विश्व में कहीं देखने को नहीं मिलता, यही मीरा की सबसे बड़ी विशेषता है।

मानव की आत्मा बनकर बोलने वाली त्याग व प्रेम की मूर्ती मीरा, जिसका गीत गुंजन रामायण पाठ की भान्ति देश के कोने–कोने में होता रहा है। सामाजिक दृष्टि से मीरा शोषित, अपमानित और पीड़ित नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती है। किसी भी महान उद्देश्य को लेकर चलने में अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं और वे बाधाएं भी परिजनों द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। संघर्ष के मूल में यदि न्याय, धर्म, लोकहित की भावनाएं निहित हों तो वह संघर्ष सदैव सफल होता है। मीरा के जीवन का संघर्ष भी ऐसा ही था। मीरा की आध्यात्मिकता लोक संस्कारों से आप्लावित है। उन्होंने नारी जीवन के वास्तविक अनुभवों को शब्दबद्ध किया है। उन्होंने सिर्फ अपनी ही व्यथा नहीं कही, बल्कि अपने युग की असंख्य नारियों की व्यथा कही है। संपूर्ण भारतवर्ष में मीरा के पद घर–घर में समाज और मंदिरों में भजन, कीर्तन और पूजन में गाए जाते हैं। उन्होंने सभी संप्रदायों और विविध भाषा भाषी जनों को भक्ति के रंग में रंगा है।

मीरा के पद किसी विशेष संप्रदाय से सम्बंधित नहीं थे। इसी कारण मीरा भारतीय जनमानस पर छा गई।

लोक चित्त में घटित एक सहज शान्त प्रक्रिया द्वारा मीरा का प्रभाव जन–जन तक व्यापी हुआ है। यही मीरा के प्रभाव की महत्ता है।

**निष्कर्ष :–**

मीरा की गणना भारत के महान संत कवियों में की जानी चाहिये, क्योंकि काव्य रचना में यदि शुद्ध भावना भी सम्मिलित हो जाये तो वह रचना तथा रचनाकार दोनों अमर हो जाते हैं। अर्थ व धन की कामना से दूर मीरा तो केवल अपने प्रभु कृष्ण में लीन रहती थी। परिवार और समाज के द्वारा दी गई यातनाएं भी उन्हें अपने पथ से ना डिगा सकी। कृष्ण पर उनका अटूट विश्वास उन्हें हर बाधा से पार ले गया। गायन तथा नृत्य के माध्यम से वह अपने प्रियतम को रिझाती थी। मीरा की संगीतबद्ध रचनाएं आज भी प्रभु भक्तों के लिये प्रेरणा स्त्रोत तथा मार्गदर्शक हैं। सारा भारतवर्ष भक्त शिरोमणी मीराबाई पर गर्व करता रहेगा।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :–**


1. मीरा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व।
2. संजय मल्होत्रा।
3. मीरा संगीत, अंक 1978
4. मीराबाई, डा. प्रभात।



vineetsharma1501@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 208-211

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# गांधी की संकल्पना राष्ट्रभाषा हिंदी

**डॉ. निशा चौहान**

सहायक–आचार्या, राजकीय कन्या महाविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश। पिन कोड 171001

**सारांश :–**

हिन्दी भाषा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए गांधी जी ने कहा था कि मैं हिन्दी भाषा उसे कहता हूं जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी और फारसी में लिखते हैं : गांधी जी ने भारत की स्वतंत्रता के लिए सिर्फ जन–जागरण अभियान ही नहीं चलाया था अपितु वह पहले ऐसे राजनेता थे जिन्होंने राष्ट्र हित के लिए हिंदी को राष्ट्रभाषा की संकल्पना के रूप में प्रस्तुत किया था। सन् 1921 में 'यंग इंडिया' में प्रकाशित अपने एक लेख के माध्यम से गांधी जी ने इस बात को स्पष्ट किया था कि भारत में हिंदी का अपना भावनात्मक एवं राष्ट्रीय महत्व है और भारत की स्वतंत्रता के लिए समस्त राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को हिंदी सीखना आवश्यक होगा, जिससे राष्ट्र की समस्त कार्यवाहियां हिंदी में ही की जा सके। उन्होंने इसके लिए पूरे देश में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में जोरदार ढंग से प्रचार प्रसार करते हुए हिंदी को राष्ट्रीय एकता, अखंडता और स्वाभिमान के रूप में प्रतिष्ठित किया। राष्ट्रभाषा प्रचार अभियान के दौरान एक बार गांधी जी ने कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना कोई भी राज्य गूंगा हो जाता है। अतः भारत की भी एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए ताकि भारत अपनी बात बोल सकें। इसके लिए उन्होंने हिंदी को सर्वश्रेष्ठ भाषा माना, क्योंकि पूरे भारत में मात्र हिंदी ही आपसी सहयोग, सहचार्य एवं प्रेम की भाषा है। महात्मा गांधी की मातृभाषा गुजराती थी और उन्हें अंग्रेजी भाषा का उच्च कोटि का ज्ञान था। सभी भारतीय भाषाओं के प्रति उनके मन में विशिष्ट सम्मान भावना थी।

अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक कारकों के अलावा गांधी जी ने हिंदी में छिपी भारतीय मूल्यों और परंपराओं के संवर्धन तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने की क्षमता को परखते हुए भारत की स्वतंत्रता में इसके उपयोग को ढाल बनाया था। आजादी के बाद संवैधानिक दृष्टि से राजभाषा घोषित किए जाने पर भी हिंदी अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व एवं प्रांतीय भाषाओं के विवाद के कारण ना तो पूरी तरह से राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो पाई है और ना ही राष्ट्रभाषा के रूप में सम्मानित। महात्मा गांधी की 150वीं जयंती पर आज सभी यह संकल्प लें, जो महात्मा गांधी ने 29 मार्च, 1918 को इंदौर में हुए आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग करते हुए कहा था – जैसे ब्रिटिश अंग्रेजी बोलते हैं और सारे कामों में अंग्रेजी का ही प्रयोग करते हैं वैसे ही मैं सभी से प्रार्थना करता हूं कि हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का सम्मान अदा करें और इसे राष्ट्रीय भाषा बनाकर अपने कर्तव्य को निभाएं।

**बीज शब्द :–** राष्ट्रभाषा, संस्कृति, एकता, सम्मान एवं उन्नति।

राष्ट्रभाषा का शाब्दिक अर्थ है– समस्त राष्ट्र में प्रयुक्त भाषा। अर्थात जो भाषा समस्त राष्ट्र में जन–जन के विचार–विनिमय, शिक्षा–दीक्षा एवं प्रशासनिक कार्य में प्रयुक्त होती है वह राष्ट्रभाषा कहलाती है। राष्ट्रभाषा सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर देश को जोड़ने का कार्य करती हैं और विभिन्न समुदायों के बीच भावनात्मक एकता स्थापित करती है।[1]

महात्मा गांधी हिंदी को भाषा ही नहीं बल्कि देश को जोड़ने की कड़ी मानते थे। आजादी के आंदोलन के सबसे बड़े नेता रहे मोहनदास करमचंद गांधी भले ही खुद गुजराती भाषी थे लेकिन हिंदी को लेकर उनका योगदान अतुलनीय रहा है। जब दक्षिण अफ्रीका से गांधी भारत आए तो उनका पहला आंदोलन सन् 1917 को चंपारण से शुरू हुआ। लेकिन चंपारण में गांधी जी को सबसे बड़ी दिक्कत भाषा को लेकर आई। इस मामले में कुछ स्थानीय साथियों ने उनकी मदद की। लेकिन गांधीजी ने खुद बहुत जतन से हिंदी सीखी। स्वतंत्रता आंदोलन में आने से पहले गांधी जी ने पूरे देश का भ्रमण किया और पाया कि हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो पूरे देश को जोड़ सकती है। इसलिए उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात कही।[2]

हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने के संबंध में गांधी जी ने तर्क देते हुए अपील की कि 'अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिए ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे जनता का अधिकांश भाग पहले से ही जानता समझता हो और हिंदी इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक है।'[3]

सन 1909 में 'हिंद स्वराज' में गांधी जी ने एक 'भाषा नीति' की घोषणा करते हुए लोगों से अपील की थी कि संपूर्ण भारत के लिए हिंदी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए भले ही इसे उर्दू या देवनागरी लिपि में लिखा जाए। लिपि लेखन की वैकल्पिक धारणा के पीछे भी गांधी का हिंदू–मुस्लिम एकता बनी रहने का दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसा करके वे भारतीयों द्वारा आपस में व्यवहार में लाई जा रही अंग्रेजी भाषा को दूर करना चाहते थे।[4]

1917 में चंपारण यात्रा के दौरान 3 जून को उन्होंने एक परिपत्र निकाला था जिसमें हिंदी की महत्ता के संदर्भ में लिखा था– 'हिंदी जल्दी से जल्दी अंग्रेजी का स्थान ले ले, यह ईश्वरीय संकेत जान पड़ता है। हिंदी शिक्षित वर्गों के बीच समान माध्यम ही नहीं बल्कि जनसाधारण के ह्रदय तक पहुंचने का द्वार बन सकती है। इस दिशा में कोई देसी भाषा इसकी समानता नहीं कर सकती। अंग्रेजी तो कदापि नहीं कर सकती।'[5]

29 मार्च, 1918 को इंदौर में हुए आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग करते हुए गांधी ने कहा था– 'जैसे ब्रिटिश अंग्रेजी में बोलते हैं और सारे कामों में अंग्रेजी का ही प्रयोग करते हैं वैसे ही मैं सभी से प्रार्थना करता हूं कि हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का सम्मान अदा करें। इसे राष्ट्रीय भाषा बनाकर अपने कर्तव्य को निभाना चाहिए।' महात्मा गांधी का मानना था कि हिंदी का प्रयोग केवल बोलचाल और देश की आधिकारिक भाषा के तौर पर ही नहीं बल्कि कार्यालयों की सुनवाई के लिए भी किया जाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता तो लोगों को राजनीतिक प्रक्रिया पूरी तरह से समझ नहीं आ पाएगी। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषाओं को कोर्ट में जरूर आगे बढ़ाना चाहिए। जब तक हम हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं दिला देते और दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं को उनका जरूरी महत्व नहीं दिला देते, तब तक स्वराज्य की सारी बातें अर्थहीन ही रहेगी।'[6]

गांधी जी ने द्रविड़ प्रदेशों में राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए हिंदी को विधिवत सिखाने के लिए

'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की, जिसका मुख्यालय मद्रास में था और वहां विशेष रूप से पुरुषोत्तम दास टंडन, वेंकटेश नारायण तिवारी, शिव प्रसाद गुप्ता जैसे हिंदी–सेवियों को हिंदी के प्रचार के लिए भेजा। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में विस्तार देने के लिए गांधी ने पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक एक हिंदी नवजागरण महाअभियान छेड़ा था।[7]

पूरे राष्ट्रीय आंदोलन को गांधी जी ने हिंदी से जोड़ दिया था। यही कारण है कि अन्य भाषा भाषी नेताओं को भी हिंदी की शरण में आना पड़ा। गांधी जी के ज्यादातर भाषण गुजराती टोन की हिंदी में होते थे, जिसने उन्हें जनता से इतना गहरा जुड़ा दिया।[8]

1917 में कोलकाता कांग्रेस अधिवेशन में राष्ट्रभाषा प्रचार संबंधी सम्मेलन में तिलक के अंग्रेजी में भाषण देने की गांधीजी ने जमकर आलोचना की थी। उन्होंने अपनी अपील में वहां उपस्थित सभी लोगों से कहा था कि– हर भारतीय को हिंदी सीखने की आवश्यकता है क्योंकि अपनों तक अपनी बात हम अपनी भाषा द्वारा ही पहुंचा सकते हैं। महात्मा गांधी किसी भाषा के विरोधी नहीं थे, वरन् वे तो अधिक से अधिक भाषाओं को सीखने में रुचि रखने की सीख देते थे। लेकिन इसके बावजूद भी वे प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसकी मातृभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के सदैव समर्थक रहे। गांधी जी ने गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर एवं लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसे महान् भारतीयों के साथ–साथ अनेक राष्ट्रीय नेताओं से हिंदी सीखने का आग्रह किया था। पहली बार महात्मा गांधी ने भाषा के प्रश्न को स्वराज्य से जोड़ते हुए देश के करोड़ों भूखे, अनपढ़ और दलित जैसे आम भारतीय की भाषा हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने पर बल दिया। गांधी जी ने अपने रचनात्मक कार्य में भी हिंदी प्रचार को महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया था।[9]

हिंदी के कवियों व लेखकों के साथ भी गांधीजी के रिश्ते बहुत सघन रहे थे। हिंदी लेखकों पर उनका क्या प्रभाव रहा, यह समझने के लिए उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की रचनाएं पढ़नी चाहिए। प्रेमचंद ने माना भी है कि उनका हिंदी और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ना गांधीजी के कारण ही संभव हुआ।[10]

गांधी सिर्फ राष्ट्रीय नेता ही नहीं थे, अपने समय के बहुत अच्छे पत्रकार भी थे। हिंदी, अंग्रेजी और गुजराती भाषाओं में उन्होंने कई अखबार भी निकाले। हिंदी में उन्होंने दो अखबार निकाले–नवजीवन और हरिजन सेवक। अपने ज्यादातर पत्रों का जवाब भी गांधीजी हिंदी में ही देना पसंद करते थे।[11]

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात पूरी दुनिया के पत्रकार अपने समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में भारतीय नेताओं के वक्तव्य और संदेश छापने के लिए अलग–अलग नेताओं से साक्षात्कार ले रहे थे। उसी समय की एक घटना है कि एक विदेशी पत्रकार ने महात्मा गांधी से अपना संदेश अंग्रेजी में देने का अनुरोध किया तो बापू ने बना कर दिया और कहा कि वह हिंदी में ही जवाब देंगे, तो पत्रकार कहने लगा कि आपका यह संदेश सिर्फ भारतीयों के लिए ही नहीं है अपितु पूरे विश्व के लिए है। अतः आपको अंग्रेजी में ही बोलना पड़ेगा। वह पत्रकार लगभग जिद पर उतर आया, महात्मा गांधी कुछ समय तक तो शांत रहे लेकिन उस पत्रकार की हठधर्मिता को देखते हुए लगभग गुस्से में बापू ने कहा कि दुनिया से कह दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता। यह प्रसंग गांधी के हिंदी भाषा के प्रति सर्वोच्च सम्मान का परिचायक है।[12]

आजादी के बाद 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा द्वारा हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिए हुए लगभग 70 वर्ष हो चुके हैं, लेकिन आज भी हिंदी ना तो पूरी तरह से राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो पाई है और ना

ही राष्ट्रभाषा के रूप में सम्मानित। भारत में हिंदी बोलने और समझने वालों की संख्या करीब 70 करोड़ है। देश के बाहर भी करोड़ों लोग इसे जानते समझते हैं। इसके बावजूद भी आज यहां अंग्रेजी, हिंदी समेत तमाम भारतीय भाषाओं पर हावी है।[13] जिससे यहां की भाषाओं का अस्तित्व खतरे में है।

विदेशी भाषा का किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की राजकाज और शिक्षा की भाषा होना सांस्कृतिक दासता है जिसका गांधी ने अपने भाषणों और लेखों के माध्यम से लोगों को समझाने का भरसक प्रयास किया था कि यदि हमने अपनी मातृभाषा की उन्नति नहीं की और इस पूर्वाग्रह से ग्रसित रहे कि अंग्रेजी के माध्यम से ही हम अपने उच्च विचार प्रकट कर सकते हैं और उनका विकास कर सकते हैं तो निसंदेह भारतीय सदा के लिए गुलाम बन कर रह जाएंगे।[14]

निश्चित रूप से यह भाषिक गुलामी राष्ट्र की सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकता के लिए बहुत बड़ा खतरा बनती जा रही है, जिसके निदान की नितांत आवश्यकता है। सभी देशवासी जीवन के हर क्षेत्र में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी का अधिक से अधिक प्रयोग करने का संकल्प लें। हिंदी के साथ–साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को भी सम्मान पूर्वक सीखने में गर्व महसूस करें ताकि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का गांधी जी का सपना पूर्ण हो सके।

**संदर्भ सूची :–**


1. http://m.bharatdiscovery.org>india
2. http://www.livehindistan.com
3. http://hindiwebduniya.com
4. http://hindikunj.com>2016@10
5. http://m.bharatdiscovery.org>india
6. http://hindi.news18.com>new
7. http://hindikunj.com>2016@10
8. http://www.livehindistan.com
9. http://hindikunj.com>2016@10
10. http://www.livehindistan.com
11. http://www.livehindistan.com
12. http://hindikunj.com>2016@10
13. http://satyagrah.scroll.in
14. http://hindikunj.com>2016@10



दूरभाष संख्या 98054 96210

ई–मेल :– nc008194@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 212-216

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि का विश्लेषणात्मक अनुशीलन

**शीलेन्द्र कुमार**, शोधार्थी
**डॉ. रश्मि कुमारी,** शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष
(हिन्दी विभाग), कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर।

**सारांश :-**

हिंदी भाषा और साहित्य की गौरवशाली परंपराओं का अनुसंधान करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने नवीन आलोचना दृष्टि का विकास किया। डॉ. शर्मा की आलोचना में भारतीय लोकपरंपराओं, क्लासिकल भारतीय साहित्य की उदात्त भावभूमि के साथ लोकतंत्र की पकड़ रहती है। भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण की आंतरिक शक्तियों का अध्ययन भी डॉ. शर्मा ने ही किया है। भारतीय साहित्य की समग्र परंपरा के ऊपर उनका अटूट विश्वास रहा है। इसका साक्षात प्रमाण 'परंपरा का मूल्यांकन', 'आस्था और सौंदर्य' में भी मिलता है। हिंदी आलोचना के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यताओं के प्रबल समर्थक डॉ. शर्मा ही रहे हैं। डॉ. शर्मा ने सामंती साहित्य का विरोध तथा देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परंपरा का समर्थन किया है। उनका यह कार्य हर देश प्रेमी और जनवादी लेखक तथा पाठक के लिए सुग्राह्य हैं। डॉ. रामविलास शर्मा की मंडनात्मक आलोचना ने हीं उन्हें हिंदी के बड़े आलोचक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने अपनी आलोचना के द्वारा भारतेंदु हरिश्चंद, द्विवेदी, प्रेमचंद्र, निराला के महत्व की स्थापना वैसे ही की थी जैसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जायसी, तुलसी, और सूरदास तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के महत्व की स्थापना की। डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी जगत को आलोचना के क्षेत्र में इतना कुछ दे गए हैं कि हिंदी भाषा साहित्य के अध्ययन से ही उनके साहित्य से संकेत और प्रेरणा ग्रहण करके हिंदी भाषा अथवा साहित्य को नए उच्चतर सोपानो तक भी ले जा सकते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा का जन्म 10 अक्टूबर, 1912 ई. में जिला उन्नाव उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव ऊँच गाँव सानी में एक गरीब किसान परिवार में हुआ था। गांव और अंचल के खेत–खलिहानों के प्रति उनके मन में असीम श्रद्धा और स्नेह का भाव था। शिक्षा का आरंभ अपने बाबा के संपर्क में रहकर पहाड़ा और अक्षर ज्ञान से हुआ। छह–सात वर्ष की अवस्था में अपने पिता के साथ झाँसी आकर सरस्वती पाठशाला से अध्ययन शुरू किया। इसके उपरांत कक्षा छह से दसवीं तक इनकी शिक्षा मैकडॉलन हाई स्कूल में हुई। आठवीं कक्षा में पढ़ते समय ही उनका विवाह हो गया था। उच्च शिक्षा के लिए वे लखनऊ आए। यहीं से उन्होंने 1932 में अंग्रेजी साहित्य में बी.ए. और 1935 में अंग्रेजी साहित्य में एम.ए., की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन 1938 से 1943 तक लखनऊ

विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे। तदोपरांत 1943 से 1971 तक आगरा के बलवंत राजपूत कॉलेज में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष रहे। 1971 में उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। इसी वर्ष आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति के अनुरोध पर आपने के. एम. मुंशी संस्थान में निदेशक का पदभार स्वीकार किया। 1974 में वहां से सेवानिवृत्त होकर दिल्ली आ गए। 1983 में उनकी पत्नी का निधन हो गया। 30 मई, 2000 को उनका देहावसान हुआ।

लखनऊ में रहते हुए उन्होंने साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में जो उत्कृष्ट लेखन कार्य आरंभ किया, वही उनकी मृत्युपर्यंत तक चलता रहा। डॉ० रामविलास शर्मा के आलोचक व्यक्तित्व का निर्माण बीसवीं शताब्दी के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की मुक्ति चेतना से आरंभ माना जा सकता है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में वर्ग–दृष्टिकोण में गुणात्मक परिवर्तन को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सुधारवादी मध्यमवर्गीय राजनीति की प्रतिक्रिया में स्वीकार किया जाता है। इसके फलस्वरूप कम्युनिस्ट पार्टी, मजदूरों और किसानों के अखिल भारतीय संगठन के साथ–साथ निराश भारतीय जनता, साहित्यकार और बुद्धिजीवी वर्ग वामपंथी विचारधारा की ओर अग्रसर होने लगा। इस काल में हिंदी जगत के जिन साहित्यकारों में मध्यम वर्ग की विचारधाराओं को त्याग कर मजदूरी–वर्ग के क्रांतिकारी दर्शन मार्क्सवाद को स्वीकार किया, उनमें डॉ रामविलास शर्मा का नाम सर्वोपरि है। डॉ. शर्मा देशभक्त चिंतक और आलोचक हैं, उनकी वैचारिक सैद्धांतिकता का आधार मार्क्सवादी चिंतक की जन पक्षधरता एवं वैज्ञानिक वस्तुपरकता है। डॉ. रामविलास शर्मा भारतीय समाज के निम्नतम वर्ग समूहों किसानों एवं मजदूरों की स्वाधीनता को, उपनिवेशवादी, साम्राज्यवादी, फासीवादी, पूंजीवादी, नक्सलवादी, गुलामी की जंजीरों से मुक्ति दिलाने के बड़े संघर्ष के रूप में देखते हैं। उन्होंने देश में सामंतवाद और साम्राज्यवाद से जीवन भर संघर्ष के साथ–साथ भारतीय एवं विश्व साहित्य की लोक जागरणवादी चेतना को ग्रहण करके रीतिवादी परंपरा का घोर विरोध किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा का रचनात्मक, आलोचनात्मक और संगठनात्मक सक्रियता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। वे अगिया बेताल और निरंजन नाम से भी कविता की रचना करते थे। अज्ञेय द्वारा संपादित तार सप्तक में (1943) में उन्हें स्थान मिला। उनके दो स्वतंत्र कविता संग्रह रूप तरंग,1956; सर्दियों के सोए जाग उठे, 1988 प्रकाशित हुए। उपन्यास धार दिल लिखा, इसके अतिरिक्त नाटक अभिनय, संगीत की ओर बढ़े। लेकिन अंततः आलोचना वर्ग के परिपूर्ण मन से समर्पित हो गए उन्होंने 'दारा कैपिटल' गावर्स की प्रसिद्ध रचना के दूसरे भाग के अनुवाद के साथ–साथ विवेकानंद के व्याख्यानों के अनुवाद– 'भक्ति और वेदांत' कर्मयोग, राजयोग भी किए। डॉ. रामविलास शर्मा का रचनात्मक चिंतन जगत बाल्मीकि से मुक्तिबोध के सफल तक फैला है। इसके अंतर्गत भारतीय समाज, साहित्य और इतिहास बोध की मूल्य चेतना एवं परिवर्तनों की प्रगतिवादी मीमांसा है। डॉ. शर्मा हिंदी साहित्य को भारतीय साहित्य के साथ–साथ एक स्वतंत्र विधा न मानकर संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला आदि के साथ ही जोड़कर देखते हैं।

'हिंदी जाति की अवधारणा' रामविलास शर्मा की एक महत्वपूर्ण स्थापना में द्वितीय स्थान रखती है। उन्होंने सर्वाधिक बल अपनी इस मान्यता पर दिया, जो सर्वविदित और चर्चित भी रही है। डॉ. रामविलास शर्मा की जाति की अवधारणा में जाति शब्द का प्रयोग नस्लभेद (RACE) बिरादरी (CASE) के लिए न होकर एक कौम या राष्ट्रीयता (NATIONALITY) के अर्थ में हुआ है। निराला की साहित्य साधना के द्वितीय खंड में वे स्पष्ट करते हैं, "भारत में अनेक भाषाएं बोली जाती हैं। इन भाषाओं के अपने–अपने प्रदेश हैं। इन प्रदेशों में रहने वाले लोगों

को जाति की संज्ञा दी जाती है। वर्ण–व्यवस्था वाली जात–पात से इस 'जाति' का अर्थ बिल्कुल अलग है। किसी भाषा को बोलने वाली, उस भाषा क्षेत्र में बसने वाली इकाई का नाम जाति है।" इस प्रकार जाति का सीधा संबंध भाषा से जुड़ा हुआ है। डॉ. रामविलास ने हिन्दी जाति का अभ्युदय लोकजागरण और हिंदी नवजागरण के ही संदर्भ में किया है। वह उसके विभिन्न चरणों से घनिष्ठ रूप से संबंध है। रामविलास शर्मा जी के अनुसार, "भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पहले विभिन्न प्रदेशों में तमिल, मराठी, बांग्ला आदि भाषाएं बोलने वाली जातियों का गठन इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है, विशेषकर हिंदी भाषी लोगों में मराठी, तमिल या बंगालियों की तरह जातीय भावना देखने को नहीं मिलती। उनकी पहचान जात–बिरादरी–धर्म या जनपद से अधिक होती है।"

डॉ. रामविलास शर्मा सोलहवीं सदी से आधुनिक अंग्रेजी जाति एवं तेरहवीं सदी से हिंदी जाति का निर्माण मानते हैं। यूरोप के नवजागरण ने जातीय चेतना पैदा की थी। लोग अपने को फ्रेंच, अंग्रेज, जर्मन आदि समझने लगे थे इस प्रकार जातीय चेतना नवजागरण का एक मुख्य बिंदु बन गई। रामविलास शर्मा ने पुराने सामंती संबंधों पर व्यापारिक पूंजीवादी की विजय को जातीय निर्माण का मुख्य कारक माना। वे स्पष्ट करते हैं कि "जाति वह मानव समुदाय है, जो व्यापार द्वारा पूंजीवादी संबंधों के प्रसार के साथ घटित होती है।" उन्होंने भारत को बहुजातीय राष्ट्र माना। हिंदी भाषियों को भी असमिया, बंगाली, मराठी, तमिल जातियों की तरह एक जाति माना। इस बहुजातीय राष्ट्र में एक जाति हिंदी भी है। इसके मजबूत हुए बिना बहुजातीय राष्ट्रीयता सुदृढ़ नहीं हो सकती और जातीय चेतना के बिना सांस्कृतिक चेतना का विकास संभव नहीं हो सकता। भारतेंदु शायद प्रथम लेखक हैं, जिन्होंने 'जातीय संगीत' में जातीय के शब्द को बंगला से ग्रहण किया और इसका अर्थ नेशनलिटी के अर्थ में माना। रामविलास शर्मा हिंदी प्रदेश की जाति एवं सांस्कृतिक परंपराओं में हिंदू और मुसलमानों की भूमिका स्वीकार करते हैं।

भक्ति साहित्य का सामाजिक आधार व्यापक था क्योंकि वह "एक और बौद्ध और जैन मतों के संसार–त्याग का निषेध था, दूसरी ओर पुराने चारण काव्य की रीतिवादी सीमाओं का निषेध भी था।"

रामविलास शर्मा ने रामचंद्र शुक्ल द्वारा मुस्लिम शासन में "अपने पौरुष से हताश जाति" की हताशा और हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा बौद्ध धर्म और इससे प्रभावित सिद्ध–नाथ संप्रदाय में भक्ति का स्रोत ढूंढने, इन दोनों ही दृष्टिकोणों का खंडन किया है। वे वस्तुतः भक्ति साहित्य को भारतीय जीवन की परिस्थितियों से जन्मा लोक जागरण का साहित्य मानते हैं। जो पुराने सामंतवादी ढांचे के कमजोर पड़ने और नव पूंजीवादी संबंधों के विकास में देखते हैं। डॉक्टर रामविलास शर्मा के अनुसार, "सैकड़ों बरसों से कायम भारतीय सामंतवाद कभी अपनी ऐतिहासिक भूमिका खत्म कर चुका था। उसे समाप्त करने वाली शक्तियां उसी के गर्भ में पुष्ट हो रही थी। यह शक्तियां व्यापारियों, जुलाहों, कारीगरों, गरीब किसानों को थी, जिनके सांस्कृतिक विकास और सुखी जीवन में सबसे बड़ी बाधा थी सामंतवाद।"

आचार्य शुक्ल के बाद परंपरा पर हिंदी समीक्षा जगत के विद्वानों की बहस बहुत जोर–शोर के साथ हुई। तुर्की से इतना तो स्वीकार्य है कि 'संग्रह त्याग न बिनु पहचाने' अर्थात परंपरा की मूल अवधारणा में चयनवृत्ति अंतर्निहित है और यह विरासत को सहज प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है। यह एक विशेष तथ्य है कि 'परंपरा' न 'इतिहास' न 'रूढ़ि' न 'संप्रदाय' न मात्रा 'विरासत' बल्कि यह एक ऐसी सजगता है, जिसमें जातीय स्मृतिवास करती है। डॉ. रामविलास शर्मा भारतीय इतिहास संस्कृति भाषा, धर्मदर्शन और साहित्य चिंतन परंपरा में इस प्रकार

रंगे हैं कि 'परंपरा' को एक प्रगतिशील अर्थ परंपरा का अर्थ दिया, परंतु उनके विरोधी उन्हें पुनरुत्थानवादी कहकर उनकी आलोचना करते रहे हैं। परंपरा का अर्थ है–समानता और परिवर्तन। उसमें अतीत का वर्तमान से संवाद होने के साथ जातीय जीवन, कला, दर्शन के फूल खिलते हैं। अतः परंपरा पुनरावृत्ति नहीं हैं। उसमें मूल्यांकन, पुनर्मूल्यांकन आवश्यक होता है। प्रत्येक सभ्य जाति की अपनी विशिष्ट परंपरा रही है। डॉ. रामविलास शर्मा ने संस्कृत साहित्य से लेकर स्वाधीनता आंदोलन तक की सुदीर्घ लोकजागरणवादी परंपरा का वस्तुनिष्ठ दृष्टि से मूल्यांकन किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा संस्कृत साहित्य में 'भारत को एक राष्ट्र' समझकर रामायण–महाभारत, कालिदास–भवभूति के साहित्य का नए दृष्टिकोण से सूत्रपात करते हैं। सामंत विरोधी, भावना को संस्कृत साहित्य के साथ–साथ संत साहित्य में पाते हैं। संस्कृत साहित्य में रीतिवाद काफी पस्त देखते हैं जबकि वीरगाथा एवं रीतिकाल में काफी तगड़ा पाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की लोकजागरणवादी, सामंत विरोधी, साम्राज्य विरोधी विरासत को रामविलास शर्मा ने पूरे संकल्प के साथ आगे बढ़ाया। वे आचार्य शुक्ल के सच्चे उत्तराधिकारी कहे जा सकते हैं।

संस्कृत साहित्य से नवजागरण की अवधारणा को लेकर डॉ रामविलास शर्मा ने 'भारतीय नवजागरण और यूरोप' पुस्तक की रचना की। वे नवजागरण को इस प्रकार देखते हैं कि ऋग्वेद का रचनाकाल भारत में नए जागरण का युग है और यह नवजागरण अनेक बार आया है। उपनिषदों में कर्मकांड का विरोध दूसरा नवजागरण है। सुकरात से पूर्व यूनानी दार्शनिक उपनिषद ज्ञान से परिचित थे। वे भारत आए थे, परंतु भारतीय सुधार आंदोलनों का नवजागरण, यूरोपीय सुधार आंदोलनों के नवजागरण से भिन्न प्रकृति है। बाल्मीकि उस काव्य परंपरा को जन्म देते हैं, जो देवोपासक ना होकर मानवतावादी है। कालिदास स्वछंद मानव प्रेम भावना जगाते हैं। भवभूति उत्तररामचरित में ट्रेजडी के साथ नए युग का सूत्रपात करते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा भक्ति आंदोलन को एवं संत साहित्य को नवजागरण काल मानते हैं। आधुनिकता को प्रगतिकाल मानते हैं। वे उसे आचार्य शुक्ल व आचार्य द्विवेदी की तरह मध्यकाल नहीं मानते। भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय सांस्कृतिक आंदोलन होते हुए देश के विभिन्न प्रदेशों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधता है। भक्त कवियों ने सर्वत्र लोक भाषाओं में लोक साहित्य की रचना की, लोक जागरण और भावनात्मक एकता कायम की। डॉक्टर शर्मा ने भक्ति आंदोलन की पुरोहितवादी, जातिवादी, नक्सलवादी, सामंतवादी चेतना का हवाला देकर स्पष्ट किया कि 'संभवत जाति प्रथा जितना दृढ आज है, उतनी नामदेव दर्जी, सेना, नाई, महार, रैदास, कबीर जुलाहे के समय ना थी और जातिगत संकीर्णता जितनी शिक्षितजनों में है संभवत उतनी सूर और कबीर के पद गाने वाले अनपढ़ जनों में नहीं है। वर्णाश्रम धर्म और जाति प्रथा की जितनी तीव्र आलोचना भक्ति साहित्य में है, उतनी आधुनिक हिंदी साहित्य में नहीं।

हिंदी साहित्य में प्रथम बार नवजागरण की अवधारणा को इतिहास और समाज से जोड़कर विवेचित करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को है। उन्होंने हिंदी नवजागरण की परंपरा को ऋग्वेद और उपनिषद काल की नवजागरण परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया। वह भक्ति काल को नवजागरण या लोकजागरण भी कहते हैं। क्योंकि यह लाखों–करोड़ों लोगों को रास्ता दिखाने वाला काल था। इसे मध्ययुग कहना, इसके प्रति अन्याय नासमझी है। हमारी नवजागरण कवि परंपरा बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, भारतेंदु हरिश्चंद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल आदि

तक प्रगतिशील तत्वों के साथ निरंतर परिवर्तनशील रही है। इस परंपरा का मूल स्वर रीतिवाद विरोधी, पुरोहितवाद विरोधी, सामंतवाद विरोधी, साम्राज्यवाद–उपनिवेशवाद विरोधी, व्यक्तिगत, कालावाद विरोधी रहा है। एशिया नवजागरण और विश्व के साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद से जुड़ी उनकी पुस्तक 'सन सत्तावन की क्रांति' उनकी आलोचना दृष्टि को निर्मित करती है। इसी मानसिकता से नवजागरण की स्थापना फूटी हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा संप्रदायवादी मार्क्सवाद से मुक्त होकर आलोचना दृष्टि में उसका उपयोग तो करते हैं, पर गुलामी नहीं, उनके विरोधी अन्य आलोचक उन्हें पुनरुत्थानवादी आलोचक कहते हैं जो उनके विचारों से भी असहमत होते हैं। डॉक्टर शर्मा प्रगतिशील विचारक एवं प्रखर आलोचक हैं, उन्होंने हिंदी आलोचना को कलावाद–रूपवाद से मुक्त करने के लिए संघर्ष जारी रखा और हिंदी साहित्य को समाज–शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र और इतिहास से जोड़कर नए मानक स्थापित किए। डॉ. शर्मा 'गांधी–अंबेडकर–लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएं; में लिखते हैं, गांधी, अंबेडकर, लोहिया यह तीनों वर्तमान भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आंदोलनों के लिए प्रासंगिक हैं। तीनों भारतीय इतिहास के बारे में सोचते हैं, जाति प्रथा से टकराते हैं, साम्राज्यवाद के प्रति अपना विशेष दृष्टिकोण अपनाते हैं और समाज को बदलना चाहते हैं। जो वर्तमान समाज व्यवस्था से असंतुष्ट हैं, उनमें परिवर्तन चाहते हैं, उन्हें इन तीनों का एक साथ अध्ययन करना चाहिए।

रामविलास शर्मा अपने समय से काफी आगे हैं। इक्कीसवीं सदी में दस या बीसवर्ष बाद, अपनी गलतियों की सीख लेकर हिंदी जाति के सांस्कृतिक पुनर्जागरण, आधुनिक भारतीय जीवन की अखंडता और लोकतंत्र के लिए जब भी कोई व्यापक जन आंदोलन होगा तब डॉ. रामविलास शर्मा के कवि कर्म की यह पंक्ति प्रेरणा का काम करेगी :–

जब सजग है विश्व के पंछी, तुम्ही तब सो न जाओ।
डाल के नीचे बिछा है जाल, यह भूल मत जाओ।
जो तीसरी दुनिया के देशों के नव साम्राज्यवाद के प्रति सचेत करती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी आलोचना में डॉ रामविलास शर्मा महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। आपकी आलोचना दृष्टि बहुत व्यापक है। आपने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में नए प्रतिमान एवं स्थापनाएँ स्थापित की हैं, जिनके द्वारा पूर्व में स्थापित मतों एवं दृष्टिकोणों को समझने में नई चिंतन दृष्टि प्राप्त हुई है।

**संदर्भ ग्रन्थ :–**


1. साहित्यिक निबंध, (परम्परा और युगधर्म के संयोजक), गणपतिचन्द्र गुप्त, 15वाँ संस्करण, पृष्ठ 68
2. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, (साहित्यानुशीलन की सामाजिक दृष्टि : भारतीय परम्परा), डॉ मैनेजर पांडेय, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 67
3. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, डॉ मनैजर पांडेय, पृष्ठ 55
4. हिन्दी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, बारहवीं आवृत्ति, पृष्ठ 189
5. हिन्दी आलोचना का विकास, मधुरेश, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 146–147
6. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी, निर्मला जैन, पांचवीं आवृत्ति, पृष्ठ 70
7. परम्परा का मूल्यांकन, पृष्ठ 68



शीलेन्द्र कुमार, शोधार्थी,
बी –103 पंचशील बालक इन्टर कॉलेज,
सेक्टर 91 नौएडा गौतमबुद्ध नगर 201304
मोबाइल – 8826084235,
ईमेल –sheelendrajpn@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 217-223

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ಬಸವಣ್ಣನವರ ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ಜೀವನಕ್ಕೆ ಅವಶ್ಯವಾದ ನೈತಿಕ ಮೌಲ್ಯಗಳ ವರ್ಣನೆ

1. ಡಾ. ಬಿ.ಎಸ್. ಹೇಮಲತ
ಕನ್ನಡ ಸಹ ಪ್ರಾಧ್ಯಾಪಕರು
ಸಿ.ಎಂ.ಎಸ್.
ಲಾಲ್ ಭಾಗ್ ರಸ್ತೆ,
ಜೈನ್ (ಡೀಮ್ಡ್ ಟು ಬಿ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯ)

2. ಡಾ. ಸುಧಾ ಕನಕಾನವರ
ಹಿಂದಿ ಸಹಾಯಕ ಪ್ರಾಧ್ಯಾಪಕರು
ಸಿ.ಎಂ.ಎಸ್.
ಲಾಲ್ ಬಾಗ್ ರಸ್ತೆ, ಬೆಂಗಳೂರು.
ಜೈನ್ (ಡೀಮ್ಡ್ ಟು ಬಿ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯ)

೧೧ನೇ ಶತಮಾನದಲ್ಲಿ ಭಕ್ತಿ ಮತ್ತು ಕಾಯಕತ್ವದ ನೆಲೆಯಿಂದ ಅನುಭವ ಮತ್ತು ಅನುಭಾವನೆಗಳ ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಿಯ ಕಾರ್ಯವು ವಾಚಿಕ ರೂಪದಲ್ಲಿ ಸೃಜನಶೀಲ ಕಾರ್ಯವು ರೂಪುಗೊಂಡಿತು. ಇಂತಹ ವಾಚಿಕ ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಿಯು ವಚನರೂಪದಲ್ಲಿ ಪ್ರಕಟಗೊಂಡು ಗದ್ಯ-ಪದ್ಯ, ಮುಕ್ತಭಾವ-ಛಂದಸ್ಸು-ಕಾವ್ಯತ್ವದ ಸೊಗಸು ಭಾವದ ಗೇಯತೆಯಿಂದ ಕೂಡಿರುವುದು. ಹಾಡುಗಬ್ಬದ ರೂಪವನ್ನು ತಾಳಿತು. ಪಂಡಿತರಿಂದ ಸಾಮಾನ್ಯ ಜನರತ್ತ ಮುನ್ನಡೆದು ಜನಸಾಮಾನ್ಯರ ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಿಯು.

ಕನ್ನಡ ಸಾಹಿತ್ಯದಲ್ಲಿ ವೈಶಿಷ್ಟ್ಯ ಪೂರ್ಣವಾದ ಸಾಹಿತ್ಯಕ ರೂಪ ವಚನ ಪ್ರಕಾರ. ವಚನ ಸಾಹಿತ್ಯವು ರಾಜಾಶ್ರವನ್ನು ಅವಲಂಬಿಸಿರಲಿಲ್ಲ. ವಚನ ಸಾಹಿತ್ಯ ಚಂಪೂ ಶೈಲಿಯ ಅನುಕರಣೆಯೂ ಆಗಿರಲಿಲ್ಲ. ಮಾರ್ಗದಿಂದ ದೇಸಿಗೆ ಸಂಕ್ರಮಣ ಹೊಂದಿದ ಕಾಲ ವಚನ ಸಾಹಿತ್ಯ. ವಚನಗಳ ರಚನೆಯಲ್ಲಿ ತೊಡಗಿದವರು ಸಮಾಜದ ವಿವಿಧ ಸ್ಥರಗಳ ಸ್ತ್ರೀ ಪುರುಷರು. ಅಚ್ಚಗನ್ನಡದ ಛಂದೋರೂಪಗಳನ್ನು ರಚನೆಯಲ್ಲಿ ತೊಡಗಿಸಿದರು. ಕೆಲವು ಜೈನ ಕವಿಗಳು ಚಂಪೂ ಕಾವ್ಯ ಶೈಲಿಯಲ್ಲಿ ಕಾವ್ಯ ರಚನೆಯನ್ನು ಮಾಡಿದರು, ಕ್ವಚಿತ್ತಾಗಿ ವೀರಶೈವ ಮತ್ತು ಬ್ರಾಹ್ಮಣ ಕವಿಗಳು ಚಂಪೂ ಶೈಲಿಯಲ್ಲಿ ರಚನೆ ಮಾಡಿದರು. ವಚನಕಾರರು ಲೌಕಿಕ ಮತ್ತು ಆಗಮಿಕ ಎಂಬುದಾಗಿ ವಿಭಾಗಿಸದೆ ತಮ್ಮ ಅನುಭವದ ಗಾಢ ಸೂಕ್ಮತೆಯನ್ನು ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಿಸಿದ್ದಾರೆ. ವಚನಕಾರರು ತಮ್ಮ ಅಂತರಂಗದ ಅನುಭಾವದ ಅನುಸಂಧಾನದ ಅನುಭೂತಿಯನ್ನು ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಿಸುವಲ್ಲಿ ತಮ್ಮ ಇಷ್ಟದೇವರ ಅಂಕಿತವನ್ನು ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ಬಳಸಿರುವುದನ್ನು ವಿಶೇಷವಾಗಿ ಕಾಣಬಹುದಾಗಿದೆ. ವಚನಕಾರರ ವಚನಗಳು ಭಕ್ತಿರಸವನ್ನು ಸ್ಫುರಿಸುವುದು. ವಚನಕಾರರ ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ಸಾಮಾಜಿಕ ನೆಲಗಟ್ಟು, ಸಾಂಸ್ಕೃತಿ ವಲಯ, ರಾಜಕೀಯತೆ, ಧಾರ್ಮಿಕ ಜಿಜ್ಞಾಸೆಯ ನೆಲೆಗಳಲ್ಲಿ ಶೂನ್ಯ ಜಗತ್ತಿನ ಅನುಭಾವಿಕ ನೆಲೆಗಳನ್ನು ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಪಡಿಸಿರುವುದನ್ನು ಕಾಣಬಹುದಾಗಿದೆ.

"ವಚನ" ಎಂದರೆ ಮಾತು, ಮಾತನಾಡುವುದು, ಪ್ರಮಾಣ, ವ್ಯಕ್ತಪಡಿಸುವುದು ಎಂಬ ಅರ್ಥಗಳಿವೆ. ಇವುಗಳ ಜೊತೆಗೆ ಗದ್ಯ ಎಂಬ ಅರ್ಥವು ಇದೆ. ಚಂಪೂ ಕಾವ್ಯದಲ್ಲಿ ಕಂದ ಪದ್ಯದ ಜೊತೆಗೆ ಗದ್ಯ ಭಾಗವು ಬರುವುದು. ಆ ಭಾಗವನ್ನು ವಚನ ಎಂದು ಕರೆಯುವರು. ಅದುಕಂದ ಪದ್ಯದ ವಿವರಣೆಗೆ ಪೂರಕವಗಿತ್ತು. ದಿನ ನಿತ್ಯದ ವ್ಯವಹಾರದಲ್ಲಿ ವಿಚಾರ ವಿನಿಮಯ ಮಾಡುವ ಸಂದರ್ಭದಲ್ಲಿ ನುಡಿವ ನುಡಿಯು ಗದ್ಯಾತ್ಮಕವಾಗಿ ಇರುವ ಕಾರಣ ವಚನ ಎಂದರೆ ಗದ್ಯ ಎಂಬ ಅರ್ಥವು ರೂಢಿಯಲ್ಲಿದೆ. ವಚನಕಾರರಲ್ಲಿಯೂ ವಚನ ಎಂದರೆ ಈ ಅರ್ಥಗಳಲ್ಲಿ ಬಳಕೆ ಇದೆ. "..ಅನ್ಯರ ವಚನವ ಕೊಂಡಾಡಲು ಕರ್ಮ ಬಿಡದು...", ".....ಮೃದು ವಚನವೆ ಸಕಲ ಜಪಂಗಳಯ್ಯಾ...", ಎಂಬ ವಚನವನನ್ನು ಉದಾಹರಣೆಗೆ ನೋಡಬಹುದು. ವಚನವು ಭಾವವನ್ನು ಸ್ಫುರಿಸುವುದು ಆದ್ದರಿಂದ

ಭಾವಗೀತಾತ್ಮಕವಾಗಿದೆ. ಗದ್ಯವಾಗಿದ್ದರೂ ಗದ್ಯವಲ್ಲದೆ ಇರುವುದು ವಚನದ ಹಿರಿಮೆಯಾಗಿದೆ. ಗದ್ಯವು ಪದ್ಯದಷ್ಟು ಛಂದಸ್ಸಿನ ನಿಯಮ ನಿಬಂಧನೆಗಳಿಗೆ ಒಳಪಡದೆ ಆಡುಮಾತಿನಂತಿರುವುದು. ಹಿರಿಯ ಸಾಹಿತಿ ತೀ. ನಂ. ಶ್ರೀಕಂಠಯ್ಯನವರು ಹೇಳುವಂತೆ "ಪದ್ಯದಷ್ಟು ಬಿಗಿಯಲ್ಲ, ಸಾಮಾನ್ಯ ಗದ್ಯದಷ್ಟು ಸಡಿಲವೂ ಅಲ್ಲದಂತಿರುವುದು ವಚನ" . ಸೂಕ್ಷ್ಮವಾಗಿ ವಿಚಾರಿಸಿದರೆ ಗದ್ಯ ಪದ್ಯದ ನಡುವಿನ ಒಂದು ಮಾದರಿಯೇ ವಚನ. ಹಾಡಿದರೆ ಹಾಡಾಗುವ ಓದಿದರೆ ಗದ್ಯವಾಗುವ ಗುಣ ಲಕ್ಷಣ ವಚನಗಳದ್ದು.

ವಚನಗಳು ಹೇಗೆ ಹುಟ್ಟಿದವು ಎಂಬಂತೆ ಯಾವಾಗ ಹುಟ್ಟಿದವು ಎಂಬ ಪ್ರಶ್ನೆಯೂ ಇದೆ. ಜೇಡರ ದಾಸಿಮಯ್ಯನ ನೂರೈವತ್ತು ವಚನಗಳು ದೊರೆತಿದ್ದು ಅವನೇ ಪ್ರಥಮ ವಚನಕಾರ. ಆದರೆ ಜೇಡರ ದಾಸಿಮಯ್ಯನು ತನ್ನ ಹಿರಿಯರ ವಚನಕಾರರ ವಚನವನ್ನು ಸ್ಮರಿಸುವ ಕಾರಣ ಈತನಿಗಿಂತ ಮೊದಲಿಗೆ ಡೋಹರ ಕಕ್ಕಯ್ಯ , ಕೆಂಭಾವಿ ಭೋಗಣ್ಣ ವಚನಕಾರರು ಇದ್ದರು ಎಂದು ತಿಳಿದು ಬರುವುದು.

೧೨ನೇ ಶತಮಾನದ ಪ್ರಖ್ಯಾತ ವಚನಕಾರ ಬಸವಣ್ಣ. ಹಲವು ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವದ ಅಪೂರ್ವ ಮನುಷ್ಯ. ದೈವಭಕ್ತ, ಭಂಡಾರಿ, ಸಾಮಾಜಿಕ ಆಂದೋಲನಕಾರ, ಮಾನವತಾವಾದಿ, ವಿಶ್ವಕ್ಕೆ ಮಾನವತಾವಾದದ ಸಂದೇಶ ನೀಡಿದ ಐತಿಹಾಸಿಕ ವ್ಯಕ್ತಿ ಬಸವಣ್ಣ. ಬಸವಣ್ಣ ಬಾಗೆವಾಡಿಯ ಅಗ್ರಹಾರದಲ್ಲಿದ್ದ ಕಮ್ಮಕುಲದ ಶೈವ ವೈದಿಕ ದಂಪತಿಗಳಾದ ಮಾದರಸ ಮತ್ತು ಮಾದಾಂಬೆಯ ಕುಮಾರ. ಹೆತ್ತವರಿಗೆ ಮುದ್ದಾಗಿ, ಎತ್ತಿ ಮುದ್ದಾಡಿದವರಿಗೆ ಸುಖದ ಸಂಪತ್ತಾಗಿ ಬೆಳದರು ಬಸವಣ್ಣ. ಬಸವಣ್ಣರ ಏಳೆಂಟರ ವಯೋಮಾನದಲ್ಲಿ ಉಪನಯನವಾಯಿತು. ಉಪನಯನವಾದ ಎರಡು ವರ್ಷದಲ್ಲಿ ತಂದೆ ತಾಯಿ ಇಬ್ಬರು ಅಗಲಿದರು. ನಂತರ ತಬ್ಬಲಿಯಾದ ಬಸವಣ್ಣರು ಶಿವಭಕ್ತರಾಗಿದ್ದ ಮುತ್ತಜ್ಜಿಯ ರಕ್ಷಣೆಯಲ್ಲಿ ಬೆಳೆದರು. ಹದಿನಾರ ವರ್ಷದ ಪ್ರಾಯದಲ್ಲಿ ತಮ್ಮ ಯೌವನ ಕಾಲವನ್ನು ಶಿವನ ಸೇವೆಯಲ್ಲಿ ಕಳೆಯಬೇಕೆಂದು ನಿರ್ಧರಿಸಿ, ಶಿವ ಭಕ್ತಿಯು ಕರ್ಮವು ಎಂದೂ ಒಂದಾಗಿರಲು ಸಾಧ್ಯವಿಲ್ಲ ಎಂದು ನಿಶ್ಚಯಿಸಿ, ಪರಮವೈರಾಗ್ಯವನ್ನು ತಳೆದು ಕರ್ಮಲತೆಯಂತಿದ್ದ ಜನಿವಾರವನ್ನು ಕಳೆದು ತೆಗೆದು ಹಾಕಿ, ಮಡಿ ಬಟ್ಟೆಯನ್ನು ಉಟ್ಟು ಮನೆ, ಆಸ್ತಿ-ಐಶ್ವರ್ಯ, ಬಂಧು-ಬಾಂದವ, ಊರಜನ ಯಾವುದನ್ನು ಗಮನಕ್ಕೆ ತೆಗೆದು ಕೊಳ್ಳದೆ ಹರನ ಭಕ್ತಿಯಿಂದ ಬಾಗೇವಾಡಿಯನ್ನು ಬಿಟ್ಟು ಹೊರಟರು. ಮಲಪ್ರಹರಿ- ಕೃಷ್ಣವೇಣೀ ನದಿಗಳ ಸಂಗಮಸ್ಥಳ ಕೂಡಲ ಸಂಗಮೇಶ್ವರನಿರುವ ಕಪ್ಪಡಿಯ ಸಂಗಮಕ್ಕೆ ತೆರಳಿದರು.

ಬಸವಣ್ಣನವರು ಕೂಡಲಸಂಗಮದಲ್ಲಿ ತಮಗಾದ ದಿವ್ಯಾನುಭವವನ್ನು ನೆನೆಯುತ್ತ ಇರಲು, ಕೂಡಲಸಂಗಮದ ಸ್ಥಾನಪತಿಗಳಾದ ಈಶಾನ್ಯಗುರುಗಳು ಬಸವಣ್ಣನವರನ್ನು ಕಂಡು ಯಾರೋ ಕಾರಣೀಕನಿರಬೇಕೆಂದು ನಿಶ್ಚಯಿಸಿ ಸಂಗಮೇಶ್ವರನ ಪೂಜೆಗೆ ಪ್ರತಿದಿನ ಹೊಸ ಹೂ, ಅಗ್ಗವಣಿಯನ್ನು ತಂದು ನಿತ್ಯವೂ ಪೂಜೆಯನ್ನು ಮಾಡಿ ಪ್ರಸಾದ ಕಾಯಕನಾಗಿ ಸುಖವಾಗಿರು ಎಂದು ಹೇಳುವರು. ಈಶಾನ್ಯ ಗುರುಗಳಿಂದ ಶಿವದೀಕ್ಷಿತರಾಗಿ ಕೂಡಲಸಂಗಮೇಶ್ವರನನ್ನು ದಿನವೂ ಪೂಜಿಸುತ್ತ ಸುಖದಿಂದ ಇದ್ದರು ಬಸವಣ್ಣ. ಶಿವನಲಿದ್ದ ಅವರ ಭಕ್ತಿಯು ದಿನದಿಂದ ದಿನಕ್ಕೆ ಅಧಿಕವಾಗಿ ಗಾಢವಾಗಿ ಬೆಳೆದು ಬಂದಿತು. ಹೀಗೆ ಪೂಜಾ ಕಾರ್ಯದಲ್ಲಿ ಮಗ್ನರಾದ ಬಸವಣ್ಣನವರ ಭಕ್ತಿ ದಿನದಿಂದ ದಿನಕ್ಕೆ ಇಮ್ಮಡಿಸುತ್ತಲೆ ಇತ್ತು. ಪ್ರತಿ ಕ್ಷಣವೂ ಸಂಗಮೇಶ್ವರನ ಮೇಲಿನ ಸುಮಧುರ ಭಾವ ಅಧಿವಾಗುತ್ತಲೇ ಇತ್ತು. ಸಂಗಮೇಶ್ವರನ ಪೂಜಾ ಕಾರ್ಯದ ಜೊತೆಗೆ ಸಂಗಮದ ಜನರಿಗೆ ಶಿವ ಸ್ತುತಿಗಳನ್ನು ಕಲಿಸುವ ಕಾಯಕದಲ್ಲಿ ನಿರತರಾದರು. ಬಸವಣ್ಣನವರ ತುಂಬುಯೌವನ ಶಿವ ಧ್ಯಾನದಲ್ಲಿಯೇ ತುಂಬಿ ಹೋಯಿತು.

ಹೀಗಿರಲು ಒಂದು ದಿನ ಬಸವಣ್ಣವರ ಕನಸಿನಲ್ಲಿ ಶಿವನು ಕಾಣಿಸಿಕೊಂಡು "ಬಸವಣ್ಣಿನಿಗೆ ಬಿಜ್ಜಳ ರಾಯನಿರುವ ಮಂಗಳವಾಡಕ್ಕೆ ಹೋಗು"ಎಂದು ಆದೇಶಿದಂತಾಯಿತು. ಬಸವಣ್ಣವರಿಗೆ ಅತೀವವಾದ ದುಃಖ ಉಂಟಾಯಿತು.

ಒಂದು ಕ್ಷಣವೂ ಸಂಗಮೇಶನನ್ನು ಬಿಟ್ಟು ಹೋಗುವುದು ಸಾಧ್ಯವಿಲ್ಲದಂತಾಯಿತು. ಶಿವನಿಂದ ಅಗಲಿಕೆಯನ್ನು ತಾಳದೆ ಮರುಗಿದರು. ಆದರೆ ಶಿವನ ಆದೇಶವನ್ನು ನಿರಾಕರಿಸಲೂ ಆಗದೆ ಸಂಗನ ಸಂಕಲ್ಪದಂತೆ ಸಂಗಮೇಶನ ಹಾರೈಕೆಯಂತೆ ಹೊರಡುವುದಾಗಿ ನಿರ್ಧರಿಸಿ, ತನ್ನಯ ಅಕ್ಷರ ಜ್ಞಾನದಿಂದ ಹೊನ್ನು ಸಂಪಾದಿಸಿ ಜಂಗಮರಿಗೆ ಕೊಟ್ಟು ಅನುಗ್ರಹ ಪಡೆಯುವುದಾಗಿ ನಿರ್ಧರಿಸಿದರು. ಮಂಗಳವಾಡವನ್ನು ತಲುಪಿ ಬಿಜ್ಜಳ ಅರಮನೆಯ ಕರಣಶಾಲೆಗೆ ಬಂದು ಕುಳಿತಿದ್ದರು, ಅಲ್ಲಿಗೆ ರಾಜಧನದ ವಿವರ ಕೇಳಿ ಬಂದ ಸಿದ್ಧ ದಂಡಾಧಿಪನು ಕರಣಿಕರ ತಪ್ಪುಲೆಕ್ಕದಿಂದ ಮೋಸ ಹೋಗುತ್ತಿದ್ದುದನ್ನು ಅರಿತು ಬಸವಣ್ಣ ಪಾರುಮಾಡುವರು. ಸಿದ್ಧದಂಡೇಶನು ಬಿಜ್ಜಳನಿಗೆ ಬಸವಣ್ಣನ ನೈಪುಣ್ಯತೆ ತಿಳಿಸಿ ಅಪ್ಪಣೆ ಪಡೆದು ಭಂಡಾರದ ಕೆಲಸಕ್ಕೆ ನೇಮಿಸಿದನು. ಮಕ್ಕಳಿಲ್ಲದ ಅವರು ಬಸವಣ್ಣನವರನ್ನು ತಮ್ಮ ಮಗನಂತೆ ಮನೆಯಲ್ಲಿಯೇ ಇರಿಸಿ ಕೊಂಡರು. ಸಿದ್ಧದಂಡೇಶನ ಮರಣಾನಂತರ ಬಿಜ್ಜಳನು ಬಸವಣ್ಣನವರ ದಕ್ಷತೆಯನ್ನು ಮೆಚ್ಚಿ ಭಂಡಾರಿಯನ್ನಾಗಿ ನೇಮಿಸಿದರು. ಇದಾದ ಕೆಲ ಕಾಲದ ಬಳಿಕ ಬಸವಣ್ಣನವರು ಗಂಗಾಬಿಕೆ ಮತ್ತು ನೀಲಾಂಬಿಕೆಯರನ್ನು ಒರಿಸಿದರು.

ಬಸವಣ್ಣವರು ಭಕ್ತಿಯ ಭಂಡಾರಿಯಾಗಿದ್ದರು ಅಂತೆಯೇ ಸಮಾಜ ಸುಧಾರಕರಾಗಿದ್ದರು. ಮಾನವ ಕುಲವೊಂದೆ ಎಂದು ನಂಬಿದ ಕ್ರಾಂತಿ ಪುರುಷರಾಗಿದ್ದರು. ಸಾಮಾಜಿಕವಾಗಿ ಇದ್ದ ಅಂತರಗಳ ಬೇಧ ಭಾವಗಳ ವಿರುದ್ಧ ಕ್ರಾಂತಿಯನ್ನು ಸಾರಿದವರು, ಮಾನವೀಯತೆಯ ಮೂರ್ತಿಯಾದರು. ವಿಶ್ವಕ್ಕೆ ಮಾನವೀಯತೆಯ ತತ್ವವನ್ನು ಸಾರಿದ ಬಸವಣ್ಣವರ ಘನವ್ಯಕ್ತಿತ್ವವನ್ನು ಅವರ ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ಕಾಣಬಹುದು. ಘನವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ಪೂರಕವಾದ ನಡೆ ನುಡಿ ರೀತಿ ನೀತಿಗಳು ವಿಕಾಸಶೀಲವಾದ ವಿಚಾರವಂತಿಕೆಯ ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಿಯನ್ನು ಬಸವಣ್ಣನವರ ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ನಾವು ಕಾಣಬಹುದು.

ಪರಂಪರಾಗತವಾಗಿ ಅನುಕರಿಸಿಕೊಂಡು ಬಂದಂತಹ ಧರ್ಮಗಳ ಸಂಘರ್ಷದಿಂದ ಜನರ ಮನಸ್ಸು ಜರ್ಜರಿತವಾಗಿ ಹೋಗಿರುವ ಸಂದರ್ಭದಲ್ಲಿ, ಅವರ ಮನಸ್ಸುಗಳನ್ನು ತಿಳೀಕರಿಸುವ ಸಲುವಾಗಿ ಒಂದು ಮಾರ್ಗಕ್ಕೆ ಒಂದು ವ್ಯವಸ್ಥೆಗೆ ತರುವಲ್ಲಿ ಬಸವಣ್ಣನವರು ಭಕ್ತಿಯನ್ನು ಆಯುಧವನ್ನಾಗಿಸಿಕೊಂಡರು. ಭಕ್ತಿಯ ಮಾರ್ಗದ ಮೂಲಕ ಬಸವಣ್ಣನವರು ಸಾಮಾಜಿಕರಿಗೆ ನೀಡಿದ ಸಲಹೆಗಳೆಂದರೆ ಏಕದೇವೋಪಾಸನೆ, ಕಾಯಕ ಧರ್ಮ, ದಾಸೋಹ, ವರ್ಣ-ವರ್ಗ ಸಮಾನ ದೃಷ್ಟಿಕೋನ, ಸಮನ್ವಯ ಭಾವನೆ, ನೀತಿಯ ಮೌಲ್ಯಗಳಾದ ದಯೆ, ದಾನ, ಕರುಣೆ, ಪ್ರೀತಿ, ಮಾನವೀಯತೆ ಮುಂತಾದವು.

ಮನುಜನ ಮನೋವಿಕಾಸಕ್ಕೆ ಬೇಕಿರುವ ಮೌಲ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ನೀತಿ ನಿಷ್ಠತೆ ಪ್ರಮುಖವಾಗಿರುವುದು. ನೈತಿಕತೆಯೇ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವ ವಿಕಸನಕ್ಕೆ ಪೂರಕ ಮತ್ತು ಪೋಷಕವಾಗಿರುವುದು. ಹೀಗಾಗಿ ನೀತಿ ಮತ್ತು ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಗಳು ಒಂದು ನಾಣ್ಯದ ಎರಡು ಮುಖಗಳಂತಿರುವುದು. ಪರಿಪೂರ್ಣವಾದ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ನೀತಿಯೇ ಶಕ್ತಿ. ಅಂತರಂಗ ಮತ್ತು ಬಹಿರಂಗ ಎಂದಾಗ ಮನಸ್ಸು ಮತ್ತು ಲೌಕಿಕ ಜಗತ್ತಿಗೆ ಸಮೀಕರಿಸ ಬಹುದು. ಮನಸ್ಸಿನ ಪ್ರಕ್ರಿಯೆಗಳು ಮನುಷ್ಯನ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ಕಾರಣವಾಗಿರುವುದು. ಅಷ್ಟೇ ಅಲ್ಲ ಸಾಮಾಜಿಕ ಮೌಲ್ಯಗಳು ಧಾರ್ಮಿಕ ಮೌಲ್ಯಗಳು ಇವು ಪರಸ್ಪರ ಪೂರಕವಾಗದ್ದು ಭಕ್ತಿ ಎಂಬ ಮಾರ್ಗದಿಂದ ಸಾಧನೆಗೆ ಗುರಿಯಾದಾಗ ತನ್ನನ್ನು ತಾನು ಅಂತರಂಗದಿಂದ ಮತ್ತು ಬಹಿರಂಗದಿಂದ ಪರಿವರ್ತನೆ ಗೊಂಡು, ಸಮಾಜದ ಬದಲಾವಣೆಗೂ ಪೋಷಕವಾಗಿರುವುದು. ಹೀಗೆ ಮೌಲ್ಯಗಳು

ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವವನ್ನು ಬೆಳೆಸುವಲ್ಲಿ ಪ್ರಧಾನ ಪಾತ್ರ ವಹಿಸಿರುವುದು. ವ್ಯಕ್ತಿ ಮತ್ತು ಸಮಾಜದ ಪರಿವರ್ತನೆಗೆ ಮೌಲ್ಯ ಮೌಲಿಕ ಸಾಧನೆಯೇ ಆಧಾರ.

ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವವು ನಿರ್ಮಾಣಗೊಳ್ಳುವುದು ಉತ್ತಮ ಸದಾಚಾರ ಸುಸಂಸ್ಕೃತ ನಡೆಯಿಂದ. ಉತ್ತಮ ಸಜ್ಜನಿಕೆಯ ಸಂಸ್ಕೃತಿಯು ಬರುವುದು ನಡೆ – ನುಡಿ, ಸದಾಚಾರ –ಸದ್ವಿಚಾರಗಳಿಂದ, ಪರಿಪಾಲಿಸುವ ರೀತಿ ನೀತಿಗಳಿಂದ. ಇವುಗಳು ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ಮೆರುಗನ್ನು ನೀಡುವುದು. ಸನೀತಿಯ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವವು ಮಹತ್ವದ ಸಾಧನೆಯನ್ನು ಮಾಡುವಲ್ಲಿ ಪ್ರೇರಕವಾಗುವುದು.

ಯಾರು ನಿಜ ಭಕ್ತರಾಗ ಬೇಕೆಂದು ಬಯಸುವರೊ ಅವರು ಅದಕ್ಕೆ ತಕ್ಕ ಹಾಗೆ ನಡತೆಯನ್ನು ಹೊಂದಿದ್ದು ಪಾಲಿಸಬೇಕಾಗಿರುವುದು. ಆತ್ಮವಂಚನೆಯನ್ನು ಮಾಡದೆ ಶುದ್ಧ ನಡತೆಯನ್ನು ಹೊಂದಿರಬೇಕು, ಪರರಿಗೆ ವಂಚನೆಯನ್ನು ಮಾಡದೆ ಸತ್ಯ ಮಾರ್ಗದಲ್ಲಿ ಸಾಗಿದರೆ ಭಗವಂತನ ಒಲವಿಗೆ ಪಾತ್ರರಾಗುವರು. ಅಂತರಂಗ ಮತ್ತು ಬಹಿರಂಗ ಶುದ್ಧಿಯು ಲೌಕಿಕ ಮತ್ತು ಅಲೌಕಿಕತೆಯ ಸಾರವನ್ನು ಮತ್ತು ಶುದ್ಧ ನಡತೆಯ ಪ್ರಾಮುಖ್ಯತೆಯನ್ನು ತಿಳಿಸುವುದು.

ಅಂತೆ ಶುದ್ಧ ನಡತೆಯು ಸರ್ವಸಮಾನತೆಯನ್ನು ಬೆಳೆಸುವಲ್ಲಿ, ಸರ್ವರ ಅಭ್ಯುದಯ ಮಾಡುವಲ್ಲಿ ಸಹಾಯಕವಾಗಿರುವುದು. ಶುದ್ಧನಡತೆಯ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವವು ವ್ಯಕ್ತಿಯ ವಿಕಸನಕ್ಕೆ ಅನುವು ಮಾಡುವುದು ಮತ್ತು ವಿಶ್ವ ಮುಖಿಯನ್ನಾಗಿಸುವುದು. ವಿಶ್ವವು ವ್ಯಕ್ತಿಯ ಕಡೆಗೆ ತಿರುಗುವುದು. ಹಾಗಾಗಿ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವದ ಬೆಳವಣಿಗೆ ವ್ಯಕ್ತಿಯನ್ನು ಸಮಷ್ಠಿಯ ಕಡೆಗೆ ಕರೆದೊಯ್ಯುವುದು.

“ಇವನಾರವ ಇವನಾರವ ಇವ ನಮ್ಮವ ಇವ ನಮ್ಮವ” ಎಂದು ಗಮನಸೆಳೆದವರು ಬಸವಣ್ಣನವರು.’ ನಾವು’, ’ ನಮ್ಮದು’, ’ ನಮ್ಮವ’ ಎಂಬ ಪದಗಳು ವ್ಯಕ್ತಿಯ ಬಗೆಗೆ ಅಭಿಮಾನ ವಿಶ್ವಾಸ ಭಾವನೆಗಳನ್ನು ಮೂಡಿಸುವುದು. ಆಡುವ ಮಾತು ಮನಗಳನ್ನು ಬೆಸೆಯುವುದು, ಮನೆಗಳನ್ನು , ಕುಟುಂಬವನ್ನು ಸಮುದಾಯವನ್ನು ಸಮಾಜವನ್ನು ಒಟ್ಟಾರೆ ಸಮಷ್ಠಿಯನ್ನು ತನ್ನಕಡೆಗೆ ಸೆಳೆಯುವುದು. ವರ್ತಮಾನದಲ್ಲಿನ ನುಡಿ ಭೂತವಾಗಿ ಭವಿಷ್ಯವನ್ನು ನಿರ್ಧರಿಸುವುದು. ನಿರ್ಮಿಸಿ ಬೆಳೆಸುವ ಮತ್ತು ನಾಶಗೊಳಿಸುವ ಶಕ್ತಿ ಮಾತಿಗೆ ಇರುವುದು. ಹಾಗಾಗಿ ನುಡಿವ ನುಡಿಯ ಬಗೆಗೆ ಎಚ್ಚರಿಕೆ ವಹಿಸಲೇಬೇಕು. ನುಡಿಯು ನಡೆಯನ್ನು ಪ್ರತಿಬಿಂಬಿಸುವುದು. ನಡೆವುದು ಒಂದು ನುಡಿವುದು ಒಂದಾದರೆ ಸಂಸ್ಕಾರದ ಮೂಲ ನೆಲೆಯನ್ನು ಪ್ರಶ್ನಿಸುವುದು. ಮತ್ತು ಮೂಲ ನೆಲೆಯ ಬೆಲೆಯನ್ನು ತಿಳಿಸುವುದು.

ಮಾನವನ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ಪೋಷಕ ಮಾತು. ಮಾತು ಮಾನವನ ಜೀವನಕ್ಕೆ ಅನೇಕ ಮಾರ್ಗ ತೋರಿಸುವುದು. ಮಾತು ಜ್ಞಾನದ ದೀವಿಗೆಯಾಗಿ, ಸೌಂದರ್ಯವನ್ನು ಸ್ಫುರಿಸುವಂತಿರಬೇಕು. ಗೌರವಾನ್ವಿತ ಪ್ರೀತಿಯ ಮೌಲ್ಯಯುತವಾದ ಮಾತುಗಳನ್ನು ಜೀವನದಲ್ಲಿ ಅಳವಡಿಸಿಕೊಂಡು ಹೋಗಬೇಕು. ಆಗ ಅದು ನೀತಿಯುತವಾದ ಜೀವನಕ್ಕೆ ಮೂಲವಾಗುವುದು. ಅದೇ ಭಗವಂತನು ಮೆಚ್ಚುವ ವಿಧಾನ.

ಉತ್ತಮ ನಡೆ ನುಡಿ ಹೊಂದಿದವರ ಸಂಸ್ಕಾರವು ಉತ್ತಮಿಕೆಯಿಂದಲೆ ಕೂಡಿರುವುದು. ಅಂತಹ ಸನ್ನಡತೆಯುಳ್ಳವರ ಮೇಲೆ ಭಗವಂತನ ಕೃಪೆಯು ಇರುವುದು. ಶುದ್ಧ ನಡತೆಯು ಕೇವಲ ನುಡಿಯಲ್ಲಿ ಮಾತ್ರವೇ ಇರದೆ ನಡೆಯಲ್ಲಿ ಸಕ್ರಿಯವಾಗಿ ತೊಡಗಿಸಿಕೊಳ್ಳಬೇಕು, ಮೌಲ್ಯಯುತವಾದ ನೈತಿಕ ಸನ್ನಡತೆ ಮನುಷ್ಯನ ಬೌದ್ಧಿಕ ಮತ್ತು ಭೌತಿಕ ವಿಕಾಸಕ್ಕೆ ಸಹಾಯಕವಾಗುವುದು ಮತ್ತು ಹೃದಯ ವೈಶಾಲ್ಯತೆಯು ಉಂಟಾಗವುದು.

ನುಡಿವ ನುಡಿಯಲ್ಲಿ ಮೋಸ ಅಸತ್ಯತೆ ಇರದೆ ಸತ್ಯದಿಂದ ನುಡಿವ, ಸತ್ಯವಂತಿಕೆಯಿಂದ ನೆಡೆವ ಗುಣ ಬಹಳ ಮುಖ್ಯ. ಎಲ್ಲರನ್ನು ಒಂದೇ ಎಂಬ ಏಕತೆಯ ಭಾವನೆಯಿಂದ ಕಾಣುವ ಒಳ್ಳೆಯ ಆಲೋಚನೆ ವಿಚಾರಗಳು ಒಳ್ಳೆಯ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ಸಾಕ್ಷಿಯಾಗಿದೆ. ಸದಾಚಾರದ ನಡೆಯು ಸದ್ವಿಚಾರದ ಗುಣ ಸ್ವಭಾವವು ಸ್ವರ್ಗ ಸಮಾನ, ಜ್ಞಾನಕ್ಕೆ ಬೆಳಕಿಗೆ ಸಮಾನ. ಅಸತ್ಯದ ನಡೆ ನುಡಿ ನರಕ ಸದೃಷವಾದುದು ಮತ್ತು ಅಜ್ಞಾನಕ್ಕೆ ಕತ್ತಲೆಗೆ ಸಮಾನ ಎಂಬ ನಂಬಿಕೆಗೆ ಕೂಡಲ ಸಂಗಮ ದೇವನೆ ಪ್ರಮಾಣ. ಪ್ರಾಮಾಣಿಕವಾದ ನಡೆನುಡಿಯು ಸದಾಚಾರದ ರೀತಿ. ನಡೆ ನುಡಿಯು ವ್ಯಕ್ತಿಯ ಆಂತರ್ಯವನ್ನು ಅರಳಿಸುವುದು. ಸದಾಚಾರವು ರೂಢೀಗತವಾಗಿರುವ ಕ್ರಿಯಾವಿಧಿಯಾಗಿರುವುದು. ಅನಾಚಾರವು ಮೌಲ್ಯಹೀನವಾದುದು. ಸತ್ಯವು ಲೌಖಿಕ ಮತ್ತು ಪಾರಮಾರ್ಥಿಕ ಅಂಶವನ್ನು ಪ್ರತಿಪಾಧಿಸುವುದು. ಅಂತೆ ಸತ್ಯವು ಘನ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ಆಧಾರವೂ ಹೌದು.

ಪ್ರಾಪಂಚಿಕ ಜೀವನದಲ್ಲಿ ಪಂಚೇಂದ್ರಿಯಗಳ ನಿಗ್ರಹ ಬಹಳ ಮುಖ್ಯ. ಅನವಶ್ಯಕವಾದ ವಿಚಾರಗಳಲ್ಲಿ ಮನಸ್ಸು ಹರಿಯುವುದು. ನುಡಿಯು ಪರರ ವಿಚಾರವನ್ನು ಬಳಸಲೆಳೆಸುವುದು. ನೋಟವು ಅನ್ಯರ ಕಡೆಗೆ ಇರಲಿಚ್ಚಿಸುವುದು. ಇಂತಹ ಪಂಚೇಂದ್ರಿಯಗಳನ್ನು ವಿಚಾರವಂತಿಕೆಯಿಂದ ಸಮರ್ಪಕವಾದ ರೀತಿಯಲ್ಲಿ ತಡೆಹಿಡಿಯುವುದು ಮುಖ್ಯ. ಆಗ ಮಹತ್ ಸಾಧನೆಯನ್ನು ಮಾಡಬಹುದು. ಪರವನ್ನು ಅರಿಯಬೇಕಾದಲ್ಲಿ ಇಹದಲ್ಲಿರುವ ಮನಸ್ಸನ್ನು ಸುಸಂಪನ್ನಗೊಳಿಸ ಬೇಕು. ಪರಮಾತ್ಮಿಕ ವಿಚಾರಕ್ಕೆ ಸನ್ನಡತೆಯು ಮುಖ್ಯ. ಇಹದಲ್ಲಿನ ಸದಾಚಾರವು ಪರರವನ್ನು ತಿಳಿಯಲು ಅನುವು ಮಾಡಿಕೊಡುವುದು.

ಲೌಕಿಕ ಮೋಹಕ್ಕೆ ಒಳಗಾದ ಜನರು ತಮ್ಮ ವಿಚಾರವನ್ನು ಹೊತರು ಪಡಿಸಿ ಅನ್ಯರ ವಿಷಯಕ್ಕೆ ಗಮನ ಹರಿಸುವುದೇ ಹೆಚ್ಚು. ಪರಚಿಂತೆಗೆ ಎಳಸುವ ಮನಸ್ಸನ್ನು ತಡೆದು ಭಗವಂತನನ್ನು ಸ್ಮರಿಸುವತ್ತ, ತಿರುಗಿಸುವುದು ಮುಖ್ಯ. ತಮ್ಮ ಅಭ್ಯುದಯಕ್ಕಾಗಿ ತಮ್ಮ ಕುರಿತಾದ ವಿಚಾರವನ್ನು ನಡೆಸಬೇಕು. ಸರಿ ಯಾವುದು ತಪ್ಪು ಯಾವುದು ಎಂಬ ವಿವೇಚನೆಯನ್ನು ವೃದ್ಧಿಗೊಳಿಸಿ ಕೊಳ್ಳಬೇಕು. ವ್ಯಕ್ತಿಯ ವಿಚಾರವಂತಿಕೆಯ ಬೆಳವಣಿಗೆ ವಿಚಾರವಂತ ಸಮಾಜದ ಬೆಳವಣಿಗೆಗೆ ಹಾದಿಯಾಗಿದೆ. ಪರರ ಕುರಿತಾದ ಚಿಂತನೆಯು ಕ್ರಿಯಾತ್ಮಕವಾದ ಯಾವುದೇ ಅಭಿವೃದ್ಧಿಗೆ ಅಡ್ಡಿಯಾಗುವುದು.

ನಿಜ ಶರಣನ ನಡೆ ಹೇಗಿರ ಬೇಕು, ಯಾವ ರೀತಿಯ ನಿಷ್ಠೆಯಿಂದ ಇರಬೇಕು. ಪರರ ವಸ್ತುಗಳಿಗೆ ಆಸೆ ಪಡುವ ಕೆಟ್ಟ ನಡೆಯನ್ನು ಹೊಂದಿರದೆ ನಿಜ ಶರಣನಾಗಿರಲು ಬೇಕಾದ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವ ಮತ್ತು ನಿಜ ಭಕ್ತಿಯ ಫಲದಿಂದ ಸಂಗಯ್ಯನಿಗೆ ಶರಣಾದರೆ ಆಗ ಕೂಡಲ ಸಂಗಯ್ಯನು ಮೆಚ್ಚುವನು ಅಂತಹ ಗುಣಹೊಂದಿರುವುದು ಮುಖ್ಯ ಎಂಬ ಅಂಶವನ್ನು ತಿಳಿಸಿದ್ದಾರೆ.

ಅರಿಷಡ್ವರ್ಗಗಳ ನಿಗ್ರಹವನ್ನು ಮಾಡಿಕೊಳ್ಳದ ಹೊರತು ಸತ್ಯ ನಿಷ್ಠತೆಯ ನಡೆಯನ್ನು ರೂಢಿಸಿಕೊಳ್ಳುವುದು ಕಷ್ಟಸಾಧ್ಯವಾಗಿರುವುದು. ಅಷ್ಟೇ ಅಲ್ಲ ತನ್ನ ಒಳಗಣ ಜಯವನ್ನು ಸಾಧಿಸಲು ಸಾಧ್ಯವಾಗುವುದಿಲ್ಲ. ಛಲದ ಗುಣವಿರದಿದ್ದರೆ ಆತ್ಮ ವಿಶ್ವಾಸ, ಆತ್ಮ ಗೌರವ, ಗಾಂಭೀರ್ಯತೆಯ, ಸತ್ಯನಿಷ್ಠ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಗಳನ್ನು ಹೊಂದಿರಲು ಸಾಧ್ಯವಿಲ್ಲ ಮತ್ತು ಬೆಳಸಿಕೊಳ್ಳಲು ಸಾಧ್ಯವಿಲ್ಲ. ಹಾಗಾಗಿ ಛಲದಿಂದ ಬಿಡದೆ ಸಾಧಿಸಿಕೊಳ್ಳಬೇಕೆಂಬ ಅಂಶವನ್ನು ವಚನದಲ್ಲಿ ತಿಳಸುತ್ತಾರೆ. ಈ ಛಲದ ನಡತೆಯು ವ್ಯಕ್ತಿಗತವಾದ ಪ್ರಗತಿಗೆ ಮಾತ್ರವಲ್ಲ ಸಮಷ್ಠಿಯ ಪ್ರಗತಿಯತ್ತ ಕರೆದೊಯುವುದು.

ಪರಂಪರಾನುಗತವಾಗಿ ನಂಬಿಕೊಂಡು ಬದಿರುವ ಆಚರಣೆಗಳು ಎಷ್ಟು ಅರ್ಥಪೂರ್ಣವಾಗಿರುವುದೋ ಅಷ್ಟೇ ಮೌಲ್ಯಯುತವಾಗಿರುವುದು. ಅರ್ಥಪೂರ್ಣವಾಧ ವಿಚಾರವಂತಿಕೆಯ ಆಚರಣೆಗಳು, ನಂಬಿಕೆಗಳು ಮತ್ತಷ್ಟು ಘನವಾಗುವುದು. ಇಲ್ಲದಿದ್ದಲ್ಲಿ ಅದು ಕೇವಲ ಹಿರಿಯರ ಆಚರಣೆಯ ಪಡಿಯಚ್ಚಾಗುವುದು ಸಮಾಜಿಕವಾದ ಅಸಮಾನತೆಯನ್ನು ನಿರ್ಮಿಸುವುದು. ಹಾಗಾಗಿ ವಿಚಾರವಂತಿಕೆಯಿಂದ ಅರ್ಥಪೂರ್ಣ ಆಚರಣೆಗಳನ್ನು ನಡೆಸಿಕೊಂಡು ಹೋಗಬೇಕಾದ ನಡೆ ಮುಖ್ಯ ಎಂಬ ಆಶಯವನ್ನು ಬಸವಣ್ಣನವರ ವಚನದಲ್ಲಿ ಗುರುತಿಸ ಬಹುದು.

ಬಸವಣ್ಣನವರ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವ ಹಿರಿಯದು. ಕ್ರಾಂತಿಕಾರರಾಗಿ ಭಕ್ತಿ ಭಂಡಾರಿಯಾಗಿ ಮಾನವೀಯತೆಯ ಸಂದೇಶ ಸಾರಿದವರು. ದಯೆ, ದಾನ, ಕರುಣೆ ಅನುಕಂಪ ಸಹಾನುಭೂತಿ ಸಮನ್ವಯತೆ, ಮಾನವೀಯತೆಯನ್ನು ತೋರುತ್ತ. ಉದಾತ ಗುಣಗಳಿಂದ ಸನ್ಮಾರ್ಗದಿಂದ ನೀತಿ ನಿಷ್ಠತೆಯಿಂದ ನಡೆದು ಕೊಳ್ಳುವುದು ಉತ್ತಮ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವಕ್ಕೆ ಪೂರಕ ಮತ್ತು ಪ್ರೇರಕ. ಬಸವಣ್ಣನವರ ವಚನಗಳಲ್ಲಿ ವ್ಯಕ್ತಿತ್ವದ ವಿಶಾಲತೆ, ಸರ್ವಸಮಾನತೆ, ನೀತಿ ನಿಷ್ಠೆ ಶಿವಭಕ್ತಿಯನ್ನು ಅಭಿವ್ಯಕ್ತಿಸುವುದನ್ನು ಕಾಣಬಹುದಾಗಿದೆ. ಇವು ಸರ್ವಕಾಲಕ್ಕೂ ಅನ್ವಯಿಸುವುದು.

ಪರಾಮರ್ಶನ ಗ್ರಂಥಗಳು :


೧. ಕನ್ನಡ ಸಾಹಿತ್ಯ ಚರಿತೆ – ರಂ.ಶ್ರೀ. ಮುಗುಳಿ

೨. ವಚನ ಸಾಹಿತ್ಯ – ಡಾ. ಚಿದಾನಂದ ಮೂರ್ತಿ

೩. ಬಸವಣ್ಣನವರ ವಚನಗಳು – ಡಾ. ಎಲ್. ಬಸವರಾಜು

೪. ಬಸವಣ್ಣ - ಡಾ. ಎಂ.ಜಿ. ನಾಗರಾಜು.

೫. ವಚನ ಧರ್ಮಸಾರ – ಎಂ.ಆರ್. ಶ್ರೀನಿವಾಸ ಮೂರ್ತಿ

೬. ಶರಣರ ಅನುಭಾವ ಸಾಹಿತ್ಯ – ಡಾ .ಎಚ್. ತಿಪ್ಪೇರುದ್ರ ಸ್ವಾಮಿ

೭. ಬಸವ ಬೆಳಕು – ದೇ.ಜೆ.ಗೌ

೮. ಬಸವಣ್ಣನ ಸಮಗ್ರ ವಚನಗಳು – ಎಂ.ಎಂ. ಕಲ್ಬುರ್ಗಿ

ಪತ್ರಿಕೆ ರಚನೆ

1. ಡಾ. ಬಿ.ಎಸ್. ಹೇಮಲತ
ಕನ್ನಡ ಸಹ ಪ್ರಾಧ್ಯಾಪಕರು
ಸಿ.ಎಂ.ಎಸ್.
ಲಾಲ್ ಭಾಗ್ ರಸ್ತೆ,
ಜೈನ್ (ಡೀಮ್ಡ್ ಟು ಬಿ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯ)
2. ಡಾ. ಸುಧಾ ಕನಕಾನವರ
ಹಿಂದಿ ಸಹಾಯಕ ಪ್ರಾಧ್ಯಾಪಕರು
ಸಿ.ಎಂ.ಎಸ್.
ಲಾಲ್ ಬಾಗ್ ರಸ್ತೆ, ಬೆಂಗಳೂರು.
ಜೈನ್ (ಡೀಮ್ಡ್ ಟು ಬಿ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯ)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 224-226

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# संस्कृत में काव्य शरीर और आत्मा – एक विवेचन

**डॉ. प्रियंका खण्डेलवाल**

सहायक आचार्य, संस्कृत, केशव महा. अटरू जिला–बारां।

आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ में शब्द नामक ज्योति का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है कि ये तीनों लोक गाढ अन्धकार में डूब जाते यदि शब्द नामक ज्योति का इस संसार में प्रकाश न होता।

इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।[1]

इसी सन्दर्भ में आचार्य दण्डी ने इष्टार्थ को व्यक्त करने वाली पदावली को काव्य का शरीर कहा–

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।।[2]

दण्डी ने उस पदावली का पूर्णतः निर्दोष होना अनिवार्य माना है क्योंकि जैसे श्वेत कुष्ठ के एक दाग से ही सुन्दर शरीर भी कुरूप हो जाता है उसी प्रकार एक दोष के स्पर्श से भी काव्य अग्राह्य हो जाता है।

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथनञ्चन।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।।[3]

आचार्य जयदेव निर्दोष लक्षणों से युक्त, रीतियों व गुणों से भूषित, अलंकारों, वृत्तियों तथा शब्द शक्तियों से युक्त वाक् (शब्द) को काव्य कहते हैं :–

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सांलकाररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक्।।[4]

पण्डितराज भी रमणीयार्थ को प्रतिपादित करने वाले शब्द को काव्य कहते है–

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।[5]

अलंकार शास्त्र के प्रथम आचार्य भामह ने शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् कहकर शब्द अर्थ के साहित्य सहितयोः भावः साहित्यं को ही काव्य कहा।[6]

रीति सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य वामन के अनुसार गुण और अलंकारों से संस्कृत (परिष्कृत) शब्द–अर्थ ही काव्य है– काव्य शब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोः वर्तते।[7]

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के पोषक राजानक कुन्तक ने वक्रकविव्यापारशाली, बन्ध में व्यवस्थित, काव्य मर्मज्ञों के लिए आह्लादकारी शब्द–अर्थ को काव्य कहा–

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यम् तद्विदाह्लादकारिणि।।[8]

मम्मटाचार्य भी दोषों से रहित, गुणों से युक्त तथा कहीं स्फुट अलंकारों से युक्त शब्दार्थ को ही काव्य कहते है।

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।[9]

राज शेखर का मानना है कि गुणवान् तथा अलंकारयुक्त वाक्य ही काव्य है।

गुणवदलंकृतञ्च वाक्यमेव काव्यम्।[10]

आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने ग्रन्थ में सहृदयों के आह्लादक शब्दार्थ को काव्य कहा जाता है।

सहृदयहृदयाह्लादि शब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्।[11]

इन काव्य शास्त्रियों के अतिरिक्त कविकुलगुरू कालिदास ने भी अपने प्रथम महाकाव्य में शब्दार्थ रूपी काव्य की सिद्धि के लिए जगत् के माता पिता पार्वती–परमेश्वर को नमस्कार करते हुए शब्दार्थ को साहित्य बताया है–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।[12]

**काव्यात्मा :-**

काव्य शास्त्र में सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि काव्य का आत्मभूत तत्त्व क्या है, जिसके अभाव में काव्य को काव्य नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार शरीर में आत्मा प्रमुख तत्त्व होता है, क्योंकि आत्मा के बिना शरीर की कोई गतिविधि नहीं होती, शरीर का अस्तित्व नहीं रहता तथा शरीर के सम्पूर्ण आकर्षण के समान काव्य में भी एक ऐसा तत्त्व है, जो आत्म–संज्ञा को प्राप्त करता है। वहीं सौन्दर्य, आकर्षण और आह्लादकत्व का कारण होता है। काव्य शास्त्र के प्रारम्भिक युग से ही आचार्य उस आत्मतत्त्व की खोज करते रहे, परन्तु जिस प्रकार नदी के प्रवाह के समान शास्त्र का प्रवाह भी प्रारम्भ में छोटा होता है, बढ़ते–बढ़ते वह विशाल बन जाता है, ऐसे शास्त्र लोकादर के भाजन होते है।[13] ठीक इसी तरह काव्यात्मा की खोज करते करते आचार्य विभिन्न परिणामों पर पहुँचे। किसी ने रस को, किसी ने अलंकार को, किसी ने रीति को, किसी ने ध्वनि को, किसी ने वक्रोक्ति को, किसी ने औचित्य को काव्य की आत्मा माना। लम्बी चर्चा–परिचर्चा के बाद जिस आचार्य ने, जिस तत्त्व में सौन्दर्य का आकर्षण अनुभव किया, उसी को काव्य की आत्मा माना और इसी आधार पर सम्प्रदाय बनते गए।

कतिपय आचार्यों ने काव्य में सबसे प्रमुख तत्त्व रस को माना। काव्य का प्रमुख उद्देश्य रस का संचार करना है, जिसका आस्वादन करके सहृदयजन आह्लाद का अनुभव करते हैं। इस दशा में काव्य की आत्मा रस है। कुछ आचार्यों का मानना है कि काव्य का प्रमुखतम आकर्शक एवं सहृदयाह्लादक तत्व अंलकार है। काव्य का शरीर शब्द और अर्थ है उनको सुशोभित करने वाले अंलकार ही काव्य की आत्मा है। जबकि कुछ ने प्रतिपादित किया कि काव्य का सौन्दर्य पदों की संघटना के कारण होता है। पदों की संघटना को रीति नाम दिया है। यह रीति ही काव्य की आत्मा है। अन्य ने वैचित्र्य से युक्त उक्ति को वक्रोक्ति कहा और यह वक्रोक्ति ही काव्य की आत्मा है। अन्य आचार्यों ने औचित्य को काव्य की आत्मा कहा। जबकि अन्य आचार्यो ने माना कि काव्य में सौन्दर्य व्यंग्य अर्थ के कारण होता है। काव्य में व्यंग्य अर्थ के मुख्य होने पर वह ध्वनि काव्य कहलाता है, वहाँ ध्वनि को ही काव्य की आत्मा माना गया है।

**सन्दर्भ :–**


1. काव्यादर्श, 1/4
2. काव्यादर्श, 1/10
3. काव्यादर्श, 1/7
4. चन्द्रालोक, 1/7
5. रसगंगाधर, प्रथमानन
6. काव्यालंकार, 1/16
7. काव्यालंकारसूत्र, 1/1/1
8. वक्रोक्तिजीवित, 1/7
9. काव्यप्रकाश, 1/4
10. काव्यमीमांसा, शष्ठ अध्याय
11. ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत
12. रघुवंश, 1/1
13. काव्यमीमांसा, द्वितीय अध्याय, पृ. 11

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 227-233

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# सुधा ओम ढींगरा की कहानियों के विविध आयाम

**डॉ. अमित कुमार सिंह**

अतिथि व्याख्याता, हिंदी, मुं. हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

प्रवासी साहित्य आज के नवयुग का सशक्त विमर्श है। चारों ओर विभिन्न कारणों से हो रहे प्रवसन ने इस विमर्श को नवीन आयाम दिये हैं। प्रवासी व्यक्ति की अपने देश से आने की परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न हो सकती हैं किंतु नए देश में प्रवास के दौरान व्यक्ति में अपने देश से अलग होने की पीड़ा, अनिश्चितता, अलगाव का दंश आदि संघर्ष जन्म लेते हैं। प्रवासी हिंदी साहित्य में प्रवसन और विस्थापन से जन्मीं इन परिस्थितियों का अंकन हुआ है।

प्रवासी हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में प्रवासी महिला रचनाकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रवासी लेखिकाओं का साहित्य इस रूप में भी महत्वपूर्ण है कि उनके साहित्य में जहाँ एक ओर विभिन्न देशों की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का अंकन तो हुआ ही है वहीं दूसरी ओर इनका साहित्य नारी जीवन की सूक्ष्म एवं गहन पड़ताल का साहित्य भी बन गया है। प्रवासी महिला लेखिकाओं में सुधा ओम ढींगरा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत शोध–पत्र में सुधा ओम ढींगरा जी की कहानियों के विविध आयामों पर चर्चा होगी।

**मूल शब्द :–** प्रवसन, विस्थापन, नारी मन, प्रवासी विमर्श।

**प्रस्तावना :–**

अमेरिका में प्रवास कर रहीं वरिष्ठ रचनाकार सुधा ओम ढींगरा का जन्म 1959 ई. में जालंधर (पंजाब) में हुआ था। सुधा जी अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति अमेरिका के कवि सम्मेलनों की राष्ट्रीय संयोजक हैं। 'प्रथम शिक्षण' संस्था की कार्यकारिणी सदस्या एवं उत्पीड़ित नारियों की सहायक संस्था 'विभूति' की सह–संपादक हैं। सुधा जी के प्रकाशित कहानी संग्रह कमरा नंबर 103, कौन सी जमीन अपनी, दस प्रतिनिधि कहानियाँ तथा टॉरनेडो (पंजाबी से अनुदित) प्रकाशित हैं।

सुधा जी की कहानियाँ भारतीय परिवेश से तो जुड़ी ही हैं। इनका दूसरा सिरा प्रवासी जीवन के सूक्ष्म संसार से भी जुड़ा है। पंकज सुबीर के अनुसार, "सुधा ओम ढींगरा की कहानियों का एक और मजबूत पक्ष यह है कि इन कहानियों में कई बार परिदृश्य भारत के बाहर होने के बाद भी पाठक कहीं भी असहज महसूस नहीं करता है। ऐसा इसीलिए क्योंकि लेखिका अपने पात्रों को मनोवैज्ञानिक स्तर पर लाकर गढ़ती हैं और इसी कारण पात्र किसी एक देश या समाज के दायरे में बँधा हुआ नहीं रहता है। इन कहानियों में जो परिदृश्य है, वह किसी भिन्न देश का परिदृश्य होने के बाद भी अपना सा ही लगता है।"[1]

**उद्देश्य :-**

– सुधा ओम ढींगरा की कहानियों का परिचय प्राप्त करना।

– सुधा ओम ढींगरा की कहानियों के विविध पक्षों का विश्लेषण करना।

– सुधा ओम ढींगरा की कहानियों के वैशिष्ट्य को परखना।

**व्याप्ति एवं प्रासंगिकता :-**

प्रस्तुत शोध–पत्र में प्रो. प्रदीप श्रीधर द्वारा संपादित 'प्रवासी हिंदी साहित्य : दशा एवं दिशा', डॉ. नवनीत कौर द्वारा रचित 'प्रवासी हिंदी साहित्य : वैश्विक परिदृश्य', डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा संपादित 'प्रवासी साहित्य : जोहासवर्ग के आगे' आदि सैद्धान्तिक ग्रंथों का अध्ययन किया गया है। इस शोध पत्र हेतु सुधा ओम ढींगरा जी के कहानी संग्रहों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्रिकाओं, वेब पत्रिकाओं आदि का भी अनुशीलन किया गया है।

आज के युग में प्रवासी साहित्य विशेषकर प्रवासी महिला लेखन अपने इंद्र धनुषी आयामों के साथ हमारे समक्ष आया है। ऐसे में इस साहित्य का सूक्ष्म अंकन, उसके मर्म के विश्लेषण की अत्यंत आवश्यकता है। इस प्रकार का विश्लेषण हिंदी साहित्य के समृद्ध होते स्वरूप के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

**अनुसंधान पद्धति :-**

प्रस्तुत शोध–पत्र में सुधा ओम ढींगरा की कहानियों के विविध पक्षों का विश्लेषण करते हुए निष्कर्षों को प्राप्त किया गया है। इस हेतु आगमन एवं निगमन अनुसंधान पद्धतियों का प्रयोग किया है। प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण कर निष्कर्षों तक पहुँचा गया है।

**विश्लेषण :-**

सुधा ओम ढींगरा अमेरिका में रहकर अपनी लेखनी के बल पर प्रवासी जीवन के संताप, संघर्ष, चेतना आदि अनुभवों को सार्थक रूप में प्रस्तुत कर रही हैं। उनकी कहानियों में रंग भेद की समस्या, पारिवारिक तनाव, पीढ़ीगत द्वन्द्व, नारी जीवन के संघर्ष, सांस्कृतिक द्वन्द्व आदि यथार्थ रूप में दिखाई देते हैं।

मानवीय चेतना सुधा जी के लेखन का महत्वपूर्ण आयाम है। उन्होंने अपनी कहानियों में चेतना के विविध रूप विकसित किए हैं। 'सुधा ओम ढींगरा' की कहानी 'क्षितिज से परे' में नायिका अपनी बेटियों द्वारा अमेरिकी पतियों के चयन का आधार उनके भारतीय पिता के दुर्व्यवहार को बताती है। उसकी चेतना सम्पन्न बेटियाँ दृढ़ता से अपने जीवन साथी चुनती हैं। "आपको यह जानकर दुःख होगा कि मेरी बिटियों ने स्थानीय पति ढूँढे हैं, इसलिए नहीं कि उन्हें अमरीकी कल्चर से प्यार है, अमरीकी लड़कों के साथ गृहस्थी निभाते हुए भी वो भारतीय हैं। वे अपने बाप के व्यवहार, स्वभाव और मानसिकता से इतनी आहत हुईं कि भारतीय मर्दों और उनके दोहरे मापदंडों से नफ़रत करने लगी।"[2]

पार्टी कल्चर पश्चात्य समाज का अभिन्न भाग है। किंतु पार्टियों में पति बुरे व्यवहार से तंग आकर नायिका अपने पति सुलभ का विरोध करने का निर्णय लेती है– "मैं समझ नहीं पाई, यह सब क्या हुआ... हाथ 911 घुमाने के लिए टेलीफोन की तरफ बढ़े, पुलिस आ जाती और हमेशा के लिए किस्सा समाप्त हो जाता है ....पर संस्कारों ने रोक दिया, सुलभ का घटियापन दुनिया के सामने आ जाता....मेरी आत्मा को गवारा नहीं था। सुलभ सारी रात नहीं सोए, आलोचना के साथ शिकायतें ही शिकायतें करते रहे...पार्टी का सारा मजा किरकिरा

हो गया था....नए साल की शुरूआत से ही मैंने फैसला ले लिया था....पार्टिया बंद...सुलभ मुझे किसी पार्टी के लिए मजबूर नहीं कर पाए थे....उन्हें मेरे विरोध का आभास हो गया था।"[3]

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' में जार्ज साथियों की अकर्मण्यता को स्वीकार नहीं करता। उसकी चेतना इसका विरोध करती है– "जार्ज को गुस्सा आ गया – इस घर में आप लोग काम क्यों नहीं करना चाहते, काम करने आप सब कतराते क्यों हैं? क्या तुम लोगों के मन में दूसरों को देखकर कोई उमंग नहीं उठती। उनकी तरह जीने की चाह नहीं होती। सफर से सारे बैठे रहते हैं, हरामी सब निकम्मे हो गये हैं, निठल्ले खाली बैठकर मुफ्त की खाने के आदी हो गए हैं। अब सालों मैं तुम दोनों की जिंदगी बदलना चाहता हूँ और तुम हो कि इस गंदगी में पड़े रहना चाहते हो ...।"[4]

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'बेघर सच' की नायिका रंजना गैलरी में एक मूर्ति देखकर नारी पवित्रता के सम्बन्ध में विचार रखती है। ये विचार रंजना के जीवंत व्यक्तित्व को दर्शाते हैं– "दुनिया में सबसे पवित्र अगर कोई है तो वह नारी है। पुरुष बीज डालता है तो वह नौ महीने बाद उसे फल देकर साथ की सारी गंदगी बाहर निकाल देती है। हर माह प्रकृति उसका भीतरी आँगन स्वच्छ कर देती है। उसे तो कोई पुरुष मैला कर ही नहीं सकता। प्रकृति ही उसका साथ देती है वह तो गंगा की तरह पवित्र है। अगर वह बलात्कार और उसके बाद के डर को अपने भीतर से निकाल दे तो वह शक्ति है। अपनी इस ताक़त को नारी स्वयं भी पहचान नहीं पा रही। वह तो कभी मैली होती ही नहीं। कुदरत ही उसे साफ कर देती है।"[5]

सुधा जी की कहानी 'बिखरते रिश्ते' में आँटी रिमझिम को कालचक्र के परिवर्तन के माध्यम से मानवीय चेतना के उत्थान की बात बताती है– "रानी, क्यों अपना जीवन बर्बाद कर रही है तू ? बलबीर तो बदलने से रहा। तुझे जब तक अक्ल आएगी, बहुत देर हो चुकी होगी, जाने क्यों मैं इतनी सीधी सपाट बात करने की आधी हो चली हूँ। मेरे पास कहाँ समय था ये सब बेवकूफ़ियाँ बर्दाश्त करने का।

आंटी जी मैं की करॉं? वह मुझे टालते हुए बोली
उसे छोड़ क्यें नहीं देते? शायद उसे मुझसे इस बात की अपेक्षा न थी
ओन्नु छड़के कित्थे जावांगी? उसका चेहरा देखने लायक था।
अरे, तू कमाती है, काउंसिल वाले तेरे रहने की व्यवस्था कर देंगे।"[6]

सुधा जी की कहानियों में नारी अपने जीवन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती है और उन्हें प्राप्त भी कर लेती है 'फंदा–क्यों.....?' कहानी की जसबीर मोहन के साथ अपनी गृहस्थी को बखूबी सँभाल लेती है– "खैर, यो तो एक बहाना था जो मेरा बेटा बन रहा था। इन बच्चों के लिए हम क्या नहीं करते और इनसे एक छोटा–सा काम भी नहीं होता। गोरे बच्चों को देखिए, घर का सारा काम करते हैं। छोटी उम्र से ही काम पर लग जाते हैं। हमरे बच्चे केवल पढ़ते हैं और इसकी एवज में हम उन्हें सारी सुविधाएँ मुहैया कराते हैं। फिर भी हमारे बच्चे इन गोरे और काले बच्चों से लाख दर्जा अच्छे हैं। चोरी–डकैती तो नहीं करते, ड्रग्स तो नहीं लेते।"[7]

सुधा जी मानवीय संघर्षों से परे जाकर मानवीय लक्ष्यों को प्राप्त करने की बात करती हैं।

भारत से प्रवास पर जाने का कार्य सदैव होता रहा है। आवागमन के साधनों ने इस प्रक्रिया में और तेजी ला दी है। भारतीय प्रवासी दुनिया के कोने–कोने में बसे हुए हैं। अनेक भारतीय ऐसे हैं जो भारत से इतर देशों में हिंदी रचना व विकास के कार्य में लगे हुए हैं। इनमें दूतावास के अधिकारी और विदेशी विश्वविद्यालयों के

प्राध्यापक तो हैं ही अनेक सामान्यजन भी हैं जो नियमित लेखन व अध्यापन से विदेश में हिंदी को लोकप्रिय बनाने के काम में लगे हैं। 'विदेश में रहने वाले हिंदी साहित्यकारों का महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि उनकी रचनाओं में अलग–अलग देशों की विभिन्न परिस्थितियों का विकास मिलता है और इससे हिंदी साहित्य का अन्तर्राष्ट्रीय विकास होता है और समस्त विश्व हिंदी भाषा में विस्तार पाता है।"[8]

बीसवीं शती के मध्य से भारत छोड़कर विदेश जा बसने वाले लोगों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। इसमें से अनेक लोग हिंदी के विद्वान थे और भारत छोड़ने से पहले ही लेखन में लगे हुए थे। ऐसे लेखक अपने देश में चुपचाप में लगे थे पर उनमें से कुछ भारत में धर्मयुग जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर लेखन काफी लोकप्रिय हुए, जिनका लोहा भारतीय साहित्य संसार में भी माना गया।

'बीसवीं सदी का अंत होते लगभग 100 प्रवासी भारतीय अलग–अलग देशों में अलग–अलग विधाओं में साहित्य रचना कर रहे थे। 21वीं सदी के प्रारम्भ होने तक पचास से भी अधिक साहित्यकार भारत में अपनी पुस्तकें प्रकाशित करा चुके थे वेब पत्रिकाओं का विकास हुआ तो ऐसे साहित्यकारों को एक खुला मंच मिल गया और विश्वव्यापी पाठकों तक पहुँचने का सीधा रास्ता भी। अभिव्यक्ति और अनुभूति पत्रिकाओं में ऐसे साहित्यकारों की सुधा जी की कहानियाँ दोनों देशों की संस्कृतियों को प्रतिबिम्बित करती हुई दिखाई देती हैं। इनकी कहानी 'सूरज क्यों निकलता है' अमेरिका में बसे निम्न वर्ग के अश्वेत लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है। कहानी में इन अश्वेत लोगों के साथ अमेरिकी लोगों द्वारा किया गया रंगभेद भी यथार्थ रूप में प्रकट होता है। तेजेन्द्र शर्मा के अनुसार, "सूरज क्यों निकलता है में सुधा ओम ढींगरा अमरीका के निम्न वर्ग के अश्वेत लोगों के जीवन से हमारा परिचय करवाती हैं। साथ ही साथ वहाँ के बेघर लोगों का सरकार कैसे ख्याल रखती है, यह जानकारी भी सूक्ष्म तरीके से मिलता है।'[8]

इस कहानी को देख प्रेमचंद की चर्चित कहानी कफन के कुछ प्रसंग याद आ जाते हैं। कहानी में पीटर और जेम्स खासे ढीठ किस्म के भिखारी हैं, जो देखने में 'घीसू' और 'माधव' के अमेरीकन अवतार हो सकते हैं। दोनों अपने हाथ में गत्ते का टुकड़ा हाथ में थामे रखते हैं, जिस पर लिखा होता है होम–लेस नीड यौर हैल्प'। जहाँ एक ओर तो हम यह सोचते हैं कि अमेरिका में बहुत अमीर लोग बसते हैं जिनके पास बड़े–बड़े घर हैं, गाड़ियाँ हैं और चारों ओर सुख–समृद्धि है। इसके विपरीत यह कहानी दो अश्वेत भिखारियों के माध्यम से अमेरिका में निम्न वर्ग की स्थिति का यथार्थ वर्णन करने में सक्षम हैं– 'कई दिनों से उनके गले सूखे हुए हैं, शराब की एक बूँद उन्हें नसीब नहीं हुई। पूरे बदन में बहुत तनाव है, उसे तनावरहित करने के साधन नहीं जुटा पाए वे। जेब में वेलफेयर में मिले भोजन के कूपनों के अतिरिक्त एक डॉलर भी उनके पास नहीं है।..... "[9]

'सूरज क्यों निकलता है' कहानी में स्त्री एवं पुरुष भोगवादी संस्कृति की गिरफ्त में है इसका चित्रण इस कहानी में किया गया है– "माँ के स्वभाव'' रहन–सहन और आदतों का परिणाम यह निकला कि बेटियाँ माँ के नक्शे–कदमों पर चलती हुई, रोज पुरुष बदलती हैं और तीन बच्चों की अविवाहित माँ बनकर सरकारी भत्ता ले रही है।'[10] विकसित देशों में शलिव इन रिलेशनशिपश के अंतर्गत एक स्त्री–पुरुष का साथ केवल स्थायी सुखों तक ही सीमित है।

पाश्चात्य भोगवादी संस्कृति में लिए त्याग के लिए कोई स्थान नहीं है। असामान्य है। सुधा ओम ढींगरा कृत कहानी टॉरनेडो भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति की तुलना करती श्रेष्ठ कहानी है। कहानी में पाश्चात्य

जीवन–शैली और भारतीय जीवन मूल्यों के बीच जूझती मिसेज शंकर नामक पात्र के संघर्ष को उद्‌घाटित किया गया है। कहानी में प्रमुख पात्र के साथ–साथ स्वयं लेखिका का जन्म भूमि और कर्मभूमि के प्रति अंतर्द्वद्व भी कहानी को विशिष्ट बनाता है। कहानी में जैनेफर कहती है– 'मिसिज शंकर अब नार्मल है।' वंदना को यह बात बिल्कुल बुरी नहीं लगती है। वह मुस्कुरा जाती है। "अमेरिकी लोग, प्रीति की आंतरिक समाधि को कहाँ समझ सकते हैं? जहाँ शारीरिक इच्छा गौण हो जाती है, दैहिक सुख के आगे वे सोच ही नहीं पाते हैं?.....व्योम उससे अलग कब था? वह व्योम की तो हो चुकी थी। कभी–कभी वंदना सोचती, श्याम भी मीरा में ऐसे ही समाए होंगे। आंतरिक समन्वय प्रेम की ज्योति प्रज्वलित कर देता है, उसकी लौ पूरा बदन प्रेममय कर देती है, फिर बाहरी सुख की इच्छा नहीं रहती।"[11] कहानी में वंदना अपनी बेटी के साथ–साथ जैनेफर की बेटी क्रिस्टी को भी उसकी माँ की अनुपस्थिति में भारतीय संस्कार देती है। वंदना के संस्कारों के कारण क्रिस्टी को पाश्चात्य संस्कृति की तुलना में भारतीय संस्कृति अधिक आकर्षित करती है। इसलिए वह घर छोड़ने के उपरांत ईमेल में वंदना को यशोदा माँ कहकर संबोधित करती है।

प्रवासी आज तक अपनी मिट्टी के मोह से दूर नहीं हो पाया है और न ही जिस देश में प्रवास कर रहा है उससे उसका जुड़ाव हो सका है। कौन सी जमीन अपनी कहानी में मनजीत सिंह सोढ़ी के साथ यव वंदना दिखाई देती है प्रम जनमेजय इस कहानी के संबंध में कहते हैं कि, 'चाहे हम एक जमीन पर रहते हैं, पर हम अपनी–अपनी जमीन पर अपना–अपना जीवन जीते हैं। इस माटी की गंध से बिछोह हमें सब प्रकार की सुख–समृद्धि के बावजूद वंचित–सा अनुभव करवाता है। सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'कौन सी ज़मीन अपनी' उसी अनुभव की कहानी है।'[12]

इस कहानी का नायक मनजीत सिंह सोढ़ी अपनी कमाई का हिस्सा अमेरिका से भारत इसलिए भेजता है कि उस पैसे से भारत में जमीन लेकर बुढ़ापे में वह अपने देश रह सके। जब वह भारत वापस आता है तो उसके पैसों पर विलासी जीवन जीने वाले परिवारीजनों को यह अच्छा नहीं लगता कि वह सदैव के लिए वहाँ आ जाए। वह उसको मारने का षड़यंत्र करते हैं किंतु मनजीत को इसका पता चल जाता है और वह अपनी पत्नी के साथ वहाँ से दुःखी मन से चला जाता है– उसके होश ही उड़ गए कि जिस परिवार के लिए उसने जिंदगीभर इतना सब कुछ किया आज वह ऐसा भी कर सकता है– 'सौष्ठव देहयष्टि वाली मनविंदर ने मनजीत को बाँहों में भर कर उठने में मदद की। अपना पर्स उठाया और आधी रात में ही दोनों पिछले दरवाजे से निकल गए। उनके पाँव के नीचे वही जमीन थी, जिसके लिए मनजीत उम्रभर डॉलर भेजता रहा। चारों तरफ गहरा काला अँधेरा था।'[13]

सुधा ओम ढींगरा ने अपनी कहानियों में स्त्री जीवन के संघर्ष को सार्थक अभिव्यक्ति दी है। वर्तमान युग में स्त्री एक पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती है, लेकिन फिर भी उसकी स्थिति वैसी ही है जैसी पहले थी। कहानी बेघर सच की नायिका रंजना भी कुछ इसी स्थिति से संघर्षरत दिखाई देती है– "तिनका–तिनका चुन कर नर–मादा नीड़ बनाते हैं; फिर वह नीड़ सिर्फ नर का कैसे हो जाता है? मादा का अधिकार उस पर क्यों नहीं रहता? युगों से यही तो होता आया है.... नारी घर की रानी, अधिकार तेरे पानी। पुरुष के मूड पर है कब किस रूख बैठे, कई बार एक ही झोंके में नारी के सारे अधिकार पानी में बहा दिए जाते हैं और वे भी नाली के पानी में।'[14] इस कहानी में लेखिका ने यह स्पष्ट रूप से दिखाया है कि बेशक कोई स्त्री अपने पति के साथ

कंधे से कंधा मिलाकर क्यों न चल ले लेकिन उसकी स्थिति घर में वही है जो पहले थी। यहाँ रंजना के माध्यम से सुधा ओम ढींगरा ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक स्त्री का भी अपना अस्तित्व है, लेकिन वह इस पितृसत्तात्मक समाज में कहीं खो कर रह जाता है। इसी प्रकार सुधा ओम ढींगरा ने अपनी 'क्षितिज से परे' कहानी में प्रताड़ित स्त्री के संघर्ष को दर्शाया है।

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'काश ! ऐसा होता'..... में मिसेज हाइडी के बच्चों द्वारा उनकी उपेक्षा का उल्लेख किया गया है– "हैं दो बेटे, पर नाम के। मिस्टर हाइडी की डेथ पर आए थे। उसके बाद आज तक उन्होंने कभी मिसेज हाइडी से पूछा नहीं। माँ तुम कैसी हो? मिसेज़ हाइडी ही पोते–पितोयं, बेटे–बहुओं को उपहार भेजती हैं। उनकी तरफ से तो कभी यह भी उत्तर नहीं आया कि माँ उपहार मिल गए या माँ तुम इतना खर्च क्यों करती हो?"[15]

सुधा जी की कहानी नंबर 103 की कमलेश वर्म जी पीड़ा दरकते पारिवारिक संबंधों को दर्शाती है– "कमलेश वर्मा अपने आन्तरिक संसार में सोचों के कई पहाड़ छलाँगती गईं। कुछ ही दिनों में सच्चाई सामने आ गई। बहू का गर्भ गिर गया और मैं अपने पर बोझ बन गई। मैं बच्चे की देखरेख के लिए लाई गई थी, मेरा अब वहाँ क्या काम था.....पर मैं कहाँ जाती? और उस पैसे से बेटे ने अपने घर की किश्तें चुका दी थी। स्वाभिमान मारकर बैठी रही। अचानक एक दिन बेटे को नौकरी से जवाब मिल गया। अब मैं उस घर में दीवार लगा मकड़ी का जाला थी, जिसे उतारकर फेंकना चाहते थे। मैं भारत लौटना चाहती थी, पर बेटे की सूरत रोक लेती।"[16] 'बेघर सच' कहानी में सुध ओम ढींगरा जी ने रंजना और संजय के माध्यम से मृत प्राय दाम्पत्य संबंधों को उजागर किया है– "दोनों काम से घर आते। संजय टीवी देखता और उसके शरीर से खेलता हुआ सो जाता। वह मानसिक सामंजस्य के लिए सहारा तलाशती। उसे पता चल गया था कि संजय एक अति महत्त्वाकांक्षी और वर्कोहलिक व्यक्तित्व है। कंपनी में वह सबसे ऊँचे पद पर पहुँचना चाहता था। इसलिए सातों दिन काम करता। घर उसके लिए रात्रि–स्थली था और वह सिर्फ भोग्या। रजना इनसान है, उसका अपना व्यक्तित्व है, अस्तित्व है, सोच है, समझ है। वह भी कुछ चाहता है, इससे उसको कोई सरोकार नहीं था। बस वह पति है, इतना वह बखूबी जानता था।"[17]

प्रवासी जीवन में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ दिखाई देती हैं। सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'उसका आकाश धुंधला' में संबंधों की दरकन दिखाई देती है। यहाँ सम्बन्धों में विषमता विद्यमान है– "अलग ही कर दिया है। पापा जी ने हैसियत से ज्यादा दहेज़ दिया तो भाभियों के मुंह फूल गए। और जब पाप जी ने संपत्ति से भी मुझे हिस्सा दे दिया, सगे भाई परायों जैसा व्यवहार करने लगे हैं। ससुराल वाले खुश हैं कि उन्हें बहुत कुछ मिल गया। पर मुझे क्या मिला। तीन बेटियां और ससुराल के ताने, लानते और भाइयों की बेरुखी। सुहानी का गला भर आया।"[18]

पारिवारिक विघटन के दंश से जूझती सुहानी टूट चुकी है।

**निष्कर्ष :-**

सुधा जी कहानियों का विश्लेषण करने के उपरांत यह ज्ञात होता है कि सुधा जी की कहानियों में पारिवारिक विघटन नारी जीवन का संघर्ष, प्रवासी जीवन का अकेलापन एवं मूल्य संक्रमण जैसी दशाओं भी सार्थक अभिव्यक्ति हुई है। सुधा जी ने अपनी कहानियों के बल पर प्रवासी जीवन का सूक्ष्म अंकन किया है।

**संदर्भ :-**


1. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, (भूमिका पकंज कबीर), सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ–9–9
2. वही, पृष्ठ–82.
3. वही, पृष्ठ–82.
4. वही, पृष्ठ–67.
5. वही, पृष्ठ–48–49.
6. कौन सी जमीन अपनी, सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ–76–77.
7. वही, पृष्ठ–70.
8. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, (फ्लैप पृष्ठ), सुधा ओम ढींगरा।
9. कौनी जमीन अपनी (कहानी : सूरज क्यों निकलता है), सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ–40.
10. वही, पृष्ठ–44.
11. दस प्रतनिधि कहानियाँ, (कहानी : टॉरनेडो), सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ–100.
12. कौन सी जमीन अपनी, सुधा ओम ढींगरा, फ्लैप पेज।
13. वही, पृष्ठ–19.
14. दस प्रतिनिधि कहानियाँ (कहानी : बेघर सच), सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ–12.
15. वही, पृष्ठ–122.
16. वही, पृष्ठ–59.
17. वही, पृष्ठ–47.
18. कौन सी जमीन अपनी, सुधा ओम ढींगरा, पृष्ठ–110.



पता–35/403, नौबस्ता, लोहामण्डी, आगरा–282002

दूरभाष नं. 7351299754,

E-mail : amit2k81@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 234-237

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਬਾਣੀ ਵਿਚਲੇ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਤੱਤਾਂ ਦਾ ਵਿਵੇਚਨ

ਹਰਮੀਤ ਸਿੰਘ ਗਿੱਲ, ਖੋਜਾਰਥੀ-ਪੀਐੱਚ.ਡੀ. (ਪੰਜਾਬੀ) ਅਤੇ
ਪ੍ਰੋ. (ਡਾ.) ਮਤਨਾਮ ਸਿੰਘ ਜੱਸਲ, ਡੀਨ (ਰਿਸਰਚ),
ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ, ਬਠਿੰਡਾ।

ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਬਾਣੀ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਵਿਚ ਦੋ ਭਾਗਾਂ ਵਿਚ ਸੰਕਲਤ ਹੈ, ਪਹਿਲਾ ਭਾਗ ੫੯ ਸ਼ਬਦ/ਪਦਿਆਂ ਦਾ ਹੈ ਜੋ ੧੫ ਰਾਗਾਂ ਦੀ ਤਰਤੀਬ ਅਨੁਸਾਰ ਗੁਰੂ ਅਰਜਨ ਦੇਵ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਦੇ ਅੰਤ ਵਿਚ ਅੰਕਤ ਹਨ ਅਤੇ ਦੂਜਾ ਭਾਗ ੫੭ ਸਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਸਬੰਧਤ ਹੈ ਜੋ 'ਮੁੰਦਾਵਣੀ' ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ 'ਸਲੋਕ ਵਾਰਾਂ ਤੇ ਵਧੀਕ' ਸਿਰਲੇਖ ਅਧੀਨ ਤਰਤੀਬ ਵਾਰ ਦਰਜ ਹਨ।

ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਬਾਣੀ ਦਾ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਵਿਸ਼ਾ 'ਮਨੁੱਖ' ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ 'ਸਤਿ' ਅਤੇ 'ਅਸਤਿ' ਵਿਚਕਾਰ ਭੇਦ ਕਰਨ ਦੀ ਜਾਚ ਸਿਖਾਈ ਗਈ ਹੈ। ਸਦਾਚਾਰਕ ਪੱਖਾਂ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਸੰਬੋਧਨੀ ਸ਼ੈਲੀ ਵਿੱਚ ਕਈ ਜੁਗਤਾਂ ਵਰਤ ਕੇ ਚਿਤਰਤ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਯੁਗ ਵਿਚ ਅਜਿਹੀਆਂ ਕੀਮਤਾਂ ਅਤੇ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਦੀ ਅਹਿਮ ਲੋੜ ਹੈ ਜੋ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸਹੀ ਰਸਤੇ ਉਪਰ ਚੱਲਣ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਕਰ ਸਕਣ। ਆਮ ਤੌਰ 'ਤੇ ਮਨੁੱਖ ਪੱਥ-ਪ੍ਰਦਰਸ਼ਕ ਕੀਮਤਾਂ ਦੀ ਅਣਹੋਂਦ ਕਾਰਨ ਅਸਲ ਜੀਵਨ ਮਨੋਰਥ ਤੋਂ ਭਟਕ ਕੇ ਮਾਨਵੀ ਰਾਹ ਤਿਆਗ ਕੇ ਕੁਰਾਹੇ ਪੈ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਉਪਰ ਇਨਸਾਨੀਅਤ ਦੀ ਥਾਂ ਹੈਵਾਨੀਅਤ ਭਾਰੂ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਤੋਂ ਬਚਣ ਦੀ ਲੋੜ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਬੇਅੰਤ ਅਜਿਹੀਆਂ ਪੱਥ ਪ੍ਰਦਰਸ਼ਕ ਕੀਮਤਾਂ ਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਆਇਆ ਹੈ ਜੋ ਇਨਸਾਨ ਤੋਂ ਹੈਵਾਨ ਬਣਨ ਦੀ ਬਿਰਤੀ ਉਪਰ ਕਾਬੂ ਹੀ ਨਹੀਂ ਪਾਉਂਦੀਆਂ ਸਗੋਂ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ 'ਦੈਵੀ' ਪਦਵੀ ਦੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਵੱਲ ਵੀ ਉਤਸ਼ਾਹਿਤ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ।

ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਤਤਾਂ ਦੀ ਮੌਲਿਕ ਅਤੇ ਬਹੁਪੱਖੀ ਵਿਆਖਿਆ ਮੌਜੂਦ ਹੈ। ਬਾਣੀ ਨੂੰ ਇਕਾਗਰ-ਚਿੱਤ ਹੋ ਨੀਝ ਨਾਲ ਵਿਚਾਰਦਿਆਂ ਇਹ ਤੱਥ ਉਜਾਗਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੁਆਰਾ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਵਿਅਕਤੀਗਤ ਤੇ ਸਮਾਜਕ, ਸੁਧਾਰ ਅਤੇ ਕਲਿਆਣ ਨੂੰ ਕੇਂਦਰ ਵਿਚ ਰੱਖਦਿਆਂ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਪਰਿਪੇਖ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਉਸਾਰੀ ਕੀਤੀ ਹੈ।

ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਮਨੁੱਖੀ 'ਮਨ' ਨੂੰ ਸਰਵ-ਪ੍ਰਥਮ ਮੰਨ ਕੇ ਵਧੇਰੇ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਇਸ ਨਾਲ ਹੀ ਸੰਬੰਧਤ

ਕੀਤੇ ਹਨ, ਕਿਉਂਕਿ ਮਨੁੱਖੀ ਮਨ ਹੀ ਸਭ ਤੋਂ ਵੱਡੀ ਸਮੱਸਿਆ ਹੈ, ਜੋ ਹਰ ਪ੍ਰਾਣੀ ਨੂੰ ਪਰੇਸ਼ਾਨੀ ਅਤੇ ਦੁਬਿਧਾ ਵਿਚ ਪਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਇਹ 'ਮਨ' ਸਦਾ ਚੰਚਲ ਤੇ ਚਲਾਇਮਾਨ ਹੈ, ਜੋ ਸਦਾ ਮਾਇਆ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ 'ਕੁਮੱਤ' ਦੇ ਭਰਮਜਾਲ ਵਿਚ ਖੱਚਤ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਹਰ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਗਿਰਾਵਟ ਦਾ ਕਾਰਨ ਇਹੋ 'ਮਨ' ਹੀ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਆਪਣੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਇਸ ਚਿਤਾਵਨੀ ਨੂੰ ਸੁਆਲੀਆ ਲਹਿਜੇ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਕੇ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਸੁਰ ਵਜੋਂ ਉਭਾਰਿਆ ਹੈ-

ਮਨ ਰੇ ਕਉਨੁ ਕੁਮਤਿ ਤੈ ਲੀਨੀ॥ (ਰਾਗ ਸੋਰਠਿ)[1]

ਸਾਧੋ ਮਨ ਕਾ ਮਾਨੁ ਤਿਆਗਉ॥ (ਰਾਗ ਗਉੜੀ)[2]

ਸਾਧੋ ਇਹੁ ਮਨੁ ਗਹਿਓ ਨ ਜਾਈ॥

ਚੰਚਲ ਤ੍ਰਿਸਨਾ ਸੰਗਿ ਬਸਤੁ ਹੈ ਯਾ ਤੇ ਥਿਰੁ ਨ ਰਹਾਈ॥ (ਰਾਗ ਗਉੜੀ)[3]

ਮਨ ਨੂੰ 'ਸਾਧਣ' ਦਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਦਾ ਮੁੱਢਲਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਹੈ। ਜਦੋਂ ਤੱਕ ਮਨੁੱਖੀ ਮਨ ਹਉਮੈ ਦਾ ਤਿਆਗ ਅਤੇ ਨਿਮਰਤਾ ਨੂੰ ਧਾਰਨ ਨਹੀਂ ਕਰਦਾ, ਉਸ ਦੇ ਸਾਰੇ ਧਾਰਮਕ ਕਾਰਜ (ਸਾਧਨ) ਵਿਅਰਥ ਹਨ।

ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਬਾਣੀ ਵਿਚ ਸੰਸਾਰਕ ਜੀਵਨ ਦੀ 'ਨਾਸ਼ਮਾਨਤਾ' ਉੱਪਰ ਵੀ ਬਹੁਤ ਜ਼ੋਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਇਥੇ ਜੀਵਨ ਦੀ 'ਨਾਸ਼ਮਾਨਤਾ' ਦਾ ਵਿਵੇਚਨ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਦੀ 'ਨਿਰਾਰਥਕਤਾ' ਨੂੰ ਸਿੱਧ ਕਰਨ ਲਈ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਬਲਕਿ ਸੰਸਾਰਿਕ ਮੋਹ ਮਾਇਆ ਵਿਚ ਗ੍ਰਸਤ ਹੋ ਕੇ ਉਚੇਰੇ ਜੀਵਨ ਦਾ ਤਿਆਗ ਨਾ ਕਰਨ ਦਾ ਉਦੇਸ਼ ਦ੍ਰਿੜ ਕਰਾਉਣ ਲਈ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। 'ਨਾਸ਼ਮਾਨਤਾ' ਸੰਬੰਧੀ ਜਿੱਥੇ ਵੀ ਜ਼ਿਕਰ ਹੋਇਆ ਹੈ, ਉਥੇ ਇਹ ਗੱਲ ਬੜੇ ਸਪੱਸ਼ਟ ਰੂਪ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ ਕਿ ਸੰਸਾਰਕ ਪ੍ਰਾਪਤੀਆਂ ਦੀ ਅੰਨ੍ਹੀ ਦੌੜ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਉਚੇਰੇ ਮਾਰਗ ਨੂੰ ਭੁੱਲ ਜਾਣਾ, ਇਕ ਇਹੋ ਜਿਹੀ ਖਿੱਚ ਹੈ, ਜਿਸ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਣਾ ਬੇਹੱਦ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ।

ਸੁਖ ਕੈ ਹੇਤਿ ਬਹੁਤੁ ਦੁਖੁ ਪਾਵਤ ਸੇਵ ਕਰਤ ਜਨ ਜਨ ਕੀ॥ (ਰਾਗ ਆਸਾ)[4]

ਜੋ ਤਨੁ ਤੈ ਅਪਨੋ ਕਰਿ ਮਾਨਿਓ ਅਰੁ ਸੁੰਦਰ ਗ੍ਰਿਹ ਨਾਰੀ॥ (ਰਾਗ ਗਉੜੀ)[5]

ਝੂਠਾ ਤਨੁ ਸਾਚਾ ਕਰਿ ਮਾਨਿਓ ਜਿਉ ਸੁਪਨਾ ਰੈਨਾਈ॥

ਜੋ ਦੀਸੈ ਸੋ ਸਗਲ ਬਿਨਾਸੈ ਜਿਉ ਬਾਦਰ ਕੀ ਛਾਈ॥ (ਰਾਗ ਗਉੜੀ)[6]

ਇਹ ਨਾਸ਼ਮਾਨਤਾ ਵਿਵਹਾਰਕ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਗੋਚਰ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਪਰ ਇਹ ਹੀ

ਵਾਸਤਵਿਕਤਾ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਨੇ ਇਹ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟਮਾਨ ਸੰਸਾਰ ਦੀ ਸਥਿਰਤਾ ਦੀ 'ਵਾਸਤਵਿਕ ਅਸਥਿਰਤਾ' ਨੂੰ ਛਿਣ-ਮਾਤਰ (ਥੋੜ੍ਹ-ਚਿਰੇ) ਰੂਪਕਾਂ ਰਾਹੀਂ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕਰਕੇ ਵਾਸਤਵਿਕਤਾ ਅਤੇ ਯਥਾਰਥ ਵਿਚਲੀ ਵਿੱਥ ਦੇ ਭਰਮ ਬਾਰੇ ਮਨੁੱਖ ਨੂੰ ਸੁਚੇਤ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਸਾਰ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਅਤੇ ਮਿਠਾਸ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰੀ ਨਹੀਂ ਹੋਇਆ ਜਾ ਸਕਦਾ। ਪਰ ਇਸ ਦਾ ਸਹੀ ਲਾਭ ਉਸ ਨੂੰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਜੋ ਇਸ ਦੀ ਸੁੰਦਰਤਾ ਨੂੰ ਮਾਣਦਾ ਹੋਇਆ, ਇਸਦੀ ਮਿਠਾਸ ਦਾ ਅਨੰਦ ਲੈਂਦਾ ਹੋਇਆ, ਆਪਣੀ ਸੁਰਤ ਨੂੰ ਸੰਸਾਰਕ ਮੋਹ ਮਾਇਆ, ਰਸਾਂ ਤੇ ਸੁਰਜ-ਸੁਆਦਾਂ ਵਿਚ ਖਚਤ ਕਰਨ ਦੀ ਬਜਾਏ ਪ੍ਰਭੂ ਨਾਲ ਇਕਸੁਰਤਾ ਬਣਾਈ ਰੱਖਦਾ ਹੈ।

ਵਿਕਾਰੀ ਸੁਭਾਅ ਅਤੇ ਦੁਰਮਤਿ ਤੋਂ ਨਿਜਾਤ ਪਾਉਣ ਲਈ ਮਨੁੱਖ 'ਮੁਕਤੀ' ਦੀ ਅਭਿਲਾਸ਼ਾ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਭਾਰਤੀ ਗਿਆਨ ਪਰੰਪਰਾ ਅੰਤਰਗਤ 'ਮੁਕਤੀ' ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਨੂੰ ਕਈ ਵਿਚਾਰ ਸੰਕਲਪਾਂ ਅਧੀਨ ਕਲਪਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਜੀ ਨੇ 'ਮੁਕਤੀ' ਦੇ ਸੰਕਲਪ ਦਾ ਵੀ ਮੌਲਿਕ ਵਿਵੇਚਨ ਕਰਦਿਆਂ ਇਸ ਸਬੰਧੀ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰਸਤੁਤ ਕੀਤੇ ਹਨ ਕਿ 'ਕਾਮਾਦਿਕ ਪੰਜ ਦੂਤਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਵੱਸ ਵਿਚ ਕਰ ਕੇ; ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੰਜਮ ਨਾਲ ਵਰਤੋਂ ਕਰਕੇ; ਸੁੱਖ-ਦੁੱਖ, ਹਰਖ-ਸੋਗ, ਉਸਤਤਿ-ਨਿੰਦਾ ਮਾਣ-ਅਪਮਾਨ ਆਦਿ ਨੂੰ ਸਮਾਨ ਜਾਣਕੇ; ਨੈਤਿਕ ਕੀਮਤਾਂ ਰਾਹੀਂ ਮਨੁੱਖ ਜੀਵਨ ਮੁਕਤ ਹੋ ਸਕਦਾ ਹੈ:-

ਮਾਨ ਮੋਹ ਦੋਨੋ ਕਉ ਪਰਹਰਿ ਗੋਬਿੰਦ ਕੇ ਗੁਨ ਗਾਵੈ॥

ਕਹੁ ਨਾਨਕ ਇਹ ਬਿਧਿ ਕੋ ਪ੍ਰਾਨੀ ਜੀਵਨ ਮੁਕਤਿ ਕਹਾਵੈ॥ (ਰਾਗ ਬਿਲਾਵਲ)[7]

ਉਸਤਤਿ ਨਿੰਦਿਆ ਨਾਹਿ ਜਿਹਿ ਕੰਚਨ ਲੋਹ ਸਮਾਨਿ॥

ਕਹੁ ਨਾਨਕ ਸੁਨਿ ਰੇ ਮਨਾ ਮੁਕਤਿ ਤਾਹਿ ਤੈ ਜਾਨਿ॥ (ਸਲੋਕ)[8]

ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ 'ਮੁਕਤੀ' ਦੇ ਨਾਲ ਮੁੱਲ-ਨਿਰਣੇ ਦੇ ਸੰਜੋਗ ਦੀ ਚਰਚਾ ਮਨੁੱਖੀ ਜਨਮ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਦੇਹ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਦੱਸਦੇ ਹਨ ਕਿ ਉਦੋਂ ਤਕ ਮਨੁੱਖੀ-ਦੇਹ ਵੀ ਨਾਸ਼ਮਾਨ ਹੈ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖਾ ਜਨਮ ਵੀ ਵਿਹਥਾ ਅਤੇ ਅਕਾਰਥ ਹੈ ਜਦੋਂ ਤੱਕ 'ਮੁਕਤੀ' ਅਤੇ 'ਮੁੱਲਾਂ' ਵਿਚਕਾਰ ਸਾਂਝ ਨਾ ਪੈ ਜਾਵੇ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਬਾਣੀ ਦਾ ਮੂਲ ਟੀਚਾ ਮਨੁੱਖ ਮਾਤਰ ਨੂੰ 'ਜੀਵਨ ਦੀ ਨਾਸ਼ਮਾਨਤਾ' ਦਾ ਤਿੱਖਾ ਅਹਿਸਾਸ (ਅਨੁਭਵ) ਕਰਵਾ ਕੇ, ਰਾਮ-ਨਾਮ ਦੇ ਨਿਰਭੈ-ਪਦ (ਮੁਕਤੀ-ਪਦ) ਨੂੰ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰਨ ਦਾ ਬੋਧ ਕਰਾਉਣਾ ਹੈ:-

ਨਾਨਕ ਹਾਰਿ ਪਰਿਓ ਸਰਨਾਗਤਿ ਅਭੈ ਦਾਨੁ ਪ੍ਰਭ ਦੀਜੈ॥ (ਰਾਗ ਜੈਤਸਰੀ)[9]

ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਬਾਣੀ ਉੱਪਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਅਤਿ-ਪ੍ਰਭਾਵਸ਼ਾਲੀ ਵਿਅਕਤਿਤਵ ਅਤੇ

ਜੀਵਨ-ਸਾਧਨਾ ਦੀ ਪ੍ਰਤੱਖ ਛਾਪ ਅੰਕਤ ਹੈ। ਹੋਰ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬਾਨਾਂ ਵਾਂਗ ਗੁਰੂ ਤੇਗ ਬਹਾਦਰ ਸਾਹਿਬ ਦੀ ਬਾਣੀ ਦਾ ਆਪਣਾ ਨਿਵੇਕਲਾ ਰਚਨਾ-ਵਿਧਾਨ ਅਤੇ ਲਹਿਜਾ ਹੈ, ਜੋ ਗੁਰਮਤਿ ਕਾਵਿ-ਧਾਰਾ ਪਿੱਛੇ ਕਾਰਜਸ਼ੀਲ ਮੂਲ ਨਿਸ਼ਚੇ ਨਾਲ ਇਕਸੁਰ ਹੁੰਦਾ ਹੋਇਆ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਪਾਰ ਜਾਣ ਵਾਲਾ ਪ੍ਰਵਚਨ ਹੈ।

## ਹਵਾਲੇ


1. ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਅੰਗ/ਪੰਨਾ-੬੩੧
2. ਉਹੀ, ਅੰਗ/ਪੰਨਾ- ੨੧੯
3. ਉਹੀ, ਅੰਗ/ਪੰਨਾ- ੨੧੯
4. ਉਹੀ, ਅੰਗ/ਪੰਨਾ- ੪੧੧
5. ਉਹੀ, ਅੰਗ/ਪੰਨਾ- ੨੨੦
6. ਉਹੀ, ਅੰਗ/ਪੰਨਾ- ੨੧੯
7. ਉਹੀ, ਅੰਗ/ਪੰਨਾ- ੮੩੦
8. ਉਹੀ, ਅੰਗ/ਪੰਨਾ- ੧੪੨੬
9. ਉਹੀ, ਅੰਗ/ਪੰਨਾ- ੭੦੩

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 238-242

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' से साक्षात्कार

साक्षात्कार कर्ता : **डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'**
विभागाध्यध्यक्ष, हिन्दी विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

हरियाणा प्रदेश के साहित्यकारों की साक्षात्कार शृंखला के अंतर्गत इस अंक में हम जिला भिवानी के उदीयमान साहित्यकार डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' का साक्षात्कार प्रकाशित कर रहे हैं। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' की विभिन्न सामाजिक विषयों पर सोलह से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। विभिन्न साहित्यिक तथा सामाजिक सरोकारों पर उनकी काव्यगत तथा सामाजिक दृष्टि को इस साक्षात्कार के माध्यम से प्रकट करने का प्रयास किया जायेगा। इस साक्षात्कार के माध्यम से डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' पर शोध–कार्य करने वाले शोधार्थी लाभान्वित होगें, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर हम उनके विषय में जानने का प्रयास करते हैं।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – अपने जन्म तथा पारिवारिक स्थिति के बारे में कुछ बताइये?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – मेरा जन्म दिनांक 26–05–1980 को गांव निगाना कलां, त०–तोशाम, जिला भिवानी, हरियाणा में हुआ। मेरे पिता का नाम श्री प्रेमचन्द दहिया तथा माता का नाम श्रीमती रोशनी देवी है। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती मंजु देवी है। मेरे पुत्र का नाम हिमांशु तथा पुत्री का नाम भारती है।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – अपनी शिक्षा के बारे में बताइये?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – मैंने प्राथमिक शिक्षा मेरे गांव निगाना कलां के राजकीय प्राथमिक विद्यालय से प्राप्त की। इसके पश्चात कक्षा दस तक मैंने राजकीय उच्च विद्यालय, ढाणी माहू में शिक्षा ग्रहण की। कक्षा 10+1 तथा 10+2 की शिक्षा राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, तोशाम में ग्रहण की। इसके पश्चात स्नातक की शिक्षा राजकीय महाविद्यालय, भिवानी से 2001 में ग्रहण की। मेरी शिक्षा स्नातक (B. Ed.) की शिक्षा छाजूराम शिक्षण महाविद्यालय, हिसार से 2004 में सम्पन्न हुई। 2006 में मैंने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र से स्वयंपाठी विद्यार्थी के रूप में एम० ए० संस्कृत की परीक्षा पास की। सत्र 2006 से 2007 के दौरान मैंने एम० फिल् संस्कृत की परीक्षा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र से नियमित परीक्षार्थी के रूप में पास की। इसके पश्चात् एम० ए० हिन्दी की परीक्षा सत्र 2007 से 2009 के दौरान स्वयंपाठी विद्यार्थी के रूप में पास की। सत्र 2009 से 2011 के दौरान मैंने D. Ed. में प्रवेश लिया। यह परीक्षा मैंने महर्षि दयानन्द विश्विद्यालय, रोहतक के अन्तर्गत आने वाले संत रोशन लाल विद्या मंदिर, ढाणी माहू से पास की। जनवरी 2011 में मैंने पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में Ph. D. हिन्दी में प्रवेश लिया तथा 2016 में Ph. D. हिन्दी की उपाधि प्राप्त की।

दिसम्बर 2009 में मैंने JRF के साथ NET हिन्दी की परीक्षा उत्तीर्ण की। दिसम्बर 2012 में JRF के साथ NET संस्कृत की परीक्षा पास की।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – अपने शोध निर्देशकों के बारे में बताइये?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – प्रत्येक शोधार्थी के जीवन में उसके शोध–निर्देशकों के व्यक्तित्व तथा शोध–दृष्टि का गहरा प्रभाव पड़ता है। एम० फिल् के दौरान डॉ० ललित कुमार गौड़ मेरे शोध–निर्देशक रहे। इनके व्यक्तित्व की सौम्यता तथा विषय पर गहरी पकड़ आज तक मेरा पथ–प्रदर्शित कर रही है।

मैंने Ph. D. हिन्दी की उपाधि डॉ० गुरमीत सिंह के शोध–निर्देशन में सम्पन्न की। डॉ० गुरमीत सिंह का मिलनसार व्यक्तित्व तथा विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक विषयों पर उनकी गहरी पकड़ एवं एक कुशल–प्रशासक की छवि आज भी मेरी आँखों के सामने घूमती रहती है। इन दोनों महान व्यक्तियों के कारण मेरी शोध–विषयक प्रवृत्ति का विकास हुआ तथा शोध–दृष्टि को जानने का अवसर मिला।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आपको अभी तक कौन–कौन से साहित्यक सम्मान प्राप्त हुए है?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – मुझे अभी तक अनेक साहित्यक पुरस्कारों से तथा शैक्षिक, सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है। ये पुरस्कार इस प्रकार हैं –

1. निर्मला हरियाणा गौरव साहित्य सम्मान–2017
2. सरस्वती साहित्य शाश्वत सम्मान–2019
3. निर्मला स्मृति हिन्दी साहित्य रत्न सम्मान–2019
4. शब्द साधक सम्मान–2018
5. डॉ० भीमराव अम्बेडकर शिक्षक गौरव सम्मान–2020
6. प्यारी देवी घासीराम सिहाग स्मृति सम्मान–2021
7. Award of Honour – By OSGU – Hisar - 2022

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – साहित्य में आपकी रुचि किस कारण से विकसित हुई।

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – मैं बचपन से ही कामिक्स पढ़ने का भौकिन था। पढ़ने के इस भौक के कारण मैं धीरे–धीरे लेखन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ। जब मैं ग्यारवीं कक्षा का छात्र था, तो अनेक पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों में मेरी रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थी। इस प्रकार से मेरी साहित्यिक यात्रा का प्रारम्भ हुआ।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – अभी वर्तमान में आप क्या कर रहे है?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – 11 अगस्त 2014 में हरियाणा शिक्षा विभाग में संस्कृत प्रवक्ता के रूप में मेरा चयन हुआ। तब से लेकर अब तक मैं इसी पद पर कार्यरत हूँ।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – अपनी साहित्यिक यात्रा के बारे में बताइये?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – मेरी साहित्यिक यात्रा का प्रारम्भ 2008 में हुआ था। 2008 में मेरी पहली पुस्तक मंजुल–प्रभात प्रकाशित हुई थी। इसके पश्चात भी मैं निरंतर लेखन कार्य में लगा रहा। Ph. D. की पढ़ाई के दौरान मैं लेखन को इतना समय नहीं दे सका। 2017 में दूसरा काव्य संग्रह करुण क्रंदन प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात इस साहित्यिक यात्रा को गति मिली, जो अभी तक जारी है। अभी तक मेरी 16 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. **मंजूल-प्रभात** – यह पुस्तक शृंगार रस के संयोग पक्ष तथा वियोग पक्ष के विभिन्न पहलुओं को चित्रित करती है।

2. **करूण क्रंदन** – इस पुस्तक में कन्या भ्रूण–हत्या को सामाजिक अभिशाप मानते हुए एक कन्या–भ्रूण की पुकार को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

3. **प्रगति–पथ** – इस पुस्तक में नैराश्य भाव से ग्रसित तथा पथ–भ्रष्ट हो चुके लोगों में आशा का संचार करने वाले भाव गुंफित किये गये हैं।

4. **विचित्र–वक्त** – इस पुस्तक में वर्तमान समय की विसंगतियों तथा विद्रूपताओं को काव्यमयी भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

5. **कवित्त कुंडल** – इस पुस्तक में जीवन तथा जगत की झाँकी कवित्त (धनाक्षरी छंद) में प्रस्तुत की गई है।

6. **शब्द साधना** – इस पुस्तक में निर्गुण शब्द साधना के बारे में बताया है। इसी पुस्तक में 'घट' के शब्द की उत्पत्ति तथा नाद ब्रह्म आदि आध्यत्मिक विषयों पर लेखन कार्य किया गया है।

7. **आनन्द–आधार** – इस पुस्तक में भी निर्गुण भक्ति के विभिन्न तत्त्वों को उल्लेखित तथा व्याख्यायित किया गया है। यह पुस्तक शब्द साधना की अगली कड़ी है।

8. **कवित्त मंजूषा** – यह पुस्तक धनाक्षरी छंद में रचित है। इस पुस्तक का वर्ण्य–विषय अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि विषयों से अपनी भाव–भूमि ग्रहण करता है।

9. **सहज समाधि** – इस पुस्तक में निर्गुण भक्ति के सबसे महत्वपूर्ण भाग सहज समाधि अर्थात् ध्यान की अवस्था, शून्य ब्रह्म, माया आदि विषयों को पद्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

10. **परछाइयों के चेहरे** – इस पुस्तक में गजलों के माध्यम से समकालीन परिस्थितियों को उकेरने का प्रयास किया गया है।

11. **जीवन का फलसफा** – इस पुस्तक में मानव–मन के उन भावों को चित्रित किया गया है, जो मनुष्य के जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं।

12. **आनन्द सतसई** – यह सतसई परम्परा की कड़ी के रूप में कार्य करती है। इस पुस्तक में कुल सात सौ दोहे संकलित हैं।

13. **अनहद का नाद** – यह पुस्तक भी निर्गुण भक्ति के भावों को पद्यों के रूप में प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में परमात्मा से सम्बंधित अनेक दार्शनिक तत्त्वों को प्रस्तुत किया गया है।

14. **कुंडली–कुंडल** – इस पुस्तक में कुंडली छंद के माध्यम से जीवन के अनेक विषयों का प्रतिपादन गया है।

15. **आनन्द हजारिका** – इस पुस्तक में कुल एक हजार दोहे संकलित हैं। इस पुस्तक में जीवन तथा जगत के लगभग सभी पहलुओं को स्पर्श करने का प्रयास किया गया है।

16. **परित्यक्ता की पीड़ा** – यह पुस्तक एक गंभीर विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए लिखी गई है और वह विषय है–परित्यक्ता तथा उसकी पीड़ा। यह पुस्तक अनमेल विवाह, तलाक, एकाकी नारी की समस्या आदि विषयों पर गहरी चोट मारने के लिए लिखी गई है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त मैने दो पुस्तकों का सम्पादन कार्य भी किया है। 'हिन्दी साहित्य का भक्ति परिदृश्य' नामक पुस्तक का मैंने स्वतंत्र सम्पादन तथा बोहल शोध–मंजूषा नामक शोध पत्रिका के 'महाभारत विशेषांक' में अतिथि सम्पादक के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन किया।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आपकी दृष्टि में साहित्य क्या है।

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – मानव की विभिन्न मानसिक अवस्थाओं या मानसिक संवेगों को जब कलात्मक रूप से लेखनी का विशय बनाकर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, वही साहित्य कहलाने का अधिकारी है।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आपकी नजर में विभिन्न सामाजिक सरोकार क्या हैं?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – वास्तव में साहित्य की समस्त विधाएँ किसी–न–किसी सामाजिक सरोकार से अवश्य जुड़ी होती हैं। जो साहित्यिक रचना जितना समाज से जुड़ेगी, वह रचना समाज में उतनी ही समादृत होगी। प्रत्येक साहित्यकार की एक विशेष काव्य–दृष्टि होती है। इस काव्य दृष्टि में वह विभिन्न प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक सरोकारों को पिरोकर चलता है। समाज में जितनी भी असंगतियाँ या विदूपताएँ हैं, इन्हें देखकर सच्चे साहित्यकार का हृदय आंदोलित होता है। वह अपनी लेखनी के माध्यम से इस विसंगतियों को उठाता है तथा यथासंभव इनके उपाय का समाधान भी सुझाता है।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आपके लेखन का प्रिय विषय क्या है?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – लेखन के क्षेत्र में विषयों की कोई कमी नहीं है। कोई कवि जब भी समाज में घटित होने वाली किसी अनैतिक घटना या अनाचार को देखता है, तो कवि की आत्मा चीत्कार कर उठती है। बस उसी घटना को विषय बनाकर मैं भी लिख लेता हूँ।

जहाँ तक मेरे प्रिय विषय का प्रश्न है, मैं भक्ति साहित्य में लेखन कार्य करके आनन्द अनुभव करता हूँ। भक्ति साहित्य के अन्तर्गत भी केवल निर्गुण भक्ति साधना के बारे में ही मैं कलम चलाने का प्रयास करता हूँ।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आपकी दृष्टि में साहित्य तथा समाज का किस प्रकार का सम्बंध है?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – साहित्य तथा समाज दोनों ही एक दूसरे पर आश्रित हैं। साहित्य समाज के लिए ही लिखा जाता है। साहित्य में तत्कालीन युगबोध का सच्चा चित्रण मिलता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, परन्तु मेरी दृष्टि में साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ–साथ समाज का 'अर्पण' भी है क्योंकि साहित्यकार अपने मनोभावों की भूमिका समाज से ही ग्रहण करता है तथा समाज को ही अर्पित कर देता है।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आधुनिक हिन्दी साहित्य के परिवेश के बारे में आपके क्या विचार हैं?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – यह बड़े हर्ष का विषय है कि वर्तमान काल में हिन्दी साहित्य की उत्तरोतर श्रीवृद्धि हो रही है। अनेक नये साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज का पथ–प्रदर्शित कर रहे हैं। वर्तमान काल में अनेक स्तरीय रचनाओं का लेखन हो रहा है। इन रचनाकारों तथा रचनाओं के आधार पर कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य का भविष्य अति उत्तम है।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आपकी दृष्टि में साहित्यिक क्षेत्र में कौन–कौन सी समस्याएँ हैं?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – वर्तमान में साहित्यिक क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या है–सहृदय पाठकों का अभाव। आज से कुछ वर्ष पूर्व पुस्तकें ही ज्ञानार्जन का एकमात्र साधन होती थी। लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों की भारी माँग होती थी। परन्तु आज पुस्तक पढ़ने की प्रवृत्ति में कमी आई है। समाज के अधिकतर लोग 'मोबाइल' में अपना समय बिताते रहते हैं। आज के समाज के पास न तो साहित्य के लिए समय है और न ही वह साहित्य में रुचि ले पा रहा है।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आपकी दृष्टि में 'आलोचकों' का क्या स्थान हैं?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – आलोचना कर्म उत्कृष्ट श्रेणी का साहित्य होता है। एक आलोचक ही किसी साहित्यकार को सही पहचान दिलवा सकता है। जब तक किसी साहित्यकार के साहित्य की आलोचना नहीं होती, तब तक रचनाकार की रचनाओं का वास्तविक मर्म समझ में नहीं आता। आलोचक ही वह व्यक्ति है, जो साहित्यिक क्षेत्र में रचनाकार का स्थान बनाता है। आलोचकों के अभाव में किसी व्यक्ति को साहित्यिक महत्व नहीं मिल सकता।

प्रत्येक आलोचक किसी रचनाकार की रचनाओं का गहन अध्ययन करता है तथा रचनाओं के गुण–दोष समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। आलोचना लिखना कोई सरल कार्य नहीं है। प्रत्येक आलोचक के सामने यह दुविधा होती है कि उसे रचनाकार के विचारों का सम्मान करते हुए अपने विचार भी प्रस्तुत करने होते हैं। अगर रचनाकार तथा आलोचक के विचारों में मतभेद हो, तो समस्या और भी विकट हो जाती है। यह समस्या स्वतंत्र लेखन कार्य से भी बड़ी है।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – आप साहित्य का प्रभाव किस रुप में देखते हैं?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – साहित्य का प्रभाव बड़ा व्यापक होता है। अगर आपने किसी पुस्तक का अध्ययन किया है, तो उस पुस्तक के संस्कार सारी उम्र हमारे साथ में रहते हैं। साहित्य को पढ़ने से एकाग्रता का विकास होता है। साहित्य ही वह विधा है, जो मानव में चिन्तन–मनन की प्रवृत्ति का विकास करती है।

जहाँ तक साहित्य के भविष्य का प्रश्न है, साहित्य का भविष्य बड़ा उज्जवल है। आज का मानव साहित्य के क्षेत्र से दूरी बना चुका है, परन्तु भविष्य में वह फिर से साहित्य की शरण में आयेगा क्योंकि साहित्य ही वह विधा है जो आनन्द का अजस्र स्रोत है।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – अन्त में हमारे पाठकों के लिए क्या संदेश देना चाहेगें?

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – मैं केवल एक ही संदेश देना चाहता हूँ कि साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन मानकर न पढ़े। साहित्य का चिंतन–मनन करें तथा अपनी विवेक बुद्धि के माध्यम से साहित्य के अमृत कणों को अपनी आत्मा के कण–कण में बसाने का प्रयास करें।

**डॉ० नरेश सिहाग 'एडवोकेट'** – अपने विचारों को हम तक पहुँचाने के लिए आपका कोटि–कोटि धन्यवाद।

**डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द'** – आपका भी बहुत–बहुत धन्यवाद।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 243-249

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦਾ ਨਾਟ-ਸ਼ਾਸਤਰ

ਡਾ. ਸਤਨਾਮ ਸਿੰਘ ਜੱਸਲ,

ਡੀਨ ਖੋਜ, ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ(ਨੈਕ A++) (ਬਠਿੰਡਾ)।

ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਆਧੁਨਿਕ ਪੰਜਾਬੀ ਰੰਗਮੰਚੀ ਨਾਟਕ ਦਾ ਮੋਢੀ ਅਤੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਾ ਉਹ ਵਿਲੱਖਣ ਨਾਟਕਕਾਰ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਲਗਭਗ 50 ਸਾਲ ਇਸ ਖੇਤਰ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਰਿਹਾ।ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨੇ 1913 ਵਿਚ, ਆਧੁਨਿਕ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿਚ 'ਦੁਲ੍ਹਨ' ਇਕਾਂਗੀ ਨਾਟਕ ਦੀ ਸਿਰਜਨਾ ਨਾਲ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਅਤੇ ਉਸ ਨੇ ਚਾਰ ਪੂਰੇ ਨਾਟਕ -ਸੁਭੱਦਰਾ, ਸ਼ਾਮੂ ਸ਼ਾਹ, ਵਰ ਘਰ ਅਤੇ ਸ਼ੋਸ਼ਲ ਸਰਕਲ ਅਤੇ ਬਾਰਾਂ ਇਕਾਂਗੀ ਨਾਟਕ -ਸੁਹਾਗ (ਦੁਲ੍ਹਨ), ਬੇਬੇ ਰਾਮ ਭਜਨੀ, ਜਿੰਨ, ਬੇ-ਈਮਾਨ, ਚੋਰ ਕੌਣ, ਮਾਂ ਦਾ ਡਿਪਟੀ, ਇਹ ਡੂਮਣੇ, ਬਾਬੇ ਘਸੀਟੇ ਦੀ ਨਾਟਕ ਮੰਡਲੀ, ਹੇਰਾ ਫੇਰੀ, ਮੌਨਧਾਰੀ, ਸੁਖਰਾਸ, ਮੁਰਾਦ- ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਨੂੰ ਦਿੱਤੇ। ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਅਤੇ ਰੰਗਮੰਚ ਨੂੰ ਵਿਕਸਿਤ ਕਰਨ ਅਤੇ ਇਸ ਦੀ ਦਸ਼ਾ ਤੇ ਦਿਸ਼ਾ ਬਦਲਣ ਵਿਚ ਅਹਿਮ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਈ।

ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦੇ ਨਾਟ-ਸ਼ਾਸਤਰ ਸੰਬੰਧੀ ਚਰਚਾ ਕਰਨ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਇਹ ਜਾਣਨਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ ਕਿ ਉਸ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਕਿਹੜੇ ਪਹਿਲੂਆਂ ਨੇ ਅਹਿਮ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਈ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਨਾਟਕਕਾਰ ਬਣਨ ਦੇ ਮੌਕੇ ਸਿਰਜੇ।ਇਸ ਸੰਬੰਧੀ ਜਦੋਂ ਜਾਣਕਾਰੀ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕੀਤੀ ਗਈ ਤਾਂ ਪਹਿਲੀ ਗੱਲ ਇਹ ਸਾਹਮਣੇ ਆਈ ਕਿ ਉਸ ਨੇ ਨਕਲਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਨੂੰ ਕਬੂਲਿਆ।ਉਸ ਅਨੁਸਾਰ (1971:608-9) 'ਸਾਡੇ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਉਦੋਂ ਕਈ ਰੌਣਕੀ ਬੰਦੇ ਹੁੰਦੇ ਸਨ।ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਰਾਗ ਰੰਗ ਤੇ ਖੇਲ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਦਾ ਚੋਖਾ ਸ਼ੋਕ ਸੀ।ਵਕਤ ਵਕਤ ਤੇ ਭੰਡਾਂ ਮਰਾਸੀਆਂ ਦੀਆਂ ਟੋਲੀਆਂ ਆਇਆ ਕਰਦੀਆਂ ਸਨ ਤੇ ਆਪਣੇ ਖੁਲ੍ਹੇ-ਡੁਲ੍ਹੇ, ਠੱਠੇ ਮਖੌਲਾਂ ਅਤੇ ਨਕਲਾਂ ਵੇਖਣ ਵਾਲਿਆਂ ਨੂੰ ਖੁਸ਼ ਕੀਤਾ ਕਰਦੀਆਂ ਸਨ।ਜਦੋਂ ਵੀ ਇਹੋ ਜਿਹਾ ਇੱਕਠ ਹੁੰਦਾ ਸੀ, ਮੈਂ ਭੱਜ ਕੇ ਉੱਥੇ ਜਾ ਬੈਠਦਾ ਸੀ।ਭੰਡਾਂ ਦੀਆਂ ਨਕਲਾਂ ਦਾ ਮੈਨੂੰ ਖ਼ਾਸ ਕਰਕੇ ਸਵਾਦ ਆਉਂਦਾ ਸੀ ਕਿਉਂ ਜੋ ਉਹ ਨਕਲਾਂ ਹੁੰਦੀਆਂ ਸਨ ਜਿਉਂਦੇ ਜਾਗਦੇ, ਚਲਦੇ ਫਿਰਦੇ ਇਨਸਾਨਾਂ ਦੀਆਂ, ਕਦੀ ਪਿੰਡ ਦੇ ਸ਼ਾਹ ਦੀ, ਕਦੀ ਪਟਵਾਰੀ ਦੀ,ਕਦੇ ਸਕੂਲ ਦੇ ਮੁਣਸ਼ੀ ਤੇ ਕਦੇ ਡਾਕੀਏ ਦੀ।ਜਦੋਂ ਉਹ ਬਹਿਰ ਵਿਚ ਆਉਂਦੇ ਸਨ ਤਾਂ ਸਾਹਮਣੇ ਬੈਠੇ ਚੌਧਰੀਆਂ ਨੂੰ ਵੀ ਨਹੀਂ ਛੱਡਦੇ ਸਨ।ਕਦੀ ਕਦੀ ਤਾਂ ਥਾਣੇਦਾਰ ਤੇ ਤਹਿਸੀਲਦਾਰ ਤੀਕਣ ਜਾ ਪੁੱਜਦੇ

ਸਨ।ਆਮ ਤੌਰ ਤੇ ਉਹ ਸਾਂਝੇ ਰੋਜ਼ ਵਾਪਰਨ ਵਾਲੇ ਪੇਂਡੂ ਜੀਵਨ ਦੇ ਕਿਸੇ ਨਾ ਕਿਸੇ ਪਹਿਲੂ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਤਿੱਖੀ ਟਿਚਕਰਵਾਜ਼ੀ ਦਾ ਨਿਸ਼ਾਨਾ ਬਣਾਉਂਦੇ ਸਨ ਤੇ ਹਰ ਪਾਸਿਉਂ ਪੜਛੇ ਲਾਹੁੰਦੇ ਚਲੇ ਜਾਂਦੇ ਸਨ। ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਠੱਠਿਆਂ ਤੇ ਟਿਚਕਰਾਂ ਨੂੰ ਕੋਈ ਬੁਰਾ ਨਹੀਂ ਸੀ ਮਣਾਉਂਦਾ, ਸਗੋਂ ਸਾਰੇ ਖਿੜ-ਖਿੜਾਕੇ ਹੱਸਿਆ ਕਰਦੇ ਸਨ।ਮੈਨੂੰ ਉਹਨਾਂ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਦੇ ਵੇਖਣ ਦਾ ਬੜਾ ਚਾਅ ਹੁੰਦਾ ਸੀ। ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਭੰਡਾਂ ਤੇ ਨਕਲੀਆਂ ਨੇ ਵੀ ਮੇਰੇ ਨਾਟਕ ਰਸ ਨੂੰ ਕਿਸੇ ਹੱਦ ਤੱਕ ਜਾਗ੍ਰਿਤ ਕੀਤਾ ਹੋਵੇ। ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਵਿਚ ਇਨ੍ਹਾਂ ਹਾਸੇ-ਠੱਠਿਆਂ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਬਹੁਤ ਸਹਿਜਤਾ ਨਾਲ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਵਰ-ਘਰ ਨਾਟਕ(1971:214) ਵਿਚ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲਦਾ ਹੈ:

"ਬੇਬੇ: ਤੂੰ ਨਹੀਂ ਕੁੱਝ ਕਰਨਾ ਤੇ ਮੈਂ ਕੁੱਝ ਕਰਕੇ ਰਹਿਣਾ ਈਂ। ਮੇਰੇ ਕੋਲੋਂ ਨਹੀਂ ਫਿਕਰਾਂ ਵਿਚ ਜਾਨ ਸੁਕਾ ਹੁੰਦੀ ਰਾਤ ਦਿਨੇ। ਮੇਰੀ ਗੱਲ ਮੋੜੋਂ ਤਾਂ ਮੇਰੀ ਮੋਈ ਦਾ ਮੂੰਹ ਵੇਖੇਂ। (ਰੋਣ ਲੱਗ ਪੈਂਦੀ ਹੈ) ਤੂੰ ਜ਼ਿੱਦ ਕਰਕੇ ਵੇਖ ਲੈ,ਮੈਂ ਮੂੰਹ ਕਾਲਾ ਕਰਕੇ ਨਿਕਲ ਜਾਣਾ ਏਂ ਤੇ ਖੂਹ ਵਿਚ ਛਾਲ ਮਾਰ ਦੇਣੀ ਏਂ।

ਰਾਇ ਸਾਹਿਬ: ਆਹੋ! ਪਈ ਮੂੰਹ ਧੋਤਾ ਜਾਏ'।

ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਉਸ ਦੇ ਮਨ ਉੱਤੇ ਸਾਦ ਮੁਰਾਦੇ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਦਾ ਵੀ ਪ੍ਰਭਾਵ ਸੀ। ਉਹ (1971:609) ਲਿਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸਾਡੇ ਅੱਜ ਕਲ੍ਹ ਦੇ ਮਿਆਰ ਦੇ ਮੁਤਾਬਕ ਇਹ ਖੇਲ-ਤਮਾਸ਼ੇ ਨਾਟਕ ਨਹੀਂ ਕਹੇ ਜਾ ਸਕਦੇ ਤੇ ਨਾ ਇਨ੍ਹਾਂ ਸਿਧੇ ਸਾਧੇ ਭੋਲੇ ਭਾਲੇ ਦਿਹਾਤੀਆਂ ਦੀ ਐਕਟਿੰਗ ਨੂੰ ਐਕਟਿੰਗ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਪਰ ਇਤਨੀ ਗੱਲ ਭਰੋਸੇ ਨਾਲ ਕਹੀ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ ਕਿ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਸਾਦ-ਮੁਰਾਦੇ ਤਮਾਸ਼ਿਆਂ ਵਿਚ ਨਾਟਕ ਦੀ ਰੂਹ ਖੇਲ੍ਹਦੀ ਸੀ ਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਵੇਖਣ ਵਾਲੇ ਬੜੇ ਪ੍ਰਸੰਨ ਹੋ ਕੇ ਜਾਂਦੇ ਸਨ। ਇਸ ਵਕਤ ਮੇਰੇ ਲਈ ਆਪਣੇ ਗੁਆਚੇ ਬਚਪਨ ਦੀਆਂ ਯਾਦਾਂ ਦਾ ਅੰਦਾਜ਼ਾ ਮੁਸ਼ਕਲ ਹੈ, ਪਰ ਇਤਨਾ ਜ਼ਰੂਰ ਕਹਿ ਸਕਦਾ ਹਾਂ ਕਿ ਇਹ ਨਾਟਕ ਤਮਾਸ਼ੇ ਵੇਖਣ ਦਾ ਮੈਨੂੰ ਬੜਾ ਚਸਕਾ ਪੈ ਗਿਆ ਸੀ ਤੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਹੋਣ ਦੀ ਬੜੀ ਤਾਂਘ ਹੁੰਦੀ ਸੀ। ਉਸ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਨਾਟਕਾਂ ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਸੁਭੱਦਰਾ,ਕਲ੍ਹ ਅੱਜ ਤੇ ਭਲਕ ਆਦਿ ਵਿਚ ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਹੋਈ ਮਿਲਦੀ ਹੈ। ਜਿੱਥੇ ਲੋਕ-ਨਾਟ ਰੂਪਾਂ ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕੀਤਾ ਅਤੇ ਉਸ ਦੀ ਨਾਟਕੀ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਨੂੰ ਉਸਾਰਨ ਵਿਚ ਉੱਥੇ ਸ਼੍ਰੀਮਤੀ ਨੌਰ੍ਹਾ ਰਿਚਰਡਜ਼ ਨੇ ਨੰਦਾ ਦੀ ਨਾਟਕੀ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਨਿਖਾਰਨ ਵਿਚ ਵੱਡਮੁੱਲਾ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਇਆ। ਨੌਰ੍ਹਾ ਰਿਚਰਡਜ਼ ਨੇ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਪ੍ਰਤਿ ਪੂਰੀ ਸੰਤੁਸ਼ਟੀ ਅਭਿਵਿਅਕਤ ਕੀਤੀ ਹੈ। 'ਸਾਰੇ ਦੇ ਸਾਰੇ ਨਾਟਕ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ' ਪੁਸਤਕ ਦੇ ਮੁੱਖ-ਬੰਧ ਵਿਚ ਉਹ ਲਿਖਦੀ ਹੈ(1971:0) 'ਮੈਂ ਬੜੇ ਮਾਣ ਤੇ ਖੁਸ਼ੀ ਨਾਲ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦੇ ਮੁਕੰਮਲ ਨਾਟਕ ਸੰਗ੍ਰਹਿ

ਲਈ ਮੁੱਖ-ਬੰਧ ਦੇ ਤੌਰ ਤੇ ਇਹ ਸਤਰਾਂ ਲਿਖਦੀ ਹਾਂ। ਮਾਣ ਇਸ ਕਰਕੇ ਕਿ ਨੰਦਾ ਨੂੰ ਨਾਟਕ ਲਿਖਣ ਵਾਲੇ ਰਾਹ 'ਤੇ ਤੋਰਨ ਦਾ ਮੈਂ ਸਾਧਨ ਬਣੀ ਸਾਂ ਤੇ ਪ੍ਰਸੰਨਤਾ ਇਸ ਗੱਲ ਦੀ ਕਿ ਮਨੁੱਖੀ ਉਪਜ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਨਾਟਕ ਕਲਾ ਸਭ ਤੋਂ ਬਲਵਾਨ ਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸ਼ਕਤੀ ਹੈ।...।ਨੰਦਾ ਨੇ ਪੰਜਾਬ ਵਿਚ ਕਲਾਤਮਕ ਪੱਧਰ ਤੇ ਨਾ ਕੇਵਲ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲੇ ਯਥਾਰਥਵਾਦੀ ਧਾਰਾ ਦੇ ਸਮਕਾਲੀ ਨਾਟਕ ਲਿਖੇ ਸਗੋਂ ਉਸ ਨ ਸਮਾਜਿਕ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਬਾਰੇ ਨਾਟਕ ਲਿਖਣ ਦੀ ਪਹਿਲ ਵੀ ਕੀਤੀ'। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਿਹਾ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ਕਿ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦੀ ਨਾਟਕ ਕਲਾ ਦੇ ਵਿਗਸਨ ਵਿਚ ਭਾਰਤੀ ਨਾਟ-ਪਰੰਪਰਾ ਅਤੇ ਪੱਛਮੀ ਨਾਟ-ਕਲਾ ਦੀ ਗਿਆਤਾ ਨੌਰ੍ਹਾ ਰਿਚਰਡਜ਼ ਨੇ ਅਹਿਮ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਈ ਜਿਸ ਸਦਕਾ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨਾਟਕ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਅੱਗ ਅੱਗੇ ਵੱਧਦਾ ਗਿਆ।

ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨੇ 1913 ਵਿਚ ਪਹਿਲਾ ਇਕਾਂਗੀ 'ਦੁਲ੍ਹਨ' ਲਿਖਿਆ ਅਤੇ ਨਾਟਕ ਮੁਕਾਬਲੇ ਵਿਚ ਇਹ ਇਕਾਂਗੀ ਅੱਵਲ ਰਿਹਾ।ਇਹ ਬਾਅਦ ਵਿਚ 'ਸੁਹਾਗ' ਨਾਂ ਨਾਲ ਜਾਣਿਆ ਗਿਆ।ਨੰਦਾ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਇਕਾਂਗੀ ਦੁਖਾਂਤ ਹੈ ਜਿਸ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹ ਕੇ ਪ੍ਰਤੀਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜੇ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦੁਖਾਂਤ ਰਚਨ ਵੱਲ ਰੁਚਿਤ ਰਹਿੰਦਾ ਤਾਂ ਉਹ ਇਸ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਨਾਟਕਕਾਰ ਹੋ ਨਿਬੜਦਾ। ਸੁਹਾਗ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਉਸ ਨੇ 'ਬੇਬੇ ਰਾਮ ਭਜਨੀ' ਜਾਂ 'ਮਾਂ ਦੇ ਡਿਪਟੀ' ਆਦਿ ਗੰਭੀਰ ਇਕਾਂਗੀ ਤਾਂ ਲਿਖੇ ਪਰ ਇਹਨਾਂ ਇਕਾਂਗੀਆਂ ਵਿਚਲੀ ਸਮੱਸਿਆ ਨੂੰ ਦੁਖਾਂਤ ਰੂਪ ਵਿਚ ਮੂਰਤੀਮਾਨ ਨਹੀ ਕੀਤਾ।ਇਹ ਸ਼ਾਇਦ ਉਸ ਦੀ ਸੁਧਾਰਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਦੀ ਪ੍ਰਬਲਤਾ ਦਾ ਨਤੀਜਾ ਸੀ ਕਿ ਉਸ ਨੇ ਦੁਖਾਂਤ ਸਿਰਜਨ ਨਾਲੋਂ ਸੁਖਾਂਤ ਸਿਰਜਨ ਵੱਲ ਵਧੇਰੇ ਰੁੱਚੀ ਦਿਖਾਈ ਕਿਉਂ ਜੋ ਸੁਧਾਰਵਾਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਦੇ ਸਮਾਧਾਨ ਵੱਲ ਇਕ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਦਾ ਪੈਰੋਕਾਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਜਦੋਂ ਕਿ ਦੁਖਾਂਤ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀ ਸਮੱਸਿਆ ਦੇ ਯਥਾਰਥ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਉੱਤੇ ਹੀ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਕੇਂਦਰਿਤ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨੂੰ ਸਮੇਂ ਦੀਆਂ ਮੱਧਵਰਗੀ-ਸੁਧਾਰਵਾਦੀ ਲਹਿਰਾਂ ਅਧੀਨ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਲੱਗਦਾ ਰਿਹਾ ਜਿਵੇਂ ਸਮੱਸਿਆ ਦੇ ਕਾਰਨ ਅਤੇ ਹੱਲ ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਵਿਅਕਤੀ ਚਰਿੱਤਰ ਨਾਲ ਹੋਵੇ ਅਤੇ ਚੇਤਨ ਵਿਅਕਤੀ ਆਪਣੇ ਕਾਰਜ ਰਾਹੀਂ ਸਮੱਸਿਆ ਦੇ ਸੁਧਾਰ ਕਰ ਸਕਣ ਦੇ ਯੋਗ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਉਸ ਦੇ ਬਹੁ-ਅੰਗੀ ਨਾਟਕਾਂ ਨੂੰ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। 'ਸੁਭੱਦਰਾ' ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਬਹੁ-ਅੰਗੀ ਨਾਟਕ ਹੈ।ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਨਾਟਕਕਾਰ ਨੇ ਜਵਾਨ-ਵਿਧਵਾ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਨੂੰ ਨਾਟਕੀ ਰੂਪ ਦਿੱਤਾ ਹੈ।ਭਾਰਤੀ ਜਾਗੀਰਦਾਰੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਵੇਲੇ ਦੀਆਂ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਸਮਾਜਿਕ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਅਧੀਨ ਵਿਧਵਾ ਵਿਆਹ ਵਰਜਿਤ ਸੀ। ਉਸ ਵੇਲੇ ਪਤੀਬ੍ਰਤਾ ਧਰਮ ਦਾ

ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਅਧੀਨ ਵਿਧਵਾ ਵਿਆਹ ਵਰਜਿਤ ਸੀ। ਉਸ ਵੇਲੇ ਪਤੀਬ੍ਰਤਾ ਧਰਮ ਦਾ ਪਾਲਣ ਕਰਨਾ ਇਸਤਰੀ ਦਾ ਉੱਚਾ ਆਦਰਸ਼ ਮੰਨਿਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ।ਸਮੱਸਿਆ ਦਾ ਦੁਖਾਂਤਕ ਪਹਿਲੂ ਇਹ ਸੀ ਕਿ ਇਸਤਰੀ ਵੀ ਇਸ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਮੁੱਲ ਨੂੰ ਸਵੀਕਾਰਦੀ ਸੀ। ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨੇ 'ਵਰ-ਘਰ' ਨਾਟਕ 1929 ਵਿਚ ਲਿਖਿਆ, ਇਹ ਨਾਟਕ ਵੀ ਵਿਆਹ ਸੰਬੰਧਾਂ ਬਾਰੇ ਸੀ ਜਿਹੜਾ ਕਿ ਪਿਆਰ-ਵਿਆਹ ਦੀ ਸਮੱਸਿਆ ਨਾਲ਼ ਜੁੜਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ।ਨਾਟਕ ਦੀ ਕਥਾ ਦਾ ਆਧਾਰ ਤੇ ਮੁੱਖ ਨਾਟਕੀ ਟੱਕਰ ਪਿਆਰ ਅਧਾਰਿਤ ਵਿਆਹ ਅਤੇ ਮਾਪਿਆਂ ਦੁਆਰਾ ਨਿਸਚਿਤ ਵਿਆਹ ਵਿਚ ਹੈ।ਉਸ ਵੇਲੇ ਭਾਰਤ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਾਂਸਕ੍ਰਿਤਿਕ ਹਾਲਾਤ ਵਿਚ ਬਹੁਤ ਤੇਜੀ ਨਾਲ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪੈ ਰਿਹਾ ਸੀ ਅਤੇ ਤਬਦੀਲੀ ਵੀ ਆ ਰਹੀ ਸੀ।ਨਵੀਂਆਂ ਪਰਿਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿਚ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੇ ਮਨ ਉੱਤੇ ਸਮਾਜਿਕ ਬੰਦੇਜਾਂ ਦਾ ਅਸਰ ਘੱਟ ਰਿਹਾ ਸੀ।ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ 'ਸੁਭੱਦਰਾ' ਅਤੇ 'ਵਰ ਘਰ' ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਭਾਰਤੇ ਜਾਗੀਰਦਾਰੀ ਸਮਾਜ ਦੇ ਵਿਆਹ-ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਇਸ ਦਾ ਲੇਖਾ-ਜੋਖਾ ਆਧਨਿਕ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਤੋਂ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਵਿਧਵਾ ਦੇ ਪੁਨਰ-ਵਿਆਹ ਅਤੇ ਪਿਆਰ ਵਿਆਹ ਦੇ ਪੱਖ ਵਿਚ ਆਵਾਜ਼ ਉਠਾਉਂਦਾ ਹੈ। 'ਸ਼ਾਮੂ ਸ਼ਾਹ' ਨਾਟਕ ਸ਼ੇਕਸਪੀਅਰ ਦੇ ਨਾਟਕ 'ਮਰਚੰਟ ਆਫ਼ ਵੈਨਿਸ' ਤੇ ਆਧਰਿਤ ਹੈ।ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨੇ ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਸਰਮਾਇਦਾਰੀ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਪਰੰਪਰਾਗਤ ਅਧਿਕਾਰਸ਼ੀਲ ਸ਼ੇਣੀਆਂ ਦੇ ਖੋਰੇ ਦੀ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਆ ਨੂੰ ਯਥਾਰਥਕ ਰੂਪ ਵਿਚ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। 'ਸ਼ੋਸ਼ਲ ਸਰਕਲ' ਨੰਦਾ ਦਾ ਆਖਰੀ ਬਹੁ-ਅੰਗੀ ਨਾਟਕ ਹੈ ਜਿਹੜਾ ਕਿ ਸ਼ਹਿਰੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਪਹਿਲੂ, ਜਿਹੜਾ ਕਿ ਉਸ ਵੇਲੇ ਨਵੀਂ ਪੈਦਾ ਹੋ ਰਹੀ, ਮੱਧ ਸ਼ੇਣੀ ਦੇ ਸਵਾਰਥ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਹੈ।ਨਾਟਕਕਾਰ ਨੇ ਵੱਖ ਵੱਖ ਕਿੱਤਿਆਂ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਪੰਜ ਜੋੜੇ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੇ ਹਨ ਅਤੇ ਹਰੇਕ ਜੋੜੇ ਦੇ ਆਪਣੇ ਚਰਿੱਤਰਿਕ ਲੱਛਣ ਹਨ ਪਰ ਸਾਰੇ ਪਾਤਰਾਂ ਦਾ ਸਾਂਝਾ ਲੱਛਣ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਹਰੇਕ ਪਾਤਰ ਇਕ-ਦੂਜੇ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਹਿੱਤ ਦੀ ਲੋਚਾ ਰੱਖਦਾ ਹੈ।ਇਹ ਮੱਧ-ਵਰਗੀ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸਾਂਝ ਅਤੇ ਵਿਰੋਧ ਦਾ ਵਾਸਤਵਿਕ ਆਧਾਰ ਉਹਨਾਂ ਦਾ ਸਵਾਰਥ ਹੀ ਹੈ।

ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਜਿੱਥੇ ਇਕ ਪਾਸੇ ਇਤਿਹਾਸਿਕ- ਸਾਂਸਕ੍ਰਿਤਿਕ ਯਥਾਰਥ ਦੀਆਂ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਗੋਚਰ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ ਉਥ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਸਮਾਜ ਵੀ ਸਾਹਿਤ ਰਾਹੀ ਸੰਭਾਵਨਾਵਾਂ ਤੋਂ ਸਪੱਸ਼ਟ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।ਸਮਾਜ ਸਾਹਿਤਕਾਰ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਸਾਹਿਤਕਾਰ ਦੀ ਰਚਨਾ ਸਮਾਜਿਕ ਚੇਤਨਾ ਉੱਤੇ ਅਸਰ ਪਾਉਂਦੀ ਹੈ।ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨਾਟਕਾਂ ਦੀ ਸਿਰਜਨਾ ਕਰਦੇ ਸਮੇਂ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਪਰਿਸਥਿਤੀਆਂ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕਰਕੇ ਧਿਆਨ ਵਿਚ ਰੱਖਦਾ ਹੈ, ਉਸ ਅਨੁਸਾਰ(1971:606) 'ਨਾਟਕਕਾਰ ਵੀ

ਆਪਣੇ ਚੌਗਿਰਦੇ ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਨਾਟਕ ਦੀ ਨੀਂਹ ਬੱਝਦੀ ਹੀ ਅਸਲੀ ਜੀਵਨ ਦੀ ਕਿਸੀ ਘਟਨਾ ਤੋਂ ਹੀ ਹੈ'। ਨਾਟਕਕਾਰ ਦੇ ਤੌਰ ਤੇ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਸਦਾ ਸੁਚੇਤ ਰਿਹਾ ਅਤੇ ਜਿਧਰੇ ਕਿਧਰੇ ਵੀ ਉਸ ਨੂੰ ਕੋਈ ਅਣਸੁਖਾਵੀਂ ਸਥਿਤੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਵਾਪਰੀ ਦਿਖਾਈ ਦਿਤੀ, ਉਸ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ,ਉਸ ਨੇ ਚਿੰਤਨ ਦੇ ਪੱਧਰ ਤੇ ਲਿਆ ਕੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ  ਸੁਚੇਤ ਕਰਨ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ। ਉਹ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਸੁਚੇਤ ਕਰਨ, ਜਗਾਉਣ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਨਿਭਾਉਣ ਜਾਂ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਨਾਟਕੀ ਆਵਾਜ਼ ਬਣਨ ਤੋਂ ਨਹੀਂ ਝਿਜਕਦਾ। ਉਹ ਨਾਟਕ ਨੂੰ ਇਕ ਇਕ ਲੋਕਤੰਤਰਿਕ ਕਲਾ ਹੈ ਮੰਨਦਾ ਦਿਖਾਈ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।ਉਹ ਨਾਟਕ ਨੂੰ ਪ੍ਰਭਾਵਸ਼ਾਲੀ ਕਲਾ ਮੰਨਦਿਆਂ ਇਸ ਨੂੰ ਸੰਜੀਦਗੀ ਨਾਲ ਸਮਝਣ ਉਤੇ ਵੀ ਜ਼ੋਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਆਧਨਿਕ ਪੰਜਾਬੀ ਰੰਗ ਮੰਚ ਦਾ ਮੁੱਢਲਾ ਉਹ ਨਾਟਕਕਾਰ ਹੈ ਜਿਸ ਦੇ ਨਾਟਕੀ ਸਰੋਕਾਰ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਯਥਾਰਥ ਨਾਲ ਜੁੜੇ ਹੋਏ ਹਨ।ਉਸ ਅਨੁਸਾਰ(1971:607) 'ਮੇਰੇ ਨਾਟਕ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਅਕਸ ਹੀ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਕੇਵਲ ਮੈਂ ਆਪਣੇ ਕੋਲੋਂ ਕੁੱਝ ਪਾ ਕੇ ਜੀਵਨ ਦੀ ਕਿਸੇ ਘਟਨਾ ਨੂੰ ਨਾਟਕ ਦਾ ਰੂਪ ਦੇ ਲੈਂਦਾ ਹਾਂ।ਮੇਰੇ ਨਾਟਕ ਕਿਸੇ ਹੱਦ ਤੱਕ ਮੇਰੀਆਂ ਆਪ ਬੀਤੀਆਂ ਹਨ.... ਮੈਂ ਆਪਣੇ ਨਾਟਕਾਂ ਲਈ ਮਸਾਲਾ ਜੀਵਨ ਵਿਚੋਂ ਲੱਭਦਾ ਹਾਂ'।'ਸੁਭਦਰਾ' ਨਾਟਕ ਦੀ ਘਟਨਾ ਉਹ ਚਸ਼ਮਦੀਦ ਗਵਾਹ ਸੀ। 'ਵਰ ਘਰ' ਨਾਟਕ ਦੇ ਕੇਂਦਰ ਪਾਤਰ ਦੀ ਅਸਲ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਉਸ ਨੇ ਨਿਭਾਈ ਸੀ।'ਸ਼ੋਸ਼ਲ ਸਰਕਲ' ਨਾਟਕ ਦਾ ਸਰੂਪ ਉਸ ਨੂੰ ਲਾਇਲਪੁਰ ਰਹਿੰਦਿਆਂ ਮਿਲਿਆ ਸੀ।'ਬੇਈਮਾਨ' ਨਾਟਕ ਦੀ ਘਟਨਾ ਉਸ ਨਾਲ ਵਾਪਰੀ ਸੀ।ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦੀ(1971:607) ਇਹ ਧਾਰਨਾ ਹੈ ਕਿ 'ਜਿਸ ਮਨੁੱਖ ਕੋਲ ਜੀਵਨ ਦਾ ਤਜਰਬਾ ਹੈ ,ਕਲਪਨਾ ਸ਼ਕਤੀ ਹੈ ਅਤ ਸਟੇਜ ਦੀ ਪੂਰੀ ਸੂਝ ਹੈ। ਉਹ ਨਾਟਕਕਾਰ ਸਫ਼ਲਤਾ ਪ੍ਰਾਪਤ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ ਮੈਂ ਮਸਾਲਾ ਤਿਆਰ ਕਰਕੇ ਇਕਾਂਤ ਵਿਚ ਬੈਠਕੇ ਲਿਖਦਾ ਹਾਂ ਤੇ ਐਕਟਿੰਗ ਦੇ ਢੰਗ ਨਾਲ ਬੋਲ ਕੇ ਸਰੋਤਿਆਂ ਨੂੰ ਖੂਬ ਹਸਾਇਆ ਕਰਦਾ ਹਾਂ'। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਜਿੱਥੇ ਆਪਣੇ ਨਾਟਕਾਂ ਦੇ ਸਰੋਕਾਰ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਯਥਾਰਥ ਵਿਚੋਂ ਲੈਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦਾ ਨਿਭਾਅ ਆਪਣੇ ਨਾਟਕੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਤੋਂ ਕਰਦਾ ਹੈ।ਉਹ ਆਪਣੇ ਨਾਟਕਾਂ ਰਾਹੀਂ ਜਾਗੀਰਦਾਰੀ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਸਮਾਜਿਕ ਸਾਂਸਕ੍ਰਿਤਿਕ ਕੀਮਤਾਂ ਦੇ ਨਾਂਹ-ਪੱਖੀ ਪ੍ਰਭਾਵ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ, ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਸਮਾਜ ਦੀਆਂ ਕੀਮਤਾਂ ਦੇ ਪੈ ਰਹੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਤੇ ਪੱਛਮੀ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਦੇ ਉਦਾਰਵਾਦੀ ਮੁੱਲ-ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੇ ਹੱਕ ਵਿਚ ਖੜ੍ਹਾ ਦਿਖਾਈ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।

ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦੇ ਨਾਟ-ਸ਼ਾਸ਼ਤਰ ਨੂੰ ਵਿਚਾਰਦਿਆਂ ਉਹਨਾਂ ਮੁੱਢਲੇ ਤੱਤਾਂ ਸੰਬੰਧੀ ਵੀ ਚਰਚਾ ਕਰਨੀ ਜ਼ਰੂਰੀ ਬਣ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਜਿਹਨਾਂ ਦੇ ਆਧਾਰ ਉੱਤੇ ਉਹ ਨਾਟਕ ਨੂੰ ਅਮਲੀ ਜਾਮਾ ਪਹਿਣਾਉਂਦਾ ਹੈ।ਨਾਟਕ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਉਹ ਕਹਾਣੀ ਨੂੰ ਪਹਿਲ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।ਉਹ 'ਵਰ ਘਰ' ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ(2011:v)

ਵਿਚ ਲਿਖਦਾ ਹੈ :

> *" ਨਿੱਕੀਆਂ ਨਿੱਕੀਆਂ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਝਾਕੀਆਂ ਬਣਾ ਕੇ ਨਾਟਕ ਲਿਖ ਲੈਣਾ ਬਹੁਤ ਸੌਖਾ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਦਾ ਸਟੇਜ ਤੇ ਖੇਡਣਾ ਉਤਨਾ ਔਖਾ ਵੀ ਹੈ।ਇਸ ਕਰਕੇ ਨਾਟਾਕਕਾਰ ਦਾ ਹੁਨਰ ਕਹਾਣੀ ਦੀ ਘੜਤ ਤੋਂ ਪਰਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਮਜਾ ਤੱਦ ਹੈ ਜੇ ਸੰਪੂਰਨ ਦੀ ਸੰਪੂਰਨ ਕਹਾਣੀ ਤਿੰਨ ਜਾਂ ਚਾਰ ਝਾਕੀਆਂ ਵਿਚ ਸਮਾਪਤ ਹੋ ਜਾਵੇ ਤੇ ਨਾਲੇ ਕਹਾਣੀ ਦੇ ਵੱਖਰੇ ਵੱਖਰੇ ਇਕ ਦੂਜੇ ਨਾਲ ਇਦਾਂ ਗੁੰਦੇ ਹੋਣ ਜੋ ਇਕ ਤੋਂ ਵੱਖ ਨਾ ਹੋ ਸਕੇ। ਬਹੁਤੀਆਂ ਝਾਕੀਆਂ ਦਾ ਹੋਣਾ ਉਂਜ ਹੀਵਰਤਮਾਨ ਨਾਟਕਾਂ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਢੰਗ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਹੈ।ਕਹਾਣੀ ਦਾ ਅਤਿ ਜਾਪਣਾ ਵੀ ਅਤਿ ਜ਼ਰੂਰ ਹੈ"*

ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਗੋਂਦ ਤੇ ਉਸਾਰੀ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਨਾਟਕਾਂ ਉੱਤੇ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਲਾਗੂ ਵੀ ਕਰਦਾ ਹੈ।ਉਸ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਦੀ ਗੋਂਦ ਵਿਚ ਟਕਰਾਅ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਰੂਪ ਵਿਖਾਈ ਦਿੰਦੇ ਹਨ।ਜਿਵੇਂ ਕਿ 'ਸੁੱਭਦਰਾ', 'ਵਰਘਰ','ਇਹ ਡੂੰਮਣੇ','ਜਿੰਨ' ਆਦਿ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਪੁਰਾਣੀ ਤੇਂ ਨਵੀਂ ਪੀੜ੍ਹੀ ਵਿਚਕਾਰ, 'ਸ਼ੋਸ਼ਲ ਸਰਕਲ','ਬੇਈਮਾਨ' ਮੱਧ-ਵਰਗ ਦੇ ਸਵਾਰਥੀਪਣੇ ਨਾਲ, 'ਬੇਬੇ ਰਾਮ ਭਜਨੀ'ਸਮਾਂ ਵਹਾਅ ਚੁੱਕੀਆਂ ਕਦਰੀ ਕੀਮਤਾਂ ਨਾਲ, 'ਦੁਲ੍ਹਨ' ਸਮਾਜਿਕ ਪਰਿਸਥਤੀਆਂ ਅਧੀਨ ਮਨੁੱਖੀ ਬੇਵਸੀ ਆਦਿ ਨਾਲ।

ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਗੋਂਦ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਪਾਤਰ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਨੂੰ ਧਿਆਨ ਵਿਚ ਰੱਖਦਾ ਹੈ।ਉਸ ਅਨੁਸਾਰ(2011:V)ਪਾਤਰਾਂ ਨੂੰ ਉੱਕਾ ਆਪਣੀ ਮਨ-ਮਰਜ਼ੀ ਅਨੁਸਾਰ ਨਹੀਂ ਘੜ ਸਕਦੇ ਤੇ ਨਾ ਜੋ ਸਾਡੇ ਮਨ ਵਿਚ ਆਵੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਕੋਲੋਂ ਅਸੀਂ ਬੁਲਵਾ ਸਕਦੇ ਹਾਂ। ਪਾਤਰ ਘੜੇ ਨਹੀਂ ਜਾ ਸਕਦੇ ਸਗੋਂ ਉਹ ਕੁਦਰਤ ਵੱਲੋਂ ਹੀ ਘੜੇ ਘੜਾਏ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਤੇ ਨਾਟਕਕਾਰ ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਚੰਗੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਗਹੁ ਨਾਲ ਵੇਖਦਾ,ਪਛਾਣਦਾ ਤੇ ਚਿੱਤਰਦਾ ਹੈ। ਪਾਤਰ ਜੀਉਂਦੇ-ਜਾਗਦੇ,ਬੋਲਦੇ-ਚਲਦੇ,ਹਸਦੇ-ਖੇਡਦੇ,ਰੋਂਦੇ-ਖਪਦੇ,ਲੜਦੇ ਝਗੜਦੇ ਹੋਣੇ ਚਾਹੀਦੇ ਹਨ, ਜਿੱਦਾਂ ਕਿ ਅਸਲ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿਚ ਹੁੰਦੇ ਹਨ।ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਚਾਲ-ਢਾਲ,ਕਾਰ-ਵਿਹਾਰ,ਗੱਲ-ਗੁਫ਼ਤੁੱਗੂ,ਵਿਚਾਰ-ਆਚਾਰ, ਸਭ ਕੁੱਝ ਅਸਲ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨਾਲ ਢੁੱਕਵਾਂ ਹੋਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। ਜਿਤਨੇ ਉਹ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦੇ ਨੇੜੇ ਨੇੜੇ ਹੋਣਗੇ, ਉਤਨੇ ਹੀ ਉਹ ਜਾਨਦਾਰ ਹੋਣਗੇ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਬਣਾਉਟੀ,ਬੇਜਾਨ,ਕਠ-ਪੁਤਲੀਂ ਜਾਪਣਗੇ। ਪਾਤਰ ਆਪਣੇ ਵਾਯੂ ਮੰਡਲ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਨਹੀਂ ਹੋਣੇ ਚਾਹੀਦੇ ਤੇ ਨਾ ਹੀ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਮਨੁੱਖੀ ਸੁਭਾਵ ਦੇ ਪ੍ਰਸਿੱਧ ਨੇਮਾਂ ਦਾ ਉਲੰਘਣ ਕਰਨਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ। ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨੰਦਾ ਨਾਟਕ ਦੀ ਵਾਰਤਲਾਪ ਅਤੇ ਬੋਲੀ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਵੀ ਯਥਾਰਥ ਮੁਖੀ ਰਿਹਾ। ਉਸ ਅਨੁਸਾਰ(2011:VI) 'ਨਾਟਕ ਦੀ ਬੋਲੀ ਦੇ ਬਾਰੇ ਇਕੋ ਹੀ ਵੱਡਾ ਅਸੂਲ ਹੈ। ਉਹ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਬੋਲੀ ਪਾਤਰ ਦੇ ਮੂਹੋਂ ਓਪਰੀ ਤੇ ਬਣਾਉਟੀ ਨਾ ਜਾਪੇ ਸਗੋਂ ਉਸ ਦੀ

ਵੱਡਾ ਅਸੂਲ ਹੈ। ਉਹ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਬੋਲੀ ਪਾਤਰ ਦੇ ਮੂਹੋਂ ਓਪਰੀ ਤੇ ਬਣਾਉਟੀ ਨਾ ਜਾਪੇ ਸਗੋਂ ਉਸ ਦੀ ਸੁਭਾਵਕ ਤੇ ਕੁਦਰਤੀ ਬੋਲੀ ਹੋਵੇ। ਬੋਲੀ ਪਾਤਰ ਦੀ ਬਾਂਦੀ ਹੈ ਤੇ ਉਹ ਨੂੰ ਉਘਾੜਨ ਤੇ ਚਿੱਤਰਨ ਵਿਚ ਬੜੀ ਮੱਦਦ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਜੈਸਾ ਜੈਸਾ ਪਾਤਰ ਵੈਸੀ ਵੈਸੀ ਬੋਲੀ। ਜੇ ਸਾਡੇ ਪਾਤਰ ਜੀਉਂਦੇ ਜਗਦੇ ਚਲਦੇ ਫਿਰਦੇ ਮਨੁੱਖ ਤਵੀਂਆਂ ਹਨ ਤਾਂ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਬੋਲੀ ਵੀ ਇਕ ਜਾਣਕਾਰ ਲਿਖਾਰੀ ਉਹੋ ਜਿਹੀ ਵਰਤੇਗਾ,ਜਿਹੜੀ ਉਹ ਆਮ ਤੌਰ ਤੇ ਵਰਤਦੇ ਹਨ'। ਨਾਟਕ ਦੇ ਸ਼ਿਲਪ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਵੀ ਉਹ ਨਾਟਕੀ ਸਰੋਕਾਰਾਂ ਵਾਂਗ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਹੀ ਅਪਣਾਉਂਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿਚ ਉਸ ਦੀ ਵਿਲੱਖਣਤਾ ਸਮਾਈ ਹੋਈ ਹੈ।

ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਦਾ ਨਾਟ ਸ਼ਾਸ਼ਤਰ ਮਾਨਵ-ਕਲਿਆਣਕਾਰੀ ਸੋਚ ਨੂੰ ਸਮਰਪਿਤ ਹੈ। ਉਸ ਨੇ ਪਹਿਲਾ ਰੰਗਮੰਚੀ ਨਾਟਕ ਲਿਖਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਨੂੰ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦ ਤੋਂ ਯਥਾਰਥਵਾਦ ਵੱਲ ਮੋੜਿਆ।ਸਮਾਜਿਕ ਪਰਿਸਥਿਤੀਆਂ ਅਧੀਨ ਸਮੇਂ ਦੀ ਲੋੜ ਅਨੁਸਾਰ ਸਮਾਂ ਵਹਾਅ ਚੁੱਕੀਆਂ ਮਾਨਵੀ-ਕਦਰਾਂ ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕਰਦਿਆਂ ਨਵੀਂਆਂ ਉਦਾਰਵਾਦੀ ਕੀਮਤਾਂ ਦੇ ਲੜ ਲੱਗਣ ਲਈ ਉਤਸਾਹਿਤ ਕੀਤਾ।ਜਾਗੀਰਦਾਰੀ ਕਦਰਾਂ-ਕੀਮਤਾਂ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕਰਦਿਆਂ ਉਸਾਰੂ ਸੋਚ ਵੱਲ ਪਰੇਰਿਤ ਕੀਤ।ਭਾਵੇਂ ਉਸ ਨੇ ਆਪਣੇ ਨਾਟਕਾਂ ਵਿਚ ਵਧੇਰੇ ਕਰਕੇ ਸਮਾਜਿਕ ਮਸੱਲਿਆਂ ਨੂੰ ਕੇਂਦਰ ਵਿਚ ਰੱਖਿਆ ਪਰ ਉਸ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਹੋਂਦ ਦੀ ਅਣਗਹਿਲੀ ਪ੍ਰਤਿ ਚਿੰਤਾ ਵੀ ਦਿਖਾਈ ਦਿੰਦੀ ਹੈ।ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਨੂੰ ਰੰਗਮੰਚ ਨਾਲ ਜੋੜਣ ਵਜੋਂ ਉਸ ਦੀ ਵੱਡੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਰਹੀ।ਉਸਦਾ ਨਾਟ-ਸ਼ਾਸ਼ਤਰ ਆਉਣ ਵਾਲੇ ਨਾਟਕਕਾਰ ਤੇ ਰੰਗਕਰਮੀਆਂ ਲਈ ਇਕ ਸੇਧ ਵੀ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਕਰਦਾ ਹੈ।ਉਹਦਾ ਨਾਟਕ ਭਾਰਤੀ ਨਾਟ- ਪਰੰਪਰਾ,ਲੋਕ-ਨਾਟ ਪਰੰਪਰਾ ਤੇ ਪੱਛਮੀ ਨਾਟ-ਪਰੰਪਰਾ ਦਾ ਸੁਮੇਲ ਹੈ ।ਉਹ ਇਸ ਕਲਾ ਨੂੰ ਸਮਾਜਿਕ ਚੇਤਨਾ ਲਿਆਉਣ ਦਾ ਮਾਧਿਅਮ ਮੰਨਦਾ ਹੈ।ਇਸ ਕਲਾ ਵਿਚੋਂ ਹੀ ਕੌਮ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਦੇਖਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਦੀ ਇਹ ਵਿਲੱਖਣਤਾ ਹੀ ਉਸ ਦਾ ਵਿਲੱਖਣ ਨਾਟ-ਸ਼ਾਸ਼ਤਰ ਸਿਰਜਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾਟਕਕਾਰ ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਉਸ ਦਾ ਉਤਰਾ ਅਧਿਕਾਰੀ ਬਣਕੇ ਉਸ ਦੇ ਨਾਟਕੀ ਕਾਰਜ ਨੂੰ ਅਗਾਂਹ ਤੋਰਦਾ ਹੈ ਜਿਸ ਨੇ ਗੁਣਾਤਮਕ ਅਤੇ ਗਿਣਨਾਤਮਕ ਪੱਖ ਤੋਂ ਨਾਟਕ ਸਿਰਜਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਅਤੇ ਰੰਗ ਮੰਚ ਨੂੰ ਅਮੀਰ ਕੀਤਾ ਜਿਸ ਦਾ ਸਿਹਰਾ ਵੀ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ ਨੂੰ ਹੀ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

**ਪੁਸਤਕ ਸੂਚੀ:**


1. ਅਮਰਜੀਤ ਸਿੰਘ, **ਪੰਜ ਨਾਟਕਕਾਰ**, ਨਾਨਕ ਸਿੰਘ ਪੁਸਤਕਮਾਲਾ,ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ,1970
2. ਆਈ ਸੀ ਨੰਦਾ, **ਵਰ ਘਰ**, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ,ਪਟਿਆਲਾ,2011
3. ਸੰਤੋਸ਼ ਗਾਰਗੀ, **ਆਧੁਨਿਕ ਹਿੰਦੀ ਔਰ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ**, ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਭਾਗ, ਪੰਜਾਬ, 1974
4. ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ(ਪ੍ਰੋ), ਸੰਪਾਦਕ, **ਸਾਰੇ ਦੇ ਸਾਰੇ ਨਾਟਕ ਈਸ਼ਵਰ ਚੰਦਰ ਨੰਦਾ**, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, 1971
5. ਜੇ.ਐੱਸ.ਗਰੇਵਾਲ, **'ਦਾ ਏਮਰਜੈਂਸ ਆਫ਼ ਪੰਜਾਬੀ ਡਰਾਮਾ'**, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 1986
6. ਪ੍ਰੇਮ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਸਿੰਘ, **ਭਾਰਤੀ ਕਾਵਿ ਸ਼ਾਸਤ੍ਰ**, ਲਾਹੌਰ ਬੁੱਕ ਸ਼ਾਪ, ਲੁਧਿਆਣਾ, 1963

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 250-257

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ਨਾਟਕ 'ਸੱਤ ਬਗਾਨੇ': ਚਿਹਨ ਵਿਗਿਆਨਕ ਅਧਿਐਨ

ਡਾ. ਸਤਪ੍ਰੀਤ ਸਿੰਘ ਜੱਸਲ
ਅਸਿਸਟੈਂਟ ਪ੍ਰੋਫ਼ੈਸਰ,ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ,
ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ, ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਸਭਿਆਚਾਰ ਸਕੂਲ,
ਪੰਜਾਬ ਕੇਂਦਰੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ,ਘੁੱਦਾ,(ਬਠਿੰਡਾ)।
E-mail: dr.satpreetjassal@gmail.com
ਮੋਬਾਇਲ ਨੰਬਰ: 094646-60702

ਮਨੁੱਖ ਜਾਤੀ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਦਾ ਸਫਰ ਜੰਗਲੀ ਪੜਾਅ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਪੜਾਅ ਤੋਂ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਕੇ ਹੌਲੀ-ਹੌਲੀ ਅਨੁਭਵ ਤੇ ਗਿਆਨ ਹਾਸਿਲ ਕਰਦਿਆਂ ਸਭਿਅਤਾ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਣ ਦਾ ਮਨੁੱਖ ਨੇ ਲੰਮਾ ਸਫਰ ਤੈਅ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਮੁੱਢਲੇ ਪੜਾਅ 'ਤੇ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਬਹੁਤ ਹੀ ਰੁੱਖਾ ਤੇ ਔਖਾ ਸੀ, ਫਿਰ ਹੌਲੀ-ਹੌਲੀ ਸੰਘਰਸ਼ ਕਰਦਿਆਂ ਮਨੁੱਖ ਸਭਿਆਚਾਰ ਤੱਕ ਪਹੁੰਚਿਆ। ਵਰਤਮਾਨ ਤੋਂ ਜਦੋਂ ਅਸੀਂ ਮਨੁੱਖੀ ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਪੜਾਅ ਤੱਕ ਪਿੱਛਲਝਾਤ ਮਾਰਦੇ ਹਾਂ ਤਾਂ ਇਕ ਪਾਸੇ ਸਾਨੂੰ ਵਿਭਿੰਨ ਲੱਭਤਾਂ ਤੇ ਖੋਜਾਂ ਦਾ ਲੰਮਾ ਇਤਿਹਾਸ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਸੰਗਠਨ ਤੇ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਚਲਦੀਆਂ ਦਿਸਦੀਆਂ ਹਨ। ਲੱਭਤਾਂ ਤੇ ਖੋਜਾਂ ਜਿੱਥੇ ਆਪਣੇ ਵਿਕਾਸ ਕ੍ਰਮ ਵਿਚ ਜੁੜੀਆਂ ਹੋਈਆਂ ਹਨ, ਉੱਥੇ ਸੰਗਠਨ ਤੇ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਪਰਤ ਦਰ ਪਰਤ ਮਨੁੱਖੀ ਰਿਸ਼ਤਿਆਂ ਨੂੰ ਉਜਾਗਰ ਕਰਦੀਆਂ ਹਨ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਆਧੁਨਿਕ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਦੀਆਂ ਜੜਾਂ ਬਰਬਰਤਾ ਦੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਜਾ ਪੁੱਜਦੀਆਂ ਹਨ, ਜਿੱਥੇ ਉਹ ਮੂਲ ਰੂਪ ਵਿਚ ਜੰਗਲੀ ਪੜਾਅ ਵਿਚੋਂ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕੀਤੀਆਂ ਹਨ। ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਵਿਕਾਸ ਦਾ ਇਹ ਸਿਲਸਿਲਾ ਵਿਭਿੰਨ ਦੌਰਾਂ ਵਿਚੋਂ ਲੰਘਦਾ ਅਨੁਭਵ ਨਾਲ ਨਿਰੰਤਰ ਸਮਰਿਧ ਹੁੰਦਾ ਗਿਆ ਅਤੇ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦਰ ਪੀੜ੍ਹੀ ਵਿਰਾਸਤ ਰਾਹੀਂ ਅੱਗੇ ਚਲਦਾ ਰਿਹਾ। ਮਨੁੱਖ ਪ੍ਰਕਿਰਤੀ ਦੇ ਅਮੂਰਤ ਨਿਯਮਾਂ ਦੀ ਵਿਉਂਤ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਸਮਰੱਥਾ ਮੁਤਾਬਿਕ ਸਮਝ ਕੇ ਆਪਣੇ ਸਮਾਜਿਕ-ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਜੀਵਨ ਦੀ ਉਸਾਰੀ ਤੇ ਫਿਰ ਮੁੜ ਉਸਾਰੀ ਕਰਦਾ ਆਇਆ ਹੈ। ਇੰਜ ਇਸ ਦੁਨੀਆਂ ਵਿਚ ਰਹਿ ਰਹੇ ਅਤੇ ਇਤਿਹਾਸਕ ਵਿਕਾਸ ਦੀ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਆ ਵਿਚ ਵਿਕਸਿਤ ਹੋ ਰਹੇ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਹੋਂਦ ਦੀ ਸਾਰਥਕਤਾ ਉਸਦੇ ਆਲੇ-ਦੁਆਲੇ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ ਹੀ ਹੁੰਦੀ ਆਈ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਅੱਗੋਂ ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧਾਂ ਦੇ ਸਿਸਟਮ ਵਿਚ ਬੱਝਾ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧਾਂ ਦੇ ਇਸ ਸਿਸਟਮ ਦੇ ਸਬੰਧਾਂ ਦੀ ਸੰਰਚਨਾ ਹੀ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਦਾ ਆਧਾਰ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਮਨੁੱਖ ਨੇ ਆਪਣੀ ਚੇਤਨਾ ਰਾਹੀਂ ਜੋ ਕੁਝ ਹਾਸਿਲ ਕੀਤਾ ਹੈ ਉਹ ਚਿਹਨਾਂ ਰਾਹੀਂ ਹੀ ਹਾਸਿਲ ਕੀਤਾ ਹੈ ਅਰਥਾਤ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਸਮੂਹ ਹਾਸਿਲ ਚਿਹਨ ਵਿਗਿਆਨਿਕ ਹੋਂਦਾਂ ਦਾ ਧਾਰਨੀ ਹੈ। ਵਾਸਤਵ

ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੀ ਜੈਵਿਕ ਵੱਖਰਤਾ ਕਾਰਨ ਬੋਲ ਸਮਰੱਥਾ ਰੱਖਦਾ ਹੈ।ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤੀ ਨਾਲ ਸੰਘਰਸ਼ ਕਰਦਿਆਂ ਉਹ ਆਪਣੀਆਂ ਲੋੜਾਂ ਨੂੰ ਸੁਨਿਯਮਿਤ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਆਪਣਾ ਦੂਜੈਲਾ ਸਭਿਆਚਾਰ ਸੰਸਾਰ ਸਿਰਜਦਾ ਹੈ।ਇਸ ਦੂਜੈਲੇ ਸੰਸਾਰ ਵਿਚ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਮੁੱਖ ਸਿਰਜਨਾ ਭਾਸ਼ਾ ਹੈ।ਅੱਗ ਤੇ ਪਹੀਏ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਭਾਸ਼ਾ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਤੀਜੀ ਵੱਡੀ ਲੱਭਤ ਹੈ।ਭਾਸ਼ਾ ਦੀ ਲੱਭਤ ਮਨੁੱਖੀ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿਚ ਅਜਿਹਾ ਸ਼ਕਤੀਸ਼ਾਲੀ ਸਾਧਨ ਹੈ ਜਿਸ ਰਾਹੀਂ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੇ ਮਨ ਦੀਆਂ ਭਾਵਨਾਵਾਂ, ਵਿਚਾਰਾਂ ਤੇ ਹੋਰ ਅਕਾਂਖਿਆਵਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦਾ ਹੈ।ਸੱਚੀ ਗੱਲ ਤਾਂ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਸਮੁੱਚਾ ਕਾਰ-ਵਿਹਾਰ ਤੇ ਜੀਵਨ ਤੋਰ ਭਾਸ਼ਾ ਰਾਹੀਂ ਹੀ ਚਲਦੀ ਹੈ।ਭਾਸ਼ਾ ਰਾਹੀਂ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੀ ਸਭਿਅਤਾ ਤੇ ਆਰੰਭ ਬਿੰਦੂ ਤੋਂ ਆਪਣੇ ਰੋਜ਼ਾਨਾ ਜੀਵਨ ਦੀਆਂ ਅਤਿ ਸਧਾਰਨ ਅਤੇ ਅਤਿ ਅਹਿਮ ਕਿਰਿਆਵਾਂ ਦਾ ਸੰਦੇਸ਼ ਦੂਜਿਆਂ ਤੱਕ ਸੰਚਾਰਦਾ ਹੈ।ਮਨੁੱਖ ਸਿਰਜਿਤ ਇਹ ਸੁਨੇਹਾ ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੇ ਸਿਸਟਮ ਵਿਚ ਬੱਝ ਕੇ ਹੀ ਸੰਚਾਰਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।ਇਸ ਲਈ ਚਿਹਨ ਵਿਗਿਆਨਕ ਵਿਧੀ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਸਿਰਜਣ ਵਾਲਿਆਂ ਨੇ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਦੁਨੀਆਂ ਦੇ ਸਮੂਹ ਹਾਸਿਲਾਂ ਨੂੰ 'ਚਿਹਨ' ਮੰਨ ਕੇ ਅਧਿਐਨ ਕਰਨ ਤੇ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਜ਼ੋਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ।

ਸ਼ੁਕਮਾਨ(1977:135) ਨੇ ਇਹ ਧਾਰਨਾ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀ ਕਿ ਸਾਰੀਆਂ ਕਲਾਵਾਂ ਸੰਚਾਰ ਧਰਮੀ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ ਕਿਉਂਕਿ ਕਲਾ ਦਾ ਪ੍ਰਾਥਮਿਕ ਅਤੇ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਕਾਰਜ ਸੰਚਾਰ ਕਰਨਾ ਹੀ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਰਥਾਤ ਮਨੁੱਖ ਸਿਰਜਤ ਸਭਿਆਚਾਰਾਂ ਦੀਆਂ ਸਮੂਹ ਕਲਾਵਾਂ ਸੰਚਾਰਮੁੱਖ ਹੁੰਦੀਆਂ ਹਨ ਅਤੇ ਇਸ ਨੂੰ ਸੰਚਾਰਮੁੱਖ ਹੋਣ ਲਈ ਚਿਹਨ ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਸਿਸਟਮੀ  ਹੋਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ।ਇਸ ਤੱਥ ਨੂੰ ਆਧਾਰ ਬਣਾ ਕੇ ਵਿਭਿੰਨ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕਾਂ ਅਤੇ ਚਿੰਤਕਾਂ ਨੇ ਇਹ ਸਿੱਟਾ ਕੱਢਿਆ ਕਿ ਇਹ ਮਨੁੱਖੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਚਿਹਨਾਂ ਦਾ ਸਮੁੱਚ ਹੈ।ਹਰੇਕ ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਪ੍ਰਤੱਖਣ ਸਿਧਾਂਤ (Theory of Preception) ਵਿਚ ਆਪਣੀਆਂ ਤੰਦਾਂ ਫੈਲਾਈ ਬੈਠਾ ਹੈ।ਅਚੇਤ ਜਾਂ ਸੁਚੇਤ ਪੱਧਰ ਉੱਤੇ ਮਨੁੱਖ ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੀ ਸਿਰਜਨ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਆ ਵਿਚ ਨਿਰੰਤਰ ਗਤੀਸ਼ੀਲ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ1ਨਵੇਂ ਚਿਹਨਾਂ ਦੀ ਆਮਦ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸਮਾਜਿਕ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿਚ ਪਦਾਰਥਿਕ ਤੌਰ ਤੇ ਹੋ ਰਹੀ ਗਿਣਾਤਮਕ ਤੇ ਗੁਣਾਤਮਕ ਤਬਦੀਲੀ ਕਾਰਨ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।ਇਉਂ ਮਨੁੱਖ ਦੀ ਸੋਚ-ਵਿਧੀ ਉੱਤੇ ਬਹੁਪਸਾਰੀ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪੈਣ ਕਾਰਣ, ਉਸ ਦੀ ਬੋਧ-ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਵਿਚ ਤਬਦੀਲੀ ਵਾਪਰਨ ਸਦਕਾ, ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸਮਾਜੀ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਨ ਦੀ ਪਹੁੰਚ ਵਿਧੀ ਵਿਚ ਵੀ ਤਬਦੀਲੀ ਆਉਂਦੀ ਹੈ।ਕੋਈ ਵੀ ਵਿਚਾਰ ਉਦੋਂ ਤੱਕ ਸਾਰਥਕ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦਾ ਜਦੋਂ ਤੱਕ ਉਸਦਾ ਸਿਰਜਕ ਉਸ ਨੂੰ ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਿਚ ਨਹੀਂ ਬੰਨ੍ਹ ਲੈਂਦਾ।ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਿਚ ਬੰਨਣ ਦਾ ਭਾਵ ਭਾਸ਼ਾ ਸੰਰਚਨਾ ਵਿਚ ਢਾਲਣਾ ਹੈ।ਕਿਉਂਕਿ ਸੰਸਾਰ ਦਾ ਗਿਆਨ ਭਾਸ਼ਾ ਬਿਨ੍ਹਾਂ ਇਕੱਠਾ ਹੀ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਦਾ।ਭਾਸ਼ਾ ਨੂੰ ਭਾਸ਼ਾ ਵਿਗਿਆਨੀਆਂ ਨੇ ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧ ਮੰਨ ਕੇ,

ਮਨੁੱਖ ਸਿਰਜਤ ਵਰਤਾਰਿਆਂ ਨੂੰ ਚਿਹਨ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੇ ਵਿਸ਼ਾਲ ਘੇਰੇ ਵਿਚ ਲੈ ਆਂਦਾ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਵਰਤਾਰਿਆਂ ਦੀ ਕਾਰਜ ਭੂਮੀ ਵਿਚ ਜੋ ਵੀ ਵਸਤੂ ਅਰਥ ਧਾਰਨ ਕਰ ਕੇ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ, ਉਹ ਚਿਹਨੀਕਰਨ ਦੀ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਆ ਵਿਚੋਂ ਲੰਘ ਕੇ ਹੀ ਕਰਦੀ ਹੈ।ਮਨੁੱਖ ਜਾਤੀ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ ਇਸ ਗੱਲ ਦਾ ਗਵਾਹ ਹੈ ਕਿ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਜੀਵਨ ਦੀ ਸਿਰਜਨ ਪ੍ਰਕਿਰਿਆ ਵਿਚ ਚਿਹਨਾਂ ਅਤੇ ਚਿਹਨੀਕਰਨ ਦਾ ਬੜਾ ਗੁੰਝਲਦਾਰ ਕਾਰਜ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੀ ਗ੍ਰਹਿਣ ਸ਼ਕਤੀ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੇ ਚੌਗਿਰਦੇ ਵਿਚੋਂ ਬਹੁਤ ਕੁਝ ਹਾਸਲ ਕਰ ਕੇ ਆਪਣੇ ਸਭਿਆਚਾਰਿਕ ਜੀਵਨ ਦਾ ਨਿਰਮਾਤਾ ਬਣਦਾ ਹੈ।ਮਨੁੱਖ ਪੂਰਵ ਪ੍ਰਾਪਤ- ਸਮੱਗਰੀ ਨੂੰ ਨਾਲ ਲੈ ਕੇ ਅਤੇ ਸਮੇਂ ਦੀ ਲੋੜ ਅਨੁਸਾਰ ਉਸ ਨੂੰ ਢਾਲ ਕੇ, ਸਮਾਜਿਕ ਇਤਿਹਾਸਿਕ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਨ ਵਿਚ ਨਵੀਆਂ ਵਿਧੀਆਂ ਰਾਹੀਂ ਚਿਹਨੀਕਰਨ ਦੀ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਆ ਰਾਹੀਂ ਸੰਚਾਰ ਸਿਧਾਂਤ ਨੂੰ ਹੋਰ ਸਮਰੱਥਾਵਾਨ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ।ਚਿਹਨ ਅਤੇ ਚਿਹਨੀਕਰਨ ਸੰਚਾਰ ਸਿਧਾਂਤ ਦੀ ਲਾਜ਼ਮੀ ਸ਼ਰਤ ਹੈ। Coward and Ellis (1977:09) ਨੇ ਇਹ ਵਿਚਾਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ ਕਿ ਚਿਹਨ ਸਮਾਜਿਕ ਯਥਾਰਥ ਦੀ ਉਪਜ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਇਤਿਹਾਸ ਬਣਾਉਣ ਵਿਚ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸ਼ਕਤੀ ਦੀ ਫੈਸਲਾਕੁਨ ਭੂਮਿਕਾ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।ਸੰਸਕ੍ਰਿਤੀ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਅੰਗਾਂ ਦੀ ਅੰਤਰ ਨਿਰਭਰਤਾ, ਪਰਸਪਰ-ਸਬੰਧਤਾ ਤੇ ਪਰਸਪਰ-ਵਿਰੋਧਤਾ ਅਤੇ ਵੱਖਰਤਾ ਨੂੰ ਸਮਝਣ ਲਈ ਚਿਹਨਾਂ ਦੇ ਵਿਗਿਆਨ ਨੇ ਮੁੱਢਲਾ ਬਹੁਪਸਾਰੀ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨਕ ਕਾਰਜ ਕੀਤਾ ਹੈ।

ਚਿਹਨ ਵਿਗਿਆਨ ਕਿਉਂਕਿ ਚਿਹਨਾਂ ਦੇ ਅਧਿਐਨ ਦੇ ਵਿਗਿਆਨ ਦਾ ਨਾਮ ਹੈ ਅਤੇ ਮਨੁੱਖ ਦਾ ਹਰ ਹਾਸਿਲ ਚਿਹਨਾਂ ਰਾਹੀਂ ਹੀ ਸਮਾਜ ਵਿਚ ਸੰਚਾਰਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਇਸ ਲਈ ਸਾਰੇ ਮਨੁੱਖੀ ਵਰਤਾਰੇ ਚਿਹਨਕੀ ਹੋਂਦ ਦੇ ਧਾਰਨੀ ਹੁੰਦੇ ਹਨ।ਅੱਜ ਤੱਕ ਕੋਈ ਵੀ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕ ਚਿੰਤਕ ਜਾਂ ਵਿਦਵਾਨ ਚਿਹਨਾਂ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਜੀਵਨ ਦੇ ਕਾਰ ਵਿਹਾਰ ਵਿਚ ਕੀਤੇ ਅਹਿਮ ਕਾਰਜ ਤੋਂ ਮੁਨਕਰ ਨਹੀਂ ਹੋਇਆ।ਇਹਨਾਂ ਦੇ ਮਹੱਤਵ ਅਤੇ ਸਾਰਥਕਤਾ ਨੂੰ ਅਰਸਤੂ ਅਤੇ ਗ੍ਰੀਕ ਦੇ ਹੋਰ ਦਾਰਸ਼ਨਿਕਾਂ ਨੇ ਆਪਣੇ ਪ੍ਰਵਚਨਾਂ ਵਿਚ ਕਬੂਲ ਕੀਤਾ ਹੈ।ਜੋ ਕਿ ਮਨੁੱਖ ਦੇ ਚਿੰਤਨ-ਵਿਕਾਸ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਪੜਾਅ ਨਾਲ ਜਾ ਜੁੜਦਾ ਹੈ।ਇਉਂ ਮਨੁੱਖੀ ਸੋਚ ਦੇ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਪੜਾਵਾਂ ਉੱਤੇ ਚਿਹਨਾਂ ਦਾ ਖਾਸ ਸਥਾਨ ਰਿਹਾ ਹੈ।

## 'ਸੱਤ ਬਗਾਨੇ' ਨਾਟਕ ਦਾ ਵਿਨਿਆਸਕ੍ਰਮ

'ਸੱਤ ਬਗਾਨੇ' ਨਾਟਕ ਦੇ ਵਿਨਿਆਸਕ੍ਰਮ ਨੂੰ ਨਾਟਕਕਾਰ ਨੇ ਤਿੰਨ ਐਕਟਾਂ ਵਿਚ ਅਤੇ ਅੱਠ ਝਾਕੀਆਂ ਵਿਚ ਵੰਡਿਆ ਗਿਆ ਹੈ।ਨਾਟਕ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਐਕਟ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਝਾਕੀ ਦੋ ਗੱਭਰੂਆਂ ਦੁਆਰਾ

ਬੋਲੀਆਂ ਪਾਉਣ ਨਾਲ ਸ਼ੁਰੂ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।ਜਿਸ ਵਿਚ ਉਹ ਗੰਗਾ ਪਿੰਡ ਦੇ ਬਚਨਾ ਤੇ ਭੰਗਾ ਦੋ ਗੱਭਰੂਆਂ ਬਾਰੇ ਦੱਸਦੇ ਹਨ।ਬਚਨੇ ਨੂੰ ਪਿੰਡ ਦੀ ਕੁੜੀ ਜੈਕੁਰ ਨਾਲ ਇਸ਼ਕ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਜਾਤ ਦੀ ਝਿਉਰੀ ਹੈ ਜਿਥੋਂ ਸਮੱਸਿਆ ਸ਼ੁਰੂ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।ਜੈਕੁਰ ਚਾਰ ਪੁੱਤਾਂ ਨੂੰ ਜਨਮ ਦਿੰਦੀ ਹੈ ਪਰ ਇਹਨਾਂ ਪੁੱਤਾਂ ਦੇ ਵਿਆਹ ਵਿਚ 'ਜਾਤ' ਅੜਿੱਕਾ ਬਣਦੀ ਹੈ। ਜੈਕੁਰ ਕੋਲ ਹੁਣ ਘਰ ਦੇ ਕੰਮ ਕਰਨ ਦੀ ਹਿੰਮਤ ਨਹੀਂ:

> *ਜੈ ਕੁਰ: ਮੱਚ ਪੈ ਔਂਤਰਿਆਂ ਦੀਏ! ਵੇ ਧਰਮਿਆਂ ਮੇਰੇ ਹੱਡਾਂ 'ਚ ਨੀ ਹੁਣ ਪਰੋਖੋਂ ਕੰਮ ਕਰਨ ਦੀ।ਹੁਣ ਭਾਈ ਥੋਡੇ 'ਚੋਂ ਜੀਹਦੇ ਵਿਆਹ ਦਾ ਢਕਵੰਜ ਬਣਦੈ, ਬਣਾ-ਲੋ (ਪੰਨਾ-23)*

ਜੈ ਕੁਰ ਦੀ ਗੱਲ ਸੁਣ ਕੇ ਕਰਮਾ, ਧਿੰਦੀ ਤੇ ਨਾਹਰੀ ਆਪਸ ਵਿਚ ਵਿਆਹ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦੇ ਹਨ।ਉਸੇ ਸਮੇਂ ਬਲਵੰਤ ਸਿੰਘ ਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।ਬਲਵੰਤ ਸਿੰਘ ,ਜਿਹੜਾ ਕਿ ਬਚਨੇ ਦਾ ਜੀਜਾ ਹੈ, ਆਪਣੇ ਪੁੱਤ ਮਿੱਠੂ ਦੇ ਵਿਆਹ ਦਾ ਸੱਦਾ ਦੇਣ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾਲ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਦੀ ਗੱਲ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇੰਦਰ ਸਿੰਘ ਨੇ ਆਪਣੀ ਧੀ ਦਾ ਰਿਸ਼ਤਾ ਨਾਹਰੀ ਨਾਲ ਕਰਨ ਲਈ ਪੰਜ ਹਜ਼ਾਰ ਰੁਪਏ ਵਿੱਚ ਕਰਨ ਦੀ ਗੱਲ ਤੋਰੀ ਹੈ।ਜੈ ਕੁਰ ਇਸ ਰਿਸ਼ਤੇ ਲਈ 'ਹਾਂ' ਕਰਨ ਲਈ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ।ਐਨੇ ਨੂੰ ਭੰਗਾ ਵੀ ਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਸਾਰੇ ਉਸ ਨਾਲ ਹੱਥ ਮਿਲਾ ਕੇ ਬੈਠਕ ਵਿਚ ਬੈਠ ਕੇ ਗੱਲਾਂ ਕਰਨ ਲੱਗਦੇ ਹਨ।ਜਦੋਂ ਬਲਵੰਤ ਸਿੰਘ ਇਸ ਰਿਸ਼ਤੇ ਬਾਰੇ ਭੰਗੇ ਤੋਂ ਪੁੱਛਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਸਹਿਮਤੀ ਤਾਂ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਪਰ ਨਾਲ ਹੀ ਆਪਣੇ ਬੁਢਾਪੇ ਦੀ ਚਿੰਤਾ ਵੀ ਵਿਅਕਤ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਨਾਹਰੀ ਦਾ ਗੁਆਂਢਣ ਮਿੰਦੋ ਨਾਲ ਇਸ਼ਕ ਹੈ ਜਿਸ ਸਬੰਧੀ ਜੈਕੁਰ ਮਿੰਦੋ ਨੂੰ ਵਰਜਦੀ ਹੈ।ਜਦੋਂ ਮਿੰਦੋ ਨਾਹਰੀ ਦੇ ਘਰੋਂ ਨਿਕਲਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਘੋਗਾ ਦੇਖ ਲੈਂਦਾ ਹੈ।ਘੋਗਾ, ਮਿੰਦੋ ਨੂੰ ਦੇਖ ਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਜੈ ਕੁਰ ਦੇ ਘਰ ਜਾਣ ਤੋਂ ਰੋਕਦਾ ਹੈ।ਮਿੰਦੋ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਨਾਹਰੀ ਦੇ ਰਿਸ਼ਤੇ ਦੀ ਪੱਕ-ਠੱਕ ਹੋ ਗਈ ਹੈ ਤੇ ਤੂੰ ਕੋਈ ਗ਼ਲਤ ਗੱਲ ਨਾ ਸਮਝ ਤਾਂ ਅੱਗੋਂ ਘੋਗਾ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ:-

> *ਘੋਗਾ: ਪੱਕ-ਥੱਕ ਨੂੰ ਤਾਂ ਬਖਤਪੁਲੀਏ ਛਲਢਾਲਾਂ ਦੇ ਪੁੱਕਣ-ਗੇ!ਜ਼ਮੀਨ ਧਲ ਕੇ ਕੋਈ ਛਹਿੰਸਨ-ਥੋਲਣ ਲੈ ਆਉਣਗੇ ਪਿਉ ਵਾਂਦੂੰ। (ਪੰਨਾ-31)*

ਧਿੰਦੀ ਇਹ ਗੱਲ ਸੁਣ ਲੈਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਉਹ ਘੋਗੇ ਦੇ ਮੌਰਾਂ ਵਿਚ ਸੋਟੀ ਮਾਰਦਾ ਹੈ।ਜਦੋਂ ਬਚਨੇ ਦਾ ਸਾਰਾ ਪਰਿਵਾਰ ਵਿਆਹ ਗਿਆ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਚੰਦੂ ਬਚਨੇ ਦੇ ਘਰੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਭੰਗੇ ਨੂੰ ਪੁੱਛਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕਿਵੇਂ ਭੰਗਾਂ ਸਿਆਂ ਇਕੱਲਾ ਹੀ ਘਰ ਵਿਚ ਹੈਂ? ਭੰਗਾ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸਾਰੇ ਵੱਡੇ ਭਾਣਜੇ ਦੇ ਵਿਆਹ ਵਿਚ ਗਏ ਹੋਏ ਨੇ, ਘਰੇ ਮੇਰੇ ਨਾਲ ਛੋਟਾ ਧਿੰਦੀ ਹੈ।ਭੰਗਾ, ਚੰਦੂ ਨੂੰ ਨਾਹਰੀ ਦੇ ਮੰਗਣੇ ਦੀ ਗੱਲ ਦੱਸਦਾ ਹੈ।ਚੰਦੂ ਭੰਗੇ

ਨੂੰ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਰਿਸ਼ਤਾ ਵੀ ਤੇਰੇ ਕਰਕੇ ਹੀ ਸਿਰੇ ਚੜ੍ਹਿਆ ਹੈ। ਚੰਦੂ, ਭੰਗੇ ਨੂੰ ਵਿਆਹ ਕਰਵਾਉਣ ਲਈ ਆਖਦਾ ਹੈ ਤੇ ਭੰਗਾ ਵੀ ਉਸ ਨੂੰ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਇਸ ਵਿਚ ਕਿੰਨ੍ਹਾ ਕੁ ਖ਼ਰਚਾ ਆਵੇਗਾ? ਤਾਂ ਚੰਦੂ ਆਖਦਾ ਹੈ:-

*ਚੰਦੂ: ਖ਼ਰਚੇ ਨੂੰ ਤੇਰੇ ਕੋਲ ਘਾਟੈ ਕਿਸੇ ਗੱਲ ਦਾ!ਅੱਠ ਕਿੱਲਿਆਂ ਦਾ ਮਾਲਕ ਐਂ!ਅੱਠਾਂ ਦੇ ਸਿਰ 'ਤੇ ਤੀਮੀ ਆ ਜੇ ਸਾਲੀ ਕੋਤਲ ਘੋੜੇ ਅਰਗੀ! (ਪੰਨਾ-35)*

ਉਸੇ ਸਮੇਂ ਹੀ ਘੋਗਾ ਭੰਗੇ ਦੇ ਘਰ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਦੋਵੇਂ ਸ਼ਰਾਬ ਪੀਂਦੇ ਹਨ ਤੇ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਚੰਦੂ ਘੋਗੇ ਨੂੰ ਵੀ ਸ਼ਰਾਬ ਪਿਉਂਦਾ ਤੇ ਨਾਹਰੀ ਹੋਰਾਂ ਤੋਂ ਬਦਲਾ ਲੈਣ ਲਈ ਉਸ ਨੂੰ ਉਕਸਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਧਿੰਦੀ ਸ਼ਰਾਬ ਦਾ ਰੱਜਿਆ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਚੰਦੂ ਨਾਲ ਉਸਦਾ ਬੋਲ-ਕੁਬੋਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।

ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਟੱਕਰ ਉਸ ਵੇਲੇ ਤੇਜ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਜਦੋਂ ਧਰਮਾ ਗੁੱਸੇ ਵਿਚ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਜੈ ਕੁਰ ਧਰਮੇ ਨੂੰ ਪੁੱਛਦੀ ਹੈ ਕਿ ਸਭ ਸੁੱਖ ਤਾਂ ਹੈ। ਧਰਮਾ ਗੁੱਸੇ ਵਿਚ ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਨੂੰ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਤੇਰੇ ਘਰਵਾਲੇ ਨੇ ਚੰਦੂ ਨਾਲ ਰਲ ਕੇ ਸਾਡਾ ਘਰ ਬਰਬਾਦ ਕਰ ਦਿੱਤਾ। ਭੰਗਾ ਜ਼ਮੀਨ ਦੀ ਵੰਡ ਲਈ ਜ਼ੋਰ ਪਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਅਤੇ ਵਿਆਹ ਕਰਵਾਉਣ ਨੂੰ ਫਿਰਦਾ ਹੈ। ਪਹਿਲੇ ਐਕਟ ਦੀ ਪੰਜਵੀਂ ਝਾਕੀ ਵਿਚ ਮਰਾਝੋ ਜੈ ਕੁਰ ਦੇ ਘਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ ਤੇ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਨਾਹਰੀ ਦੇ ਵਿਆਹ ਸੰਬੰਧੀ ਤਾਂ ਕਿਸੇ ਨੇ ਭਾਨੀ ਮਾਰ ਦਿੱਤੀ ਹੈ। ਮਰਾਝੋ ਇਹ ਵੀ ਪੁੱਛਦੀ ਹੈ ਕਿ ਭੰਗਾ ਬਾਬਾ ਜੀ ਵੀ ਅੱਡ ਹੋਣ ਨੂੰ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਜੈਕੁਰ ਆਖਦੀ ਹੈ ਜੇ ਉਹਨੇ ਅੱਡ ਹੋਣਾ ਹੈ ਤਾਂ ਹੋ ਜਾਵੇ। ਮੇਰੇ ਮੁੰਡਿਆਂ ਨੂੰ ਕਿਹੜਾ ਕੁੜੀਆਂ ਦ ਘਾਟਾ ਹੈ। ਤੇਰੀਆਂ ਵੀ ਤਾਂ ਦੋ ਭੈਣਾਂ ਕੁਆਰੀਆਂ ਨੇ। ਮਰਾਝੋ ਆਖਦੀ ਹੈ ਕਿ ਮੈਂ ਤਾਂ ਬੇਬੇ ਤੇਰੇ ਕਹਿਣ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਹੀ ਬਾਪੂ ਨਾਲ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਪਰ ਤੇਰੇ ਤੇ ਬਾਬਾ ਜੀ ਵਾਲਾ ਅੜਿਕਾ ਮੂਹਰੇ ਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਮੁੰਡੇ ਦੇ ਨਾਨਕੇ ਕਿੱਥੇ ਨੇ? ਇਹ ਸੁਣ ਕੇ ਜੈ ਕੁਰ ਉਸ ਨੂੰ ਖਰੀਆਂ-ਖਰੀਆਂ ਸੁਣਾਉਂਦੀ ਹੈ ਤੇ ਮਰਾਝੋ ਆਪਣੇ ਘਰੇ ਚਲੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਇਸੇ ਸਮੇਂ ਭੰਗਾ ਘਰ ਵਿਚ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਜੈ ਕੁਰ ਭੰਗੇ ਨੂੰ ਸਮਝਾਉਂਦੀ ਹੈ ਕਿ ਆਪਣੇ ਤਾਂ ਆਪਣੇ ਹੀ ਹੁੰਦੇ ਨੇ ਤੂੰ ਕਿਸੇ ਦੀ ਚੱਕ ਵਿਚ ਨਾ ਆ। ਭੰਗਾ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਮੈਂ ਤਾਂ ਅੱਡ ਹੋਣਾ ਹੀ ਹੈ, ਮੇਰੇ ਜਿਹੜੇ ਚਾਰ ਭਾਂਡੇ ਹਨ ਉਹ ਮੈਨੂੰ ਦਿਓ। ਜੈ ਕੁਰ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਸਾਰਾ ਕੁਝ ਹੀ ਤੇਰਾ ਹੈ ਤੈਨੂੰ ਕਿਹੜਾ ਕਿਸੇ ਚੀਜ ਦਾ ਘਾਟਾ ਹੋਣ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਜੈ ਕੁਰ ਪਾਗਲਾਂ ਵਰਗਾ ਵਿਹਾਰ ਕਰਨ ਲੱਗ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਤੇ ਪਿੰਡ ਦੀਆਂ ਸੱਚੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਸੁਣਾ ਕੇ ਆਵਦਾ ਆਪਾ ਗੁਆ ਬੈਠਦੀ ਹੈ।

ਨਾਟਕ ਦੇ ਦੂਸਰੇ ਐਕਟ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਝਾਕੀ ਵਿਚ ਜਦੋਂ ਦੀ ਜੈ ਕੁਰ ਮਰੀ ਹੈ ਉਸੇ ਦਿਨ ਤੋਂ ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਬਚਨੇ ਹੋਰਾਂ ਦੇ ਘਰ ਰੋਟੀਆਂ ਬਣਾਉਂਦੀ ਹੈ।ਨਾਹਰੀ ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਨੂੰ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਕਿੰਨਾ ਚਿਰ ਉਹਨਾਂ ਦੀਆਂ ਰੋਟੀਆਂ ਬਣਾਵੇਗੀ।ਤੇਰਾ ਘਰਵਾਲਾ ਇਸ ਨੂੰ ਚੰਗਾ ਨਹੀਂ ਸਮਝਦਾ ਤੇ ਉਹ ਕਿਤੇ ਵੀ ਭੜਕ ਸਕਦਾ ਹੈ।ਤਾਂ ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਆਖਦੀ ਹੈ:-

> *ਮਿੰਦ੍ਹੋ: ਰੋਣਾ ਤਾਂ ਐਸੇ ਗੱਲ ਦੈ! ਜੇ ਘੋਗਾ ਭਾਂਬੜ ਬਣ ਕੇ ਮੱਚਣ ਆਲਾ ਹੁੰਦਾ ਮੈਂ ਪਰਾਈ ਅੱਗ 'ਚ ਕਿਉਂ ਹੱਡਾਂ ਨੂੰ ਬਾਲ਼ਣ ਬਾਲ਼ਦੀ।ਮੈਂ ਉਸ ਮਿੱਟੀ ਦੀ ਗੋਹ ਨੂੰ ਹਜ਼ਾਰ ਵਾਰੀਂ ਆਖਿਐ ਬਈ ਜੇ ਤੈਥੋਂ ਹੋਰ ਕੁਸ਼ ਨੀ ਹੁੰਦਾ ਤਾਂ ਗੰਡਾਸਾ ਲੈ ਕੇ ਮੇਰੇ-ਈ ਟੋਟੇ-ਟੋਟੇ ਕਰ-ਦੇ!ਪਰ ਉਸ ਧੜੀ ਅੰਨ-ਖਾਣੇ ਤੋਂ ਏਨਾ ਅਪਕਾਰ ਵੀ ਤਾਂ ਨੀਂ ਹੁੰਦਾ! ਏਧਰ ਇਕ ਹੁਣ ਤੂੰ ਐਂ ਬਈ ਘਰ ਆਈ ਨੂੰ ਵੀ ਦੁਰਕਾਰਨ ਲੱਗ ਪਿਐਂ। (ਪੰਨਾ-52-53)*

ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਨਾਹਰੀ ਨਾਲ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦੀ ਦਸਦੀ ਹੈ ਕਿ ਜਿਹੜੀ ਮੰਗ ਤੈਨੂੰ ਆਉਣੀ ਸੀ ਹੁਣ ਉਹ ਮੰਗ ਤੇਰੇ ਚਾਚੇ ਭੰਗੇ ਨੂੰ ਵਿਆਹੀ ਜਾਵੇਗੀ।ਧਿੰਦੀ ਬਾਹਰੋਂ ਸ਼ਰਾਬ ਦਾ ਰੱਜਿਆ ਆਉਂਦਾ ਹੈ।ਪਿੰਡ ਦੇ ਸਾਰੇ ਮੁੰਡੇ ਇਕੱਠੇ ਹੋ ਕੇ ਇੱਕ ਮੁੰਡੇ ਤੋਂ ਦਹੂਦ ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਦਾ ਕਿੱਸਾ ਸੁਣਦੇ ਹਨ, ਉਸ ਕਿੱਸੇ ਨੂੰ ਸੁਣ ਕੇ ਨਾਹਰੀ ਦੇ ਮਨ ਵਿਚ ਗੁੱਸਾ ਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।ਇੱਕ ਮੁੰਡਾ ਆ ਕੇ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਕਿ ਭੰਗਾ ਇੱਕ ਤੀਵੀਂ ਲੈ ਆਇਆ ਹੈ।ਇਸੇ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਨਾਹਰੀ ਵੱਲੋਂ ਭੰਗੇ ਦਾ ਕਤਲ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਪੁਲਿਸ ਨਾਹਰੀ ਨੂੰ ਲੈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।ਮਿੰਦੋ ਨਾਹਰੀ ਨੂੰ ਮਿਲਣ ਲਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।ਨਾਹਰੀ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਸ ਨੂੰ ਹੁਣ ਫਾਂਸੀ ਲੱਗ ਜਾਣੀ ਹੈ ਤੇ ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਤੂੰ ਮੇਰੇ ਲਈ ਬਹੁਤ ਕੁੱਝ ਕੀਤਾ ਹੈ ਜਿਸਦਾ ਬਦਲਾ ਮੈਂ ਅਗਲੇ ਜਨਮਾਂ ਵਿਚ ਵੀ ਨਹੀਂ ਚੁੱਕਾ ਸਕਦਾ।ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਵੀ ਰੋਣ ਲੱਗ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਤੇ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ:-

> *ਮਿੰਦ੍ਹੋ: ਤੂੰ ਤਾਂ ਸੱਤ-ਬਗਾਨਿਆਂ ਵਾਂਗੂੰ ਵਚਾਲੇ ਡੋਬਾ ਦੇ ਕੇ ਮੂੰਹ ਮੋੜ ਲਿਆ।ਤੈਨੂੰ ਤਾਂ ਛੁਟਕਾਰਾ ਮਿਲ-ਜੂ ਵੈਰੀਆ, ਇਸ ਤੱਤੀ ਨੂੰ ਵੀ ਕੋਈ ਟਿਕਾਣਾ ਦੱਸ ਜਾ। (ਪੰਨਾ-62)*

ਨਾਹਰੀ ਨੂੰ ਫਾਂਸੀ ਦੇ ਦਿੱਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।

ਨਾਟਕ ਦੇ ਤੀਜੇ ਐਕਟ ਦੀ ਝਾਕੀ ਵਿਚ ਬਚਨਾ ਅੱਗ ਬਾਲਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੈ ਪਰ ਚੁੱਲ੍ਹੇ ਵਿਚ ਅੱਗ ਨਹੀਂ ਮੱਚਦੀ।ਬਚਨਾ ਸੁਪਨੇ ਵਿਚ ਜੈ ਕੁਰ ਨੂੰ ਮਿਲਦਾ ਹੈ ਤੇ ਵਿਅੰਗ ਨਾਲ ਜੈ ਕੁਰ ਨੂੰ ਆਪਣੀ ਨੂਹਾਂ ਨਾਲ ਮਿਲਣ ਲਈ ਆਖਦਾ ਹੈ।ਬਚਨਾ ਪਾਗਲਾਂ ਵਰਗੀ ਇਸ ਅਵਸਥਾ ਵਿਚ ਜੈ ਕੁਰ ਨਾਲ

ਆਪਣੀਆਂ ਮਨ ਦੀਆਂ ਸਾਰੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦਾ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। ਕਰਮਾ ਤੇ ਧਰਮਾ ਬਚਨੇ ਦੀ ਅਜਿਹੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਵੇਖਦੇ ਹੋਏ ਆਪਸ ਵਿਚ ਗੱਲਾਂ ਕਰਦੇ ਹਨ ਕਿ ਬਾਪੂ ਹੁਣ ਬਹੁਤਾ ਸਮਾਂ ਨਹੀਂ ਰਹਿਣਾ। ਕਰਮਾ ਤੇ ਧਰਮਾ ਰੋਟੀ ਖਾਣ ਪਿਛੋਂ ਬਚਨੇ ਨੂੰ ਮੰਜੇ ਉੱਤੇ ਪਾ ਦਿੰਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਜੋ ਉਸ ਨੂੰ ਨੀਂਦ ਆ ਜਾਵੇ ਤੇ ਠੀਕ ਹੋ ਜਾਵੇ। ਇਸੇ ਸਮੇਂ ਹੀ ਲੱਕੜਚੱਬ ਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਉਹ ਧਰਮੇ ਤੇ ਕਰਮੇ ਨਾਲ ਪਿੰਡ ਵਿਚ ਵੰਡ ਪਈ ਘਰਾਂ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਕਰਕੇ ਆਪਣੇ ਘਰ ਚਲਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਧਰਮਾ ਕਰਮੇ ਨੂੰ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਨਾਹਰੀ ਨੇ ਚਾਚੇ ਨੂੰ ਮਾਰ ਕੇ ਆਪਾਂ ਨੂੰ ਮੰਗਤੇ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਤਾਂ ਕਰਮਾ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ:-

*ਕਰਮਾ: ਕਿਉਂ ਮੰਗਤੇ ਬਣਾ-ਤੇ? ਚਾਚੇ ਨੇ ਘੱਟ ਕੀਤੀ ਸੀ ਸਾਡੇ ਨਾਲ? ਨਾਹਰੀ ਤਾਂ ਨਰ ਸੀ ਨਰ, ਮਰਦ ਬੱਚਾ? ਐਂਇੰ ਨਾ ਆਖ ਉਹਨੂੰ! (ਪੰਨਾ-72)*

ਧਿੰਦੀ ਬਾਹਰੋਂ ਸ਼ਰਾਬ ਦਾ ਰੱਜਿਆ ਆਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਕਰਮੇ ਨੂੰ ਮਾੜਾ ਬੋਲਦਾ ਹੈ। ਧਿੰਦੀ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਨਾਹਰੀ ਦੀ ਮਿੰਦੋ ਨਾਲ ਯਾਰੀ ਸੀ ਚਲੋ ਆਪਾਂ ਉਹਨੂੰ ਆਪਣੇ ਘਰ ਵਸਾਈਏ। ਤੁਸੀਂ ਸਾਰੇ ਮੇਰੇ ਪਿੱਛੇ ਆਓ, ਮੈਂ ਘੋਗੇ ਦਾ ਗੱਲ ਵੱਢਦਾ ਤੇ ਫਾਹੇ ਲੱਗਦੈਂ। ਧਿੰਦੀ ਕਰਮੇ ਨੂੰ ਰਾਤ ਆਏ ਸੁਪਨੇ ਬਾਰੇ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਸਨੂੰ ਰਾਤ ਨਾਹਰੀ ਮਿਲਿਆ ਸੀ ਤੇ ਉਸਦਾ ਵਿਆਹ ਮਿੰਦੋ ਨਾਲ ਹੋਇਆ ਸੀ। ਸਾਰਾ ਪਰਿਵਾਰ ਖ਼ੁਸ਼ ਸੀ। ਸਾਰੇ ਬੋਲੀ ਪਾਉਂਦੇ ਹਨ। ਉਸੇ ਬੋਲੀ ਨਾਲ ਧਿੰਦੀ ਦਾ ਸੁਪਨਾ ਵੀ ਟੁੱਟ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਅੰਤ ਤੇ ਸਾਰੇ ਬੋਲਦੇ ਹਨ:

*ਸਾਰੇ: ਕੁਸ਼ ਨੀ ਭਰਾਵੋ ਜੂਨਾਂ! ਘਰ ਦੀ ਨਾਰ ਬਿਨਾਂ, ਕੁਸ਼ ਨੀਂ... (ਪੰਨਾ-76)*

**'ਸੱਤ ਬਗਾਨੇ' ਨਾਟਕ ਦੀਆਂ ਸਹਿਚਾਰੀ ਅਰਥ ਇਕਾਈਆਂ**

ਅਜਮੇਰ ਸਿੰਘ ਔਲਖ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿਚ ਤੀਜੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੇ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਨਾਟਕਕਾਰਾਂ ਵਿਚੋਂ ਇੱਕ ਹੈ। ਜਿਸ ਨੇ ਨਿਮਨ ਕਿਸਾਨੀ ਦੇ ਵਿਭਿੰਨ ਸੰਕਟਾਂ ਨੂੰ ਪਾਸਾਰਾਂ ਸਹਿਤ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। 'ਸੱਤ ਬਗਾਨੇ' ਨਾਟਕ ਉਸ ਦੇ ਲਘੂ-ਨਾਟਕ 'ਤੁੜੀ ਵਾਲਾ ਕੋਠਾ' ਦਾ ਵਿਸਤਾਰ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਉਸ ਨੇ ਨਿਮਨ ਕਿਸਾਨ ਪਰਿਵਾਰ ਦੀਆਂ ਔਕੜਾਂ ਨੂੰ ਆਲੋਚਨਾਤਮਕ ਯਥਾਰਥ ਅਧੀਨ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਮੁੱਖ ਸਮੱਸਿਆ ਮਰਦ ਦੇ ਜੀਵਨ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਘਾਟ ਦੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਦੇ ਕਾਰਨ ਪੇਂਡੂ ਸਮਾਜ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਪਏ ਹਨ। ਜਿਵੇਂ ਕਿ ਬਚਨਾ ਪਿੰਡ ਦੀ ਕੁੜੀ ਜੈ ਕੁਰ (ਜਿਹੜੀ ਕਿ ਝਿਉਰ ਬਰਾਦਰੀ ਨਾਲ ਸਬੰਧਤ ਹੈ) ਨਾਲ ਇਸ਼ਕ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਜੈ ਕੁਰ ਬਚਨੇ ਦੇ ਘਰ ਆ ਵਸਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਵਸੇਬੇ ਵਿਚੋਂ ਚਾਰ ਪੁੱਤਾਂ ਨੂੰ ਜਨਮ ਵੀ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਬਚਨੇ ਦਾ ਜੈ ਕੁਰ ਨੂੰ ਘਰੇ ਵਸਾਉਣਾ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਪ੍ਰਵਾਨ ਨਹੀਂ ਇਸੇ ਕਰਕੇ

ਬਚਨੇ ਦੇ ਭਰਾ ਭੰਗੇ ਨੂੰ ਕੋਈ ਰਿਸ਼ਤਾ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ।ਜਦੋਂ ਬਚਨੇ ਦੇ ਚਾਰੇ ਪੁੱਤਰ ਜਵਾਨ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ ਤਾਂ ਕੋਈ ਵੀ ਇਹਨਾਂ ਮੁੰਡਿਆਂ ਨੂੰ ਰਿਸ਼ਤਾ ਕਰਨ ਲਈ ਤਿਆਰ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ।ਸਿੱਟੇ ਵਜੋਂ ਮੁੱਲ ਦੀ ਤੀਵੀਂ ਲਿਆਉਣ ਲਈ ਮਜਬੂਰ ਹੋਣਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ।ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਦੁਖਾਂਤ ਉਸ ਵੇਲੇ ਵਧੇਰੇ ਵਾਪਰਦਾ ਹੈ ਜਦੋਂ ਇਸ ਮੁੱਲ ਦੀ ਤੀਵੀਂ ਨੂੰ ਨਾਹਰੀ ਦਾ ਚਾਚਾ ਭੰਗਾ ਵੱਧ ਮੁੱਲ ਤਾਰ ਕੇ ਵਿਆਹ ਲਿਆਉਂਦਾ ਹੈ।ਸਿੱਟੇ ਵਜੋਂ ਨਾਹਰੀ ਆਪਣੇ ਸਕੇ ਚਾਚੇ ਭੰਗੇ ਦਾ ਕਤਲ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਨਾਹਰੀ ਨੂੰ ਫਾਂਸੀ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।ਨਾਹਰੀ ਨੂੰ ਬਚਾਉਣ ਲਈ ਘਰ ਦੀ ਸਾਰੀ ਜ਼ਮੀਨ ਵਿੱਕ ਜਾਂਦੀ ਹੈ ਅਤੇ ਘਰ ਆਰਥਕ ਸਥਿਤੀ ਅਧੀਨ ਡਾਂਵਾ-ਡੋਲ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।ਅਜਮੇਰ ਸਿੰਘ ਔਲਖ ਨੇ ਇਸ ਨਾਟਕ ਰਾਹੀਂ ਉਹਨਾਂ ਸਾਰੇ ਮੁੱਲਾਂ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕੀਤਾ ਹੈ, ਜਿਹੜੇ ਮਾਨਵੀ ਕਦਰਾਂ ਦੇ ਰਾਹ ਵਿਚ ਅੜਿਕਾ ਹੈ।ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲੀ ਗੱਲ ਇਹ ਕਿ ਅਜਮੇਰ ਸਿੰਘ ਔਲਖ ਮਾਰਕਸਵਾਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਨਾਲ ਜੁੜਿਆ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਉਹ ਸਮਾਜ ਵਿਚਲੀ ਜਾਤੀ-ਪਾਤੀ ਵਿਵਸਥਾ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕਰਦਾ ਹੈ।ਜਾਤੀ-ਪਾਤੀ ਵਿਵਸਥਾ ਅਧੀਨ ਸਾਡੇ ਸਮਾਜ ਦੇ ਲੋਕ ਸੰਕਟ ਗ੍ਰਸਤ ਹੁੰਦੇ ਹਨ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨਕ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਇਸਦਾ ਟੁੱਟਣਾ ਜ਼ਰੂਰੀ ਵੀ ਹੈ।ਦੂਸਰਾ ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਔਰਤ ਦੀ ਹੋਂਦ ਦੇ ਮਸਲੇ ਨੂੰ ਵੀ ਉਠਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ।ਔਰਤ ਨੂੰ ਔਰਤ ਵਜੋਂ ਨਾ ਵੇਖਦਿਆਂ ਇੱਕ ਵਸਤ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿਚ ਉਸ ਨੂੰ ਵੇਚਿਆ ਤੇ ਖਰੀਦਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ ਹੈ।ਇਸ ਖਰੀਦ-ਵੇਚ ਦੇ ਮਾਰੂ ਸਿੱਟੇ ਕਤਲ ਆਦਿ ਦੀਆਂ ਘਟਨਾਵਾਂ ਬਣਦੇ ਹਨ।ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ ਹੀ ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿਚ ਇਹ ਵੀ ਵੇਖਣ ਨੂੰ ਮਿਲ ਰਿਹਾ ਹੈ ਕਿ ਔਰਤ ਦੀ ਹੋਂਦ ਨੂੰ ਮਰਦ ਦੇ ਬਰਾਬਰ ਨਹੀਂ ਰੱਖਿਆ ਜਾ ਰਿਹਾ।ਘੋਗਾ ਪੈਸੇ ਪੱਖੋਂ ਮਜਬੂਤ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਵਰਗੀਆਂ ਗ਼ਰੀਬ ਘਰਾਂ ਦੀਆਂ ਕੁੜੀਆਂ ਨੂੰ ਵਿਆਹੁਣ ਦੇ ਸਮਰੱਥ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।ਘੋਗੇ ਦੇ ਅਧੂਰੇਪਣ ਸਦਕਾ ਮਿੰਦ੍ਹੋ ਨਾਹਰੀ ਵੱਲ ਖਿੱਚੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।ਇਹ ਨਰੜ ਦੰਪੱਤੀ ਜੀਵਨ ਵੀ ਇਸ ਗੱਲ ਦੀ ਗਵਾਹੀ ਭਰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਸਾਡਾ ਸਮਾਜ ਮਾਨਵੀ ਕਦਰਾਂ ਕੀਮਤਾਂ ਦੀ ਸਥਾਂ ਅਮਾਨਵੀ ਮੁੱਲਾਂ ਨੂੰ ਅਪਣਾਈ ਬੈਠਾ ਹੈ।ਅਜਮੇਰ ਸਿੰਘ ਔਲਖ ਇਸ ਨਾਟਕ ਰਾਹੀਂ ਪੁਰਾਣੇ ਸਮਾਂ ਵਹਾ ਚੁੱਕੇ ਮੁੱਲਾਂ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕਰਦਿਆਂ ਸਮਾਜ ਨੂੰ ਬਰਾਬਰਤਾ ਤੇ ਮਾਨਵੀ ਮੁੱਲਾਂ ਨੂੰ ਅਪਣਾਉਣ ਲਈ ਚੇਤਨ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਵਿਚ ਉਸਦੀ ਵੱਡੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਵੀ ਹੈ।

**<u>ਸਹਾਇਕ ਪੁਸਤਕ ਸੂਚੀ</u>**


1. Coward,Rosalind And Ellis, **Language and Materialism**, London: Routledge and Kegan Paul. 1977
2. Shukhman, Ann, **Literature And Semiotics**, New York: North Holland Publishing Company, 1977
3. ਔਲਖ, ਅਜਮੇਰ ਸਿੰਘ, **ਸੱਤ ਬਗਾਨੇ**, ਚੇਤਨਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਲੁਧਿਆਣਾ, 2009
4. ਜੱਸਲ, ਸਤਪ੍ਰੀਤ ਸਿੰਘ, **ਸੰਤ ਸਿੰਘ ਸੇਖੋਂ ਦੇ ਨਾਟਕਾਂ ਦਾ ਚਿਹਨ ਵਿਗਿਆਨ**, ਚੇਤਨਾ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਲੁਧਿਆਣਾ, 2013



E-mail: dr.satpreetjassal@gmail.com
ਮੋਬਾਇਲ ਨੰਬਰ: 094646-60702

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 258-261

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में मिथकीय अवधारणा

**सुरेन्द्र दलाल**
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, OSGU–हिसार।

मिथ या मिथक अंगेजी भाषा के डलजी शब्द से निर्मित है। हिन्दी भाषा में इससे मिलता–जुलता एक शब्द प्रचलित है–मिथ्या। हिन्दी साहित्य में मिथक की अवधारणा का प्रयोग प्राचीनकाल से ही हो रहा है, परन्तु तब मिथक को साहित्यिक विमर्श की दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

मिथक को आदिम मनुष्य की चेतना का प्राथमिक सर्जनात्मक बिम्ब माना जाता है। जैसे–जैसे मनुष्य की चेतना का विकास होता गया, तो मनुष्य ने कई प्रकार के आख्यानों की रचना की। इन आख्यानों में परम्परागत रूप से अनुश्रुत उन कथाओं का समावेश किया जाता था, जिनका सम्बंध पौराणिक पात्रों या देवी देवताओं से होता था। पौराणिक पात्रों के अतिरिक्त लोक कथाओं में भी मिथक का ही स्वरूप झलकता है।

मिथक को परिभाषित करते हुए डॉ० वीरेन्द्र सिंह कहते हैं कि– "मिथक का एक व्यापक क्षेत्र है। जो सांस्कृतिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। मिथक की व्यापकता और साथ ही उसके महत्व के कारण आधुनिक युग में मिथ या पुरागाथा को विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचित एवं व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया। इस विवेचन और व्याख्या के द्वारा मिथक के उस रूप का स्पष्टीकरण होता है जो यथार्थ और कल्पना (प्रभामंडल) की द्वंद्वात्मकता को प्रकट करता है और यह सिद्ध करता है कि मिथक की संरचना में इन दोनों तत्त्वों का समावेश न्यूनाधिक रूप में प्राप्त होता है।[1]

मिथक के उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मिथक में यथार्थ तथा कल्पना का समावेश होता है। हमारे समाज में कुछ जनश्रुतियाँ अर्थात् किंवदतियाँ प्रचलित होती हैं। इन किंवदतियों में अतिमानवीय कार्यों के बारे में बताया जाता है। ये किंवदतियाँ भी मिथकों की श्रेणी में आती हैं।

मिथकों के माध्यम से लोक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। मिथक हमारी आधुनिकता को परम्परा के साथ संयुक्त करता है क्योंकि मिथक का सम्बंध अतीत से ही होता है। प्राचीनकाल में हमारे पूर्वज किसी विषय के बारे में क्या साचते थे, इन सब धारणाओं को मिथक के माध्यम से ही जाना जा सकता है। मिथक के आधार पर अनेक महाकाव्यों की रचना हुई है, जैसे जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' नामक महाकाव्य सम्पूर्ण रूप से मिथकीय पात्रों के आधार पर ही लिखा गया है।

आधुनिक काल के रचनाकार भी अपने काव्य में मिथकीय अवधारणाओं का प्रयोग कर रहे हैं। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' भी इसी प्रकार के रचनाकार हैं, जो अपने साहित्य में मिथकीय पात्रों तथा मिथकीय

घटनाओं का वर्णन करते हैं। कवि ने मिथकीय घटनाओं को 'दोहा छंद' में प्रस्तुत किया है। इन दोहों को समझने के लिए उन दोहों के सम्बंध में प्रचलित कथा या मिथक का ज्ञान होना आवश्यक है। कवि द्वारा प्रयुक्त कुछ महत्वपूर्ण मिथकों का विवेचन इस प्रकार है।

**समुद्र मंथन का मिथक :-**

भारतीय जनमानस में 'समुद्र मंथन' की कथा प्रचलित है। इस कथा के अनुसार देव तथा असुर अमृत प्राप्त करने के लिए समुद्र का मंथन करते है। इस समुद्र मंथन के परिणामस्वरूप 14 रत्न प्राप्त होते हैं। अन्त में अमृत निकलता है, तो सभी देवता तथा असुर इसे पीने के लिए झगड़ने लगते हैं। तब विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण किया और सभी देवताओं को अमृत का भोग करवाया। कुंभ के मेले की कथा का सम्बंध भी समुद्र मंथन से ही है। ऐसा कहा जाता है कि अमृत की बूँदे जिन चार स्थानों पर पड़ी, वहाँ प्रत्येक तीन वर्ष पश्चात् कुंभ के मेले का आयोजन किया जाता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने समुद्र मंथन के इस आख्यान को शरीर के साथ जोड़कर देखा है। वे कहते हैं :–

गहरे चिंतन से करो, खुद का कभी विचार।
सागर–मंथन का तभी, समझोगे आधार।[2]

– तथा –

सागर मंथन से बना, हलाहलों का योग।
शंकर भोले भी गये, उसे मानकर भोग।[3]

**चित्रगुप्त का मिथक :-**

हमारे समाज में चित्रगुप्त का मिथक भी प्रचलित है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार चित्रगुप्त हमारे कर्मों का विवरण लिखने वाला लेखाधिकारी है। हम जितने भी प्रकार के कर्म करते हैं, वे सब चित्रगुप्त की पंजिका में लिखे जा रहे है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' इस मिथक का वर्णन करते हुए कहते हैं :–

चित्रगुप्त लिखता रहा, कर्मों का आधार।
इनके लेखों में छिपा, सब जीवों का सार।[4]

**राजा बलि का मिथक :-**

राजा बलि के सम्बंध में एक कथा प्रचलित है कि वे वर्तमान केरल राज्य के राजा थे। उन्होंने निन्यानवे यज्ञ सम्पन्न कर लिये थे तथा सौंवाँ यज्ञ आयोजित कर रहे थे। इन्द्र यह सब देखकर व्याकुल हो गये, क्योंकि सौ यज्ञ सम्पूर्ण करने वाला व्यक्ति स्वर्ग पर अधिकार कर सकता है। इन्द्र अपनी समस्या लेकर विष्णु के पास गये। विष्णु ने वामन का रूप धारण किया और तीन कदम भूमि की माँग की। वामन ने दो कदमों में सम्पूर्ण पृथ्वी तथा स्वर्ग लोक को नाप दिया और तीसरा कदम बलि के सिर पर रखकर उसे पाताल भेज दिया। तब से लेकर राजा बलि को ही पाताल का राजा माना जाता है। केरल का प्रसिद्ध त्योहार 'ओणम' भी इसी कथा के प्रसंग के आधार पर मनाया जाता है। राजा बलि के इस मिथक का वर्णन करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं :–

राजा बलि ही सौंपते, अपना सारा राज।
इच्छा पूरी कर गये, वामन की अधिराज।।[5]

**दधीचि का मिथक :–**

दधीची के संदर्भ में यह कथा प्रचलित है कि उसने देवताओं के सम्पूर्ण अस्त्र–शस्त्रों को अपने मंत्र–बल से पी लिया था। जब वृत्र नामक राक्षस ने देवताओं पर आक्रमण किया, तो दधीचि ऋषि ने अपनी अस्थियाँ प्रदान की। इन अस्थियों से ही 'इन्द्र का वज्र' तैयार किया गया तथा इसी वज्र से 'वृत्रमेघ' नामक राक्षस का वध किया गया। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' इस मिथक का वर्णन करते हुए कहते हैं :–

काया को भी दान में, देते हैं दाधीच।
ऐसा मुनिवर कौन है, इस जगती के बीच।।[6]

**कबीर की पुत्री कमाली का मिथक :–**

एक बार संत कबीर गुरु रविदास के पास ज्ञान–गोष्ठी करने के लिए गये। गुरु रविदास ने उन्हें कठौती का वही पानी पीने को दिया, जिसमें वे चमड़ा धोने का कार्य करते थे। कबीर ने वह पानी नहीं पीया तथा उसे धरती पर बिखरा दिया। इस बिखरे हुए पानी की कुछ बूँदे कबीरदास के कपड़ों में जा लगी। जब कबीर की पुत्री उस कपड़े का धोती है, तो वह धाग नहीं धुल पाता। तब वह उस चमड़े के पानी के दाग को अपने मुँह से साफ करने लगती है। जैसे ही चमड़े के पानी से उसका सम्पर्क होता है। उसके अज्ञान के बंधन टूट जाते है। जब कबीरदास को इस घटना के विषय में पता चलता है, तो कबीरदास उस पानी को पीने के लिए गुरु रविदास की शरण में जाते है। परन्तु गुरु रविदास उससे कहते हैं कि वह जल तो मुल्तान में जा चुका है। गौरतलब है कि कबीरदास की पुत्री कमाली की ससुराल मुल्तान में ही थी। कवि डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने इस मिथकीय किंवदती को सार–रूप में एक दोहे में प्रस्तुत करते हुए कहा है :–

कपड़े के इक दाग से, करे कमाली चेत।
वो जल अब मुल्तान में, पकड़ो ये संकेत।।[7]

**कुंती का मिथक :–**

कुंती महाभारत नामक महाकाव्य का महत्वपूर्ण पात्र है। उसके सम्बंध में यह कथा प्रचलित है कि उसका गंधर्व विवाह भगवान सूर्य से हुआ था। इनसे 'कर्ण' नामक एक पुत्र पैदा हुआ, परन्तु लोक लाज के भय से कुंती ने अपने पुत्र कर्ण को नदी में बहा दिया। जब महाभारत का युद्ध होता है, तो कुंती इस रहस्य को युधिष्ठिर को बताती है कि कर्ण भी तुम्हारा ही भाई है। तब युधिष्ठिर अपनी माता कुंती को श्राप देते हुए कहते हैं कि आज के बाद कोई भी स्त्री किसी भी रहस्य को छिपा कर नहीं रख सकेगी। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में इस मिथकीय प्रसंग का प्रयोग इस प्रकार किया गया है :–

राज भरी बातें लगी, औरत देगी बोल।
बेटे के अभिशाप से, कुंती डाँवाडोल।।[8]

**अश्वत्थामा का मिथक :–**

अश्वत्थामा के संदर्भ में यह कथा प्रचलित है कि महाभारत के युद्ध के दौरान उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था। वह ब्रह्मास्त्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के पुत्रों पर छोड़ा गया था। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा को श्राप देते हुए कहा कि तुम्हारे इस कुकृत्य के कारण तुम्हें कभी भी मुक्ति नहीं मिलेगी। इसके साथ ही अश्वत्थामा के माथे पर जड़ी हुए 'जड़ी' को भी बाहर निकाल लिया। तब से अश्वत्थामा के संदर्भ में यह कथा

प्रचलित हो गई की वह कभी भी मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में इस मिथकीय प्रसंग को इस प्रकार व्यक्त किया गया है :–

अश्वत्थामा ने किया, जग में ऐसा पाप।
अब तक वन में घूमकर, सहता है अभिशाप।।[9]

**संत रविदास का मिथक :–**

यह सर्वविदित है कि संत रविदास समाज की तथाकथित निम्न जाति से सम्बंध रखते थे। तत्कालीन ब्राह्मण उनके बढ़ते हुए वर्चस्व को देखकर उससे शास्त्रार्थ करते हैं। इसी बीच कुछ ब्राह्मण उसे अपना 'जनेऊ' दिखलाते हैं। तब गुरु रविदास भी उन्हें अपनी छाती चीरकर अपना जनेऊ दिखाते है। इस मिथकीय प्रसंग को डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने इस प्रकार व्यक्त किया है :–

अपनी छाती चीरकर, दिखा दिया सब खास।
संतों के सिरमौर तब, बने संत रविदास।।[10]

**निष्कर्ष :–**

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने मिथकीय अवधारणाओं या लोककथाओं के आधार पर अपने काव्य की रचना की है। इनके मिथकीय प्रसंगों की एक अन्यतम विशेषता यह है कि वे भारतीय जनमानस की अंतरात्मा में बसे मिथकों को ही अपने काव्य का विषय बनाते हैं।

मिथक का सम्बंध धार्मिक उपाख्यानों से ही अधिक होता है, इसलिए कवि के सभी मिथक धार्मिक उपाख्यानों से ही सम्बंधित हैं। मिथकों के सम्बंध में एक अन्य बात यह है कि मिथक हमारा इतिहास नहीं हैं। ये मिथक सत्य घटनाओं या कल्पित घटनों के आधार पर लिखे जा सकते हैं। कवि द्वारा प्रयुक्त किये गए सभी मिथक इन्हीं दो श्रेणियों में रखे जा सकते हैं।

कोई भी मिथक किसी काव्य को सघन, व्यापक तथा विस्तीर्ण स्वरूप प्रदान करता है। इन मिथकों को पढ़ने से पाठकों का मनोरंजन तो होता ही है, साथ में वे भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों को भी जान सकते हैं। प्रत्येक मिथक की यह विशेषता होती है कि वह संकेतों तथा प्रतीकों के माध्यम से शाश्वत संदर्भों को आधुनिकता तथा यथार्थ के साथ जोड़ता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के मिथकीय उपाख्यानों की यही विशेषता है कि वे यथार्थ तथा कल्पना के बीच में 'सेतु' का कार्य करते हैं। इनके मिथकों में भारतीय संस्कृति की झलक दिखलाई पड़ती है, जिसके कारण ये भारतीय संस्कृति के उन्नायक तत्त्व कहे जा सकते हैं।

**संदर्भ ग्रंथ-सूची :–**


1. मिथक दर्शन का विकास, डॉ० वीरेन्द्र सिंह, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1924, पृ०–8
2. आनन्द हजारिका, डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ, 2022, पृ०–61
3. आनन्द सतसई, डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ, 2021, पृ०–63
4. –वही–, पृ०–69
5. –वही–पृ०–69
6. –वही–, पृ०–68
7. –वही–, पृ०–72
8. –वही–, पृ०–74
9. –वही–, पृ०–69
10. –वही–, पृ०–63

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 262-266

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# हे कविते : एक मूल्यांकन

**डॉ. दिवाकर पांडेय**

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार) 802301

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो आधुनिक काल में द्विवेदी–युग से पूर्व जो खड़ी बोली की कविताएं मिलती हैं, उनका प्रारम्भ बिहार निवासी महेश नारायण की कविता 'स्वप्न' से होता है। इसका प्रकाशन 'बिहार बंधु' में सन 1881 ई० में हुआ था। इसके बाद स्वयं भारतेंदु ने भी 'फूलों का गुच्छा' और 'दशरथ–विलाप' कविताएँ लिखीं, पर इनसे आगे वे भी नहीं जा सकें। उसी काल मे श्रीधर पाठक ने 'एकांतवासी योगी' कविता खड़ी बोली में लिखी, पर यह रचना मौलिक नहीं थी, यह 'हरमीट' (अंग्रेजी कविता) का अनुवाद थी। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने एक–दो और कविताएँ लिखीं, पर ये भी आगे नहीं जा सके।

सच कहा जाए तो ये सारी कविताएँ ऐतिहासिक दस्तावेज मात्र हैं, इन कविताओं से आगे न वे कवि खुद बढ़ पाए और न ही कोई परम्परा ही विकसित हो पायी।

सही अर्थों में खड़ी बोली हिंदी कविता की अजस्त्र धारा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'हे कविते' से प्रवाहित हुई। यह कविता 'सरस्वती' में सन 1900 ई. में प्रकाशित हुई थी, तब इस पत्रिका के सम्पादक द्विवेदी जी नहीं थे। इस कविता में द्विवेदी जी ने ब्रजभाषा–काव्य की जड़ता से मुक्ति की कामना की है। वे चाहते हैं कि कविगण व्रजभाषा से मुक्त हो खड़ीबोली में कविता करें और हिंदी–काव्य में जो शून्य पैदा हुआ है, वह भरें। सन 1903 में द्विवेदी जी स्वयं 'सरस्वती' के सम्पादक बने और उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से खड़ी बोली कविता के साथ–साथ खड़ी बोली के कवियों की भी झड़ी लगवा दी। 'हे कविते' को खड़ी बोली हिंदी की प्रथम शुद्ध एवं मौलिक कविता माना जाना चाहिए। हालांकि इसके पक्ष में कुछ और भी मजबूत तर्क दिए जा सकते हैं। जैसे, इसके पूर्व की कविताएं व्रजभाषा के क्रियापदों से मुक्त नहीं हो पायी थीं और न ही उन कविताओं की परम्परा अविच्छिन्न प्रवाहित हो पायी। 'हे कविते' के बाद ही सही अर्थों में खड़ी बोली कविता की अजस्त्र धारा प्रवाहित हुई जो आज तक अबाध गति से प्रवहमान है।

वस्तुतः द्विवेदी जी तक आते–आते हिंदी काव्यधारा मंद पड़ गयी थी। व्रजभाषा के पास वह शक्ति नहीं रह गयी थी कि वह तत्कालीन युग के भावबोधों को संभाल सके। तत्कालीन व्रजभाषा–काव्य का भाव–सौंदर्य विलुप्त हो चुका था। उन कविताओं में न भक्तिकालीन भाव–सम्पदा थी और न रीतिकालीन कला–सम्पदा। वैसे भी व्रजभाषा कवियों की संख्या भी सीमित हो चली थी। लालित–प्रदर्शन के चक्कर में ये कविताएँ जीवन–जगत से काफी दूर हो चुकी थीं।

इस तथ्य को द्विवेदी जी ने बखूबी पहचाना। उन्होंने युग की जटिलताओं एवं संवेदनाओं को व्यक्त करने

हेतु नयी भाषा की आवश्यकता महसूस की जिसकी पूर्ति उन्हें खड़ी बोली में दिखी। उन्होंने 'हे कविते' और 'अलौकिकानन्द विधायिनी' जैसे विशेषणों की झड़ी लगा दी है और तीसरे बंद में आते–आते वे कविता के जीवित रहने में भी संदेह व्यक्त करने लगते हैं :–

''सजीव होती यदि जीव लोक में
कभी कहीं तो मिलती अवश्य ही।''

कारण स्पष्ट है कि द्विवेदी जी तक आते–आते व्रजभाषा कविता निर्जीव–सी हो गयी थी, उन्हें काव्य –क्षेत्र में कोई जीवन–रेखा नहीं दिख रही थी। इसलिए उन्होंने कविता के जीवित रहने में संदेह व्यक्त किया है। कविता के प्रति द्विवेदी जी का दृष्टिकोण काफी व्यापक था, वे तत्कालीन कविता में कालिदास और भवभूति की जीवंतता की खोज कर रहे थे, पर उन्हें उनके हाथ सिर्फ निराशा ही लगती थी। कोई बात नहीं, भले ही कालिदास और भवभूति चले गए, पर कविता उनके साथ नहीं गयी, वह इसी भूतल पर रही। तात्पर्य यह कि कालिदास और भवभूति के परवर्ती कवियों ने कविता को जीवित रखा और कविता ,कविता बनी रही, पर आश्चर्य कि आज वह आखिर चली कहाँ गयी। कहीं गयी नहीं, बस उसने हिंदी कवियों पर कृपा करना छोड़ दिया है। वे कविता से हिंदी–कवियों पर कृपा करने की याचना करते हुए कहते हैं :–

''सुनेत्रधारी यदि तू चहै नहीं
अनेत्रियों का न अभाव हिंदी में।
अतः उन्ही से चुन एक आध को
कृपाधिकारी अपना बना।''

कविता के जीवित होने में संदेह और फिर उस पर आस्था और विश्वास और सर्वोपरि हिंदी–कवियों पर कृपा करने की याचना में द्विवेदी जी के अंदर की छटपटाहट साफ–साफ व्यंजित हुई है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि द्विवेदी जी की इस भावना को कविता ने सुना और अनेत्रियों में से नहीं, अपितु नए–नए सनेत्रियों एवं सुनेत्रियों को अपना कृपाधिकारी बनाया। उन्हीं कृपाधिकारियों में सर्वश्रेष्ठ कृपाधिकारी श्री मैथिलीशरण गुप्त बने। यह तथ्य श्लाघनीय है कि द्विवेदी जी ने खड़ी बोली कविता की सिर्फ चिंता ही नहीं की, अपितु अनेक कवियों की जमात भी पैदा की जिन्होंने कविता को कोप भवन से निकलकर काव्य के विशाल क्षेत्र में विचरण कराया।

द्विवेदी जी की चिंता हिंदी–कविता की स्थिति को लेकर है। उनकी पैनी दृष्टि भारतीय साहित्य पर भी लगी हुई थी, वे मराठी–बंगला आदि भाषाओं में हो रहे नये साहित्य से सन्तुष्टि दिखाते हैं, खासकर बंगला साहित्य की गूँज उनके कानों से टकरा रही थी :–

''कभी–कभी तू अब भी दयाधने
दया करे है इस दीन देश पै
महान् महाराष्ट्र विशाल–बंग में
विलास तेरा कविते कल्ही हुआ।''

दूसरी ओर हिंदी कविता की इस दुरवस्था का दोषी वे स्वयं को मानते हैं, क्योंकि कविता तो समदर्शिनी है, वह जाति–पात, उंच–नीच से परे है। उसकी कृपा सब पर बराबर बरसती है। दोष हममें है कि हम उसे

अपना न सके :–

''मानव सारे सम है तुझे सदा
विचारतीं जाति न पाति तू कभी
इसीलिए दोष तुझे दे न सके
अनेक दोषाकार हाव हैं हमी।''

विडम्बना यह कि अनन्त वर्षों तक कविता यहाँ विराजमान रही। फिर भी, हम उसे पहचान न पाए, उसका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके। यह कितने आश्चर्य एवं दुःख की बात है। सिर्फ दुःख की बात नहीं, यह घोर कृतघ्नता भी है। ऐसी–वैसी नहीं, यह तो कृतघ्नता की अति है।

द्विवेदी जी को अपनी विरासत की दुर्दशा का क्षोभ है। कविता हमारी विरासत है, विरासत भी ऐसी–वैसी नहीं, आदरणीय। सिर्फ आदरणीय ही नहीं, परमादरणीय। सर्वोच्चता की अधिकारिणी। हमारे पूर्वजों ने इसे समादर दिया, ऊँचासन दिया, वैसी विरासत की ऐसी दुर्दशा। आह !

आज तो कवि अपने साथ मजाक करने लगे हैं, इसके रूप–रंग को ही बिगाड़ने लगे हैं, इसकी आत्मा घोटने लगे हैं, इसे सस्ती वस्तु बनाकर रख छोड़ा है :–

''तुकान्त में ही कवितान्त है....यही
प्रमाण कोई मतिमान मनाते
उन्हें नहीं काम कदापि और से
अहो, महामोह ! प्रचण्डता तव!''

वे शब्द, अलंका, छंदादि से क्रीड़ा करने वाले कवियों पर कटाक्ष करते हुए उनके काव्य ज्ञान पर प्रश्नचिह्न करते है :–

''कहीं–कहीं छंद कहीं सुचित्रता
कहीं अनुप्रास विशेष में तुझे
सुजान ढूँढ़े अनुमान से सदा
परन्तु तू काव्य कर ले वहाँ कहाँ!''

कविता के साथ इस तरह की क्रीड़ा करने वाले और क्रीड़ा को ही कविता मान लेने वाले कवियों पर व्यंग्य करते हुए द्विवेदी जी उन्हें 'सुजान' कहते हैं। अनुमान आधारित शोध भी कोई शोध हुआ! शब्द क्रीड़ा भी कोई कविता हुई! फिर ऐसी कविता में कला कहाँ से आएगी!

द्विवेदी जी कविता को सीधे जीवन से जुड़ा हुआ देखना चाहते हैं। वह कला क्या जो जीवन से दूर हो जाये, वह कला क्या जो जीवन को छोड़कर चले! वह कविता क्या जिसमे युगबोध न हो! भाव न हो! वह कविता भी कोई कविता हुई जिसमें चमक–अनुप्रसादि का महाघटाटोप हो। वे कविता में इस तरह के प्रयोग को प्राणविहीन देह मात्र मानते हैं, इसीलिए अपनी कविता से प्रश्न करते हैं :–

''बताइए, जीवविहीन देह से
सजीव की सुंदरी! क्या समानता?''

द्विवेदी जी कविता की अपराजेय शक्ति के क्षरण से काफी चिंतित हैं। कविता की शक्ति ऐसी होती है,

जो विधि के लेख को मिटा दे, शाप को वरदान में बदल दे। कभी कविता बदल दिया करती थी, पर आज कविता की वह शक्ति कहाँ चली गयी? यही तो कठिन प्रश्न है।

''अजेय इच्छा उस ईश की, उसे
मिटा देवै, यह शक्ति है किसे!''

प्रकारांतर से द्विवेदी जी हिंदी में शक्ति–काव्य की इच्छा व्यक्त कर रहे हैं। देश को झकझोरने और जगाने के लिए आज शक्ति–काव्य की आवश्यकता है। यहाँ द्विवेदी जी बहुत कुछ प्लेटो की तरह लगते हैं। प्लेटो ऐसे काव्य के घोर विरोधी थे जिसमें शौर्य–शक्ति न हो, इसीलिए प्लेटो अपने समय के कोमल भाव व्यंजक कवियों से नाराज रहा करते थे, क्योंकि कोमल कविताएँ राष्ट्र को कमजोर करती हैं। द्विवेदी जी की चिंता भी बहुत कुछ इसी तरह की है। ये भी अपने समय की काव्य–चेतना से क्षुब्ध हैं और उसकी शक्तिहीनता पर चिंता व्यक्त करते हैं। द्विवेदी जी हिंदी में शक्तिकाव्य की स्थापना चाहते हैं। हिंदी–कविता में वे वह शक्ति भरना चाहते हैं जो जनमानस को झकझोर कर जगा दे। इसीलिए वे काव्यक्षेत्र व्रजभाषा का वस्त्रधारण करने वाली एकवस्त्रा कविता को वस्त्र परिवर्तन की आवश्यकता है। सदा एक ही वस्त्र को धारण करने वाली सौंदर्य की गतिशीलता एवं नित्य नूतनाता को भला कैसे बरकरार रख पाएगी। यह सम्भव ही नहीं। कहाँ नित्य नवीन वस्त्राभूषण कविता कामिनी का सौंदर्य और वहाँ एक वस्त्रधारिणी कविता का जरापुरित सौंदर्य! यह भी कोई बात हुई। 'नित्य नूतनाता का आनंद' लेने वाली कविता को भला विराग नहीं उत्पन्न होगा क्या! राग की जगह विराग! यह कैसा अनर्थ! अनर्थ? महाअनर्थ। और इस अनर्थ की जड़ वही व्रजभाषा रूपी वस्त्र है। इस अनर्थ से निजात पाने के लिए 'पुरातनता के निर्मोक' को हटाना ही पड़ेगा। व्रजभाषा के वस्त्र को हटाकर खड़ी बोली वस्त्र को अपनाना ही होगा, तभी विराग की जगह राग उत्पन्न होगा। इसीलिए द्विवेदी जी कविता से प्रश्न करते हैं :–

''अभी मिलेगा व्रज मण्डलान्त का
सु–मुक्त–भाषामय वस्त्र एक ही,
विराग तुझको होगा अवश्य ही।''

कविता के अंत में वे कविता का आवाहन करने लगते हैं। यहाँ कवि कविता का आराधक हो गया–सा लगता है। वह अपनी आराध्या कविता से याचना करता है :–

''कुछ समय गए पै याचना जो दिखावें
सदय हृदय होके तू उसी के यहाँ आ
न उचित अबला का नित्य स्वच्छंदवास
बस अधिक कहैं क्या? है महामोददात्रि!''

कविता की इन पंक्तियों में द्विवेदी जी की नारी–चेतना उभरकर सामने आयी है। नारी अगर अयोग्य पुरुष के पास वास करे तो उसमें जड़ता आ जाती है, उसका सौंदर्य आभाहीन जो जाता है, प्रतिभा मुरझा जाती है और उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व श्रीहीन हो जाता है और ठीक इसके विपरीत अगर वह परम स्वच्छंदवासिनी हो गयी तो यह और भी अनुचित होगा। वह लक्ष्य–विहीन एवं मार्गविहीन यात्री मात्र बनकर रह जाएगी। उसकी स्वच्छंदता उच्छृंखलता में परिवर्तित हो जाएगी, फिर वह महामोहदात्रि नहीं रह पाएगी। महामोददात्रि के लिए उसे सुयोग्य के पास वास तो करना ही होगा। जो सुयोग्य होगा, वह उसके मूल्य को समझेगा, उसे मान देगा, सम्मान देगा

और क्रीड़ा वस्तु नहीं बनने देगा।

द्विवेदी जी द्वारा किए गए 'अबला' शब्द–प्रयोग पर आजकल के नारी विमर्शकार सम्भवतः नाक–भौ सिकोड़ने लगे, पर थोड़ी–सी गहराई में उतरने पर द्विवेदी जी की भाव–सम्पदा प्रकट हो नारी के प्रति उनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर देती है। वे कविता रूपी अबला को सबला के रूप में देखते हैं, तभी तो योग्य पर दया करने की बात करते हैं। दया कौन कर सकता है और दया किस पर की जाती है। स्पष्ट है कि दया सामथ्र्यशाली द्वारा समर्थहीन पर की जाती है। अभिप्राय यह है कि अयोग्य के पास वास करने के कारण वह अबला है, ऐसी सबला को योग्य के घर निवास करना चाहिए।

पूरी कविता में कविता के पुनरुत्थान की चिंता एवं व्यथा परिव्याप्त है। हिंदी–काव्य क्षेत्र में नवीनता लाने के प्रति एक छटपटाहट है, खड़ी बोली हिंदी को काव्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न स्पष्ट दिखता है। सबसे आश्चर्यजनक बात हमें यह दिखती कि जाने–अनजाने ही द्विवेदी जी ने कविता का मानवीकरण कर दिया है जो बाद में चल कर छायावादी काव्य की एक विशेषता बना। इतना ही नहीं, इसमें विशेषण–विपर्यय के भी विपुल प्रयोग हुए हैं। इसे भी छायावादी कविताओं की विशेषता माना जाता है। चार–चार पंक्तियों के कुल चौबीस बन्दों में यह कविता पूरी हुई है जो भाव एवं शिल्प की दृष्टि से एक नवीन प्रयोग है। यह प्रयोग सफल रहा। द्विवेदी जी के आह्वान के बाद खड़ी बोली हिंदी कविता की जो अजस्रधारा प्रवाहित हुई वह आज तक निर्बाध प्रवहमान है।

diwakarara3@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
June 2023 Page No. : 267-273

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# प्रो. इच्छाराम द्विवेदी जी की संस्कृत–कृतियों में राजनीतिक–विमर्श

**प्रो. अलका बागला**
शोध पर्यवेक्षक, कोटा वि.वि., कोटा
आचार्य, (संस्कृत विभाग)
राज. महा., झालावाड़।

**श्रीमती विनीता (गुप्ता) राय**
शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
सह–आचार्य, (संस्कृत विभाग)
राज. कला महा., कोटा।

राजनीतौ किमन्विष्यते सद्गुणानां पवित्रा कथा।
नर्तकीनां समूहे यथा दुर्वहा हा सतीनां व्यथा।।[1]

(अर्थात् राजनीति में सद्गुणों का अन्वेषण करना नर्तकियों के समूह में सती स्त्री को ढूंढने जैसा है।) राजनीति दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें राज का तात्पर्य शासन एवं नीति से तात्पर्य उचित समय और उचित स्थान पर उचित कार्य करने की कला से है अर्थात् नीति विशेष के द्वारा शासन करना या विशेष उद्देश्य को प्राप्त करना राजनीति कहलाती है। राजनीति का पर्यायवाची पॉलिटिक्स यूनानी भाषा के पॉलिस शब्द से बना है जिसका अर्थ नगर एवं राज्य है। प्राचीन यूनान में प्रत्येक नगर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में संगठित होता था और पोलिटिक्स शब्द से उन नगर राज्यों से सम्बन्धित विद्या का बोध होता था। किन्तु कालान्तर में राजनीति का स्वरूप परिवर्तन होकर राजनीति शब्द भ्रष्टाचार का पर्याय बन गया है।

आधुनिक संस्कृत–जगत् में प्रो. इच्छाराम द्विवेदी जी का मूर्धन्य स्थान है। द्विवेदी जी पुराणों के मर्मज्ञ विद्वान् थे एवं लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विश्वविद्यालय के पुराणेतिहास विभाग में अगस्त 2000 ईसवी से मार्च 2019 ईस्वी (आजीवन) तक विभागाध्यक्ष के पद पर विराजमान रहे। इन्होंने सुरभारती संस्कृत की सेवा करते हुए संस्कृत साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में रचनाएँ की हैं जिनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, दूतकाव्य, गीतिकाव्य, नाटक, लघुकथा, हास्य व्यंग्य कथा, स्तोत्र काव्य, मुक्तक व अन्योक्ति काव्य प्रमुख हैं। उनकी कृतियों में पौराणिक एवं आधुनिक संस्कृत साहित्य का मणिकाञ्चन संयोग पाया जाता है तथा वे प्राचीन एवं आधुनिक संस्कृत वाङ्मय के मध्य सेतु बन्धन के पुनीत धर्म का निर्वाह करती हैं।

वर्तमान भारत एवं भारतीयों की आधुनिक जीवन शैली का यथार्थ चित्रण कवि का मूलकथ्य है जिसका सफल निर्वहन करने में वे पूर्ण सिद्ध हुए हैं। उन्होंने आधुनिक भारत में व्याप्त अनेकानेक सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विषमताओं का निर्भीक भाव से उद्घाटन किया है जिसमें उनका व्यंग्यात्मक स्वर अधिक मुखर हुआ है। प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य महाकवि द्विवेदी जी की संस्कृत कृतियों में वर्णित आधुनिक

भारत की राजनैतिक समस्याओं एवं शासकीय अव्यवस्थाओं का उल्लेख करते हुए कवि के राजनैतिक विमर्श को प्रतिपादित करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शोध लेखिका ने उनकी गीत मन्दाकिनी, अन्योक्ति रत्नावली, एकादशी, हा.....हा! एवं दूत प्रतिवचनम् कृतियों को मुख्य आधार बनाया है।

कवि भारतीय राजनेताओं के अनुचित व्यवहार से अत्यधिक पीड़ित हैं। अतः उन्होंने अपनी अधिकांश कृतियों में राजनेताओं के आचरण का यथार्थ चित्रण करते हुए तीक्ष्ण व्यंग्य प्रस्तुत किया है यहाँ तक कि कवि ने संसद्, विधानसभा, नगरनिगम, नगरपालिका इत्यादि राजकीय निकायों की भ्रष्ट एवं दूषित कार्य पद्धतियों की ओर सहृदय पाठक का ध्यान आकर्षित किया है तथा शीर्ष पर बैठे नेताओं से लेकर छोटे से छोटे से राजकीय कर्मचारियों के भ्रष्ट आचरण का उद्घाटन किया है।

गीत मन्दाकिनी में संकलित पश्य बन्धो! क्षणम्, राजनीतिः, विडम्बनम्, नेतृशत नामावलिः नामक गीत द्विवेदी के राजनीतिक विमर्श को समर्पित हैं। पश्य बन्धो! क्षणम् गीत में कवि सहृदय पाठक से राजनेताओं के दुष्चरित्रों को क्षण भर के लिए ही देखने का निवेदन करते हैं तथा ऐसी स्थिति में स्वयं निर्णय लेने के लिए प्रेरित करते हैं। इस गीत में चुनावों के समय नेताओं के तथाकथित दिखावटी व्यवहार पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हुए आम नागरिक की मार्मिक पीड़ा को अभिव्यक्त किया है तथा भारतीय लोकतन्त्र में चुनाव प्रणाली एवं मतदान व्यवस्था के परिदृश्यों का यथार्थ बिम्ब प्रस्तुत किया है–

शुभ्रवस्त्रान्विताः कृष्णलीलारताः, वामनाचारदक्षाः कृतघ्ना अमी।
याचमाना मतं द्वारदेशस्थिता, निस्त्रपा आगताः पश्य बन्धो क्षणम्।।[2]

कवि का कहना है कि जहाँ निर्वाचनों में हिंसा तथा अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग होता है वहाँ निर्वाचन कैसे संभव होगा? वह तो एक निम्न श्रेणी का युद्ध है। प्रशासन की कुर्सी पर निंदनीय कुनीति का बोलबाला है। कवि ने पाठकों से लोकसेवा के नाम पर लोकविश्वास को तोड़ने और संसद का अपमान करने वाले नेताओं के चरित्र पर क्षणभर के लिए दृष्टिपात करने को कहा है तथा गीत के अंत में कवि ने सहृदय पाठकों को इस समस्या के समाधान हेतु प्रोत्साहित करते हुए कहा है,''हे बान्धवों! राज्य में निर्वाचन के समय हमें मतदान का प्रयोग बुद्धि एवं विवेक से करना चाहिए।''

तद्धि नूनं विचिन्त्यैव देयं मतम् राज्यनिर्वाचने पश्य बन्धो क्षणम्।[3]

आज भारत देश में महंगाई बढ़ती जा रही है, तेलकौश (पेट्रोल पम्प) में कृषकों का क्रन्दन सुनायी दे रहा है।[4] इस गीत में ही कवि ने भारतीय राजनेताओं द्वारा किये गये विभिन्न घोटालों का बेबाकी से वर्णन किया है–

कोऽपि बोफोर्स शोभाधरो राजते, मण्डलायोगकीर्त्या युतः कोऽप्यसौ।
बर्बरं पूजयन्कोऽप्यसौ बर्बरः, रामभद्रायते पश्य बन्धो क्षणम्।।[4]

'राजनीतिः' नामक गीत में कवि ने कहा है कि आज शासन व्यवस्था में धर्मनीति का त्याग हो रहा है, नेताओं के द्वारा स्वार्थ नीति की रक्षा की जा रही है। सत्य की रक्षा करने को महापाप, स्वामिभक्ति को परम मूर्खता समझा जाता है और चाटुकारिता ही सिद्धिदायक होती है। रक्षकगण चौर कार्यो में लगे हुए हैं, कौरवों के धर्मक्षेत्र में पाप मन्दाकिनी बढ़ रही है, सर्वत्र ताण्डव दिखाई देता है, लास्यलीला प्रलय को प्राप्त हो गयी है। इस प्रकार कलुषित राजनीति के कारण सत्य का पथ शून्यता को प्राप्त हो गया है और प्रजाजन कुत्सित पथ का अनुसरण कर रहे हैं –

शासनासन्दिकाराधने धर्मनीतिः परित्यज्यते

सन्धिसम्पादने नेतृभिः स्वार्थनीतिः सदा रक्ष्यते।[5]

सत्पथः शून्यतामुपगतः उत्पथः संकुलः सर्वथा..... ।[6]

'विडम्बनम्' गीत में कहा है कि विविध प्रकार के विचार–विमर्श में विदग्ध लोग कार्य सम्पादन के समय किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं और अतिगूढ़ राजकीय योजनाओं की केवल चर्चा ही सुनायी देती है और क्रियान्विति नहीं हो पाती हैं –

विविधविचारविमर्शविदग्धाः कार्यक्षणे कर्तव्यविमूढाः।

रथ्या रथ्या भवति चर्चिता, राजकीययोजनातिगूढा।।[7]

इसी गीत में कवि ने कहा है कि श्रेष्ठिजनों के भवनों में कालेधन से अपने कुल की कीर्ति को धवल किया जा रहा है तथा नेताओं का देहपोषण हो रहा है –

कृष्णधनैः कुलकीर्तिधवलिमा, प्रसरति भुवने श्रेष्ठिजनानाम्।

जनगणकृते प्रदत्तं चान्नम्, देहं पुष्यति नेतृजनानाम्।।[8]

राज्य के द्वारा पेयजल न देकर अपवित्र मदिरा का विक्रय किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में लज्जा स्वयं लज्जित हो रही है तथा निर्लज्जता प्रशस्त हो रही है।[9]

'अभिनवशाकुन्तलम्' गीत में आधुनिक राजनीति पर कटाक्ष करते हुए कहा है कि अधम राज्य के द्वारा पाला गया भ्रष्टाचार रूपी हाथी निरंकुश हो रहा है और नीति रूपी लता को अपने पैरों से नष्ट कर रहा है। हिंसा रूपी पाश से राजनीति मूर्च्छित होकर निरन्तर पीड़ित हो रही है और अधम शासकों से भयभीत होकर प्रजाजन अभय हो रहा है।[10]

'संस्कृति–द्वादशी' गीत में प्रणव संत ने बताया है कि वर्तमान में शासकीय व्यवस्था सो रही है अर्थात् भारत की अस्मिता खतरे में है। कवि ने यहाँ पद्य के पूर्वार्ध में प्राचीन संस्कृति का एवं उत्तरार्ध में अवपतन से युक्त संस्कृति का वर्णन किया है–

स्वपिति सुखसमेता शासकीया व्यवस्था इह खलु निजभालं संस्कृतिर्मे धुनोति।[11]

ऐसी स्थिति में 'मा वह' गीत में कवि ने सन्मार्ग प्रदर्शन भी किया है कि राजनीति धर्म से अनुमोदित होगी तभी समस्त समस्याओं का समाधान संभव हो पाएगा–

राजनीतिधर्मानुमोदिता यास्यति यदा प्रसारम् तदा गमिष्यसि पारम्।

ऋषिकुलपूतमनीशाजन्ये, पथि प्रविचलतु समग्रा धरणी।

'राजनीतिसर्पिणीफणानामवलोक्य विस्तारम् कथं गमिष्यसि पारम्'?[12]

प्रणव संत द्वारा 'अन्योक्ति रत्नावली' में संसद्, संविधान, नेतारः, रासभ, हंसा व आरक्षणम् नामक अन्योक्तियों में राजनीतिक विषयों पर तीक्ष्ण व्यंग्य कसा है। 'संसद्' में अत्यधिक मार्मिक चित्रण करते हुए कवि कहते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जनता के कल्याण हेतु जिस वत्स को पैदा किया था उसका नाम संविधान है, ये भ्रष्टाचारी दल बार–बार वत्स के साथ दुराचरण कर रहे हैं, यह देखकर उस वत्स के दमन से दुःखी माँ (संसद्) दिन–रात अपनी ही गोद में वत्स (संविधान) का मरण होते देखकर रो रही है –

स्वातन्त्र्ये ....., ..... खलु संविधानमशिवैः सत्ताशृगालैर्मुहुः।

दृष्ट्वा.....दमनाच्चेखिद्यमानाऽनिशं, स्वाङ्के स्वस्य सुतस्य वीक्ष्य मरणं संसद् भृशंरोदिति।।[13]

'संविधान' नामक अन्योक्ति रत्नावली में बताया है कि इस देश में काँच व हीरे में कोई भेद नहीं है और न ही यहाँ राजा व गधे में कोई अंतर बचा है। ऐसे संविधान को महाकवि ने व्यंग्यपूर्ण वंदन किया है–

काचे मणावपि न भेद इहास्ति देशे, सर्वे खरा नृपतयो भवतः कृपातः।
नाम्ना तवैव जनतन्त्रमिदं, हे संविधान! भवते मम वन्दनानि।।[14]

'नेतारः' अन्योक्ति में उन नेताओं पर व्यंग्य किया है जो दण्ड का आघात करने में प्रचण्ड हैं, मिथ्याविवाद के लिए जो वितण्डा खड़ा करते हैं, जिनकी बुद्धि स्त्रियों के आलिंगन में रत हैं, सारे पापों से युक्त जिनकी लीला है, ऐसे स्वार्थी व पौरुषहीन नेतागण जनता को सुख देने की इच्छा कैसे कर सकते हैं–

दण्डाघाते प्रचण्डा वितथविवदने संश्रिता यैर्वितण्डा,..... किमपि सुखं दातुमिच्छन्ति बण्डाः।[15]

'रासभः' अन्योक्ति में कवि ने ऐसे नेताओं पर तंज किया है जो प्रजा के समक्ष तो श्वेत वस्त्र धारण करके भक्ति पूर्वक मधुर स्वरों में रेंकते हैं लेकिन वह मन से तो काले ही होते हैं। साथ ही वे अपने दोनों चरणों से दुलत्ती मारने में अन्यन्त चतुर होते हैं। हे मित्रगर्दभ! आप में नेता बनने के समस्त गुण विद्यमान हैं–

आदौ तारविरेभनं प्रतिदिनं भक्त्या .....नूनं नेतृपदस्य रासभ! सखे! सर्वे गुणाः सन्ति ते।[16]

'हंसाः' अन्योक्ति में प्रणव संत ने हंसों के माध्यम से व्यंग्य किया है कि आज सज्जनों की अवनति हो रही है, दुर्जनों की उन्नति हो रही है तथा अयोग्यों की पूजा हो रही है, योग्यों की निन्दा हो रही हैं–

भवेतत्वं खलु दूषितं ..... घूत्कृतैः।
काका मानसरोवरे.....विषमे युगे वद सखे! हंसाः क्व गच्छन्त्विमे।।[17]

'आरक्षणम्' अन्योक्ति में द्विवेदी जी ने कहा है कि भारत में आरक्षण व्यवस्था रक्षण नहीं कर रही बल्कि भक्षण कर रही है क्योंकि यहाँ सद्वंश में जन्म लेना पाप है अर्थात् आरक्षण वंशानुक्रम मिल रहा है इसलिए मूर्खो के समूह में अपने विषय की विद्वत्ता ही सबसे बड़ी विपत्ति है–

सद्वंशे जनिरेव पापमतुलं.....प्रतिदिनं देवप्रियाणां गणे।
दुर्भिक्षं मरणं भयं नु.....केवलमिदं हाऽऽरक्षणं भक्षणम्।।[18]

द्विवेदी जी द्वारा प्रणीत सहमतिः, जनसेवाव्रतम्, अशोकवाटिका, उद्घाटनम्, पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते, इति वार्ताः, पूर्वजोद्धारणम्, शोकावकाशः, शतं वद मा लिख, शुचीनां श्रीमतां गेहे, यत् स्वल्पमपि तद् बहु, तेन त्यक्तेन भुंजीथाः, प्रतिशाखमुलूका राजन्ते, जीवन्मृतः, अनुसन्धानम्, उद्धारः, आत्मानं सततं रक्षेद्, उद्घाटनमङ्गलम् इत्यादि लघु हास्य व्यंग्य कथाएँ राजनीति विमर्श से सम्बन्धित है।

'सहमतिः' नामक हास्य व्यंग्य लघुकथा में विधानसभा में विधेयक पारित होने के पूर्व परिदृश्य पर कटाक्ष किया है कि किस प्रकार जनकल्याण से सम्बन्धित विधेयकों के विशय पर पक्ष एवं विपक्ष के विधायकों की परस्पर सहमति नहीं बन पाती जहां सत्तापक्ष अपनी कार्ययोजना के प्रस्तावों के औचित्य के लिए प्रयत्न करता है वहीं विपक्षी दल इसका विरोध करता है।

शिक्षा स्वास्थ्य समाज कल्याण राजस्वादि समेषां मंत्रालयानां विषये येऽपि प्रस्तावाः समागतास्तेषामौचित्यं सत्तापक्षीयैरनौचित्यं च विपक्षीयै विधायकैः साधुसाधितम्।[19]

किंतु मुख्यमंत्री महोदय के विधायक सुविधा विषयक विधेयक की उद्घोषणा करने पर पक्ष विपक्ष के

नेताओं पर पूर्णसहमति बन जाती है–

विपक्षिणामुग्रमाक्रमणं दृष्ट्वा शक्र इव अमोघवज्र कल्पः प्रस्ताव चैको मुख्यमंत्रिणा प्रस्तुतम् –

''मान्याः! सदस्याः! अधुना विधायक–सुविधा–विस्तार–विधेयको मया प्रस्तूयते।''

अयमेक एव प्रस्तावस्तस्मिन् दिवसे निर्विवादतया सहमतिमवाप।[19]

'जनसेवाव्रतम्' में कवि ने स्थानीय निकायों में जन प्रतिनिधियों की कार्य प्रणाली का भण्डापोड किया है कि जब एक निर्धन व्यक्ति क्षेत्रीय विधायक के पास अपने पुराने भवन को तोड़ने के आदेश को निरस्त करने हेतु स्थानीय विधायक से प्रार्थना करता है। विधायक महोदय उसके प्रार्थना पत्र 'निर्धनस्यास्य गृहं न त्रोटनीयम्' की टिप्पणी करते हैं। निर्धन व्यक्ति प्रसन्नता पूर्वक चला जाता है। तभी दूसरे द्वार से धनी व्यक्ति प्रविष्ट होकर कहता है कि निर्धन व्यक्ति के जर्जर भवन के गिरने से उसकी वाटिका नष्ट हो जाएगी। अतः जनकल्याण के लिए जर्जर भवन को तोड़ने के प्रार्थना पत्र को अपने हस्ताक्षर से अग्रेषित कीजिए और धनी व्यक्ति की प्रार्थना पत्र पर टिप्पणी लिखते हैं–''शीघ्रमेव त्रोटनीयं तद्भवनं महाबलीतिनाम्ना भवनभंजक यंत्रेण जनकल्याणाय।''[20]

इस प्रकार एक ही दिन में दो प्रकार की विरोधात्मक टिप्पणी को देखकर नगरपालिका अधिकारी किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर नेताजी से स्पष्टीकरण हेतु कहता है। प्रत्युत्तर में नेता जी कहते है कि मैं तो जनसेवक हुँ, जो भी आता है, उसकी समस्या का समाधान करना मेरा धर्म है, तुम तो वेतन प्राप्त करते हो, तुम्हारी इच्छा हो वो करो–

''अहन्तु जनसेवकोऽस्मि.....यथेच्छसि तथा कुरु।''

'अशोक वाटिका' लघु व्यंग्य कथा में बताया है कि राजनेता अपने बड़े–बड़े वादों वाले जनकल्याण के नारे लगाकर भाषणों के माध्यम से भोली भाली जनता को मूर्ख बनाकर चुनाव जीत जाते हैं और मंत्री बन जाते हैं और पंच सितारा होटलों की सुविधाओं का उपभोग करते हैं– ''अयं कर्षकाणां सर्वकारः। अहं कृषकाणां नेताः। कृषि प्रधानो भारतदेशः। कृषकैरेव जीवति वसुन्धरेयमिति विविधजल्पनैः कोऽपि नेता निर्वाचने विजयं लब्ध्वा ततश्च पर्यटन मंत्री संजातः। विमानेशु यात्रा, पंचतारक पण्यगृहेशु निवासः सार्वदेशिक भोजनालयेषु भोज्यव्यवस्था, वातानुकूलित सौधेषु शयनंच तस्य प्रारब्धम्।"[21]

'उद्घाटनम्' हास्य लघु व्यंग्य कथा में विवाहोत्सव पर नवपरिणीत युगल को आशीर्वाद देने के प्रसंग में मंत्री के मूर्खता पूर्ण व्यवहार पर व्यंग्य किया है कि नव दम्पती को आशीर्वाद देने के नाम पर मंत्री जी नव विवाहित युगल के गठजोड़ को कैंची से काटकर विवाह के उद्घाटन करने की बात कहते हैं–कोऽपि ज्येष्ठपुरुषः विवाहमण्डपे समागतं नेतृपदभूषणं कंचित् मंत्रिप्रवरं प्राथर्यामास नवपरिणीताय युगलायाशीर्वादं प्रदातुम्। मंत्री अहमस्मि। अर्शीर्वादं कथं दीयत इति तु न जाने किन्तु यदि भवतामिच्छास्यात्तदा उद्घाटन्तु अधुनैव कर्तुशक्नोमि।[22]
'पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते' लघु हास्य व्यंग्य कथा में अर्थापत्ति व शब्द शक्ति के माध्यम से राजनेताओं पर व्यंग्य किया है–कश्चन् राजनेता इति यतो ह्यसौ दिवा भोगवकाशं न लस्यते कार्याधिक्यात् लोकलज्जावशांच तथापि मंत्रिपदग्रहणानन्तरं पीनत्वमस्य वर्द्धतेऽनुदिनं यथा वर्षर्तौ दुर्दराणाम्।[23]

'इति वार्ताः' हास्य व्यंग्य लघु कथा में प्रतिदिन छपने वाले समाचारों के उदाहरण देकर वर्तमान कालिक राजनीतिक समाचारों पर तंज कसा है –विश्वधनागाराधिकारिभिः देशस्य दैन्यं विलोक्य पुनरपि ऋणानुदानं स्वीकृतं येन घृतभोजनं समेषां कृते सुकरं भवितेति वित्तमंत्री सदनेऽघोषयत। केन्द्रीयः स्वास्थ्य मंत्री उदरशूलात् पीडितः सन्

चिकित्सार्थं हयूस्टन नगरं प्रयातः। सर्वे धिकारिणस्तस्य स्वास्थ्यलाभार्थं परमेश्वरं प्रार्थयन्ते।[24]

'पूर्वजोद्धारणम्' में सार्वजनिक निर्माण विभाग की सूचना पत्रावली कार्य पद्धति पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हुए बताया है कि ग्राम में तीस वर्ष पूर्व पेयजल की व्यवस्था के लिए सरोवर निर्माण हेतु सरकार द्वारा दो लाख का बजट स्वीकार किया गया था किंतु सरोवर का निर्माण नहीं करवाया गया और कनिष्ठ अभियंता द्वारा जांच करने पर पूर्व मुख्य अभियंता ने कहा कि जैसी समस्या वैसा समाधान कहते हुए, ''सरोवर में अनेक ग्रामवासी के डूबकर मरने से सरोवर को पुनः मिट्टी भरकर पाटने के लिए अनुदान स्वीकृति हेतु नेक सलाह दी'' –सरोवरस्य नास्ति साम्प्रतमावश्यकता। मृत्तिका सम्भरणायानुदानं स्वीकरणीयमिति। आम्! श्रीमन्! इत्युक्त्वा सोऽभियन्ता तथैव प्रस्तावं लिलेख। लक्षद्वयात्मकनुदानमवाप्य कर्गलेश्वेव सरोवरस्य तस्य खातपूरणं च विधाय कृतकृत्यः सन्नुवाच अद्य सम्पन्नं पूर्वजोद्धारणम्।[25]

'उद्धारः' नामक लघु हास्य व्यंग्य कथा राजनेता के अनुजभ्राता के द्वारा दलित महिला के साथ किए गये दुराचरण पर आधारित है। राजनेता के परिवाजन इस प्रकार का दुष्ट आचरण करके भी उसे सही ठहराने का प्रयास करते हैं कि हमने तो भाषण में दलितों के उद्धार के बारे में सुना था कि जब तक इनके साथ परस्पर भोजन, यौनादि सम्बन्ध स्थापित नहीं होंगे, तब तक इनका उद्धार नहीं हो सकता अर्थात् इस कथा के माध्यम से राजनेताओं के परिवारों द्वारा दलितों के प्रति किए गये व्यवहार का वर्णन किया है–'' आम् सत्यं ब्रवबीमि। तद् दिने प्रातरेव भवद्भिः स्वभाषणे दलितोद्धारस्य चर्चा पौनः पुन्येन कृतासीत्। भवानवादीत्–यत् यावद् पर्यन्तं सवर्णानामवर्णानांच परस्परं भोजन यौनादिसम्बन्धानां स्थापनं न भविष्यति न तावत्पर्यन्तं दलितोद्धारस्य वार्ता सफला भवित्री।''[26]

''उद्घाटन मङ्गलम्'' लघुकथा में सत्तापक्ष व विपक्ष के मध्य हुए लज्जास्पद विवाद पर करारा कटाक्ष करते हुए विधानसभा में नवीन सरकार के उद्घाटन सत्र की शुरूआत में सत्ता पक्ष व विपक्ष के मध्य उत्पन्न लज्जास्पद विवाद का वर्णन करते हुए क्षोभ अभिव्यक्त किया है जिसका प्रभावशाली बिम्ब अधोलिखित है –''सर्वेऽपि विधायकाः सत्तापक्षीया विपक्षीयाश्च पारस्परिकेण भातृभावेनोन्मत्तः सन्तः दूरभाषणयंत्रैः विद्युतरज्जुभिः चरण पादुकाभिः, दन्तैः, मुष्टिकावपातनैः पादाघातैः, गालिप्रवाहैः, परस्परमालिंगने प्रसक्ताः। कस्यापि शिरस्तः कस्यापि चक्षुतः कस्यापि चरणात् कस्यापि हस्तात् वा रूधिर कणाः निश्चक्रुः। श्वेतवस्त्रेषु रक्तकणानां सा शोभा कामप्यपूर्वा दर्शनीयतामपुष्णात्।''[27]

निरन्तर कलहग्रस्त सांसदों के आचरण पर क्षोभ व्यक्त करते हुए दूतप्रतिवचनम् में द्विवेदी जी ने संसद् का मार्मिक वर्णन किया है कि यहाँ नेताओं में लगभग सभी प्रसंगों पर परस्पर विवाद होते हैं और निर्णय न हो पाने के कारण वह उलझे रहते हैं और प्रगति संभव नहीं हो पाती है अतः मेघ उस कलहपूर्ण स्थान से नेताओं के भारी हस्तक्षेपों से बचता हुआ शीघ्रता से दूसरी दिशा में चला जाता है–

इन्द्रप्रस्थे परमसुखदे संसदो दीर्घकक्षे नेतारो मापलकनयनैः प्रेक्षमाणाः प्रसेदुः।
स्थानात्तस्मात् कलहविपुलादुत्पपाताहमाशु नेतृणां.....परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्।।[28]

कवि ने व्यंग्य करते हुए इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में शोभाशाली समस्त सुख सुविधाओं से युक्त विशाल अशोक होटल को स्वर्ग की संसद् के सांसदों के पाप कर्मो के समाप्त होने पर भोश रहे पुण्यों से पृथ्वी पर लाया हुआ स्वर्ग का एक कान्तियुक्त भाग बताया है–

इन्द्रप्रस्थे परमसुखदं होटलं चाप्यशोकम्..... श्रीविशालं विशालम्।

स्वल्पीभूते कुचरितफले स्वर्गिणां सांसदानां, शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्।।[29]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि एक कुशल कवि और लेखक मानव समाज में व्याप्त विषमताओं व विसंगतियों के प्रति संवेदनशील एवं विशेष सजग रहता है तथा अपनी पवित्र लेखनी के माध्यम से अपने मनोभावों को पाठकों के मर्म तक पहुँचाने का अथक प्रयास करता है। प्रणव संत प्रो. इच्छाराम द्विवेदी जी का मूल उद्देश्य भी वर्तमान भारत की जर्जर राजनैतिक दशा का संदेश देकर सहृदय पाठकों कों राजनैतिक दुर्व्यवस्थाओं को सुधारने के लिए संवेदनशील बनाना है। कवि प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करने के लिए इतने कटिबद्ध प्रतीत होते हैं। उनकी अधिकांश कृतियों के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजनीति का दूसरा नाम भ्रष्टाचार ही रखा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

**सन्दर्भ पुस्तकें :-**


1. राजनीतिः, गीतमन्दाकिनी, प्र.र., पृ. सं. 276
2,3,4. पश्य बन्धो! क्षणम्', प्र.र., पृ. सं. 271
5,6. राजनीतिः, प्र.र., पृ. सं. 276
7,8,9. विडम्बनम्, प्र. र., पृ. सं. 277
10. अभिनव शाकुन्तलम्, प्र.र., पृ.सं. 287
11. संस्कृति–द्वादशी, प्र.र., पृ.सं. 264
12. मा वह, प्र.र., पृ. सं. 273
13. अन्योक्ति रत्नावली 'संसद्' पृ. सं. 476
14. अन्योक्ति रत्नावली, 'संविधान' पृ. सं. 475
15. अन्योक्ति रत्नावली, 'नेतारः' पृ. सं. 477
16. अन्योक्ति रत्नावली, 'रासभः' पृ. सं. 474
17. अन्योक्ति रत्नावली, 'हंसाः' पृ. सं. 475
18. अन्योक्ति रत्नावली, 'आरक्षणम्' पृ. सं. 478
19. सहमतिः, हा.....हा!, पृ. सं. 11
20. जनसेवाव्रतम्, हा...हा!, पृ. सं. 18
21. अशोक वाटिका, हा.....हा!, पृ. सं. 21
22. उद्घाटनम्, हा...हा!, पृ. सं. 22
23. पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते, हा...हा!, पृ. सं. 23
24. इति वार्ताः, हा...हा!, पृ. सं. 26
25. पूर्वजोद्धारणम्, हा...हा!, पृ. सं. 32
26. उद्धारः, हा...हा!, पृ. सं. 58
27. 'उद्घाटन मङ्गलम्', हा....हा!, पृ. सं. 66
28. दूत प्रतिवचनम्, प्र.र., पृ. सं. 27
29. दूत प्रतिवचनम्, प्र.र., पृ. सं. 26

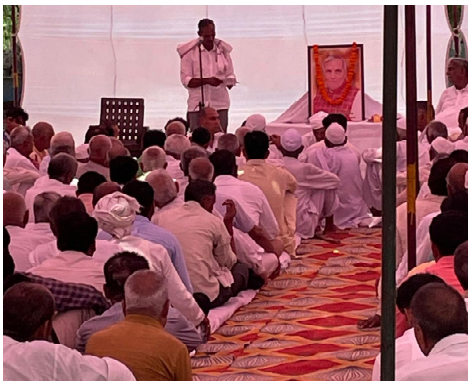

# भावभीनी श्रद्धांजलि

शनिवार (10 जून 2023) की रात को पता चला कि सबसे बड़े भाई साहब मास्टर कटारसिंह जी (पति के भाई) बैकुंठ धाम सिधार गए हैं। दुःख का पारावार ही न रहा। मास्टर जी हमारे लिए पिता तुल्य ही नहीं अपितु 'मां' तुल्य थे। बचपन में ही मां के गोलोकवासी होने के बाद अपने सबसे छोटे भाई (पति) को एक 'मां' की तरह दुलार करते थे। जब हमें कोई दुःख होता है तो हमारे मुँह से 'मां' निकलता है, लेकिन चौहान साहब (पति) के मुँह से हमेशा 'भाई' ही निकलता है।

मास्टर जी (इंटर कॉलेज से टीजीटी पद से रिटायर्ड) का जन्म 01 जनवरी 1949 को उत्तर प्रदेश के जिला शामली ग्राम खंद्रावली में पिता श्री मीरसिंह जी चौहान व माता श्रीमती चावली देवी के घर पर हुआ। वे बचपन से ही बहुत ही होनहार थे। वे एक नेक इन्सान, धैर्यवान, क्षमाशील, ममता की मूर्ति व दयालु इतने कि किसी का भी दुःख उनसे देखा नहीं जाता था। हमारी ही नहीं पूरे परिवार व यूं कहिए कि पूरे गांव में जब भी किसी के यहां दुःख ने घेर लिया मास्टर जी उनकी तन–मन–धन से सहायता करने में जुट जाते। ग्रामीण बच्चों की उत्तम शिक्षा हेतू उन्होंने गाँव के इंटर कॉलेज के लिए सरकार से समय–समय पर ग्रांट भी पास करवाये। उन्होंने अपने बच्चों को बिल्कूल अपने जैसे ही संस्कार दिये हैं जो दूसरों कि सहायता करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं।

मास्टर जी की सात–आठ दिन पहले तबीयत बिगड़ी और बस बैकुंठ पहुंच गये। जब मास्टर जी के चेहरे से चद्दर हटाकर देखा तो ऐसे लग रहा था जैसे अभी–अभी सोये हैं। चेहरे पर तेज व मुखमुद्रा बहुत ही शांत थी। लग ही नहीं रहा था कि वे अपने नश्वर शरीर को छोड़कर जा चुके हैं और उन्हें देखकर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि यह पवित्र आत्मा सीधा बैकुंठ ही गयी है। मास्टर जी को सच्चे अर्थों में इन्सानियत का मसीहा व एक गृहस्थ संत कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। उनका ऐसे अकस्मात् चले जाना हमारे चौहान परिवार के लिए अपूर्णीय क्षति है। ईश्वर की यही इच्छा थी।

!! ॐ शान्तिः ॐ !!

**–प्रो० शकुन्तला**